

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

‘शुक्ल’ जैन महाभारत

की

अनुक्रमणिका

संख्या	विषय	पृष्ठ
	प्रथम परिच्छेद—१	
१	पाण्डु की विरक्ति	१
	द्वितीय परिच्छेद—२	
२	हिडिम्बा विवाह	१५
	तृतीय परिच्छेद—३	
३	जरासिन्ध-वध	२१
४	अद्भुत महल...	४७
५	दुर्योधन का षडयंत्र	५३
६	वाजी ..	६३
७	द्रौपती का चीर हरण	७७
८	धृतराष्ट्र की चिन्ता	९०
९	श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा	९६
१०	दुर्योधन का कुचक्र	१००
११	लाख का महल	१०५
१२	बकासुर वध...	११७
१३	गधर्वों से मित्रता	१३०
१४	पाँसा पलट गया	१३५
१५	पाण्डव बच गए	१४७
१६	पाण्डव दास रूप में	१६१
१७	कीचक वध ...	१६९
१८	दुर्योधन की चिन्ता	२०८
१९	दुर्योधन से टक्कर	२१५
२०	वृहन्तला रण योद्धा के रूप में	२२६
२१	कौरवों के वस्त्र हरण	२३६
२२	दुर्योधन की पराजय	२४७
२३	पाण्डव प्रकट हुए	२५४
२४	परामर्श ..	२६८
२५	श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी	२८१
२६	मामा विपक्ष में	२८८

सख्या	विषय	पृष्ठ
२७	सन्धि वार्ता. .	२९५
२८	दुर्योधन का अहकार ..	३०९
२९	कृष्ण शान्ति दूत बने ...	३१४
३०	कुन्ती को कर्ण का वचन ..	३२५
३१	सेनापतियों की नियुक्ति ...	३३५
३२	कृष्णोपदेश ...	३४०
३३	आशीर्वाद प्राप्ति ..	३५९
३४	युद्ध होने लगा ...	३७१
३५	दूसरा दिन ...	३८६
३६	तीसरा दिन...	३८९
३७	चौथा दिन ...	३९४
३८	पाचवां दिन .	३९७
३९	छठा दिन ...	४००
४०	सातवां दिन...	४१७
४१	आठवां दिन...	४२७
४२	नौवां दिन ..	४३५
४३	मृत्यु का रहस्य ...	४५२
४४	भीष्म का विछोह ...	४५८
४५	दुर्योधन का कुचक्र ..	४७५
४६	युधिष्ठिर को जीवत पकड़ने की चेष्टा ...	४८२
४७	बारहवां दिन ..	४८८
४८	तेरहवां दिन ...	५०६
४९	कर्ण का दान ...	५०८
५०	अभिमन्यु का वध ...	५२२
५१	अर्जुन की प्रतिज्ञा ...	५३५
५२	जयद्रथ वध ..	५४७
५३	द्रोणाचार्य का अन्त ...	५७६
५४	कर्ण का वध...	५८०
५५	दुर्योधन का अन्त ...	५८५
५६	अश्वत्थामा ...	५९४
५७	गांधारी की फटकार ..	६०३

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रन्थ और लेखक के विषय में इससे पूर्व प्रथम तथा द्वितीय भाग में बताया चुके हैं इस विषय में अधिक बताना दिवाकर को दीपक दिखाना है ।

पुस्तक के लगभग 625 पृष्ठ हैं जब पुस्तक ही इतनी महान् है तो उसके रचयिता कितने महान् होंगे यह तो पाठक गण अपनी प्रतिभा से विचार सकेंगे ।

प्रूफ का संशोधन श्री रमेश मुनि जी महाराज तथा श्री सन्तोष मुनि जी महाराज ने अति ही सावधानी एवं प्रेम से किया फिर भी त्रुटि का रह जाना सम्भव है क्योंकि पुस्तक एक विशाल एवं विराट है ।

उपरोक्त दोनों मुनि इस ग्रन्थ लेखक श्रमण संघीय पंजाब प्रान्त मन्त्री पं० रत्न कवि सम्राट जैन धर्म भूषण परम श्रद्धेय श्री शुक्ल चन्द्र जी महाराज के ही शिष्य हैं ।

जिन्होंने अत्याधिक परिश्रम से प्रूफ संशोधन कर अनेक त्रुटियाँ निकाल दी फिर भी कोई त्रुटि हो तो धर्म प्रिय सज्जन सुधार कर पढ़ें । प्रत्येक बन्धु का परम कर्तव्य है कि जैन महाभारत के आदर्श और उसके दृष्टि कोण पर चलने का भरसक प्रयास करे तथा अपना जीवन सफल बनाए तभी अपना परिश्रम सफल समझेंगे ।

जो स्थान गगन में प्रथम नक्षत्र को उपवन में प्रथम सुमन को माला में प्रथम मोती को प्राप्त है वही स्थान ग्रन्थों में प्रथम जैन महाभारत को है । इससे अधिक लिखने में मैं समर्थ नहीं हूँ विशेष पाठक गण स्वयं समझ लेंगे ।

भवदीय :—

सुखदेव राज जैन

कोतवाली बाजार, अम्बाला शहर ।

प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक के विषय में

पंजाब प्रान्त मन्त्री पं० रत्न कवि सम्राट परम श्रद्धेय पूज्य श्री शुक्ल चन्द्र जी महाराज के सुशिष्य सन्तोष मुनि 'दिनकर' प्रभाकर।'

साधु जीवन कठोर साधना तथा दुर्गम निष्ठुर पथ पर चलना और नाना प्रकार के परिपहो का सहना है। आप इस आधुनिक युग में जैन धर्म के एक उज्ज्वल चमकते हुए दिवाकर तथा श्री वर्द्धमान स्थानक वासी जैन श्रमण सघ के मन्त्री हैं। दिनकर से तेजस्वी राकेश से ओजस्वी दिव्य ज्योति श्रमर विभूति विश्व प्रिय आप ने शांत क्रांति को जन्म देकर जो सत्यादर्श सघ समक्ष रखे उसका अखिल भारतीय श्रमण एवं श्रावक सघ अभिनन्दन करते हैं। आप एक सस्कृति के प्रकाशक हैं।

शांत और निर्भीक जीवन में प्रेम और सामंज्यस का जो विलक्षण समन्वय हुआ है उसी के नाते आप आज तक जैन समाज के लोक प्रिय लोक पूज्य और लोकबंध बन रहे हैं। हमारी समाज में आप एक अमूल्य चितामणि रत्न हैं। ज्ञान के भंडार और शान्ति के सिन्धु हैं।

शुक्ल जैन रामायण तथा शुक्ल जैन महाभारत जैसे महान् ग्रन्थों के रचयिता से ही आपकी प्रतिभा का परिचय हो जाता है। आप एक प्रतिभा सम्पन्न और प्रभाव शाली सजग साधु तथा साधुत्व की एक साक्षात् मूर्ति हैं। जैनागमों का आपने गहरा अध्ययन किया और विपुल हिन्दी साहित्य का भी।

इसके साथ २ सस्कृत प्राकृत गुजराती, मराठी आदि भाषाओं पर भी आपका अच्छा अधिकार है। उपरोक्त दो ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कई पुस्तकों का आपने प्रकाशन किया जम्बु चरित्र वीर मति जगदेव चरित्र मुख्य तत्त्व चिंतामणि अध्यात्म गुण माला धर्म दर्शन शुक्ल गीताजलि नवतत्त्वादर्थ भारत भूषण जगतविख्यात प्रधानाचार्य पूज्य सोहनलाल जी म० एव पंजाब केशरी प्राकाण्ड विद्वान् जैन-चार्य पूज्य कांशीराम जी म० का आदर्श जीवन आदि अनेक पुस्तकों का आपने अपना अमूल्य समय निकाल कर प्रतिपादन किया।

अखिल भारतीय समाज आपका मनोहर नाम न लेकर पंडित श्री जी के नाम से पुकारती है। पंडित श्री के नाम की ख्याति इसी लिए नहीं कि आप केवल विद्वान् हो अथवा द्विज वंश कुलोत्पन्न हैं। बल्कि विद्वता के साथ-साथ गम्भीर दार्शनिक सैद्धान्तिक तथा कठिन से कठिन विषय को भी लोक भाषा में विवेचन करते हैं, और जैनगमों का गम्भीर ज्ञान तथा समझने की विद्वता पूर्ण कला आप में ही है। सरलता सहन शीलता प्रमुदित मुख शान्त मूर्ति स्नेह सरल स्वभाव करुणा सिन्धु शान्ति सरोवर जैन धर्म के ज्ञाता आदि गुण आपके स्वाभाविक ही हैं। इस युग में आप हिन्दी सस्कृत के एक प्राकाण्ड विद्वान् हैं।

और इसी से आप महान् हैं। आपकी सर्व श्रेष्ठ पुस्तकों का जनता ने हार्दिक स्वागत किया जो हाथों हाथ बिक रही है।

अपने जीवन में आप जो कुछ हमें प्रदान कर रहे हैं वह हमारे विचारों की पवित्रता आचरण की पावनता और आत्मा की शुद्धता के लिए प्रकाश स्तम्भ और अलोक मार्तण्ड की भांति है। आपने अपनी अमृतमयी प्रेम प्लावित जादू भरी वाणी द्वारा अनेक स्थानों पर धार्मिक एवं सामाजिक सुधार कर समाज में स्नेह की सुन्दर निर्मल एवं मंगलिक कल्याणकारी मन्दाकिनी प्रवाहित की हैं। आप जैसे महान् ज्योतिर्धर पर जैन समाज जितना भी अधिकाधिक गर्व करे उतना ही थोड़ा है। आप सत्य अहिंसा क्षमा शान्ति के एक साक्षात् अवतार हैं। आप की ओजस्वी वाणी ने जनता के समक्ष जादू का कार्य किया।

प्रधानाचार्य पूज्य सोहन लाल जी महाराज पंजाब केशरी प्राकाश विद्वान् जैनाचार्य हृदय सम्राट् पूज्य काशी राम जी महाराज की भांति आप भी अपने पथ पर निर्भयता से अग्रसर हो रहे हैं और उन्हीं के सत्यादर्शों पर चल रहे हैं सत्य अहिंसा पथ पर अग्रसर होते हुए श्रमण सस्कृति के अमर देवता अहिंसा मूर्ति प्रेमावतार क्षमा सिन्धु केवल ज्ञान दर्शनाराधक करुणाभण्डार श्रमण भगवान् महावीर का धर्म प्रचार्य कर सम्वत् २०२० का चातुर्मास जैन सघ की आग्रह-भरी विनती पर अम्बाला शहर स्वीकार किया।

आपने अपनी विशेषताओं से अपने आदर्शों से जन हित कार्यों से और अपने महान् गुणों से इस निरस मानव लोक का तिमिर प्लावित मानव ससार को - जैन धर्म - रूपी दिवाकर की किरणों विस्तृत कर चमत्कृत कर दिया और जो मुरझाया हुआ तथा शुष्क उपवन था वह हरा भरा तथा लहलहाता हुआ बना दिया। और आप ने दानवता के स्थान पर मानवता ग्रहण करना स्वार्थ वृत्ति तज कर परमार्थ वृत्ति जागृत करना विश्व कल्याण में ही निज कल्याण की भावना रखना तथा अन्य की भलाई के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देना आदि इस प्रकार के उपदेश सुनाकर जनता को मंत्र मुग्ध बना दिया।

आप एक लोक प्रिय सन्त और जनता की श्रद्धा भावना के केन्द्र हैं साधुओं की व्यवस्था में आप श्री हम सब के लिए एक आदर्श हैं। श्रमण सस्कृति मानव सस्कृति जैन सस्कृति का रहस्य बतलाते हुए आप ने फरमाया था कि जो सुख शान्ति दूसरे को देने में हैं वह लेने में नहीं जो आनन्द अन्य को देने में हैं वह लेने में नहीं जो त्याग में हैं वह भोग में नहीं वही स्वर आज भी हमारी जैन समाज में गूजायमान हो रहा है।

संघ शिरोमणि चरित्र नायक चूड़ामणि, चितामणि रत्न प्रातः स्मरणीय कवि सम्राट् केशरी सम विशाल कार्य तप पुत्र ब्रह्मचर्य से तेज युक्त प्रफुलित वदन दिव्य ज्योति सुहोल भव्य शरीर हस्ती वत गम्भीर चाल चित्तन शील नयने नवनीत सम मृदु हृदय उन्नत नलाट तेजो मय मुख स्वर्ण रूप सरल कोमल ओजस्वी प्रवाह मयी प्रभाव शाली जादू भरी अमृत मयी वाणी आदि गुणों सहित गुरुदेव

आपने केवल पंजाब प्रांत में ही नहीं महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, बम्बई, बंगाल, विहार, राज्यस्थान गुजरात, काठिया वाड, यु पी. एम. पी. वी. एस. पी. मैसूर आदि अनेक प्रांतों में पैदल पर्यटन कर मधुर घमोंपदेश द्वारा जनता का कल्याण किया और अब कर रहे हैं तथा सन् 1947 पूर्व रावलपिंडी, गुजरावाला, लाहौर, पसरूर, कसूर, स्यालकोट आदि में किया जा आज हमारे लिए विदेश बन कर पाकिस्तान में मेलित है।

आप अपने जीवन काल में कल्याणकारी लोक राज अहिंसात्मक विश्व बन्धुत्व एवं अध्यात्मिक साधना की पराकाष्ठा को स्थापित कर रहे हैं आप जीव विज्ञान के आचर्य हैं। आपका समग्र शरीरिक दर्शन ही जिस भाग्यशाली पुण्यवंत नर को उपलब्ध हो गए वह सदा के लिए कृत कृत्य हो गया उसका जीवन सफल एवं उच्चकोटि का बन गया। इस लोक में तथा परलोक में सुखमय बन गया।

आप हमारी समाज में एक दिनकर सद्दृश्य हैं जिस प्रकार दिवाकर की सहस्रो किरणें प्रचण्ड एव प्रखर विस्तृत हो रात्रि तिमिर को नष्ट कर प्रकाश से जगमगा देता है परन्तु वह मार्तण्ड तो केवल रात्रितम का ही हरण करता है जो भौतिक है परन्तु आप की जैन धर्म दिवाकर की कोटि-कोटि किरणें ज्ञान का अलोक धर्म का प्रकाश अध्यात्मिक मानव हृदय को आलौकिक करती हुई असार ससार नश्वर नाश्वान तथा क्षण-भंगुर विश्व को त्यागने तथा सयम रूपी अमूल्य रत्न ग्रहण करने की प्रेरणा देती है।

आपके जीवन की प्रत्येक घटना एक आदर्श मयी हैं और उस का वर्णन भी इसी लिए करते हैं कि ससार-ससार के मिथ्या चक्कर से वचे पुण्य-पाप, सत्य-असत्य, हिंसा-अहिंसा की पहिचान करें और धर्म से सम्बन्ध योग कर जन्म मरण बन्धन तोड़ कर अष्टकर्म रहित अजर अमर निराकार अरूपी अविकार सच्चिदानन्द सकल विश्व एव त्रयलोक दृष्टिगोचर स्वर्ग एवं दोषस्य का ज्ञाता परमात्मा स्वरूप बन सकता है। आप का हृदय नवनीत सम मृदु शिशु सम सग्ल मानों प्रेम सरिता प्रवाहित हो रही है परन्तु नियम पालन तथा सयम क्रिया में वज्र से भी निष्ठुर है इसमें तनिक सन्देह नहीं। अजर अजमेर सादड़ी सोजत बीकानेर जहाँ भी

सर्व मे भाग लिया और प्रत्येक मे सफलता आपके पावन पदपंकज चूमने लगी सैकड़ों साधुओं में आप का तेज निराला ही था वास्तव मे शुक्ल सचमुच हो शुक्ल हैं मानो शुक्ल ध्यानी शुक्ल लेश्या के धारक हैं। मुख पर ज्योति दमदमा रही है कितनी सहनशीलता कितनी शांति कितना साहस उत्साह प्रेम कितना स्नेह धन्य है आप के जीवन को बारम्बार धन्य हैं आपके समय को गुरु देव धन्य है।

आपका प्रारम्भ से ही श्रमण-सघीय निर्माण में अत्याधिक प्रेरक हाथ रहा है। सन् 1957 मे देहली विश्व धर्म सम्मेलन मे आप सब साधुओं से प्रतिनिधि थे। सम्मेलन के लगभग 300 प्रतिनिधियों मे आपके चेहरे पर जो शान्ति चमक रही थी जो तेज चमत्कृत का वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत के धार्मिक प्रतिनिधियों को जैन धर्म को त्याग मयी साधना और आत्मतेजस्विता के प्रति वरवश आकृष्ट कर रही थी उसकी सफलता का कारण आपकी कृपा दृष्टि ही है। आप भव्य भद्रात्मा ज्ञान दर्शन चरित्र के आराधक और दृढ संयमी साधक है सहानुभूति स्नेह प्रेम और सरलता का भरना तथा अहिंसा दया करुणासत्य ज्ञान तप का सरोवर निरन्तर एव अविरल प्रवाहित होता रहता हैं।

आपने ही जनता के हृदय की भावना को सम्मान देते हुए बड़े बड़े ग्रन्थों का काव्यात्मक भाषा मे निर्माण किया अभी जैन महा' भारत के पीछे भी आपका उद्देश्य जन कल्याण हो रहा है इसका प्रथम भाग तो प्रकाशित हो चुका था यह द्वितीय खंड प्रकाशित हो रहा है। यह शुक्ल जैन महाभारत जैन आचार जैन इतिहास और जैन दृष्टि कोण के विषय मे भी नवीन प्रकाश एव अलोक दिखाएगा ऐसा सम्पूर्ण मुझे विश्वास है।

संघ संगठन समाज को एकता और संघ की भलाई तथा दूसरों के परमार्थ के लिए आपने युवाचार्य जैसे महान् पद का भी त्याग कर दिया यही है आपके जीवन की एक महान् और महत्व पूर्ण विशेषता यही है आपके जीवन का एक सत्यादर्श।

निर्भयता और निस्वार्थता आपके हृदय की ठोस वस्तु हैं आप मानव जीवन धर्म दर्शन समाज और संस्कृति के विभिन्न विषयों पर गूढ़ विचार रखते हैं आप स्वच्छन्द विचार शैली विशिष्ट कल्पना

शक्ति एवं मौलिक चिन्तन शीलता के परिचायक है । मानव जीवन को नवीन मोड़ देने नवीन दिशा दिखाने विकास पथ पर बढ़ने एवं प्रगति करने के लिए सहयोग देने में पूर्णतः समर्थ है आपने श्रमण सघ का जो कार्य एवं निर्माण किया वह अद्वितीय है ।

अतीत काल में श्रमण सघीय निर्माण में आपने भरसक प्रयास किया वर्तमान में अत्याधिक प्रयत्न कर रहे हैं और भविष्य में अत्यंत चेष्टा करेंगे । ऐसी शुभाशा है ।

शासन देव से प्रार्थना है कि आपको दीर्घायु दे आपकी छत्र छाया में रहते हुए चतुर्विध सघ प्रगति कर रहा है आपका आशीर्वाद और आपका साया करोडों वर्ष तक जैन समाज और अपनी शिष्य मंडली पर रहे यही मेरी एक हार्दिकाभिलाषा एवं कामना है । विशेष परिचय जानने के लिए जैन महाभारत के तृतीय भाग में पढ़ें ।

हार्दिक उद्गार

जैन धर्म दिवाकर पूज्य वर भव्य जीवो के तारण हारे हैं ।

आशाओं के केन्द्र हमारे निर्मल शशि उजियारे हैं ॥

शान्ति सिंधु क्षमा दया और ज्ञान गुणी भंडारे हैं ।

सहन शीलता करुणानिधि अद्भुत उज्ज्वल पुण्य सितारे हैं ॥

तेजस्वी “दिनकर” ओजस्वी इन्दु प्रेम मन्दाकिनी बहाते हैं ।

राजे और महाराजे सारे चरणन शीष निवाते हैं ॥

पंजाब प्रान्त मन्त्री क्या-क्या गुण आपके गायें हम ।

गुरु देव आपके चरणन में श्री सादर शीष भुकाये हम ॥

प्रधानाचार्य भारतभूषण जगतविख्यात पूज्य सोहनलाल जी म० कीज

पंजाब केशरी जैनाचार्य प्रकांड विद्वान पूज्य काशीराम जी म० कीज

श्रमण संघीय मंत्री कवि सम्राट प० रत्न पूज्य शुक्ल चन्द्र जी म० कीज

ओम शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !!!

भवदीय .—मुनि सन्तोष “दिनकर”

प्रधानाचार्य संवत् 28

भादव शुक्ला पंचमी

संवत् २०२०

महावीर संवत् 2489

23 अगस्त सन्

1963

श्री महावीर जैन भवन

अम्बाला शहर (पंजाब)

शुक्ल जैन महाभारत

* प्रथम परिच्छेद *

पाण्डु की विरक्ति

पूर्व कर्म के हाथ में है जीवन की डोर
शुभ होवे तो मिल जायेगा जग उलभन का छोर
घोर तिमिर भी छट जाता है, होती है जब भीर
भटक भटक कर सरिता, पहुंचे सागर के ही ओर

श्वेत छत्र से सुशोभित पाण्डु नृप को वन क्रीड़ा करने की इच्छा हुई। चंचल अश्व, मदोन्मत हाथी और सुन्दर, सुसज्जित रथ तैयार हो गए, चारों प्रकार की सेना सज गई। सौम्य सुन्दरी कमल मुखी माद्री भी पति आज्ञा से सोलह शृङ्गार करके तैयार हो गई। नृप महल से निकले तो अनेक प्रकार के वाजे वज उठे। माद्री पालकी में सवार हो गई। अश्व चंचल हो गए। और नृप अपनी सेना के साथ वन की ओर चल पड़े। वन में पहुंच कर सेना को एक स्थान पर रोक कर नृप और माद्री सघन वन में चले गए, वहां जहां प्रकृति सोलह शृङ्गार कर के मदनोत्तम थी। नृप कभी ताल वृक्षों की शोभा देखता, कभी सरल सरस वृक्षों पर दृष्टि जमा देता, और कभी मजरियों की मुगध से परिपूर्ण, सुगन्धित आम्र वृक्ष उने अपनी ओर आकर्षित कर लेते। अशोक वृक्ष, जो कामितियों के पंखों की ताड़ना से हरे भरे हो जाते हैं, नृप को अपने यौवनोन्मादी शरीर को एक टक देखने के लिए आमन्त्रित करते तो प्रमदाओं के

कुल्लो से सींचे गए वकुल के वृक्ष उसकी ओर अपने कर पसार देते। कभी कुसवक वृक्ष उस की दृष्टि हर लेते तो कभी मदोन्मत्त भ्रमरो के मधुर सगीत उसके चित्त को बाहु पाश में आवद्ध करने की चेष्टा करते। और वह कोयल कूक रही है, कानों में माधुर्य घोलती हुई नृप और माद्री के शुभ गमन पर अभिनन्दन राग अलाप रही है। जल प्रपात अपने हिये को वाणा पर तरल तरंगों का, कि भौरयो के मधुर कण्ठ को भा लज्जित करने वाला राग नृप के हृदय को गुद गुदा रहा है और कहीं विभिन्न एवं विचित्र रंगों के पक्षों किलोल करते हुए मन में आ वसने के लिए लालायित दोखते हैं। सारी प्रकृति हीं मद भरी है। ऐसे मादक वातावरण में भला कौन कायर अपने हृदय पर काबू रख सकता है। नृप कभी प्रकृति के शृङ्गार को देखता तो कभी माद्री की घोर काली केश लताओं में उलभ जाता। वह माद्री के साथ वन के स्वच्छन्द पशु पक्षियों की नाईं क्रीडा करने लगा। उस ने चन्दन के रस से, अग्ररुद्रव के मर्दन से, सुगन्धित द्रवा के निक्षेप से, उस चित्ताकर्षक एवं सुन्दर वन पशुओं के चंचल कटाक्ष सहित निरक्षिण से इस प्रकार महाराजा, राजरानी माद्री के सहित, जिस समय प्रकृति नदी के मनोरम रूप सुधा का आस्वादन करने में तल्लीन थे, उसी समय एक ऐसी अकल्पित घटना घटी कि जिसने उनका आयोदमयी जीवन-सरिता के प्रवाह को ही मोड़ दिया। उस मद भरे सरस सुन्दर वातावरण में, जहाँ लता वितानों पर मुखरित पुष्पों की मनमोहक मुगन्ध पर भ्रमरगण अपनी राग रागिनिया ध्वनित कर रहे थे। सहसा एक हृदयद्रविक चीत्कार कर्ण कुहरो में गूजने लगा। उस आर्तनाद से वह समस्त वन-प्रदेश मानो प्रकम्पित हो रहा हो। जिससे धर्मात्मा पांडुनरेश के दयालु हृदय को बड़ा आघात पहुंचा और वह एक क्षण का भी व्याघात न करते हुए शब्दानुसरण करते हुए उस स्थल पर पहुंचे जहां एक भोला मृग किसी लुब्धक के तीक्ष्णवाण से आहत होकर कराहता हुआ छट पटा कर अपनी जीवन लीला को समाप्त कर रहा था। और उसकी प्रेयसी उसकी ओर व्यथित दृगों से अश्रुपूर्ण नेत्रों से खड़ी देख रही थी। पांडुनृप को उपस्थित पाकर मृगी का हृदय और भी चंचल हो उठा। वह दैन्यभाव से एक बार नरेश की तरफ देखती, तो

दूसरी बार अपने अग्रिमाण प्रियतम की ओर । जैसे कि कह रही हो कि क्या आप इसी न्यायपद्धति एवं बलवृत्ते पर हम निरीह वन वासी प्रजा की पालना करते हैं । क्या हमने किसी को मारा था अथवा हम किसी का घन चुराते हैं ? जिसके उपलक्ष्य में आपके साथियों ने इतनी निर्दयता एवं कठोरता से मेरे पति का वध किया है ? मैं ह ही खेत खाने लगे तो उसकी रक्षा कैसे हो सकती है यह तो रक्षक के ही भक्षक बन जाने जैसी बात हुई ! केवल घास तृण खाकर, ही जीवन यापन कर देने वाले मेरे पति को मार कर राजन् आप के साथियों को क्या मिला ? भूपति, हिरणी के दुःख-तप्त हृदय से निमृत् आर्तनाद को हृदय कर्णों से श्रवण कर रहे थे । उसी की जानि के एक सदस्य के द्वारा उपस्थित किये इस पैशाचिक कांड ने नर नाथ का हृदय विदीर्ण कर दिया था । हिसारूपी रग में रगे मानव रूपी दानव की दानवता से राजा का शरीर सिहर उठा था । उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो समस्त चराचर जगत को अपनी मुखद गोद में भरण-पोषण एवं विश्राम प्रदान करने वाली प्रकृति देवी मनुष्य का उपहास उड़ाती हुई शिक्षा दे रही हो कि—ऐ मानव ! तू सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी हो कर भी मानवता के अभाव में पशुओं से भी निम्नतर है । तू उनके उपकार से, उनके श्रम में उत्पन्न अन्न, वस्त्र, फल, फूल, दूध, दधि, घी, मक्खन आदि अमृत का सेवन करके स्वयं तो जीवित रहना चाहता है । पर अपने अधन्य स्वार्थवश उन जीवित दानाओं को जीवित नहीं रहने देना चाहता । यह तेरी कैसी कृत-घ्नता है । यदि मानवाकृति प्राप्त की है तो मानवता का यह अ-दिमूत्र भी सदा सर्वदा स्मरण रख कि—

—दशवैकालिक सूत्र ४, ९

संसार भर के प्राणियों को अपनी आत्मा के ममान समझो, यही अहिंसा की व्याख्या है और यही अहिंसा का भाष्य, महाभाष्य तथा कर्षाटी है । (अहिंसा जो कि मनुष्यत्व का प्रमुख अङ्ग है) जिस दिन जिस घड़ी में तू अपने जीने का अधिकार ले कर बैठा है वही जीने का अधिकार सहज भाव में दूसरों के लिए भी देगा, तो मेरे अन्दर दूसरों के जीवन की परवाह करने की मानवता

जागेगी, दूसरों के जीवन को अपने जीवन के समान समझेगा, और सब प्राणी तेरी भावना में तेरी अपनी आत्मा के समान बनने लगेंगे और सारे संसार को समान दृष्टि से देखेगा, और समझेगा कि जो वस्तु मुझे प्रिय है वही इन्हेभी है क्योंकि—

सव्वे प्राणा पिया उमा, सुहसाया, दुख पडि कूला, अप्पिय
वहा, पियाजी विणो, जीविउकामा । सव्वेसि जीवीयपियं ।

अर्थात् — सब जीवों को जीवन प्रिय है और सभी जीना चाहते हैं सुख के लिए तरसते हैं और दुख से घबराते हैं अतः प्राणियों के जीवित्तव्य एव सुख का यदि तू निमित्त बनने को तैयार रहता है तो तभी समझना कि तेरे अन्दर अहिंसा है अर्थात् तू वास्तव में मानव है ।

सव्वे जोवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउं ।

तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गथा वज्जयति णं ॥

सब जीव जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता । सभी को अपने जीवन के प्रति आदर और आकांक्षाएँ हैं । सभी अपने लिए सतत प्रयत्नशील हैं । अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं, सत्ता के लिए जूझ रहे हैं सो जैसा तू है वैसे ही सब हैं । भगवान् कहते हैं कि इसी लिए मैंने प्राण बध अर्थात् हिंसा का त्याग किया है । और दूसरों को सताना छोड़ा है । स्वयं को सताया जाना पसन्द होता तो दूसरों को सताना न छोड़ते । मर जाना पसन्द होता तो मारना न छोड़ते । मगर सभी प्राणियों के जीवन की धारा एक है ।

तुमंसि णाम तं चेव जं हत व्वति मग्गसि
तुमंसि णामतं चेव जं अज्जावेयव्वति मग्गसि;
तुमंसि नाम तं चेव जं परियावेयव्वति मग्गसि,

एवं जं परिछेत्तव्वति मग्गसि, जं उद्धवेयव्वन्ति मग्गसि,

भजू चेय षड्विद्ध जीवी मम्हा एा हता एाविधायण,
अणुसंवेयणमप्याणे एा ज हंतव्वं एाभिपत्थए ।

तुम जिस जीव को कष्ट देने योग्य, परिताप उपजाने योग्य यावत् मारने योग्य समझते हो वह प्राणी तुम्हारे समान ही शिर पैर, पीठ और पेट वाला है। यदि कोई प्राणी तुम्हे दुख देवे यावत् मारने के लिए आता हो तो उसे देख कर जिस प्रकार तुम्हे दुख होता है। उसी प्रकार दूसरे जीवों को भी होता है। अथवा जिस काय को तुम हनन करने योग्य मानते हो उस काय में तुमने हजारों बार जन्म धारण किया है, इस लिए यह समझो कि तुम ही हो। इस प्रकार विचार करके जो पुरुष सब जीवों को आत्म तुल्य मानता है, वही श्रेष्ठ है। जो जीवों की हिंसा की जाती है उसका पाप स्वयं जीव को ही भोगना पड़ता है। अतः किसी भी प्राणी की स्वयं घात न करे, न दूसरों से करवाये, और करने वालों की अनुमोदना भी न करे।

शास्त्र में एक अन्य स्थान पर कहा गया है :—

सव्वेपाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एा
हंतव्वाण अज्जा वेयव्वा एा परिधेतव्वा एा परिया
वेयव्वाण उड्वेयवा, एस धम्मे सुध्वे णिइए सासए ।

—अर्थात् एकेन्द्रिय से ले कर पचेन्द्रिय तक किसी भी प्राणी की हिंसा न करना चाहिए, उन्हे शारीरिक व मानसिक कष्ट न देना चाहिए। तथा उनके प्राणों का नाश नहीं करना चाहिए। यह अहिंसा धर्म नित्य है, शाश्वत है। हिंसा तीन काल में भी सुख देने वाली नहीं है। दया उत्कृष्ट धर्म है।

दया—नदी महातीरे, सर्वे धर्मास्तृणाड्कुराः ।

तस्या शोषमुपेतायां प्रियन्नन्दति ते चिराम् । १॥

ऐन्द्रिक लोलूप्ता के वशवर्ती मानव द्वारा किये जाते क्रूर कर्मों

को स्मरण कर-कर राजा का मन ग्लानि से भर उठा था जिस के कारण पांडु नृप का मन ससार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गया कहा तो वह विषयानुरागी था और कहा उमने यह सोच कर कि भोग से अन्य पापों के भूभट में उलझ कर आत्मा के वर्म को भूल गया हूं, मुझे अपनी आत्मा के लिए भी कुछ करना चाहिए, मुक्ति के लिए भी कुछ करना है। यह तो मेरा जीवन ही सब व्यर्थ जा रहा है, ससार के सारे मोह वधन तोड़ डाले इसी लिए तो काल लब्धि एक ऐसी वस्तु है जो जीव की भवितव्यता के अनुसार उसके भाव और तद स्वरूप क्रिया कर देती है। पाण्डु नृप उस समय विचारने लगा— इन्द्रिय विषय प्राणियों के लिए दुर्गति में ले जाने वाला है। जहां वृथा ही प्राणवध हो उसमें मेरी क्या सिद्धि? जिस राज्य काज से पाप हो भला उससे मेरा क्या सम्बन्ध? फिर शास्त्रों में पढ़ा ज्ञान उसके मस्तिष्क में उभर आया— “इस जीव ने अनन्त बार मनुष्यादि पर्याय धारण करके विषय सुख भोगे, उन से ही जब तृप्ति नहीं हुई तब अब कैसे तृप्ति हो सकती है,”— फिर वह सोचने लगा।— “जो एक बार भोगी जा चुकी वह तो जूठी हो गई, ससार में कौन ऐसा बुद्धिमान जो उच्छिष्ट खाना पसन्द करेगा? फिर विषय भोगते समय ही सुहावने लगते हैं, उत्तर-काल में नीरस हो जाते हैं, वल्कि विष समान प्रतीत होते हैं अतः विषय सेवन जीव को कोई सुख देने वाली चीज नहीं है, वह तो रोग का प्रतिकार है इसा लिए आचार्यों ने ऊपर के स्वर्गों में प्रविचार का नहो होना ही सुख बतलाया है। विषय सुख अनित्य है क्षण स्थायी है। कुछ देर चमत्कार दिखा कर नष्ट हो जाने वाला है। नृप विचार करता है कि हे आत्मन! तूने अनन्त काल तक विषय सुख भोगे पर तृप्ति न हुई, परन्तु अब तो सन्तुष्ट हो। इस समय तो तुझे सब अनुकूल साधन मिले हुए हैं। याद रख, सस्य पाते हुए तू यदि नहीं चेता तो कर्म का एक ऐसा भूकोरा आयेगा कि पीछे हूण्डे भी पता नहीं लगेगा। दूसरी बात यह है कि यदि तू नमस्कृत भी इन विषयों से विरक्त नहीं होता है तो एक दिन वह आयेगा कि तुझे ही यह विषय छोड़ देंगे। इस लिए समझदारी इसी में है कि तू पहले ही इनका परिन्याग करदे और और उन पथ पर पग बढा जिससे तेरा कल्याण होगा। पदार्थ

मे रत रहने से जीव का कभी कल्याण नहीं होता यह निश्चय समझ पाण्डु नृप कुछ देर तक विचार मग्न रहे और फिर कुछ निर्णय करके अपने आप से ही बोले —” अब तक मैं मोह के फन्दे में पड़ा हुआ था, अब मैं प्रति बुद्ध हुआ। इस समय मैं आत्म सुख से, सुखी हूँ। मुझे सन्तोष है और आत्मा के सच्चे सुख का अभिमान है। अब मुझे—स्त्री प्रेम से कोई प्रयोजन नहीं।

कामी पुरुष विषय भोगों में तन्मय हो कर अपने भोजन को अपने विवेक को, वंशव और वडप्पन को, यहां तक कि जीतव्य को छोड़ देते हैं, कामी राजा अपने राज्य धर्म को भूल जाते हैं, उन्हें अपने कर्तव्य, न्याय अन्याय, का भी ध्यान नहीं रहता, वे मिथ्यात्व के कारण अकरणीय कार्य भी करने योग्य बना लेते हैं। यह उनकी गिरावट की चरम सीमा आ जाती है। पर कामासक्त होने का कारण हमारा साहित्य भी है। साहित्यकार भी कामासक्त हो कर साहित्य को मानव जाति को नष्ट कर डालने योग्य रच डालते हैं। वे पेट के लिए विषयानुरागियों को प्रसन्न एवं आनन्दित करने के लिए कामोत्तेजक कविताएं कह डालते हैं, जिनका सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है पर जिस व्यक्ति की हृदय की आँखें खुली हैं वह जानता है कि जिन कुचों को सुवर्ण के कलश अथवा अमृत के दो घड़े बताया गया है वे मांस के दो पिंड हैं। जो स्त्री मुख श्लेष्क—खकार और थूक का घर है, उसको उपमा दी जाती पूर्ण चन्द्रमा की, इसीलिए स्त्रियों को चन्द्र मुखी कहा जाता है। सीधे सीधे नेत्रों को, जहाँ निद्रा उचटने के पाश्चात्त मल धूणास्पद मल ही मिलता है, मृगलोचन कह कर प्रशंसा की जाती है। इसी प्रकार स्त्री के अन्य अंगों की बड़ी सुन्दर वस्तुओं से उपमा दी जाती है, इस प्रकार पाठकों के हृदय में कामाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। पाण्डु राजा सोचता है वास्तव में यह हमारी आँखें हैं, और हमारे भाव हैं जिसे अच्छा समझे उसकी हर बुराई को भी भलाई के रूप में देखते हैं। स्त्री का रूप देखकर बेकार ही उत्तेजना आ जाती है। वास्तव में वह तो सात धातुओं का पिंड है, नखर है, माया का स्थान है, फिर भी तू रागान्ध हो कर उसमें आसक्ति करता है, आश्चर्य है तेरी बुद्धि पर।” उसे अपने अब तक के

चरित्र से घृणा होने लगी और वैराग्य उसके हृदय में अकुरित हो गया। फिर उसे माद्री की आंखों में मादकता दिखाई नहो दी। उसके नेत्रों के सामने से विषय वासनाओं का आवरण दूर हो गया। फिर उसने अपनी वैरागी आंखों से अपने चारों ओर देखा कहीं उसे मादकता दिखाई नहीं पड़ी किसी भी सौंदर्य ने उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं किया। वह चारों ओर देखता हुआ घूमने लगा उसी समय उसे मुनि दिखाई दिए। वह उनके पास गया। क्योंकि वह जानता था कि सच्चा सुख उन्हीं के मार्ग में है। मुनिगण का नेतृत्व करने वाले मुनि श्री सुव्रत जी थे, वे व्रतो से युक्त थे, सर्वाविधि ज्ञान के धारक थे, गुप्ति और समिति के पालन कर्ता एवं षट् काय के जीवों की रक्षा करने वाले थे। वे भव-तन भोगों से एकदम विरक्त थे और सदा आत्म चिन्तन में ही लगे रहते थे। बारह भावनाओं का चिन्तन करने वाले वाइस परीषहों को जीतने वाले उन मुनि जी की तपश्चर्या बहुत बढ़ी थी, इसी लिए उनका शरीर क्षीण हो गया था। वे जितेन्द्रिय व क्षमा के भण्डार थे। अक्षय सुख भोक्ता थे वे कभी स्त्रियों के तीक्ष्ण कटाक्ष-वाणों के लक्ष्य नहीं हुए थे। उनका पक्ष उत्तम था। वे प्रतिक्षण ही कर्मों को निर्जरा करने में लगे रहते थे। उन्होंने इन्द्रिय जन्य सुख की तिलाजलि दे दी थी। बड़े बड़े राजा महाराजा जिनके चरणों की सेवा करते थे उन महान योगी सुव्रत मुनि के चरणों में पाण्डु नृप जा गिरा। मुनि राज ने धर्म वृद्धि का आशीर्वाद दिया और कहा— राजन् इस ससार वन में यह जीव सदा ही चक्कर लगाता रहता है। जिस प्रकार अरहट की घड़ी तनिक भी नहीं ठहरती वह घूमती ही रहती है। जो पुरुषार्थी पुरुष है वे सदा ही धर्म का सेवन किया करते हैं। वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते क्योंकि निश्चय नहीं है कि एक क्षण में क्या कैसा होता। धर्म दो भागों में बाटा गया है एक श्रावक धर्म और एक मुनि धर्म। धर्म के धारण करने कराने से ही जीव भव भ्रमण से छूट सकता है और कोई दूसरा उपाय नहीं है। योगी अथवा मुनि धर्म के पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार से पालन होता है।” इसके उपरान्त सुव्रत मुनि ने मुनि धर्म और श्रावक

धर्म की सविस्तार व्याख्या की और अन्त में बोले—मुनि धर्म से मोक्ष और श्रावक धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । अतः राजन् ! तुम परमोपकारी धर्म का पालन करो । अब तुम्हारी आयु बहुत ही कम रह गई है । इस लिए अब तुम भली प्रकार सावधान हो जाओ, विषयों से अब प्रीति मत करो । मानव जीवन को व्यर्थ मत बनाओ । मेरा तो यही मत है कि अब तुम एकक्षण की भी देरी मत करो, विधि पूर्वक धर्म पालन करो इसी में कल्याण है ।

मुनि जी के धर्मोपदेश से पाण्डु नृप के नेत्र खुले और उसने विषयों की ओर से मन हटा कर धर्म की ओर प्रीति लगाई । माद्री के साथ अपने महल को वापिस गया । महल से जाते समय वह ससाराभिमुख था, पर वापिस आते समय वह आत्माभिमुखी न चुका था । उसने धृतराष्ट्र तथा विदुर को अपने महल में बुलाया और सारी घटना कह सुनाई । तदुपरान्त अपने निर्णय को उनके सामने रखते हुए कहा—“मैंने अपना पथ खोज लिया है । मेरी आयु के बहुत ही कम दिन शेष रह गये हैं अब मैं इस बहुमूल्य समय को धर्म ध्यान में व्यतीत करना चाहता हूँ अतः एव राज-काज भार से मुक्त होना चाहता हूँ ।”

धृतराष्ट्र ने सारी बात सुन कर कहा धर्म पथ पर जाने वाले को रोकना कदापि भला नहीं है । यद्यपि हमारे हृदय में वसा भ्रातृ स्नेह यह पसन्द नहीं करता कि आप हम से अलग हो । पर क्या करें, वैराग्य का अकुर जिस के हृदय में उत्पन्न होता है उसे कोई भी नहीं रोक सकता ।

जब पाण्डु के निर्णय की कुन्ती को सूचना मिली तो वह करुण क्रन्दन करने लगी । माद्री तो पहले से ही दुखी थी । पर उस की प्रिय रानियों का रुदन भी पाण्डु को विचलित न कर सका । उसने उन्हें सम्बोधित करके शांत भाव से कहा—“इस ससार में यह जीव कभी उस गति ने उस गति में, और कभी उन गति ने उस गति में चक्कर लगाता हुआ घूमता रहता है । फिर मुझे किसी ने किसी दिन तो इस ससार को, तुम्हें और राजपाट को छोड़ कर चले ही जाना है, कोई नई बात में नहीं कर रहा ।

इस लिए दुखी होने की क्या बात है ? विचारो, कि भरत चक्रवर्ति जो कि छ खण्ड का अधिपति था, जिस ने भूमण्डल को जीत कर अपने वश में किया, वह भी काल से न बचा तो हमारो तुम्हारी तो बात ही क्या है ? यह काल बली अजेय है । बात यह है कि इस भव सागर में चक्कर लगाता हुआ कोई भी व्यक्ति सनातन शाश्वत नहीं रहा, इस लिए किस के लिए शोक किया जाय । इन भोगों से किस सत्पुरुष का मन उचाट नहीं हुआ । मैं चाहता हूँ कि जो थोड़ी सी आयु शेष रह गई है उसको अकारण न जाने दो क्या तुम यह चाहती हो कि मेरी आत्मा इसी ससार में व्याकुल घूमती रहे । मैं कभी शाश्वत सुख न पा सकूँ मैं जानता हूँ कि तुम मुझे सुखी देखना चाहती हो, अतः मुझे विदा दो ।”

इस प्रकार रानियों को समझाया और मुक्त हस्त से दान देना आरम्भ किया । दीन दुखियों में अपार धन राशी वितरित की थी । अपने पाँचों पुत्रों को बुलाकर उन्हें उन के कर्तव्य समझाए और राज्य भार धृतराष्ट्र को देकर बोले-भाई ! मेरे इन पाँचों पुत्रों को अपना ही पुत्र समझ कर इनका लालन पालन करना ।”

धृतराष्ट्र जो चक्षु हीन थे, बोले “आता विश्वास रखो कि आज से मैं १०० के स्थान पर अपने १०५ पुत्र समझूँगा ।”

जब विदा का समय आया तो पाण्डव रोने लगे । पाण्डु मुस्कराने लगे, कहा—“तुम तो वीर सन्तान हो तुम्हारी आँखों में आंसू शोभा नहीं देते । आज तुम्हारा पिता धर्म पथ पर जा रहा है उसे आँसुओं से नहीं मुस्कानों से विदा दो ।”

पाण्डु नरेश की शिक्षाओं से सर्वने अपने मन को ज्यों त्यों शान्त किया परन्तु राजरानी माद्री के हृदय की विलक्षण स्थिति थी । पति के विना उसे समस्त ससार सूना-सूना सा प्रतीत हो रहा था । जिन महलों में रानियाँ दिवान रंग रेलियो करते करते सूर्य कब चढ़ा और कब अस्त हुए का भी उसे ध्यान न होता था वही महल उसे यम दण्डा समान भयानक प्रतीत हो रहे थे । जिसके कारण उसने समाधि प्राप्त करने के लिए पति पदानुसरण करने का

दृढनिश्चय करके अपने पुत्र नकुल और सहदेव को कुन्ती को समर्पण किया। और स्वयं पांडु नरेश के साथ ही आर्यिका दीक्षा के लिये अग्रसर हुई।

सारा नगर उनके पीछे चला। पाण्डु नृप की जय जय कार से सारा नगर गूँज उठा। नगर से बाहर जाकर एक बार सभी की ओर देखकर पांडु बोले “—आप लोग अब मुझे क्षमा करें और वापिस जाकर धर्म ध्यान में लगे, वैभव को छोड़ कर इस प्रकार पांडु चले गए। गंगा के तट पर जाकर उन्होंने निर्ग्रन्थ दीक्षा ली और तप लीन हो गए। मुनि पाण्डु सभी जीवों पर समता भाव रखते थे, सब जीवों से उनका मैत्री भाव था, गुणी पुरुषों को देखकर आनन्दित होते थे। उनका मन दर्पण वत् स्वच्छ था। अन्त में उन्होंने आहार का त्याग कर, गुरु को साक्षी कर वीर शय्या स्वीकार की। सम्यक ज्ञान दर्शन चारित्र्य तपाराधना रूपी पोत पर आरूढ़ होकर भव सागर को तोरण करने की इच्छा वाले उस महा यशस्वी पाण्डु मुनि ने प्राणी मात्र से समभाव एवं मैत्री भाव स्थापित किया। तीव्र तपश्चरण से शरीर उनका जैसे कृश होता जा रहा था। अतः त्यों-त्यों विलक्षण आत्म तेज उनके ललाट प्रतिभासित हो रहा था। अन्ततः वह समय आया जबकि सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तो का हृदय कमल में स्मरण करते हुए इस विनश्वर शरीर को त्याग कर सौधर्मकल्प में दिव्य देवद्युति सम्पन्न महाहिर्दक देव के रूप जन्म लिया। उधर माद्री आर्यिका ने भी हृदय को कपाने वाली दुर्धर तप अग्नि द्वारा जन्म जन्मान्तरो की पापराशि की भस्म करते हुए सलेखना भरण करके इसी सौधर्म देव लोक में दिव्य द्युति वाले अमर शरीर को प्राप्त किया।”

भीष्मपितामह द्वारा पांडवों का राज्यभिषेक—पांडु नरेश की दीक्षा के पश्चात् हस्तिनापुर के राज्य संचालन कक्ष में कौरव वंश के वयोवृद्ध, प्रतिष्ठित अधिकारियों की मंत्रणा प्रारम्भ हुई कि अब भविष्य में राज्य संचालन का भार किस को सौंपना चाहिये बहुत समय के बाद विवाद के पश्चात् भी अधिकारी सब का निश्चय मत यही स्पष्ट हुआ कि यदि प्रजा की प्रसन्नता समृद्धि सुख नैतिकता राज्यवृद्धि की कामना है तो युधिष्ठिर को ही

राज्यधिकारी निश्चित किया जाय । नीति के अनुसार एक तो राज कुमारो मे युद्धिष्ठिर सब से बडा है इसलिए भी राज ताज का वह अधिकारी है । दूसरे परम धार्मिक सत्यवादी, दयालु, उदार, न्यायवन्त शूरवीर आदि नृपोचित गुणो की साकार प्रतिमा भी है । इसी कारण समस्त प्रजा तथा सेना सेनापति, मंत्रीगण आदि सभी अधिकरीगण युधिष्ठिर सहित पांडवो को हृदय से आदर भी देते है तथा उनके इशारे मात्र पर अपना तन मन धन न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते हैं ।

मत्रणा गृह मे उपस्थित समस्त अधिकारियो द्वारा इस भावना को चतुर्दिशा से समर्थन प्राप्त हो रहा था । सबके ललाटों पर हर्षानुभूति नाच रही थी । परन्तु कौरव कुल वरिष्ठ भीष्म पितामह, न्याय नीति मूर्ति विदूर, समीप मे बैठे हुए धृतराष्ट्र के चेहरे को निर्निमेषनिहार रहे थे । जिसके कारण उपस्थित समुदाय के वार्तालाप की प्रतिक्रिया धृतराष्ट्र के हृदय मे क्या हो रही है यह उनसे छुपा हुआ नही रहा था ।

भीष्म पितामह दुर्योधन की महत्वाकाक्षा को और पुत्रो के प्रति धृतराष्ट्र के मोह से भलीभान्ति परिचित थे । यही कारण था धृतराष्ट्र के हृदय के मुखरूपी दर्पण पर प्रतिविम्बित एकके पश्चात् दूसरे भावों को अनायास ही पढ रहे थे । और कौरवकुल के हितकारी भविष्य के लिए चिन्तित थे ।

तभी धृतराष्ट्र ने समीचीन चर्चा से ऊँचकर मौनभंग करते हुए बोलना आरम्भ किया, कि इसमे कोई शक नही कि पांडव होनहार शक्तिशाली एव प्रजाप्रिय है । परन्तु हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दुर्योधन भी शूरवीर, नीतिनिपुण, दवंग प्रकृति का, एवं पांडवों की समानता रखने वाला राजकुमार है । अतः पीछे से कोई उपद्रव न खडा हो इसवात को ध्यान मे रखते हुए हमे अपना निर्णय करना चाहिये । क्यो पितामह और विदुर जी आपकी इसमे क्या सम्मति है ।

दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए पितामह ने कहना प्रारम्भ किया

पुत्र, इस राज्य को स्थिर एवं वृद्धिगत करने में पांडु राजा ही सबे सर्वा थे, हम सब देख रहे हैं कि युधिष्ठिर भी अपने पिता के यगस्वी सर्वगुण सम्पन्न पुत्र हैं। और राजकुमारों में हैं भी सबसे बड़े एवं प्रिय। अतः जो जिस कार्य योग्य हो उसे ही वह अधिकार समर्पण करना उचित होता है। परन्तु यदि दुर्योधनादि कुमार पांडवों के साथ प्रेम पूर्वक निर्वाह नहीं कर सकते और अपने लिए राज-ताज की माग करते हैं। तो सर्वश्रेष्ठ यही रहेगा, कि राज्य के दो भाग करके एक भाग पांडवों को, दूसरा भाग दुर्योधनादि को सौंप दिया जाय। कुल की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा इसी प्रकार स्थिर रह सकती है।

विदुरादि ने भी गृह—क्लेशाग्नि, जो धार्तराष्ट्रों में अन्दर ही अन्दर सुलग रही है—विस्फोट का रूप न धारण कर ले, इस बात को ख्याल में रख कर जब भीष्म पितामह की सम्मति का समर्थन किया, तो धृतराष्ट्र के आनन पर सहसा हृदय की हर्षानुभूति चमकने लगी। और साधु साधु कहते हुए इस निर्णय का समर्थन किया।

इसके पश्चात् राज्यविभाग एवं अभिषेक आदि से सम्बन्धित आवश्यक विचार-विमर्श करके मन्त्रणा को समाप्त किया। और उसे मूर्त-रूप देने की क्रिया में तत्परता से सब कोई जुट गये।

× × × × ×

हस्तिनापुर में राज्याभिषेक की तैयारियां जोर-शोर से प्रारम्भ हो गईं। महलो-भवनो, राजपथों, वीथियों को खूब सजाया गया। चारों तरफ वन्दनवार, पुष्पमालाओं सुगन्ध वस्तुओं का साम्राज्य छा गया। झंडियों, ध्वजाओं से सारा नगर सजी दुलहन समाज आकर्षक बना हुआ था। गहनाईयां बज रही थीं। भेरी पटह भल्लरी दुन्दु-भिनाद से जत्र आवागम व्याप्त था तो शुभ घड़ी में पूर्व निश्चयानुसार भीष्म पितामह धृतराष्ट्र आदि कौरव कुल वरिष्ठों द्वारा युधिष्ठिर का यथाविधि राज्याभिषेक किया गया। इस प्रकार आधा राज्य पांडवों को और आधा राज्य दुर्योधनादि कौरवों के आधीन कर दिया गया।

राज्याभिषेक के उपरान्त युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए धृतराष्ट्र ने समझाया—पुत्र युधिष्ठिर, भैया पांडु ने इस राज्य को अपने बाहुबल से बहुत विस्तृत किया था और वश के गौरव को चार चाद लगाये थे। मेरी कामना है तुम भी अपने पिता के समान ही यशस्वी गौरव शाली, सुखी और कुलध्वज बनो। तुम्हारे पिता पांडु ने मेरे कथन को कभी अन्यथा नहीं किया। गुरु के विनीत शिष्य के समान सदा सर्वदा मुझे बहुमान देते रहे। तुम भी अपने पिता की यशस्वी सन्तान हो। मुझे तुम से भी ऐसी ही आशा है मेरे बेटे दुरात्मा हैं। एक स्थान पर ही रहने से सम्भव है परस्पर में वैमनस्य बढ़े। इसलिए मेरी तुम्हे यही सम्मति है कि तुम खांडव-प्रस्थ को अपनी राजधानी बना लो और वही से राज्य संचालन करो। इससे तुम में और दुर्योधनादि के मध्य शत्रुता की सभावनाएं ही समाप्त हो जायेगी।

खांडवप्रस्थ वही नगरी है जो पुरु, नहुष, ययाति और हमारे प्रतापी पूर्वजों की राजधानी रही है। उसके उद्धार से पूर्वजों की राजधानी के वसाने का यश भी तुम्हें प्राप्त होगा।

धृतराष्ट्र के मृदु वचनों को मान कर पांडवों ने खांडवप्रस्थ के भग्नावशेषों पर, जोकी उस समय तक निर्जन वन ही बन चुका था, निपुण शिल्पकारों से एक नये नगर का निर्माण कराया। सुन्दर २ भवनो अभेद्य दुर्गों आदि से सुशोभित उस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया। इस नई राजधानी में, जिसकी उन दिनों भारत में प्रणसा हो रही थी, माता कुन्ती और सती द्रौपदी सहित पांडव सुख पूर्वक राज करने लगे। तेईस वर्ष पर्यन्त दिन दूना रात चौगुना आनन्द मगल छाया रहा। इस बीच में भीम सेन अर्जुन नकुल सहदेव चारों भाईयो ने युधिष्ठिर की छत्र छाया में अपने राज्य की सीमाएं विस्तृत करी, अन्य अनेक प्रदेश अपने राज्यान्तर्गत कर वहा न्यायनीति का, ऋद्धि समृद्धि का साम्राज्य स्थापित किया।

* द्वितीय परिच्छेद *

हिडिम्बा विवाह

इन्द्रप्रस्थ के निवासी कौमुदी महोत्सव मनाने में तन्मय थे । नाना प्रकार के नाटको नृत्यो हास परिहास में दिवस कव गया रात्रि कव आई का भान भूले हुए थे । जिधर देखो रंग रेलियो का सागर ठाठे मार रहा था । पाचो पाँडव भी वन यात्रा से विरत नही थे । वे भी शरीर रक्षकों के साथ पर्वत के एक शिखर से दूसरे शिखर पर, एक वन प्रदेश से दूसरे वन प्रदेश में प्रकृति की मनोरम छटा को निहारते हुए मन्द मन्द सुगन्ध लिये हुए समीर से अठखेलियाँ करते हुए अपने उन्मुक्त हास से वन प्रदेश को मुखरित करते हुए विचरण कर रहे थे । उन्होंने एक दिन वन के गहन प्रदेश में प्रवेश करने की ठानी । अग रक्षकों को खेमे पर ही नियुक्त कर ववर केशरी सम निर्भीक झूमते भ्रामते सारे दिन अमोद प्रमोद में चलते हुए साय काल के समय एक ऐसे वन प्रदेश में पहुँचे जहा प्रत्येक ऋतुओं के सफल वृक्षों की पत्तियों के मध्य में एक निर्मल सरोवर कमलों की सुगन्ध वसेर रहा था । क्योंकि पांडव इस समय श्रान्त हो चुके थे । रात्रि सिर थी । अतः वही विश्राम लेने की ठानी । रुचि अनुसार सरस स्वादुफलों का आश्वादन किया । और सरोवर तीर स्थान पर निर्मित पृथ्वीशिला फलको पर मनो विनोद करते हुए दुग्धती शशिकिरणों में स्नान करते हुए भीम के अतिरिक्तचारो पाण्डव सो गए भीम सेन जागता रहा । जहा वे लोग थे, उसी के निकट एक प्रबल विद्याधर रहता था जिसका नाम धा

हिडम्वासुर वह बड़ा ही भयानक और हिंसक प्रकृति का था, उस की आखें सदा जलती रहती थी, बाल उसके नेत्रों की लाली की भाँति लाल थे, वह भीमकाय विद्याधर बड़ा ही बलिष्ठ था कहते हैं कि क्रोध में आकर वह छोटे मोटे वृक्षों को भी उखाड़ कर फेंकता था। उसके भय के मारे वन की इस ओर कोई भी पग न घरता था। उस के साथ अनेक विद्याओं में निपुण सुन्दर वहन हिडम्बा भी रहती थी, जो अपने भाई की भाँति बलिष्ठ एवं निर्भीक थी। यह सुरम्य प्रदेश इन्हीं की स्थली थी जहाँ पर कि इस समय पाण्डव सो रहे थे। वह ही, अकेला भीम सेन उनकी रक्षा के लिए जाग रहा था।

चन्द्र रश्मियों ने जब शीतल चान्दनी की वर्षा की ओर धवल चान्दनी वृक्षों के पत्तों में से छनछन कर पृथ्वी पर आने लगी, तब इस हल्के और शीतल प्रकाश में विचरण करते हुए हिडम्वासुर की दृष्टि पाण्डवों पर पड़ी। पासमें बैठे भीमसेन के गदराये शरीर को देखकर उस की जवान चटखाने लगी उसने अपनी वहन की तरफ देखा और बोला हिडम्बा! आज हमारे लिए अनुपम शिकार आ गया है। वह देख कितना मोटा गदराम शरीर का व्यक्ति बैठा है उसके कुछ साथी सोये हुए हैं। लगता है वह कोई बलिष्ठ एवं निर्भीक व्यक्ति है उसे सीधे जाकर छेड़ना अच्छा नहीं तुम जाओ और अपने माया जाल से किसी प्रकार फसा कर यहाँ ले आओ फिर दूसरों को भी देखा जायेगा।”

हिडम्बा ने भी ध्यान से देखा और प्रसन्न होकर उसने एक परम सुन्दरी का रूप धारण कर लिया और भीम की ओर चली गई। उस ने दूर खड़े होकर भीम को गौर से देखा। भीम के मुख मण्डल पर मनोहर काँति छाई थी, उसके ललाट पर अपूर्व तेज था। उस की आखें शशि रश्मियों के प्रकाश में भी चमकती दीखती थी, श्याम वदन भीम के मुख पर छाई निर्भीकता से वह बहुत ही प्रभावित हुई। आगे जाकर उसने पूछा—“तुम कौन हो और कहाँ से आए हो।” भीम ने एक बार उसकी ओर देखा और लापरवाह होकर बोला—हम कोई भी हो, कहीं से आए हो, तुम्हें क्या मतलब? इस लापरवाही का हिडम्बा पर प्रभाव पड़ा, उसने कहा—“जानते नहीं हो यहाँ हिडम्बा सुर रहता है जिसके नाम से

ही लोग घबराते हैं ।

भीमसेन ने फिर भी लापरवाही दर्शाते हुए कहा—“वही घबराते होंगे जिनमें बल नहीं । वीर पुरुष किसी से नहीं घबराते ।”

भीम की इन बातों ने हिडम्बा पर जैसे जादू कर दिया हो, वह उस पर मुग्ध हो गई । उसने सहानुभूति दर्शाते हुए कहा—मेरा मतलब यह है कि आप यहां से शीघ्र चले जाइये वरना हिडम्बा सुर आप को मार डालेगा ।”

भीम मुस्करा उठा, उसने कहा - “आप की सहानुभूति का धन्यवाद ! आप चिंतित न हो हिडम्बा सुर कुछ करेगा तो स्वयं अपनी मौत बुलायेगा ।”

वह कुछ और निकट आ गई अनेक यत्नों से भीम को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा की पर भीम ने एक बार भी उसके अनुपम सौंदर्य पर अच्छी प्रकार दृष्टि न डाली । इस बात से हिडम्बा व्याकुल हो गई और उस ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि विवाह करेगी तो इसी पुरुष से । उसने निकट जाकर कहा—“मैं हिडम्बा सुर की बहन हूँ । मुझे उसने इस लिए भेजा था कि आप को ले जाकर उसे सौंप दूँ पर आप ने मुझे बहुत प्रभावित किया है । आप चाहे कुछ कहें मैं आपको अपना पति मान चुकी हूँ । इस लिए आप की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है । आप यहां से तुरन्त हट जाय । मैं कितनी ही विद्वान् जानती हूँ । आप जहां चाहे मैं आपको वही पहुंचा सकती हूँ । आप मुझ पर ही ध्यान करें मेरे साथ यहां से चले चलिए ।”

तब भीम ने उसे गौर से देखा और बोला—“तुम कहती हो कि मैं तुम्हारे साथ भाग चलूँ । क्या अपने भाईयों को उस पिशाच के लिए छोड़ जाऊँ ।”

यदि तुम्हें उनसे मोह है तो इन्हें भी जगा लीजिए मैं इन्हें भी अविक सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दूंगी । वह बोला “क्या था कर सोये अपने भ्राताओं को जगा कर उन्हें कष्ट दूँ । नहीं मुझ

नही हो सकता । भीम ने कहा परन्तु यदि आप इन्हे यहाँ से नहीं हटाएंगे तो आप काल के मुह में चले जायेंगे ।

मैं काल का भी काल हूँ आने तो दो उस असुर को मैं मार कर न भगा दू तो मेरा नाम भी भीम नहीं ।'

प्रेम के मारे वह कहने लगी— देखिये आप मेरी बात मान लीजिए, कहीं ऐसा न हो कि बाद को पश्चाताप करना पड़े । मैं ने किसी मनुष्य को अपना जीवन साथी न बनाने का निश्चय किया था, पर आप को देखते ही मेरा वह निश्चय मिट गया, मैं आप को अपना स्वामी मान चुकी हूँ । अतएव मैं अपने स्वामी को सकट में पड़ते देखना नहीं चाहती ।

इतने में हिडम्वासुर बहुत देरी होने के कारण स्वयं वहाँ चला आया और उसने हिडम्बा की अन्तिम बात सुन ली । उसे हिडम्बा पर बड़ा क्रोध आया, और इससे भी अधिक भीमसेन पर । उसने जाते ही भीम सेन पर आक्रमण कर दिया । भीमसेन ने तुरन्त फुरती से उसका दाव काट दिया और उसने हिडम्बासुर की टांग पकड़ ली । वह उसे घसीटता हुआ दूर ले गया, ताकि मार घाड़ से आताओ की निद्रा भग न हो जाये । भीम और हिडम्बासुर में टक्कर होने लगी । हिडम्बासुर बार बार बड़े जोर से चीख कर भीम की ओर झपटता, पर भीम उसे अपनी ठोकरों से गिरा देता । बार बार चीखने की आवाज सुन कर अर्जुन की आख खुली और पास खड़ी एक सुन्दरी पर उसकी दृष्टि पड़ी, तो आश्चर्य चकित हो कर पूछा—“भीम कहा चला गया ? यह आवाज कैसी आ रही है ? तुम कौन हो ?” एक ही श्वास में उसने कई प्रश्न उठा दिए ।

चिन्तित हिडम्बा ने दूर, जहाँ हिडम्बा और भीम युद्ध रत थे, की ओर सकेत करके कहा—“वहाँ हिडम्बासुर उन्हें मार रहा रहा है ।” अर्जुन ने घनुष बाण सम्भाले और तत्काल उधर गया । उसने देखा कि हिडम्बासुर भीम पर बार बार आक्रमण कर रहा है, उसने समझा कि भीम हिडम्बासुर के आगे कमजोर पड़ रहा है अतएव उसने भीम सेन को पुकार कर कहा—“भैया ! तुम कहो तो मैं इसे अभी ही बाणों से मार डालूँ । घबराना नहीं ।” भीम

सेन के अधरो पर मुस्कान खेल गई। वह बोला—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। मैं तो इसके साथ अभी तक खेल कर रहा था।” इतना कह कर उसने एक बार क्रुद्ध हो कर हिडम्बामुर पर भयकर प्रहार किया और हिडम्बासुर उसकी ठोकरो की मार से वहीं ढेर हो गया।

तब हिडम्बा ने अर्जुन से अनुमय विनय करके भीम के साथ अपने विवाह की बात कही। इतने में अन्य आता भी जाग गए। युधिष्ठिर ने हिडम्बा की विनती के उत्तर में कहा—माना कि तुम्हारा भीमसेन से अनुराग है परन्तु जब तक तुम्हारे कुल शील का हमें पता नहीं तब तक कैसे हम अपनी कुलवधू स्वीकार कर सकते हैं? महाराज आप उचित ही फरमाते हैं, हिडम्बा ने उत्तर दिया परन्तु आप निश्चय रखिये सिंहनियो का जन्म शृगालो के यहाँ नहीं होता। विद्याधरों की उत्तर श्रेणी में एक संव्याकार नाम का विशाल नगर है। उसमें शत्रुरूपी हस्तिनों को अपने महा पराक्रम से मर्दन करने वाला हिडम्बवशोत्पन्न यशस्वी सिंह घोष राजा राज्य करता है। उनकी प्रिय पत्नि का नाम लक्ष्मणा है। मैं उन्हीं की पुत्री हिडम्ब सुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध हूँ। मेरी विमाता से उत्पन्न यह हिडम्बासुर मेरा भाई है। परन्तु यह जन्म से उद्धत प्रकृति का था। प्रजा को सताता था। जिसके कारण रुष्ट हो कर पित्त ने इसे देश निकाला दे दिया था जिससे यह बहुत दुःखित एवं असहाय सा हो कर वहाँ से विदा होने को जब आया, तब मेरे से न रहा गया। इसका मेरे साथ बहुत स्नेह था। और इसके उपकारों से मैं कृतज्ञ भी थी। उस लिए मैंने इसका साथ दिया। और अनेक सहेलियों के साथ विशालरत्न रांशि को लेकर मैंने इसके हृदय के भार को हलका करने की चेष्टा करी। और इस सुरम्य वन प्रदेश में एक विशाल भवन निर्माण करवा कर, जो कि यहाँ से थोड़ी दूरी पर है, उसमें निवास करना प्रारम्भ किया और यहाँ रहने हुए यह नर भक्षी बन गया। जिस स्थल को इन समय आप पवित्र कर रहे हैं, यह उसी की विहार स्थली का एक किनारा है। यहाँ आकर भी मेरे इस भाई का स्वभाव परिवर्तित न हुआ। जब यह भ्रमण को कहीं निकल जाता तो निष्कारण ही मारघाट प्रारम्भ कर

देता । अतः भ्रमण मे प्रायः मैं साथ रहने लगी और यथा सम्भव किसी मनुष्य को इसके चगुल मे न फसने देती थी । परन्तु आज अपने कारनामो की जो उचित सजा होनी चाहिये वह स्वय ही यह प्राप्त कर बैठा । और यथा सम्भव सहायता करते हुए मैंने इसके ऋण से अपने को उऋण बनाया । मैं समझती हू मेरे सौभाग्य वश ही आपका इधर आना हो गया है । वरना इस अटवी मे प्रवेश करने का किसी को साहस ही नही हो पाता । हिडिम्बा ने अपना पूर्ण परिचय देते हुए कहा ।

इसके पश्चात् वह सुन्दरी पाडवों को अपने भवन मे साथ ले गई । जहां उसकी सहेलियों एव अनुचरों ने खूब अभ्यर्थना की । और विधि पूर्वक भीमसेन ने हिडिम्बा का पाणि ग्रहण किया । अनुचरो के हाथ पीछे सकुशल का समाचार दे कर कुछ दिन पाडवो ने वही प्रकृतिछटा का आनन्द लेते हुए व्यतीत किये । और कौमुदी महोत्सव की समाप्ति पर इन्द्रप्रस्थ को गमन किया । भीमसेन को इसी पत्नि से घटोत्कच नामक महाप्राक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ । जो कि अपनी माता एव नाना नानी की कृपा से विलक्षण विद्याओं को धारण करता था ।



जरासिन्ध-वध

पवन द्वीप से कुछ जौहरी व्यापारी जरासिन्ध के महल में गए और अपने बहु मूल्य रत्नों को बेचने लगे । जीवयशा ने उन के पास जितने बहु मूल्य रत्न थे, सभी देखे । एक रत्न, जो सभी में मूल्यवान था, जीवयशा के मन भा गया, उसने मूल्य पूछा व्यापारियों ने मन चाहा मूल्य बता दिया । जीवयशा ने भी अपनी इच्छानुसार दाम लगा दिया । जीवयशा द्वारा बोले गए दामों को सुनकर व्यापारियों ने पश्चाताप करते हुए कहा—“हम तो यहां इसी लिए आये थे कि आप के महल में अधिक दाम उठ सकेंगे । पर क्षमा करना, अब हम द्वारिका से यहा आ कर पछता रहे हैं । इससे अधिक मूल्य तो इस रत्न का वही मिलता था ।”

द्वारिका का नाम उस ने जीवन में प्रथम बार ही सुना था, पूछ बैठे—“द्वारिका नगरी कौनसी ?”

व्यापारी ने हंसते हुए कहा—“आप तो ऐसे पूछ रही हैं मानों कभी द्वारिका नाम ही न सुना हो । भला जम्बू द्वीप के किस व्यक्ति ने द्वारिका का नाम न सुना होगा ।”

जीवयशा ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की, तो व्यापारी ने द्वारिका की पूरी पूरी प्रशंसा करते हुए द्वारिका का परिचय दिया । वह बोला—“श्री कृष्ण महाराज की राजधानी द्वारिका पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है । इतनी सुन्दर नगरी जम्बू द्वीप में कदाचि न हो कोई हो । ऐसा लगता है मानो देवताओं ने ही उसे बसाया हो ।

और लोग कहते भी यही है कि इन्द्र देवता की आज्ञा से समस्त देवों ने मिलकर उसे बसाया था ।”

श्री कृष्ण का नाम सुनते ही वह चौंक पड़ी पूछा—“श्री कृष्ण कौन है ?”

व्यापारी हस पड़ा बोला—“आप तो ऐसी भोली बन रही हैं, जैसे कुछ जानती ही नहीं। भला श्रीकृष्ण को कौन नहीं जानता उन्होंने ही कस का वध किया था ।”

व्यापारी के शब्दों से जीवयशा के हृदय में सोये प्रतिशोध के भाव दबी आग की भाँति धूँ धूँ करके धधक उठे । तुरन्त जरासिन्ध के पास गई और नेत्रों में आँसू भर कर बोली—“पिता जी ! यह मैं क्या सुन रही हूँ ?”

‘क्या सुना ?’

क्या मेरे पति का हत्यारा अभी तक जीवित है ?”

“वेटी, वह भाग कर समुद्र तट पर जा बसा है । “क्या यही है आप की प्रतिज्ञा ? क्या मैं इसी प्रकार एक ओर विधवा जीवन और दूसरी ओर-उस विपैले नाग को फूलते फूलते सुनते रहने का हादिक क्लेश सहन करती रहूंगी ?” जीवयशा ने कहा ।

“वेटी! अनुकूल समय आने पर ही सब काम हुआ करते हैं । मैं उस अवसर की प्रतीक्षा में हूँ जब वह मूर्ख स्वयं मेरे चंगुल में आ फसेगा ।” जरासिन्ध ने अपनी पुत्री को सात्वता देते हुए कहा ।

परन्तु जीवयशा ऐसे नहीं मानने वाली थी । उस ने क्रोध में आकर कहा—‘वस वस पिता जी रहने दीजिए, अपनी डींगें भी देख ली । आप के लिए कभी अवसर नहीं आयेगा । आप इसी प्रकार मुझे झूठी तसल्ली देते रहेंगे । आप साफ साफ क्यों नहीं कहते कि आप में इतनी शक्ति ही नहीं कि श्री कृष्ण का सिर कुचल सकेंगे । आप स्वयं उससे डरते हैं । आपके हृदय में मेरे प्रति ननिक सा भी प्रेम होता तो आप अपना सब कुछ दाव पर लगा कर

अपनी बेटी के पति के खून का बदला लेते । पर आप को क्या पड़ी है ?

जा के पैर फटी न विवाई
वह क्या जाने पीर पराई

जरासिन्ध बेटी की चुनौती भरी बात से व्याकुल हो गया । उसने कहा—“जीवयशा ! तुम विश्वास रखो कि मैं एक न एक दिन उसका सिर तुम्हारे कदमों में लाकर पटक दूंगा । पर मेरी शक्ति को मेरे बाहु बल को चुनौती न दो ।”

“पिता जी, जो गरजते हैं वरसते नहीं ।”

जीवयशा की बात जरासिन्ध के तीर की भाँति चुभी । वह तड़प कर बोला—“तो फिर तुम्हें मेरा बाहुबल ही देखना है तो लो मैं अभी ही उस दुष्ट का सहार करने जाता हूँ । जब तक कृष्ण का वध नहीं करूँगा चैन न लूँगा ।

कही अवसर के वहाने रास्ते से वेचैनी से मत लोट पडना । निर्लज्जता पूर्वक जीवयशा बोली ।

जरासिन्ध ने तुरन्त अपने मंत्री को बुलाया और गरज कर बोला मंत्री जी ! हम आज तक प्रतीक्षा करते रहे कि तुम कब कृष्ण वध के लिए उचित अवसर बताते हो, पर तुम तो जैसे सो गए और मुझे जीवयशा के सामने अपमानित एवं लज्जित होने का तुम ने अवसर दिया । अब हम अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते । जाओ अभी ही सेनाएँ सजवा दो । हम इसी समय द्वारिका पर चढ़ाई करने के लिए कूच करना चाहते हैं ।

मंत्री ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—“महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर इतनी जल्दी में कोई निर्णय कर लेना ठीक नहीं है ।” जरासिन्ध अधिस्त होकर गरजा—“मंत्री जी ! आपने मुना नहीं, हम ने क्या आदेश दिया । हम इस समय कुछ नहीं मुनना चाहते । चाहते हैं केवल आज्ञा पालन । क्या ठीक है क्या नहीं, वह सब हमारे सोचने की बातें हैं ।”

मंत्री काँपते हुए वहाँ से चला गया, उसने तुरन्त सेनाएँ

सजवाई और उन्हें नृप के साथ कूच करने का आदेश दिया : स्वयं भी साथ हो गया । जरासिन्ध ने उसी समय शिशु पाल आदि अपने सहयोगियों के पास दूत भेज कर, उन्हें सेनाएं लेकर तुरन्त अपनी सेना से आमिलने का सन्देश भेज दिया । और स्वयं सेनाएं लेकर चल पड़ा । ज्योंही उसने नगर से प्रस्थान किया, मुकुट एक झटके से नीचे आ गिरा । मंत्री ने मन ही मन विचार किया कि यह अपशकुन किसी भावी सकट का सूचक है । पर क्रोध में बुद्धि को ताक पर रख आये हुए नरेश को कुछ भी समझाना व्यर्थ समझ कर वह चुप रह गया ।

रास्ते में शिशुपाल की सेनाएं आ गईं, जिसके साथ स्वयं शिशुपाल भी था । जब लाखों की सख्या में सैनिक एकत्रित हो गए तो जरासिन्ध अहंकार से सोचने लगा कि कृष्ण को वह क्षण भर में परास्त कर देगा और उस के रक्त से अपने और अपनी बेटी के हृदय में सुलगती प्रतिशोध की अग्नि को शांत कर सकेगा ।

लाखों की सख्या में सैनिक साथ थे, जरासिन्ध श्री कृष्ण को परास्त करने की आशाओं में भ्रमते चला जा रहा था, कि नारद जी आ पहुंचे । उन्होंने पूछा — “राजन् ! आज किस शत्रु पर चढ़ाई की ठान ली है ।”

“श्री कृष्ण से कस बघ का बदला लेने जा रहा हूं ।” जरासिन्ध बोला ।

नारद जी मुस्करा पड़े । बोले — “दही के भरोसे से कपास खाने की भूल मत करो ।”

“क्या मतलब ?” जरासिन्ध ने अकड़ कर पूछा ।

“मतलब यह है कि भेड़ जब भेड़िये से बदला लेने चले, शृगाल जब सिंह को ललकारने का साहस करे, तो उसके साहस की तो प्रशंसा करनी पड़ती है पर इस दुस्साहस पर उसे अपनी औकात पहचानने की कहने की जरूरत है ।” नारद जी बोले ।

जरासिन्ध का खून खौल उठा । उसने कहा — “तनिक सम्यक्ता से बात करो । क्या नहीं जानते कि मैं जरासिन्ध हूं जिसके नाम से

सारी पृथ्वी कापती है। और वह जिसे तुम सिंह बता रहे हो, वह भी मेरे ही भय से डुम दबा कर भाग गया है और सागर तट पर उसने आश्रय लिया है।”

“कही यह अहंकार ही तुम्हें न ले डूबे ?” नारद जी बोले।

“बस बस भिखारी हो कर नरेश के मुह मत लगे। वरना कहीं मुझे तुम्हें ही ठोक न करना पड़े जरासिन्ध क्रोध में नारद जी के साथ उचित व्यवहार करना भी भूल गया।

किन्तु नारद जी भी उसकी घुड़कियों में आने वाले न थे, उन्होंने हस कर कहा “जब मिथ्याभिमान किसी को अधा बना देता है तो मुझे उस पर दया आती है। ठीक है तुम जैसे का इलाज श्री कृष्ण और उनके भाई बलराम जी के पास ही है। पर एक बात मानो स्वयं मरना है तो मरो, शिशुपाल बेचारे को क्यों मरवाते हो ?

जरासिन्ध लाल पीला हो कर नारद जी की ओर झपटा, पर इस से पूर्व कि कोई भयंकर अन्याय होता, नारद जी वहां से चले गए और जा कर श्री कृष्ण के दरबार में दम लिया। श्री कृष्ण ने बड़े आदर सत्कार से उनका स्वागत किया। नारद जी बोले— “आप इधर आराम से सिंहासन पर विराजमान हैं और उधर जरासिन्ध अपनी सेनाएं लेकर कस वध का बदला लेने आ रहा है। श्री कृष्ण हसते हुए बोले— “मुनिवर जिस का मस्तक फिर गया हो वह ऐसे ही कार्य किया करता है। आता है तो आने दो। द्वारिका के निकट आते ही उसे अपनी भूल ज्ञात हो जायेगी।”

“कही मृग और कछुए की दौड़ की ही भांति बात न हो जाए। उसके साथ शिशु पाल भी अपनी अपनी सेनाओं सहित है। इतना अहंकार है उसे कि आज तो वह शिष्टाचार को भी तित्ताजली दे आया है। लाखों सैनिक है।”

नारद जी की बात सुनते ही श्रीकृष्ण गम्भीर हो गए। उनकी बार बार धन्यवाद किया और स्वयं जरासिन्ध के मुकाबले की तैयारी में लग गए उन्होंने तत्क्षण अपनी सम्पूर्ण राज-सभा को

निमंत्रित किया। और समस्त स्थिति को विस्तार से प्रस्तुत करके पूछा कि- आप बतलाये कि इस उद्दंड एव निष्कारण बने शत्रु का कैसे प्रतिकार किया जाय ?

यादववश को विनष्ट करने वाले विमूढ़ से हमारी तलवारें बाते करेगी। इसमें दो मत हो ही नहीं सकते कड़कते हुए दूर्दान्त योधा अनाघृष्टि ने गर्जना करी। परन्तु रण कौशल का परिचय देते हुए दूरदर्शिता की बात कही कि-हम जिनेन्द्र शासन में पढते एव पूर्वजों में सुनते आ रहे हैं कि प्रति वासुदेव का वध वासुदेव के हाथों से ही होता है, अन्य से नहीं। अतः प्रतिवासुदेव जरासिन्ध की मौत किस वीर के हाथों निर्णीत है, इस बात का निश्चय अवश्य कर लेना चाहिये।

यादव कुल श्रेष्ठ, दशाहोग्रणीय समुद्रविजय जो अब तक समस्त परिस्थिति पर विचार रहे थे, ने शान्त परन्तु गम्भीर वाणी से सभा को लक्ष्य करके कहना प्रारम्भ किया कि हमारे वंश की ज्योति वत्स श्री कृष्ण एव अनाघृष्टि ने जो कुछ कहा वह आपने सुना। वैसे तो पापी को नष्ट करने के लिए उसका पाप ही बहुत होता है। परन्तु व्यवहारानुसार विचार करना बुद्धिमत्ता का चिन्ह है। सभी जानते हैं जब गीदड़ की मौत आती है तो वह नगर की तरफ दौड़ा करता है। वही अवस्था इस समय जरासिन्ध की है। हमने कभी उसे अपमानित नहीं किया और नाही आज तक घर्म विरुद्ध आचरण किया। परन्तु यदि तो भी व्यर्थ ही वंश विशेष से शत्रुता कल्पना कर जरासिन्ध को रक्तपात ही प्रिय है तो निश्चय ही यह अन्याय उसे सदा सर्वदा के लिए समाप्त किये बिना न रहेगा। मुझे वह समय अच्छी तरह स्मरण है जबकि देवकी देवी ने प्रकृति प्रदत्त सात महान शुभ सूचनाओं को प्राप्त करके श्री कृष्ण को जन्म दिया था और पश्चात् हमारे पूछने पर धुरन्धर नैमित्रिको ने घोषणा की थी कि "यह कुलदीपक कुमार त्रिखण्डेश्वर वासुदेव पद को प्राप्त करेगा" हमें तो तभी निश्चय हो गया था कि प्रति वासुदेव जरासिन्ध के अन्याय को समाप्त करने का श्रेय इसी बालक को प्राप्त होगा। परन्तु यदि तो भी आप यही निश्चय करना चाहते हैं कि जरासिन्ध की मृत्यु किसके हाथों होगी तो उसका सीधा सा उपाय

है कि जो वीर "कोटि शिला" को उठाता है वही प्रतिवासुदेव को समाप्त कर वासुदेव पदेवी प्राप्त करता है। समस्त सभा में ठीक है, ठीक, की ध्वनि गूजने के साथ ही मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण जी उठे और प्रमुख यादव वीरो के साथ गरुड विमान में बैठ कोटि शिला-स्थल पर पहुँचे। जहाँ पर वर्तमान अप्सर्पिणी काल में तब तक अपने अपने समय में आठ बार उन महापुरुषों ने पदार्पण किया था जिन्होंने को ससार को "वासुदेव" होने का परिचय देना आवश्यक हो गया था। अन्तिम नारायण श्री कृष्ण जी ने एकाग्रचित्त से परमेष्ठी स्मरण किया और मिद्ध भगवान की जय का घोष गुजायमान करते ही उस पर्वताकार "कोटिशिला" को उठा कर अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय दिया। उसी समय आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। दुन्दुभिनाद के साथ "चरम वासुदेव श्रीकृष्ण महाराज की जय" से समस्त पर्वत गुजायमान हो गया। तभी से श्रीकृष्ण जी का अपर नाम "गिरिधर" हुआ। यादव वीरो के हर्ष का ठिकाना न था। जय जयकार करते हुए विमान से तत्क्षण द्वारिका में पहुँचे और वलराम जी ने समस्त वृत्तान्त उपस्थित यादव सभा को सुनाया। जिस में द्वारिका भर में एक नवीन् दृश्य उपस्थित हुआ। मुहल्लों २ गलि २ घर २ "वासुदेव श्रीकृष्ण की जय" के नारों से गूजने लगा। समस्त वीरो की धर्मनिति युद्ध में विजय प्राप्ति की लहर दौड़ रही थी। चौगुने जोश से सभी योद्धा कार्यरत हुए। पांडवों के पास दूत द्वारा सूचना भेज दी गई। सभी यादवों को तैयार रहने का आदेश दे दिया गया। अरिष्ट नेमि जी ने कितनी ही औषधियाँ जो युद्ध में आवश्यक थी, ला कर दे दी। समुद्र विजय के समस्त आता सभी के पुत्र, समस्त यादव योद्धा अस्त्र शस्त्र ले कर युद्ध के लिए तैयार हो गए।

महाराज युधिष्ठिर उन दिनों मन्त्राट पद प्राप्त करने के लिए राजसूयज्ञ करना चाहते थे, इस सम्बन्ध में विचार विमर्श के लिए उन्होंने श्रीकृष्ण को इन्द्र प्रस्थ बुलाया था। उन्होंने श्री कृष्ण से कहा— "कुछ लोग मुझे राजसूयज्ञ करने की राय दे रहे हैं। आप एक ऐसे व्यक्ति हैं जो मुझे प्रसन्न करने के लिए मेरी प्रशंसा नहीं करेंगे, बल्कि मेरे दोषों को मेरे सामने साफ साफ बता देंगे। आप मुझे सच्ची बात नहीं करेंगे और न किसी स्वार्थ वश कोई अनुचित

मत ही देंगे। इसी लिए परामर्श के लिए मैंने आप को बुलाया है। अब आप बताइये कि आपकी क्या सम्मति है।

श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया—“राजन् ! राजसू यज्ञ का अर्थ है वह महोत्सव जिसमें खण्ड (क्षेत्र) के समस्त राजा एकत्रित हो कर महोत्सव करने वाले राजा को सम्राट पद से विभूषित करते हैं, और उस के आधीन रहना स्वीकार करते हैं। सम्राट् पद प्राप्त करने के लिए आप कोई महोत्सव करें। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है, पर देखना यह है कि क्या अन्य राजा, आपके आधीन आना स्वीकार करेंगे ? यदि यह भी मान लिया जाय कि दुर्योधन तथा कर्ण आदि आपको सम्राट बनाने में कोई आपत्ति नहीं करेंगे तो भी जरासिन्ध तो कदापि आपको सम्राट मानना स्वीकार न करेगा। उसने कितने ही राजाओं को बन्दी बनाकर अपने बन्दी गृहों में डाल रखा है। तीन खण्ड के राजा उस से घबराते हैं। और सहर्ष उस के आधीन होना स्वीकार कर चुके हैं। यहाँ तक सुना है कि जब सौ नृप उसके बन्दीगृह में आजायेंगे तब वह उन से ही राजसू यज्ञ करेगा, और पथ भ्रष्ट लोगों के मतानुसार यज्ञ में पशुओं की बलि के स्थान पर कुछ राजाओं की बलि देगा। ऐसे अन्यायी नरेश से मत आशा करना कि वह आपको सम्राट मानेगा, कोरी भूल है। इस लिए यदि आप को सम्राट पद चाहिये तो पहले जरासिन्ध से निवटिये।”

भीम वही उपस्थित था, श्री कृष्ण की बात सुनकर वह बोल उठा—यदि आता जी आज्ञा दें तो उस धूर्त से मैं अच्छी तरह निवट सकता हूँ। मुझ से कहा जाय तो उस पापी को यम लोक पहुँचा दूँ। और अपनी गदा से उस के समस्त सहयोगियों को एक एक करके वध कर डालूँ।”

“भीम ! माना कि तुम बड़े बलवान हो, पर जरासिन्ध भी कोई कम शक्तिवान नहीं है। शिशुपाल जैसा साधन सम्पन्न और पराक्रमी नरेश तक उस के आधीन है। उसे परास्त करने के लिए शिशुपाल और उसकी मेना का सामना करना पड़ेगा।”
श्री कृष्ण ने कहा।

“जो भी हो। मैं और अर्जुन बलि मिल कर उस को घूस - न

चटादे तो तब कहना ।” भीम गरज कर बोला युधिष्ठिर श्री कृष्ण और भीम की वार्ता के समय विचार मग्न थे, वे बहुत सोच विचार के पश्चात् बोले—“यदि सम्राट पद प्राप्त करने के लिए मुझे अपने भीम और अर्जुन जैसे वीर भ्राताओं को दाव पर लगाना पड़े, और कितने ही निरपराधी मनुष्यों के रक्त से अपने मस्तक पर सम्राट का तिलक लगाना हो, तो मैं सम्राट पद को प्राप्त करने की कामना ही नहीं कर सकता । मैं नहीं चाहता कि मेरी एक आकांक्षा की पूर्ति के लिए रक्त पात हो । इस लिए अच्छा है कि मैं अपने मित्रों और भ्राताओं के उस प्रस्ताव को भूल जाऊँ और सुख शांति पूर्वक राज्य काज करूँ ।”

श्री कृष्ण बोले—“आप के विचार आदरणीय है । धर्म पथ के राही ऐसा ही निर्णय किया करते हैं । तथापि जरासिन्ध जैसे पापी नरेश की करतूतों को रोकने के लिए आप को कुछ न कुछ अवश्य ही करना चाहिए । कोई शक्तिवान व धर्म प्रिय नरेश यह सहन नहीं कर सकता कि कोई अन्यायी स्वच्छन्दता पूर्वक छोटे छोटे नरेशों का सहार करता रहे और अपनी आकांक्षा पूर्ति के लिए पशु वध से आगे जाकर नरवध करने का साहस करे ।”

“आप की बात ठीक है । तथापि मैं अपने प्रिय वन्धुओं को किसी ऐसे कार्य के लिए नियुक्त नहीं कर सकता जिस में उन के प्राणों पर वन आये । हाँ, यदि आप चाहें तो आप के सहयोग के लिए मैं और मेरे वन्धु गरम उरु नर पिशाच पाप लीला रोकने में सर्वदा तत्पर रहेंगे ।”—उत्तर में युधिष्ठिर ने आश्वासन दिया ॥

उस समय यही बात तब पाई थी कि अब की बार यदि जरासिन्ध ने कोई नया उत्पात खड़ा किया तो श्री कृष्ण के नेतृत्व में पाण्डव अपनी पूर्ण शक्ति उसके सहार के लिए प्रयोग करेंगे ।

भाग्य वश इस निर्णय के कुछ दिनों बाद ही जरासिन्ध ने श्री कृष्ण पर आश्रमण करने की मूर्खता कर डाली । श्री कृष्ण के त द्वारा जब महाराज युधिष्ठिर को यह समाचार मिला उन्होंने भीम और अर्जुन की सेना सहित तुरन्त द्वारिका को भेज दिया ।

द्वारिका से श्री कृष्ण, बलराम, समुद्र विजय, वसुदेव,

और इन सभी के पुत्र, तथा अन्य योद्धा, एक बड़ी सेना सहित साथ ही पाण्डवों की सेना व पाण्डव रणभेरी बजाते हुए चल पड़े द्वारिका से पैंतालीस योजन दूर सेना पल्लो स्थान पर सेनाएँ रो दी गई । उधर से वसुदेव के अनुयायी खेचर भी आ गये ।

जरासिन्ध की सेनाओं से एक योजन दूर ही सेनाएँ रोक दी गई थी और एक राजदूत द्वारा जरासिन्ध पर सवाद भेजा गया कि अच्छा यही है, जरासिन्ध अपनी सेनाओं सहित वापिस चल जाय ।

परन्तु जरासिन्ध के सिर पर तो अहंकार सुवार था, कब मानने वाला था, उसने अपने एक मंत्री द्वारा श्री कृष्ण सवाद भिजवाया कि कस बध का बदला लेने के लिए जरासि आया है वह 'खून का बदला-खून' की नीति मानने वाला और बिना श्री कृष्ण से बदला लिए नहीं लौटेगा ।

श्री कृष्ण ने मंत्री को उत्तर देते हुए कहा—“आप जरासि से जाकर कहें कि यदि वे बिना युद्ध के नहीं मानेंगे तो हम भी स प्रकार से तैयार हैं । परन्तु कस बध की आँख ले कर वे युद्ध न करें उस पापी ने मेरे छ. आताओं को न जाने क्या किया । उसने प्र को बहुत कष्ट पहुँचाए थे, उसने अपने पिता को बन्दी बनाया था मेरे पिता जी को कपट से उसने जेल में डाल रक्खा था, मेरा ब करने के लिए कितने ही षडयन्त्र किए थे । इस लिए उसने जैम किया वस, फल पाया । अतएव कस का बदला लेने का विचार अन्याय पूर्ण है । हम नहीं चाहते कि बिना कारण ही रक्तपात हो, अतएव वह लौट जाये, वरना उस के हठ से हमें भी युद्ध करना पड़ेगा, जिसका परिणाम उस के हक में ठीक नहीं होगा ।”

मंत्री ने श्री कृष्ण के साथी योद्धाओं को देखा और स्वयं चला गया, उसने जरासिन्ध से जाकर श्री कृष्ण का उत्तर सुनाया और अन्त में बोला—“महाराज ! शत्रु दुर्बल भी हो तो भी उसे अपने से अधिक शक्ति शाली समझना चाहिए । यह युद्ध युक्ति संगत नहीं है, और इस समय मुकाबले के वीरों को देख कर भी हमारा युद्ध करना उचित नहीं है ।”

मंत्री की बात से जरासिन्ध के अहंकार को ठस पहुँची थी अतः उस ने कड़क कर पूछा—“उन मे कौन ऐसा है, जो मेरी सेना मेरे सहयोगियों और मुझ से जीत सके ?”

मंत्री ने हाथ जोड़ कर कहा—“महाराज ! रोहिणी के स्वयंवर मे आप वसुदेव से परास्त हो चुके है। और अब तो वसुदेव के दो वीर पुत्र भी हैं, कृष्ण और बलराम, दोनों ही बलवान एव विद्यावान है, उन के साथ पाण्डव भी हैं, द्रौपदी के स्वयंवर मे आप अर्जुन के कौशल को देख ही चुके हैं। उन के साथ नेमिनाथ जी भी है, जिन की दिव्य शक्ति की घर घर मे चर्चा है। हे मगधेश्वर ! उन वीरों का सामना करना दुर्लभ है। शिशुपाल स्वर्माण के हरण के समय श्री कृष्ण से मुह की खा ही चुका है। फिर आप किस वीर पर गर्व कर सकते है। श्रीकृष्ण के देव अधिष्ठायक है, जिन्हो ने काली कुंवर के प्राण लिए थे। अतएव अच्छा यही है कि आप लौट चलिए। युद्ध का विचार त्याग दीजिए।”

मंत्री की बातें सुन कर जरासिन्ध को बहुत क्रोध आया। कहने लगा—“रे धूर्त ! कायर ! यदि शत्रुओं से इतना ही भयभीत है तो यहाँ से भाग क्यों नहीं जाता ? क्यों दूसरों को भी भयभीत कर रहा है। या साफ साफ कह कि तू यादवों के बहकाए मे आ गया है।”

मंत्री जरासिन्ध की बात सुन कर कांपने लगा, और यह समझ कर कि यदि कुछ और समझाने की चेष्टा करूंगा तो व्यर्थ ही प्राण गंवाने पड़ेंगे। उसने जरासिन्ध की चापलूसी करना ही अपने लिए हितकर समझा। उसने कहा—“महाराज ! आप तो बेकार ही रुष्ट हो गए, मेरे कहने का अर्थ तो यह है कि पुंगवों सारी बातों को याद करके और शत्रुओं की शक्ति को उचित प्रकार से जानकर युद्ध करे। वैसे आपका रण क्षेत्र में सामना करना जिसके वक्त की बात है, फिर भी चक्रव्यूह रचा कर युद्ध करना चाहिए। शत्रु भी आप से भयभीत है। आपकी तलवार की शक्ति को कौन नहीं जानता ? मैं तो आपकी शत्रुओं के मन की जान बता रहा था।”

जरासिन्ध ने प्रसन्न हो कर कहा— अब भी तो ढग की बात कही । सिंह को शृंगाल से डराने की बात करता है । यादवों के लिए तो मैं अकेला ही हूँ ।

“महाराज ! आपकी अपार शक्ति के सामने वे क्या है ? मैं कही आप की मर्यादा के प्रतिकूल कोई बात थोड़े ही कर सकता हूँ ? मैं तो आपको उत्तेजित कर शत्रुओं के नाश का समुचित प्रवन्ध कर रहा था ।” मन्त्री ने कहा ।

बात चीत करते करते रवि अस्त हो गया । जरासिन्ध ने समस्त सरदारों और योद्धाओं को खा पी कर विश्राम करने का आदेश दिया ।

× × × × × × ×

प्रातःकाल होते ही जरासिन्ध ने चक्रव्यूह रचना आरम्भ कर दिया । एक सहस्र और बनाए गए, एक एक ओर पर एक एक हजार योद्धा, नरेश और रणवाकुरे लगाए गए । एक एक योद्धा के साथ दो दो हजार रथ सवार, अश्व सवार और पैदल सैनिक थे । औरों की रक्षा के लिए ५ सहस्र घोड़े सवार और सोलह सहस्र पैदल सैनिक नियुक्त किए गए । चक्रमुख पर आठ हजार योद्धा जिन में विशेषतया कौरव वंशी सेना के सरदार थे, नियुक्त किए गए । चक्र के मध्य में मगधेश्वर के साथ पांच हजार शूरवीर रणवाकुरे रखे गए और उनके चारों ओर सवा ६ हजार रणवीर चुने हुए नौजवान खड़े किए गए । दाईं ओर मध्य देश के नरेश और उस की सेना दाईं ओर उनके अन्य भूष लगाए । चक्र नाभि की संधि संधि पर एक एक शूरवीर सेना पति नियुक्त किया गया । चक्रव्यूह के सामने शकट व्यूह रचा गया जिस पर शिशुपाल की सेनाएँ व सरदार थे ।

जब जरासिन्ध के चक्रव्यूह की सूचना श्री कृष्ण को मिली तो उन्हो ने गरुड व्यूह रचने का आयोजन किया । व्यूह के मुख पर ५० हजार तेजस्वी कुमार रखे गए । मोर्चे पर कृष्ण और बलराम ने अपने अपने रथ रखे । वसुदेव के अक्रूर मुमुख आदि राजकुमारों

को श्री कृष्ण के आगे रक्षक की भाँति नियुक्त किया गया। उनके पीछे सहस्रो रथ सवार, गज सवार और अश्व सवार सैनिकों के साथ उग्रसैन अपने पुत्रों सहित थे। सब के पीछे धर, सारण, शशि, दूर्धर, सत्यक, नामक पाँच राजा नियुक्त किए गए, ताँकि समय पड़ने पर काम आ सके। दाहिनी ओर समुद्र विजय ने अधिकार जमाया, उनके चारों ओर २५ हजार चुने हुए सैनिक थे। बाईं ओर वलराम के योद्धा और पांडवों की सेना रक्खी गई। उनके साथ में अर्जुन और भीम, उन के पीछे २५ हजार अश्व सवार सैनिक नियुक्त किए गए। फिर चन्द्र यश्म, सिंहल बबर काम्बोज, केरल, द्रविड, इन छ, नरेशों को साठ हजार सैनिकों सहित लगाया गया। इनके पीछे शाम्बस भानु, कुगल रणवाकुरे थे, और अनगिनत सेना इस व्यूह की रक्षा के लिए थी। इस प्रकार का गरुड व्यूह रच कर श्री कृष्ण ने युद्ध की तैयारी कर ली। आवश्यकता पड़ने पर वायुयानों का भी प्रयोग किया जा सके, इस लिए वायुयान भी तैयार कर दिए गए।

भाई की रक्षा के लिए अरिष्ट नेमि जी भी युद्ध में उतर रहे हैं, यादव जान कर देवराज शकेन्द्र जी ने उनकी सेवा के लिए मातली नामक सारथी, अस्त्रशास्त्रों से सुसज्जित रथ तैयार कर भेज दिया गया जिस पर अरिष्ट नेमि जी सवार हुए। समुद्र विजय ने श्री कृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र को इस व्यूह का सेनापति नियुक्त किया।

व्यूह तैयार हो जाने पर श्री कृष्ण ने एक बार पुनः जरासिन्ध को युद्ध से वाज आने का सन्देश भेजा, जिस के उत्तर में जरासिन्ध ने युद्ध का विगुल बजा दिया। फिर क्या था, घमासान युद्ध होने लगा। खड़गों परस्पर लड़ने लगी। कट-कट कर शीश गिरने लगे, रक्त की धाराएँ फूट पड़ी। अकड़ते और जवानी के उत्साह में कूदते फादते योद्धा आपस में जूझ रहे थे धनुष तथा लड़ग की मार से योद्धा भूमि पर गिर कर तटपने लगे। जरासिन्ध की सेना की नग्नता अधिक थी और वह अपनी सेनाओं को ने कर जी जान तोड़ कर लड़ रहा था, कुछ ही देरी में जरासिन्ध के भयंकर प्रहार से श्री कृष्ण की सेना तितर बितर हो गई। जरासिन्ध हर्षित हो लोगों हाकने लगा उसके सैनिकों में हर्ष दौढ़ गया, यह देख कर

श्री कृष्ण व्याकुल हो गए, उन्होंने तुरन्त अपनी पताका फहराई, पाँचजन्य बजाया और शीघ्र ही योद्धाओं को ललकार कर एकत्रित किया, उन्हें प्रेरणा दी, अपने शब्दों से उत्साह प्रदान किया और उनके सम्मान की चुनौती देते हुए एक साथ मिल कर जरासिन्धु की सेना पर टूट पड़े। चारों ओर से जरासिन्धु और उसके व्यूह को घेर लिया।

यहाँ नेमि और अर्जुन ललकार कर शत्रु सेना पर टूट पड़े। अनाघृष्टि, बलाहक योद्धा दे उनका साथ दिया और देखते ही देखते जरासिन्धु का चक्रव्यूह तोड़ डाला। इन वीरों का रणकौशल देखकर शत्रु सेना आश्चर्य चकित रह गई, उसके पैर उखड़ने लगे। तब रुक्मिन और रुधिर जरासिन्धु की ओर से मोर्चे पर आ डटे, इस ओर से अर्जुन और अरिष्ट नेमि जी थे। अरिष्ट नेमि जी के हस्त्रों के प्रहार से रुक्मिन और रुधिर दोनों ही घबराए, अर्जुन के बाणों ने उन्हें होश न लेने दिया, तब उनके पांव उखड़ते देख सात नरेश जरासिन्धु की ओर से लड़ने के लिए आ गए। महा नेमि जी ने तुरन्त उनके आयुध गिरा दिए।

अपने पक्ष की हार होते देख जरासिन्धु के सहयोगी सक्रन्तय नृप ने महानेमि जी पर एक भयकर (विद्यामयी) शक्ति छोड़ी जिस के प्रभाव से यादव कम्पित हो गए। तब मातली ने अरिष्टनेमि जी को बताया कि रावण भी यही अभेद्य शक्ति रखता था जो उसने धरणेन्द्र से प्राप्त की थी। इस राजा ने भी उसी शक्ति को बलि से प्राप्त किया है। इसको काटने का वज्र ही एक मात्र साधन है।

तब अरिष्ट नेमि जी ने महा नेमि को वज्र वाण दिया, उस वाण के छूटते ही उस शक्ति का सहार हो गया वह व्यर्थ हो गई, रुक्मी आयुध लेकर सक्रन्तय नृप के साथ आ मिला और आठ नरेशों ने अपनी सेनाओं सहित मोर्चा जमाया। कौमुदी गदा और अनल वाण से नेमि जी ने रुक्मी को मैदान से भगा दिया। कुछ ही देरी में अरिष्ट नेमि जी ने अनेक प्रकार के दिव्य शक्तिवान् अस्त्रों का प्रयोग किया जिन से आठों नरेशों के पाँव उखड़ गए और वे भागते ही नजर आये।

भयकर युद्ध चल रहा था, प्रत्येक योद्धा अपने अपने रण-कौशल से विरोधी को परास्त करने की चेष्टा में था। समुद्र विजय ने राजा द्रुम को, स्तिमित ने भद्र राजा को, और अक्षोभ्य ने वसु सैन नृप को यमलोक पहुँचा दिया। इसी प्रकार कितने ही शूरवीर संग्राम में मारे गए। महादम, कुन्तिभोज, श्री देव आदि नृप यम लोक सिंघार गए। इतने में सूर्य अस्त हो गया और दोनों पक्ष अपने अपने डेरी में चले गए। रात्रि भर सभी ने विश्राम किया।

प्रात होते ही हिर राय नाम नृप जरासिन्ध की ओर से अपनी सेना को लेकर रण क्षेत्र में आ गया, और आते ही भयकर बाण वर्षा की, परन्तु अर्जुन ने उसके बाणों को बीच ही में काट गिराया। हिर राय नाम रह रह कर सिंह की भाँति गरजता और विकट रूप से बाण वर्षा करता रहा, तब भीम ने आगे बढ़ कर अपनी गदा से उसके रथ को चूर चूर कर दिया और समुद्र विजय के शुभ जयसैन ने अर्जुन के पास अपना रथ खड़ा करके हिर राय नाम की सेना पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी। उसके तीक्ष्ण बाणों में गिरते सैनिकों को देख कर हिरराय नाम ने गरज कर कहा—

ओ मूर्ख जय सैन ! भाग जा, क्यों व्यर्थ में प्राण गवाता है। जय सैन ने क्रोधित हो कर एक ऐसा बाण मारा कि हिरराय नाम का सारथी लुढ़क पड़ा। क्रुद्ध हो हिरराय नाम ने जय सैन पर बाणों की बाँछार कर दी और जयसैन अपने सारथी सहित मारा गया।

अपने भाई को गिरते देख महाजय दौड़ कर आ गया और हिरराय नाम पर टूट पड़ा, परन्तु उसकी हिरराय नाम के सामने एक न चली, कुछ ही देरी में वह भी मारा गया।

यह दृश्य देख कर अनाघृष्टि पर कोप छा गया और मोर्चों पर आ उठा, आते ही एक ऐसा बाण मारा कि जिसने उस धनुष को ही तोड़ दिया, जिसके द्वारा जयसैन और महाजय का वध किया गया था। और गरज कर बोला— हिरराय नाम इन दो कुमारों के रक्त का बदला तुझ में लिया जावेगा। भागने का प्रयत्न न करना।

याद रख कि तेरी मृत्यु का सन्देश आया रक्खा है ।

“छोकरे ! पहले अपनी मां से तो विदा ले ली होती, जाकर देख उसके स्थानों से दूध चू रहा होगा ।” हिररायनाम ने अकड़ कर कहा और स्वयं भयकर वार करने आरम्भ कर दिए, अपने सरदारों को उत्तेजित करने के लिए उसने ललकारा—“देखते क्या हो, शत्रु को भागने का अवसर भी मत दो, वह देखो, उनकी मौत उनके सर नाच रही है, वहादुरों आगे बढ़ो, विजय तुम्हारी वाट देख रही ।”

सरदारों ने मिल कर घोर संग्राम करना आरम्भ कर दिया, यह देख कर भीम, अर्जुन और यादवों को भी जोश आ गया, भीम ने अकड़ कर कहा—“वीरों, गीदड़ों की भवकियों की चिन्ता मत करो, जिनके हाथ में शक्ति नहीं होती, वे जवान चलाया करते हैं । तनिक इन्हे अपने बाजुओं की शक्ति तो दिखादो ।” सभी जोश से लड़ने लगे ।

हिररायनाम अनाघृष्टि को मारने के लिए दात पीस कर, तलवार लेकर बढ़ा, अनाघृष्टि भी रथ से उतर पड़ा और तलवार हाथ में ले कर यह कहता हुआ आगे बढ़ा—“अरे दुष्ट मामा, देखता हूँ तेरी तकदीर में भी भानजों के हाथों ही मरना लिखा है । तो चल ले मैं ही तुझे यमलोक पहुँचाता हूँ ।”

हिररायनाम क्रोध से पागल हो उठा, बोला—मूर्ख अपने उन भाईयों से मिलना चाहता है तो आ मेरी तलवार तुम जैसे को यमपुरी पहुँचाने में बहुत माहिर हूँ ?

‘अरे पापी ! तू जीवित रहा तो मुझे बार बार मामा कहते हुए लज्जा आयेगी । आ चल तुझे यम महाराज के पास पहुँचा दूँ ।’ इतना कह कर अनाघृष्टि ने तलवार का वार इस जोर से किया कि हिररायनाम का सिर धड़ से अलग हो कर धूल में जा मिला । फिर अप्टावीण को भी उसने मार गिराया ।

भीम और अर्जुन ने अनाघृष्टि की वीरता देख कर कहा—“वाह, वाह, वास्तव में सिंहनी का सिंह बबर है ।” इन दो वीरों

के मरते ही जरासिन्ध पक्ष की सेना में भगदड़ मच गई। यह दृश्य देख कर जरासिन्ध बहुत चिन्तित एवं दुःखित हुआ और युद्ध बन्द करके उसने दूर जा कर तैला तप धारण किया और कुलदेवी को स्मरण करके उसकी आराधना की अन्त में उसने कहा—“माता ! मेरा भविष्य अन्धकारमय होता जा रहा है। सारे सहयोगी निष्काम होते जा रहे हैं, वस अब तेरा ही एक मात्र सहारा है। हे माता, शीघ्र आओ और शत्रु की सेना का बल क्षीण करो।”

जरासिन्ध की विनती से सुरी आकर यादव सेना पर कोप गई और सारी सेना को निर्वल बना कर चली गई। सैनिक अस्त्र शस्त्र चलाना चाहते पर हाथ काम ही नहीं करते थे, तब बड़ी चिन्ता हुई। अरिष्ट नेमि जी से उस समय मातली ने सुरी के अभाव को समाप्त करने की युक्ति बताई, मातली के कथनानुसार ही कार्य किया गया, और देवी की माया समाप्त हो गई। फिर यादव सेना अपनी पूर्ण शक्ति से लड़ने लगी।

परन्तु जरासिन्ध समझने लगा कि यादव सेना का आत्म बल कम हो गया है, इस लिए उसने एक दूत भेज कर समुद्र विजय के पास सन्देश भिजवाया कि श्री कृष्ण और बलराम को हमारे हवाले कर दो, तो हम युद्ध बन्द करके वापिस चले जायेंगे।

समुद्रविजय ने दूत से कहा— ‘जरासिन्ध चाहे युद्ध करे या रण क्षेत्र से भाग जाय, जब तक यादवों के दम में दम है, वे किसी प्रकार भी ऐसी शर्त को स्वीकार न करेंगे।’

दूत के जाने के बाद समुद्र विजय ने यादवों को ललकार कर कहा— क्या बात है, शत्रु को ऐसा अपमान जनक प्रस्ताव भेजने का साहस क्यों हुआ ? क्या यादवों की तलवार की गति धीमी हो गई है, क्या यादव योद्धाओं के हाँसले पस्त हो गए हैं ? क्या हम शत्रु को लेने का अवसर देकर अपना उपहान कराने पर तुले हैं। यदि तुम यादव अथवा सच्चे वीर होते घर वापिस जाने की इच्छा को भूलकर आगे बढ़ो, एक ही दगा में घर जाना है वह विजय की पताका फहराते ही कोई घर जावेगा, वरना यही कट कट कर मर जावेगा।’

समुद्र विजय को ललकार सुनकर यादव सेना ने श्री-कृष्ण और समुद्र विजय का जयताद किया और दांत पीस कर हल्ला बोल दिया। इस भयकर प्रहार से जरासिन्ध की सेना को आत्म रक्षा करना कठिन हो गया, निकट था कि जरासिन्ध के सैनिक रणक्षेत्र में शस्त्र फेंक कर भाग जाते, कि सूर्य अस्त हो गया, और युद्ध बन्द कर दिया गया इस आक्रमण से जरासिन्ध की सेना बहुत भयभीत हो गई थी। तब उसे सूझ गया कि उसकी पराजय अवश्य वाकी है, पर प्रात होते ही कर्ण अपनी सेना लेकर वहां पहुंच गया और उसने जरासिन्ध से उसकी ओर से युद्ध करने की इच्छा प्रगट की, अधा क्या चाहे? दो नयन, बिल्ली के भांगो छीका टूट गया, जरासिन्ध ने सहर्ष उसे उस दिन रण भूमि में सेना ले कर लड़ने की आज्ञा दी, पर साथ ही अपना स्नेह दर्शाने के लिए उसने कहा— “श्री कृष्ण के पास बहुत शक्ति है, भीम और अर्जुन उस ओर से लड़ रहे हैं, बहुत से वीर मारे जा चुके हैं, इस लिए तुम अपने को बचा कर होशियारी से युद्ध करना।”

कर्ण ने कहा— “आप विश्वास रखिये, मैं अर्जुन और भीम को यमपुर पहुंचा कर छोड़ूंगा। मैं उन्हें बता दूंगा कि इस भूमि पर ऐसे भी वीर हैं जो उन्हें धूल चटा सकते हैं।”

कर्ण के साथ उसका मित्रदेव नाग कुमार भी हो गया, और वे रणक्षेत्र में जा डटे। उधर से वसुदेव और उग्रसेन आ गए। कर्ण को रणक्षेत्र में देख कर वसुदेव ने गर्ज कर कहा— अच्छा, कर्ण तुम्हें भी मृत्यु यहां खींच लाई?”

“मैं तो तुम्हारी मृत्यु का आदेश ले कर आ रहा हूं।”

“तनिक ध्यान से देखो किधर तुम्हारी मृत्यु का ही आदेश न हो।”

कर्ण ने तुरन्त बाण मारते हुए कहा— “देखो वह आ गया मृत्यु का आदेश, तुम स्वयं पढ़ लेना।”

दोनों एक दूसरे पर वार करने लगे। बहुत दूर तक घमा-

सान युद्ध होता रहा। जब वसुदेव ने देखा कि कर्ण इस प्रकार परास्त होने वाला नहीं है तो उसने गरज कर कहा—“ओ सूत पुत्र तू ऐसे नहीं मानेगा। ले तुझे भस्म किए देता हूँ।” यह कर अनिल वाण मारा परन्तु कर्ण का सहायक देव था, वह तुरन्त ही वहा से लुप्त हो गया और तत्काल जल ला कर उसने अग्नि वाण को प्रभाव हीन कर दिया। तब वसुदेव समझ गए कि कर्ण भी एक दीव्य शक्ति रखता है।

तभी नारद जी आ पहुँचे, उन्होंने वसुदेव से कहा—“वसुदेव! भृकावले के वीर के साथ नागकुमार है, इसी लिए तुम्हारे वाण उसका बाल बाका नहीं कर सकते, अतः कुछ करना है तो नाग कुमार का कुछ करो।” फिर मातली देव (साथी) के साथ आ कर नारद जी बोले—आप यहाँ हैं और वहाँ कर्ण नाग कुमार के सहयोग से भयकर युद्ध कर रहा है। ऐसा कभी न देखा होगा, तनिक वहाँ जाकर देखो।”

मातली देव तुरन्त वसुदेव के रथ पर आ बैठा, नाग कुमार मातली देव को वसुदेव के सारथी रूप में देख कर भाग खड़ा हुआ। इतने में ही सूर्य अस्त हो गया, सग्राम वन्द कर दिया गया और दोनों वीर अपनी अपनी सेनाओं में जा मिले।

× × × × × ×

हस नामक मंत्री ने जरासिन्धु से कहा—महाराज! अभयदान मांगता हूँ, तब आप से विनती करता हूँ कि यह सग्राम आपके लिए सुखदायक नहीं है, इस में जो नर सहार हो रहा है, उसका दोष आपके सिर मढ़ा जायेगा। आप चाहें तो अभी ही यह सग्राम रुक सकता है, और सहस्रो वहनों के मुहान्ग की रक्षा हो सकती है।”

फहते हैं जब शृंगाल की भौत आती है तो वह ग्राम की ओर भागता है, जब मृत्यु निकट होती है, मस्तक फिर जाता है, ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को भोजन रुचि कर नहीं होता शठ को ज्ञान भना नहीं लगता, इसी प्रकार जरासिन्धु को मंत्री की बात बड़ी गड्ढी लगी, उसके नेत्रों में रक्त उतर आया, बोला— “मैं देव रहा हूँ

कि जब से तुम रण भूमि में आये हो और विशेषतया जब से श्रीकृष्ण के पास हो आये हो, तभी से तुम्हारा मस्तक फिर गया है। तुम पागलों जैसी बातें करते हो, मेरे वैरियों की प्रशंसा करते हो, और मुझे मैदान से भाग जाने को उकसाते हो, क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम वैरियों से मिल गए हो। नमक हराम !”

उसी समय दूसरा मंत्री, डभक बोल उठा— “महाराज ! शूरवीर कभी रण क्षेत्र से इस प्रकार वापिस जाने की बात भी नहीं सोचा करते। वे या तो विजयी हो कर लौटते हैं या प्राण दे देते हैं। रण भूमि में मरने वालों को यश मिलता है हस की बातें महाराज के लिए अपमान जनक है।”

डभक की बातें सुन कर जरासिन्ध और भी बिगड़ गया उसने हस को ललकारते हुए कहा— “सुन रहे हो, मंत्री जी की बात ! जो भी तुम्हारी बात मुंह से सुनेगा वही तुम पर थूकेगा, अतएव भविष्य में ऐसी बात मुंह से मत निकालना, जो मेरे कोप को जागृत करदे, मेरी तलवार वैरियों का रक्त पी सकती है, तो वैरियों के हितैषियों को, आस्तीन के नागों को भी यमलोक पहुंचा सकती है।”

बेचारा हस अपना सा मुंह ले कर रह गया। बोला कुछ नहीं प्रातः होते ही जरासिन्ध ने सेनाओं को तैयार होने का आदेश दिया और शिशुपाल को उस दिन के लिए सेनापति नियुक्त कर स्वयं भी रण के वस्त्र, वस्त्र आदि पहन लिये। सवालाख सेना सज कर तैयार हो गई। जरासिन्ध ने अपनी खड्ग हवा में लहराते हुए कहा— “युद्ध होते कई दिन बीत गए। शृंगालों की सेना अभी तक सामना करती रही। पर अब मैं यह सहन नहीं कर सकता। अतः मैं इस खड्ग को शपथ लेकर कहता हूँ कि चाहे जो हो आज मैं कृष्ण का सिर इस खड्ग से उतार लूंगा। जिस सैनिक में एक एक वैरी का खून पी जाने का साहस न हो, वह अभी ही पीछे चला जाय।”

शिशुपाल बोला— “महाराज ! आप निश्चित होकर लड़िए।

हमारा एक-एक सैनिक आपके नाम पर अपने प्राण न्योछावर करसै तैयार है, एक एक सैनिक आपकी शपथ को पूर्ण करने के लिये बैरियो गाजर मूली की भाँति काट डालने को तैयार है ।”

शिशुपाल ! हम सदा से ही तुम पर पूर्ण विश्वास करते हैं । श्री कृष्ण तुम्हारा भी बैरी है । तुम्हें जीवन चाहिये तो कृष्ण का वध करो । तुम्हे मुख चाहिए तो अपने पथ के काटे को क्रूरता से समाप्त कर दो । आज तुम्हारे शौर्य की परीक्षा है ।” जरासिन्धु ने शिशुपाल को उत्तेजित करते हुए कहा— “महाराज ! आप की प्रसन्नता मुझे अपने जीवन से अधिक प्रिय है ।” शिशुपाल ने चापलूसी करते हुए कहा । हमे तुम से ऐसी ही आशा है ।”

इधर मन के लड्डू फोड़े जा रहे थे, उधर यादव गरुड व्यूह रच रहे थे । जब उधर व्यूह रचना देखी तो शिशुपाल ने भी चक्र व्यूह रचा । सारी सेना को युक्ति पूर्वक लगाया । जरासिन्धु प्रथम दिन की भाँति सैनिकों के बीच रहा । शिशुपाल उस के आगे रक्षको का अधिष्ठाता था ।

जरासिन्धु ने युद्ध आरम्भ करने से पूर्व अपने मंत्री को बुला कर पूछा— ‘मंत्री जी ! हमे यह बताओ कि आज विरोधी सेना में कौन कौन से मुंभट हैं ?

मंत्री ने सामने सकेत द्वारा बता बता कर कहा— “महाराज ! वह सामने श्याम अश्व वाले रथ पर अनाघृष्ट कुमार है । वही पांडवों की सेना का सेनापति है । वह देखिये उम के रथ पर गज चित्र युक्त पताका लहरा रही है । श्वेत अश्व और कपि ध्वजा वाला रथ अर्जुन का है । नील कमल की घोभा वाले अश्व जिन् रथ मे जुते हैं, उम पर भीम मेन नवार हैं । और वह देखिये, सिंह चिन्ह ध्वजा वाला, स्वर्ण समान चमकता रथ नमुद्र विजय का है । वृषभ चिन्ह जिस ध्वजा मे है, वह अरिष्ट नेमि जी के रथ पर लहरा रहा है, उम मे शुक्ल वर्ण के अश्व जुते हैं । कवरे अश्वों वाले रथ मे अक्रूर कुमार है, और कदगी के चिन्ह वाली ध्वजा उस पर लहरा रही है । लाल अश्व वाला रथ उग्र मेन का, तीक्ष्ण नर्णी अश्वों का रथ महानेमि का, और हृष्णि

चिन्ह वाली ध्वजा जिस पर लहराती है वह रथ जरत कुमार का है। पद्म रथ राजा के रथ के अश्व पद्म समान हैं, और कमल जिस ध्वजा पर चमक रहा है, वह साहरण के रथ पर लहरा रही है।.....” मैं पूछता हूँ, कृष्ण का रथ कौन सा है ?” बीच ही में जरासिन्ध कड़क कर बोला ।

मंत्री एक बार तो कांप उठा—बोला—“महाराज सेना के बीच में श्वेत अश्वों वाला रथ जिस पर गरुड़ चित्रित ध्वजा लहरा रही है, श्री कृष्ण का है। और कृष्ण के पास दाहिनी ओर बलराम है”

बस बस पुराण मत बखानो

मंत्री जरासिन्ध की बात सुन कर मौन रह गया ।

जरासिन्ध ने सेना पर दृष्टि डाली और गरज कर बोला—
सब शत्रु दल पर टूट पडना ।”

युद्ध आरम्भ हुआ । योद्धा आपस में जूझने लगे, गज सवारों से गज सवार, अश्व सवारों से अश्व सवार, रथारोहियों से रथारोही, और पैदल सैनिकों से पैदल सैनिक भिड़ गए । खड़गों की खन खन की ध्वनि से रण क्षेत्र भर गया । इतने जोर का शोर हुआ कि आकाश पृथ्वी भी कांप उठे ।

उसी समय नारद जी पधारे । जरासिन्ध के पास पहुंच कर बोले—‘आप जैसे योद्धा के सामने वह खाला क्या चीज है । तनिक आगे बढ़ कर उसी का सफाया कीजिए, सैनिकों पर खड़ग उठाना आप को शोभा नहीं देता । आप श्री कृष्ण को मार कर जो यश प्राप्त करेंगे, वह आज तक किसी को नहीं प्राप्त हुआ होगा ।

नारद जी की बात सुन कर जरासिन्ध उत्तेजित हो गया और नारद जी के सकेत पर कार्य करने के लिए आगे बढ़ने लगा ।’

नारद जी श्री कृष्ण के पास भी पहुंचे और बोले—महाराज ! वृद्धा जरासिन्ध तो पक्के आम की भांति है, परन्तु आप की खड़ग

बिना नही गिरेगा। आप के सामने वह क्या है, शीघ्र काम तमाम कर के भगड़ा समाप्त कीजिए, क्यों व्यर्थ रक्त पात करा रहे हैं ?”

श्री कृष्ण जी नारद जी की बात पर हस दिए, “आप को तमाशा ही देखना है, तो घबराइए नही। अब अधिक प्रतीक्षा नही करनी होगी। वह स्वयं अपनी मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा है।” यवन कुमार और अक्रूर आदि में घमासान युद्ध हो रहा था, मार काट करते यवन कुमार को सहारण ने जाकर आगे बढ़ने से रोक दिया। यवन कुमार कुछ देरी तक उसका सफल सामना करता रहा, सहारण ने ललकार कर कहा— “छोटे मोटे सैनिकों को मार कर अपने को वीर समझ लिया होगा, पर किसी वीर से पाला नही पड़ा है, तो बगले भाक रहे हो।”

सहारण की बात सुन कर यवन कुमार को बड़ा क्रोध आया उसने कड़क कर कहा— “अपने मुह मिया मिट्ठू बनते आप ही को देखा है। डींग हाकना छोड़ कर हाथ दिखाओ। आटे दाल का भाव अभी ज्ञात हुआ जाता है।”

‘बढ़ बढ़ कर बातें बनाना बहुत आता है, होता हुआता कुछ नही।’ चिड़ कर सहारण बोला। यवन कुमार ने क्रुद्ध होकर उसका रथ चूर चूर कर दिया। इस पर सहारण भी क्रुद्ध हो गया, उस ने यवन कुमार पर खड्ग का एक ऐसा वार किया कि सिर घड में अलग हो गया। सहारण की इस वीरता को देख कर यादव मेना में भारी हर्ष छा गया, सैनिक आनन्दित हो कर उछलने लगे।

युवराज का वध होते देख कर जरासिन्ध बहुत झुंझलाया, उस ने श्री कृष्ण की ओर बढ़ना छोड़ कर सहारण का पीछा पकड़ा। कुछ देरी तक दोनों में युद्ध होता रहा, अन्त में जरासिन्ध के वारों को सहारण न काट पाया और उस को खड्ग से मारा गया।

फिर वह भूमे मिह को भाति बनराम के पुत्रों पर दूट पड़ा और सभी को धान की धान में मार गिराया, इस से पांडवों की

सेना में आतंक छा गया । सभी भयभीत हो गए, जरासिन्ध जिधर जाता सारा काट करता निकल जाता, कुछ सैनिक तो उस से अपने प्राण बचाने के लिए भाग जाते ।

शिशुपाल श्री कृष्ण से भिड गया, उस ने कृष्ण को ललकार कर कहा—“यह गोकुल ग्राम नहीं है, चरवाहो, ग्वालों की सग्राम में भला क्या चला सकती है । देखा कैसे मर रहे हैं, तुम्हारे योद्धा ने क्षत्रियो का सग्राम कभी नहीं देखा होगा, अब तो आँख खुली । खैर चाहते हो तो शस्त्र फेंक दो ।”

श्री कृष्ण ने हस कर कहा—“शिशुपाल ! पहले अपनी उस माता से तो पूछ लिया होता, जिसने मुझ से तेरे प्राणों की क्षमा माँगी थी ? या मेरे हाथों मरने में ही तुझे आनन्द आयेगा ?”

शिशुपाल गरज कर बोला—मैंने तो अपनी मा से पूछ लिया, पर तू तो यशोदा ग्वालिन से पूछ ले, उसके ढोर कौन चुगाएगा ? मेरा एक भी वार नहीं सहा जायेगा ।

श्री कृष्ण ने कहा—“ऐसे योद्धा होते तो स्वर्ग के विवाह में दुम दबा कर न भागते ।

‘चलेगी न-तेग और तलवार उत से

यह वाजू-बहुत आजमाए हुए है ॥”

शिशुपाल को बहुत क्रोध आया, उस ने दांत पीस कर श्री कृष्ण पर आक्रमण कर दिया । श्री कृष्ण वार काटते हुए बोले—‘तेरी घृष्टताओं को मैंने कितनी ही वार क्षमा कर दिया, पर अब तू सिर पर ही चढता चला आता है तो ले अपने किए का भोग ।’ इतना कह कर उन्हो ने उस पर एक ऐसा वार किया कि शिशुपाल वही ढेर हो गया । शिशुपाल के मरते ही यादव सेना में नवोन्नत आशा का संचार हुआ, सैनिकों ने श्री कृष्ण की जय जयकार करनी आरम्भ कर दी । जरासिन्ध अपने परम सहयोगी की मृत्यु देख कर आग बबूला हो गया । उस ने आव देखा न ताव अपना रथ श्री कृष्ण की ओर हकवा दिया । उधर जरासिन्ध के पुत्रों ने बल राम को घेर रखा था, श्री कृष्ण ने उन पर बाण वर्षा की उधर

वलराम भी शीघ्र गति में बाण बरसा रहे थे। दोनों के बाणों की वर्षा से जरासिन्धु के पुत्र मारे गए। जब जरासिन्धु की दृष्टि उस ओर गई तो उस ने अपने पुत्रों की हत्या का बदला लेने के लिए वलराम को घेर लिया। और गदा का प्रहार किया, जिस से वलराम व्याकुल हो गए, पुन गदा मारने को उठाई तो अर्जुन की दृष्टि उस पर चली गई अर्जुन बीच में कूद पड़ा और भुंकर युद्ध करके वलराम को बचा लिया।

जरासिन्धु ने श्री कृष्ण को निकट देखकर कहा—“तुम इतने दिनों अपनी चतुराई से मेरे हाथों से बचे रहे पर अब मेरे हाथों तुम्हारी सरी माया समाप्त हो जायगी। आज मैं जीव यगा की प्रतिज्ञा पूरी करूंगा।”

श्री कृष्ण बोले, ‘यह तो अभी ही पता चल जायेगा कि जीव यगा की प्रतिज्ञा पूर्ण होगी या एवता मुनि की भविष्य वाणी। तनिक दो दो हाथ हो कर।”

जरासिन्धु ने गरज कर कहा—मैं जरासिन्धु हूँ जिस ने कभी पराजित हाथ नहीं जाना, मेरे नाम से सारा ममार कापता है। श्वालों में खेलने वाला मेरा क्या सामना करेगा ?”

इतना कह कर उसने श्री कृष्ण पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी, पर श्री कृष्ण उस के बाणों की अपने बाणों के बीच ही में काट देते। कितने ही समय तक बाणों से युद्ध होता रहा अन्त में जरासिन्धु ने चक्र रत्न चलाया। उसे चलता देख कर ही यादव मुभट भयभीत हो गए, पान्डवों और यादवों ने मिलकर उसे काटने के कितने ही यत्न किये पर कोई बार न बनाई। अतः चक्र आकर श्री कृष्ण के शरीर में लग गया पर शरीर का स्पर्श होना था, कि चक्र गंद की भाँति हो गया, श्री कृष्ण को कोई चोट ही न आई। इस बात को देखकर जरासिन्धु को अने फँस में गई, उस की मागध में ही न आया कि चक्र रत्न ने श्री कृष्ण का शरीर क्यों न काटा।

श्री कृष्ण ने उसी चक्र को अपने हाथ में लिया, और गरज

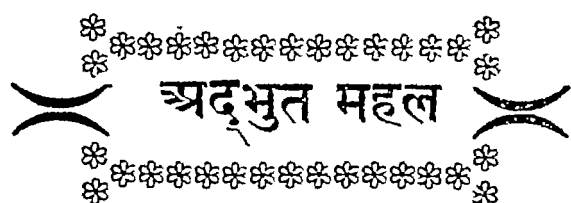
कर बोले —‘पापी ! देख क्या यह भी मेरी ही माया है। ये तेरा शस्त्र ही मेरे काम आ रहा है। तू बूढ़ा है, जा कुछ दिनों और ससार में रहना चाहे तो भाग जा, वरना तेरा ही अस्त्र तेरे प्राण लेगा ?”

जरासिन्ध पर तो शक्ति का अहंकार सवार था, उस ने अकड़ कर कहा—‘ग्वाले ! पहले इस चक्र का प्रयोग सीखने के लिए मेरा शिष्य बनता तब इसे प्रयोग करने की बात करता तो कदाचित् तेरी धमकी का मुझ पर कुछ प्रभाव भी पड़ता अब क्या है, तेरे लिए तो यह एक खिलौना ही है।”

तो फिर देख इस खिलौने की करामात ! इतना कह कर श्री कृष्ण ने चक्र रत्न उस की ओर घुमा कर मारा, जिस से देखते ही देखते जरासिन्ध का शीश कट कर धरा पर आ गिरा और वह चौथे नरक में चला गया। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। श्री कृष्ण की जय के नारों से युद्ध स्थल गूँज उठा। जरासिन्ध की सेनाओं ने शस्त्र डाल दिए और रण भूमि उत्सव स्थल में परिणत हो गई। यादव सैनिक आनन्द चित्त हो कर विपुल वाद करने लगे।

जरासिन्ध का वध होते ही नेमिनाथ जी ने तुरन्त जा कर जरासिन्ध के वन्दी ग्रहों में वन्दी बने पड़े राजाओं को वन्धन मुक्त किया। जब जीवयश को पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह बहुत दुखी हुई और अग्नि में कूद कर खाक हो गई। श्री कृष्ण ने मगध देश का चौथाई भाग जरासिन्ध के शेष रहे पुत्र को दे दिया। उन्होंने मृत यादवों के शवों का दाह संस्कार किया और तीन खण्डों की दिग्विजय करने चल पड़े। जिसे आठ वर्ष में पूर्ण किया और तीन खंड में अखंड आन मानवाकर त्रिखंडीश्वर हो कर वाद्यसमूहों के साथ महामहोत्सव पूर्वक अलका सदृश द्वारिका नगरी में प्रवेश किया।

* चतुर्थ परिच्छेद *



जरासिन्ध और शिशुपाल का वध हो जाने से महाराज युधिष्ठिर के सम्राट पद पाने का रास्ता खुल गया। श्री कृष्ण के सहयोग से महाराजाधिराज पद से युधिष्ठिर को विभूषित करने के लिए एक महोत्सव राजसूयज्ञ के नाम से रचाया गया और दुर्योधन कर्ण और शकुनी भी श्री कृष्ण के कारण महाराज युधिष्ठिर को सम्राट बनने से न रोक पाये।

इधर श्री कृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया था इस लिए पांडवों के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था, वे पाण्डवों के प्रत्येक कार्य में सहयोग और परामर्श देते थे। इसी सम्बन्ध के कारण, और महाराज युधिष्ठिर को धर्म परायणता के कारण पाण्डवों की कीर्ति में वृद्धि होती रही, आधा राज्य पाने पर भी वह भारत खण्ड में प्रसिद्ध हो गए और सौ राजा उनके आधीन आ गए।

सुभद्रा के गर्भ से एक कातिवान पुत्र उत्पन्न हुआ, इस खुशो में महाराज युधिष्ठिर ने एक विराट उत्सव किया। उस उत्सव के लिए अर्जुन के मित्र मणिचूड ने अद्भुत महल बनाया, जिसमें उस युग की सर्वोत्तम कला दिखाई गई थी। रत्नों और मणियों से युक्त दीवारें और स्तम्भ इतने आकर्षक बने हुए थे कि आँखें धोन्ना सा जाती थी। कहीं रवि उदय होता दर्शाया गया था, तो कहीं पूर्ण चाँदी घबल चाँदनी बख़्तरता हुआ। फर्श पर नील मणि लगी थी।

और रंगों का ऐसा सुन्दर नमूना था कि नीले तथा श्वेत रंग से रंग फर्श को देख कर कोई भी व्यक्ति 'जल' का धोखा खा सकता था, जहाँ जल था वहाँ फर्श दिखाई देता था, इसी प्रकार दीवारें भी छद्ममयी थी, दूर से द्वार देख पड़ने वाली जगह मोटे पत्थरों की दीवार थी और जहाँ दीवार प्रतीत होती थी, वह द्वार थे। विभिन्न भाति की रत्न पुत्तलियाँ, चित्र, तथा नाना प्रकार के कामों से युक्त वह महल एक अद्भुत भवन बन गया था।

पुत्र जन्मोत्सव पर युधिष्ठिर ने अनेक नरेशों को निमन्त्रित किया, श्री कृष्ण, बलराम, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि सभी निमन्त्रित थे। बहुमूल्य भेट दी, बहुमूल्य उपहारों के ढेर लग गए। देश विदेश से कलाकार निमन्त्रित थे। आठ दिन तक विभिन्न नृत्य, संगीत और प्रदर्शनों की धूम रही। युधिष्ठिर ने मुक्त हस्त से धन व्यय किया। दान देने में युधिष्ठिर ने इतना धन व्यय किया देखने वाले भी दाँतो तले उगली दवा कर रहे गए। हस्तिनापुर, द्वारिका और इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारी विद्यार्थी बड़ी संख्या में एकत्रित थे, उन्हें सहस्रों गौएँ दान दीं, जो जिसने माँगा वही दिया, याचकों लोग कह उठे—“महाराजाधिराज युधिष्ठिर ने पुत्र जन्मोत्सव पर जो किया, वह अभूतपूर्व है, प्रशंसनीय है, और एक समय तक उसकी याद रहेगी।”

सभी आनन्द चिंत थे, परन्तु दुर्योधन के दिल पर साप लोट रहा था, वह ईर्ष्या के मारे जला जा रहा था। यद्यपि महाराजाधिराज युधिष्ठिर ने भ्रातृ स्नेह से धन का हिसाब किताब उसी के जिम्मे दे दिया था, और उसे इस बात की छूट थी कि वह अपनी इच्छानुसार जितना चाहे व्यय करे। यह बात इस लिए की गई थी ताकि दुर्योधन के मन का मैल जाता रहे और वह समझ ले कि युधिष्ठिर उसे सगे भ्रातृ-तुल्य मानते हैं। परन्तु जिस समय कोप की चादिया उसे मिली तो वह मोचने लगा कि यह सुन्दर अवसर है पांडवों को वरवाद करने का। खूब धन उड़ाऊँगा और कोप खाली कर दूँगा। जिससे राज कोप का सन्तुलन बिगड़ जायेगा और प्रजा के लिए व्यय होने वाला धन समाप्त होने से प्रजा जन पाण्डवों के प्रति क्रोध हो जायेगी, क्योंकि जन साधारण के हितार्थ भी व्यय

नहीं किया जा सकेगा। कर्मचारियों का वेतन रुक जायेगा, इसलिए वे असन्तुष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार राजा का सारा ढांचा ही अस्त व्यस्त हो जायेगा। यह सोच कर वह एक पैसे के स्थान पर चार पैसे व्यय कर रहा था, पर जब उसने देखा कि उसकी इस नीति से पाण्डवों के यश में ही वृद्धि हुई तो वह अपने भाग्य को कोसने लगा।

शिशु का नाम अभिमन्यु रखा गया। ज्योतिषियों ने उस के वीर होने की भविष्यवाणी की। श्री कृष्ण ने शिशु को बहुमूल्य उपहार दिए। उन्हें अपार हर्ष हो रहा था, यह देखकर कि बालक का कात्तवान मुख और उज्ज्वल ललाट बता रहा था कि बालक अद्भुत वीर योद्धा होगा।

उत्सव की समाप्ति पर समस्त नरेश, अतिथि एवं विद्वान गण विदा हो गए। पर दुर्योधन को युधिष्ठिर ने यह कर रोक लिया—“ऐसी क्या जल्दी है, कुछ दिन ठहर कर चले जाना, जैसा हस्तिनापुर वैसा ही आपके लिए इन्द्रप्रस्थ है।”

सभी पाण्डवों ने दुर्योधन से बहुत प्रेम दर्शाया, दुर्योधन मन ही मन उनसे कुढ़ता था, पर प्रत्यक्ष रूप में वह भी उन से प्रेम ही दर्शाता। भाईयो के कहने पर कुछ दिन उसने वही रुकना स्वीकार कर लिया।

जन्मोत्सव पर बना हुआ अद्भुत महल उन दिनों इन्द्र प्रस्थ में दर्शनीय भवन था, जो देखता वही प्रशंसा करता। परन्तु दुर्योधन ने अभी तक उसे जाकर नहीं देखा था, क्योंकि ईर्ष्या के कारण उसे यह कदापि सहन नहीं हो सकता था कि पाण्डवों की किसी भी वस्तु की प्रशंसा करनी पड़े।

परन्तु एक दिन भीम ने दुर्योधन से कहा—“भ्राता जी ! मणि चूड़ हानि निमित्त भवन आप भी तो देखिए। लोग तो बड़ी प्रशंसा करते हैं। पर कला की पहचान आप मरीचे काना प्रेमियों और अनुभवियों को ही होती है। लोग तो किसी को प्रमन्न करने के लिए भी तैयार ही प्रशंसा कर दिया करते हैं। चलिए आप देख कर उस में जो कमि हो बताइये। महाराजाधिराज युधिष्ठिर ने

उस पर बहुत धन व्यय किया है ।”

दुर्योधन ने चाहते हुए भी जाने से इंकार न कर सका, अपने अन्य संगी साथियों के साथ वह भीम के साथ महल देखने चले पड़ा ।

जिस समय दुर्योधन और उस के साथी महल के आगन में पहुँचे उस समय द्रौपदी उसके ऊपर खड़ी थी ।

दुर्योधन ने ज्यों ही अन्दर प्रवेश किया तो सामने नील मणि के फर्श को देखकर वह समझा जल है, इस लिए उसने जूते निकाल कर वस्त्र ऊपर कर लिए । देखने वाले दुर्योधन की इस भूल पर हस पड़े, और ऊपर खड़ी द्रौपदी भी खिल खिला कर हस पड़ी ।

लोगो और द्रौपदी के हसने से दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया भीम उसी समय बोल पड़ा—भाई साहब, वस्त्र सभाल रहे हो, किसी से मल्ल युद्ध तो नहीं करना ।”

क्रुद्ध दुर्योधन बोला—“क्या तुम मुझे यहां डुबा मारने लाये हो ? महल है या तालाब घर ।”

भीम ने हस कर कहा—“भाई साहब ! यह जल नहीं नील मणि से आपकी दृष्टि धोखा खा गई है ।”

दुर्योधन को अपनी भूल पर बड़ी लज्जा आई । उसने अपने वस्त्र नीचे कर लिए, जूता पहन लिया और आगे बढ़ने लगा । खीझ मिटाने के लिए वह सब से आगे तीव्र गति से चला, उसके पीछे था दुःशासन । कुछ दूर जाकर दुर्योधन घंडाम से जल कुण्ड में गिर पड़ा । दर्शक हंस पड़े, दुःशासन भी गिरते गिरते बाल वाल बचा । भीम ने कहा—“भाई साहब ! ऐसी जल्दी क्या थी स्नान करने को ही जी चाहता था तो आप मुझ से कहते । आप के लिए सब प्रवन्ध हो जाता । यहां तो आप ने वस्त्रों सहित ही जल में छलांग लगा दी ।”

दुर्योधन को क्रोध भी आया और लज्जा भी आई । भीम ने उसे बाहर निकाला । ऊपर खड़ी द्रौपदी ठहाका मार कर हस पड़ा ।

दुर्योधन जल रहा था, पर बेचारा स्वयं लज्जित भी था, भीम ने ऐसे दूसरे कपड़े दिए, कपड़े बदल कर वह फिर भवन की सैर करने लगा।

एक स्थान पर उसे द्वार दिखाई दिया, दुर्योधन ने उस ओर पग बढ़ाया, भीम ने उसी दम कहा—जरा ध्यान से देखिये, कहीं दीवार से मत टकरा जाना।”

दुर्योधन ने कहा—‘ तो तुम ने मुझे मूर्ख ही समझ रखा है।’ वह यह कह कर आगे बढ़ा ही था कि सिर दीवार से जा टकराया द्रौपदी देखते ही हस पड़ी। और बौली

डिगोरी पकड़कर कोई करो इम्दाद अन्धे की

न हो अन्धा यह क्यों, आखिर तो हैं आलाद अन्धे की।

सुनते हैं घृतराष्ट्र अन्धे हैं, पर लगता है उनके पुत्र भी अन्धे ही हैं।

दुर्योधन ने एक बार अग्नेय नेत्रों से द्रौपदी की ओर देखा और वह अपने क्रोध को न रोक सका, वही से माथा सहलाते हुआ बोला—‘कौन अंधा है, तुम्हें शीघ्र ही पता चल जाएगा, जिन आँखों में हर्ष ठाठे मार रहा है, एक दिन उन्हीं से अश्रुसिन्धु फूट पड़ेगा, तब तू अन्धे को ही याद करेगी।’

भीम ने दुर्योधन को क्रोध करते देखा तो झट से बोल उठा—‘भाता जा ! द्रौपदी आपकी भाभी है। परिहास करने का तो उसे अधिकार है। आप तनिक सी बात पर क्रुद्ध हो गए। जाने भी दीजिए।’

क्रुध दुर्योधन मौन हो कर भीम के माथ आगे बढ़ा। भीम ने द्वार की ओर सकेत करके कहा—यह है द्वार। आप इस के द्वारा अन्दर जा सकते हैं।’

यह द्वार तो दीवार जैसा दीखता था, दुर्योधन ने नेत्र पूर्ण होगी हमते हुए कहा—‘अस अस, मुझे मूर्ख न बनाओ। दीवार को मैं द्वार नहीं समझ सकता। अन्धे का ह पर अन्धा नहीं, भीम

हंसी रोकने का प्रयत्न करते हुए बोला— “अच्छा आप मेरे पीछे आईये।”

भीम उसी दीवार सा चमकने वाले द्वार में घुसा और अन्दर चला गया, दुर्योधन को बड़ा आश्चर्य हुआ।



* पञ्चम परिच्छेद *

दुर्योधन का षडयन्त्र

भौर हो या सायं, निशि हो या दिन, चौबीसो घण्टे दुर्योधन चिन्ता में धुलता रहता था। उसके लिए उल्लब्ध समस्त वैभव शूल समान हो गए, उसे बात बात पर क्रोध आता, दास दासियों पर अकारण ही चिल्ला उठता, रंग सरसों सा हो गया। रात्रि को जब आकाश में तारों का जाल बिछा होता, शीतल आदनी कलियों के अघरों पर मुस्कान बखेरती, और स्त्रो कणों को भी श्वेत रत्नों का रूप प्रदान करती, उस समय भी दुर्योधन झुझलाया रहता, उस के मुख से दीर्घ निश्वास, निकलती वह हर समय व्याकुल रहता। जब ओस कण पृथ्वी पर फैली हुई वस्तुओं को भिगो देते, उस समय भी उसके हृदय में चिन्ता की ज्वाला धधकती रहती। उसका मुंह उतरा रहता, और चिड़चिड़े स्वभाव के कारण सारा महल दुर्योधन से कापने लगा। वह किसी बात में रुचि न लेता, न किसी से हसता बोलता, निरोग हो कर भी वह रोगी की भाँति अधिक समय शय्या पर ही पड़ा रहता। तभी तो कवि ने कहा है :—

चिन्ता ज्वाल शरीर में, बनि दावा लगी जाय ।
 प्रगट धुआँ वहि संचरे, उर अन्तर धधुआय ॥
 उर अन्तर धधुआय जरै जिमि कान्न की भट्टी ।
 रक्त मांस जरि जाय रहे हड्डिन की टट्टी ॥
 कह गिरधर कविराय सुनो हो मेरे मिन्ता ;
 गो नर बाने जिये कि जिन घर व्यापे निन्ता ॥

दुर्योधन की यह दशा देख कर उसके मामा शकुनि से न रहा गया, पूछ बैठ- “दुर्योधन तुम निशि दिन दुबले होते जा रहे हो। कोई रोग भी प्रतीत नहीं होता, प्रत्येक प्रकार की सुख सम्पदा तुम्हें प्राप्त है, फिर इस प्रकार रोगी जैसी दशा का क्या कारण है ?

“मामा ! आप तो जानते ही हैं, पाण्डव कितनी उन्नति कर रहे हैं, वे सारे क्षेत्र पर छा गए हैं। उनके यज्ञ की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। इस बार जब अर्जुन के पुत्र के जन्मोत्सव में मैं गया था, आप तो मेरे साथ थे ही। मेरा कितना उपहास किया गया, कितना अपमानित हुआ मैं। इस सब के होते मैं जिऊ तो कैसे ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मैं पतन की ओर जा रहा हूँ। और एक एक बात में पाण्डव मुझे परास्त करते जा रहे हैं।” व्यथित दुर्योधन ने अपने मन की बात कह सुनाई।

शकुनि ने दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा- “तुम्हारे मन में वसी चिन्ता को समझ गया, पर मेरी समझ में यह नहीं कि पाण्डवों की उन्नति से तुम पर कौन सी मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा ? पाण्डवों के पास जो कुछ है वह तुम्हारा ही दिया हुआ तो है। तुम उन से किस बात में कम हो ? पाण्डव तुम्हारे ही भाई हैं, उनकी वृद्धि को देख कर तुम्हें चिन्ता होना आश्चर्य की बात है।”

“मामा जी ! आप भी ऐसी बातें करते हैं ?— दुर्योधन ने शकुनि की बातों पर शका प्रगट करते हुए कहा- आप को तो ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए। जब कि आप जानते हैं, कि मैं अपमान पूर्ण जीवन व्यतीत करने से जीवित जल मरना अच्छा समझता हूँ। द्रौपदी ने मुझे कितने ही लोगों के सामने अपमानित किया, पर मैं उसका कुछ न कर सका, अभी तो इतना ही है कि द्रौपदी मुझे अन्धा कह कर पुकारती है पर पाण्डवों की इसी प्रकार उन्नति होती रही तो एक दिन मुझे वे लोग भरी सभाओं में गालियाँ दिया करेंगे, उनके चक्के तक मुझे अपमानित किया करेंगे, और क्या पता वह भी दिन आजाए कि पाण्डव इतनी शक्ति प्राप्त करने ? मुझे हस्तिना पुर से भी निकाल कर बाहर खड़ा कर दें।”

शकुनि ने दुर्योधन को धैर्य बधाने के लिए कहा— “तुम भी कैसे बुरे स्वप्न देखने लगे ? पाण्डव एक नहीं हजार जन्म भी करे तो भी वे तुम्हारा बाल बाका नहीं कर सकते । और मेरे विचार से तो तुम्हें यही भ्रम हो गया है । द्रौपदी ने तुम्हें अपमानित करने के लिए उपहास नहीं किया होगा, और न पाण्डव ही तुम से किसी प्रकार का द्वेष रखते हैं । अतः व्यर्थ की चिन्ता से क्या लाभ । तुम भी अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करो ।”

“नहीं, मामा मैं पाण्डवों को भलि प्रकार समझता हूँ—दुर्योधन ने कहा— वह एक एक बात मुझे चिढ़ाने के लिए करते हैं । वह महल भी उन्होंने मेरे ही उपहास के लिए बनाया था । मैंने प्रतिज्ञा की है कि द्रौपदी द्वारा किए गए अपमान का बदला लूंगा, जब तक मैं उसी प्रकार द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित नहीं कर लूंगा, तब तक चैन नहीं लूंगा । या तो अपने अपमान का बदला लूंगा और पाण्डवों को मुझे चिढ़ाने का बदला मिल जायेगा, वरना मैं जीवित ही चिता में प्रवेश करूँगा । अतः यदि आप मुझे प्रसन्न देखना चाहते हैं, तो कोई उपाय बताइये जिस से मैं अपने अपमान का बदला ले सकूँ ।”

शकुनि ने बार बार समझाया कि वह द्रौपदी या पाण्डवों से बदला लेने की बात मन से निकाल दे, पर दुर्योधन न माना जब शकुनि ने देखा कि दुर्योधन हठ पर अड़ा हुआ है, तो वह भानजे के प्रेम में विवश हो कर उसके मन को शांत करने के लिए उस की उच्छ्वा पूति के उपाय खोजने में लग गया । दुर्योधन और शकुनि दोनों आपस में विचार विमर्श करने लगे । उसी समय कर्ण भी वहां पहुंच गया और उनकी मंत्रणा में वह भी शामिल हो गया । कर्ण ने तो वही अपना पुराना भुक्ताव दिया — “चलो अनायास ही पाण्डवों पर आप्रमण कर दो ।” पर शकुनि ने इस प्रस्ताव का सख्त विरोध किया वह बोला— “कर्ण ! तुम हमेशा शक्ति द्वारा विरोधियों को शुक ने की बात किया करते हो, पर कभी यह नहीं सोचते कि विरोधी पर भी कम शक्ति नहीं है । पाण्डवों को शक्ति द्वारा परास्त करना वक्त्रों का खेल नहीं है । वे अथ इतने शक्ति

शाली है कि उनका सामना करना लोहे के चने चबाना है। उन्हें तो किसी अन्य ही उपाय से जीता जा सकता है।”

कर्ण ने दम्भ पूर्ण शब्दों में कहा— “मामा ! आप भी कैसी बातें करते हैं’ रण भूमि में तो जाने दीजिए, पाण्डवों में एक भी ऐसा नहीं जो मेरे सामने आ कर जीवित वच कर जा सके।”

दुर्योधन बीच में बोल उठा— “पर यदि किसी प्रकार बिना लड़ाई भगडे के ही उन्हें परास्त किया जा सके तो इससे बढ कर अच्छी बात और हो क्या सकती है ?”

कर्ण तब कुछ ढीला पडा और बोला—“हा, यदि कोई ऐसी भी तरकीब हो सकती है, तो अवश्य की जानी चाहिए, युद्ध करना ही आवश्यक तो नहीं है।”

फिर दोनों शकुनि का मुह देखने लगे, जैसे उनके मौन नेत्र शकुनि से अन्य उपाय पूछ रहे हो। शकुनि कुछ देर विचार मग्न रहा और अन्त में चुटकी वजा कर बड़े हर्ष से बोला—“युधिष्ठिर को चौसर खेलने का तो शौक है ही, वस उसे आप चौसर खेलने को आमंत्रित करे, इधर से मैं रहूँ फिर दुर्योधन ! मैं उनकी जीत कर दिखला दूँगा। वस चौसर के खेलका प्रबन्ध तुम पर रहा।”

बात सुनते ही कर्ण और दुर्योधन के मुख मण्डल पूनो के चा की भाँति खिल उठ। कितनी ही देर तक वे आपस में शकुनि की बुद्धि की प्रशंसा करते रहे और उसके पश्चात् चौसर खेलने के पड़यन्त्र का जाल बिछाने पर विचार करने लगे।

× × × × × × ×

दुर्योधन और शकुनि घृतराष्ट्र के पास गए। शकुनि ने बात छेड़ी—“राजन ! देखिये तो आप का बेटा दुर्योधन शोक और चिन्ता के कारण पीला सा पडता जा रहा है। उसके शरीर पर रक्त ही सूख गया प्रतीत होता है। क्या आप को अपने बेटे की चिन्ता नहीं है। ऐसी भी क्या बात कि आप अपने बेटे की चिन्ता का कारण तक न पूछें ?

बूढ़े धृतराष्ट्र को अपने पुत्र पर अपार स्नेह था ही, शकुनि की बात से वह सच मुच बहुत चिन्तित हो गए, दुर्योधन को अपनी छाती से लगा कर प्यार करते हुए बोले—“बेटा, हा मेरे तो आखें ही नहीं, जो मैं तुम्हारी दशा देख सकता। पर तुम्हें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त है, तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो, राज्य के उत्तराधिकारी तुम्ही हो। फिर तुम्हें दुख काहे का है ?”

दुर्योधन अवरुद्ध कण्ठ से, दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए बोला—
“पिता जी ! मैं राजा कहलाने योग्य कहाँ रहा ? एक साधारण व्यक्ति की तरह खाता पीता, पहनता ओढ़ता हूँ। यह भी पता नहीं कि भविष्य में यह भी मिलेगा, या नहीं ? बेटे की निराशा पूर्ण बातें सुन कर धृतराष्ट्र का हृदय फटा सा जाने लगा, उन्होंने तुरन्त उस से, इस उदासीनता और निराशा का कारण पूछा। दुर्योधन ने अपने मन की गाँठ खोलते हुए इन्द्रप्रस्थ की सुपमा, वहाँ की स्मृद्धि, पाण्डवों के यश की वृद्धि और द्रौपदी के उपहास की सारी बातें बता दीं। और अन्त में बोला— ‘अब आप ही बताइये मुझे चैन आये तो क्यों कर। मेरे लिए तो दुर्दिन आ रहे हैं, न जाने कब पाण्डव शक्ति शाली होकर राज्य छीन ले। यदि मुझे राजा भी बने रहने दिया, तो भी आज तो द्रौपदी अपमान करती है, कल उसके बच्चे मुझे भी सभाओं में अपमानित किया करेंगे। सच पूछो तो पिता जी, पाण्डवों की उन्नति क्या हो रही है, मेरे हृदय पर कुल्हाड़े चल रहे हैं।”

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की चिन्ता का कारण पाण्डवों की उन्नति जान कर कहा— “बेटा सन्तोष रखो। तुम्हारी आशाएँ निर्मल हैं। तुम्हें ”

दुर्योधन ने बात काटते हुए उपदेश देना आरम्भ कर दिया—
“पिता जी सन्तोष क्षत्रियोचित धर्म नहीं है। उरने अथवा दगा करने से राजाओं का मान सम्मान जाता रहता है, उनकी प्रतिष्ठा नहीं रहती। युधिष्ठिर का विशाल व वन धान्य ने भरपूर राज्य भी देखकर मुझे ऐसा लगता है कि मानो सम्पत्ति और राज्य तो कुछ है ही नहीं। पिता जी मैं तो यह महसूस कर रहा हूँ कि पाण्डव

उन्नति की ओर जा रहे हैं और हम पतन की ओर ।”

बेटे पर असीम प्यार के कारण उसे व्याकुल देख कर घृतराष्ट्र से न रहा गया, उन्होंने बड़े प्रेम से दुर्योधन को समझाना चाहा बोले—बेटा ! तुम्हारी ही भलाई के लिए कहता हूं, पाण्डवों से बैर मत करो युधिष्ठिर किसी प्रकार तुम से बैर नहीं रखता, वह कभी किसी के प्रति भी शत्रुता नहीं रखता, वह धर्मराज है अपने ही भाई से भला क्यों बैर रखेगा । उसकी शक्ति हमारी ही शक्ति तो है । उसने जो ऐश्वर्य प्राप्त किया है उस पर हमारा भी अधिकार है । जो उसके साथी हैं, वही हमारे भी हैं । उसे जो भी यश प्राप्त हुआ उस से हमारे कुल की भी तो कीर्ति में वृद्धि हुई । उसका कुल जितना उच्च है, उतना तुम्हारा भी है । वह रण कौशल में जितना प्रवीण है, उतने ही तुम भी हो । तब फिर अपने ही भाई की उन्नति को देखकर तुम्हारे मन में द्वेषानल क्यों भड़कता है ? बेटा ! तुम विश्वास रखो वह कभी तुम्हारी वृद्धि के प्रति ईर्ष्या नहीं करेगा । उस से बैर रखना तुम्हें शोभा नहीं देता ।”

घृतराष्ट्र की सीख दुर्योधन को पसन्द न आई, वह भुभुला कर बोला—“पिता जी ! आप वृद्ध हो गए हैं, पर अभी तक आप को लोगो को समझाना नहीं आया । आप तो बस युधिष्ठिर की प्रशंसाओं के तूमर बाधते रहते हैं । आप को क्या पता कि पाण्डव शनैः शनैः शक्ति प्राप्त कर के हम से राज्य छीनने का बड़ा यत्न कर रहे हैं । आप की सीख पर चला तो मैं कहीं का नहीं रहूंगा ।”

कहते कहते दुर्योधन का गला रुध गया, पिता का हृदय पसीज गया, पर वह थे, नीति शास्त्र के पारगत्त, बोले—“बेटा मैं तुम्हें दुखी नहीं देखना चाहता, तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में कितना प्रेम है, यह तुम ने कभी समझने का प्रयत्न ही नहीं किया । मैं जो कहता हूं तुम्हारे हित के लिए ही कहता हूँ । पाण्डवों को किसी भी प्रकार आज परास्त करना सम्भव नहीं है । इस लिए तुम शक्ति सचय करो, इसी में तुम्हारी भलाई है । शत्रु को कभी प्रेम से और कभी शक्ति से जीता जाता है ।”

दुर्योधन पिता को राजनीति का पाठ पढ़ाते हुए बोला—
“पिता जी ! आप की दशा उस कलुछी के समान है जिसे पाक में
रहकरभी उस के स्वाद का ज्ञान नहीं होता । आप नीति शास्त्र में
पारगढ़ होते भी नीति को नहीं समझते । पिता जी ! नीति और
ससार की रीति—नीति एक दूसरे से भिन्न होती है । सन्तोष और
सहन शीलता राजाओं का धर्म नहीं है । राजा का धर्म है कि वह
किसी भी प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, चाहे उसे लोग न्याय
कहे, अथवा अन्याय लोगों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।”

उसी समय शकुनि भी बोल उठा—“राजन् ! दुर्योधन ठीक
कहता है, अब की वार इन्द्रप्रस्थ में द्रौपदी और पाण्डवों ने जितना
दुर्योधन का अपमान किया है, उसे देखते हुए आप को कुछ करना
ही चाहिए । यदि इस समय आप ने दुर्योधन का साथ न दिया तो
आपको अपने बैठे से हाथ धोने पड़ेंगे ।” इसके पश्चात् शकुनि ने
दुर्योधन के निश्चय को कह सुनाया, इसका मनोवर्धित प्रभाव पड़ा,
धृतराष्ट्र द्रवित हो गए, उन्होंने ने दुर्योधन पर प्रेम दर्शाते हुए पूछा
—“यदि तुम अपनी ही इच्छानुसार काम करने के इच्छुक हो, तो
वृताओं, मैं उसमें क्या सहयोग दे सकता हूँ । अपने ज्येष्ठ पुत्र के
हित के लिए मैं प्रत्येक उचित कार्य करने को तैयार हूँ ।”

तब शकुनि ने सलाह दी—“आप तो केवल युधिष्ठिर को
चौसर खेलने के लिए निमन्त्रित कर लीजिए । वस पासों के
चक्कर में युधिष्ठिर को परास्त करके आप के पुत्र की इच्छा पूर्ति
कर दी जायेगी । दुर्योधन का दुख दूर करने का इस समय वस एक
यही उपाय है, न लड़ाई भगड़ा, न रक्तपात, हलदी लगे न फट—
करी रग चोखा ही चोखा ।”

धृतराष्ट्र ने चौसर के खेल में युधिष्ठिर की सम्पत्ति छीन लेने
का पहले तो विरोध किया, पर दुर्योधन और शकुनि दोनों ने पुत्र
को नष्ट कर भड़का कर और अनेक वाते उधर उधर से मिलाकर उन्हें
नरम कर लिया । जब शकुनि और दुर्योधन ने देखा कि धर्म धर्म
धृतराष्ट्र पर इस कुमंथना का प्रभाव पड़ने लगा है तो दुर्योधन अन्त
में बोला—“पिता जी ! उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो भी उपाय हो

सके, किया जाना उचित है। तलवार और बाण ही तो शस्त्र नहीं है, प्रत्येक वह साधन शस्त्र की गणना में ही आता है, जिस से विरोधी को परास्त किया जा सके। किसी के कुल या जाति से यह नहीं जाना जाता कि वह शत्रु है अथवा मित्र जो भी हृदय को दुख पहुंचाये, और जो भविष्य के लिए सकट खड़ा कर सकता है, वही शत्रु है, फिर चाहे वह सगा भाई ही क्यों न हो। सन्तोष की सीख तो आदमी को पगु बनाने के लिए दी जाया करती है, क्षत्रिय यदि सन्तोष करने लगे तो फिर उनके शस्त्रों को जग खा जाये और वे कभी अपने राज्य व शक्ति का विस्तार न कर सके। सब से अच्छा क्षत्रिय वह है जो भोवी सकट को पहले से ही यह पहचाने और जो भविष्य में दुखदायी हो सकता है, इस से पहले कि वह उस योग्य हो, पहले ही दबोच कर ठण्डा कर दे। मुसीबत को पहले से ताड़ कर उसे रोकना ही बुद्धिमानों का कर्तव्य है। पिता जी ! वृक्ष की जड़ में चींटियों का बनाया हुआ बिल जिस प्रकार एक दिन सारे वृक्ष के ही नाश का कारण बन जाता है उसी प्रकार हमारे भाई भी एक दिन हमारे नाश का कारण बनेंगे, इस लिए क्षत्रियों के धर्म का पालन का प्रत्येक सम्भव उपाय से उन को शक्ति कम करना हमारा कर्तव्य है। फिर हम उन्हें भूखो थोड़े ही मारने वाले हैं, उन्हें उतनी ही छूट देगे, उतने ही साधन उन्हें प्राप्त होंगे, जिससे वे सुख पूर्व जीवन व्यतीत करे पर हमारे नाश का कारण न बने।

दुर्योधन की बात समाप्त होते ही शकुनि बोल उठा—“राजन् ! आप बस युधिष्ठिर को खेलने का निमन्त्रण दे दें। राज रीति अनुसार वह अवश्य ही तैयार हो जायेगा, गेप सारी जिम्मेवारी मुझ पर छोड़ दें।

दुर्योधन ने फिर कहा—“पिता जी ! बिना किसी प्रकार के जोखिम और युद्ध तथा रक्त पात के शकुनि मामा पाण्डवों की सम्पत्ति जीत कर मुझे देने को तैयार है। आप इस अवसर से लाभ उठाइये। यदि ऐसे सुन्दर अवसर पर भी आप ने कायरता दिखाई तो फिर समझ लीजिए, ऐसा स्वर्ण अवसर फिर नहीं आने वाला।

— धृतराष्ट्र बोले—“बेटा ! मुझे इस प्रकार पाण्डवों की सम्पत्ति

हीन करना अच्छा नहीं जंचता ।”

“पिता जी ! आप तो बस उचित तथा अनुचित के चक्कर में ही रहेंगे, और शत्रु अपना काम कर जायेंगे। जब साप निकल जायेगा, तब लकीर पीटने से क्या होगा। आप इस धर्म और राज्य नीति को उठाकर ताक पर रख दीजिए और थोड़ी देरी के लिए केवल राजा बन कर सोचिए। दुर्योधन बोला—

उसी समय शकुनि ने भी उसको समर्थन कर दिया—महाराज उसमें हिचकिचाते की क्या बात है ? चौसर का खेल कोई हमने तो ईजाद किया नहीं। हमारे पूर्वज भी तो इसे खेलते आये हैं, और कितनों ने ही इस हथियार से अपनी मनोकामना पूर्ण की है। यह एक ऐसा शस्त्र है, जो बिना रक्त बहाये ही किसी को विजय और किसी को पराजित बना देता है। उस में अन्याय की तो कोई बात नहीं।”

धृतराष्ट्र बोले—“अच्छा तो मैं विदुर से और सलाह कर लूँ। वह बड़ा बुद्धिमान है, उस की सलाह बड़ी नपी तुली रहती है।”

दुर्योधन सुन कर बोला—“पिता जी ! मुझे तो कभी कभी लज्जा आने लगती है कि मैं उस बाप का बेटा हूँ, जिसे अपनी बुद्धि पर तनिक सा भी विश्वास नहीं है। विदुर चाचा तो मुझ से जलते हैं, वे पाण्डवों से ही स्नेह रखते हैं, वे भला आप को ऐसी कोई सलाह क्यों देंगे जिस में मेरा लाभ और पाण्डवों की हानि हो। वे तो आप को उपदेश देंगे और अपने उपदेशों से आप को शांत कर देंगे।”

शकुनि ने भी कहा—“राजन् ! आप राज्य के स्वामी हैं, आप को किसी की सलाह के मोहताज नहीं रहना चाहिए। यह दुनिया बड़ी चालवाज है। लोग अपने अपने स्वार्थों की रक्षा और अपने चहेतों के भले के लिए ही कोई सलाह दिया करते हैं। क्या आपको अपने बेटे से अधिक विदुर जी पर विश्वास है।”

तात्पर्य यह है कि दुर्योधन और शकुनि ने धृतराष्ट्र को अपनी बात मनवा ही दी धृतराष्ट्र ने वायदा कर लिया कि युधिष्ठिर को

खेलने का बुलावा वे भेज देंगे। दुर्योधन और शकुनि बहुत प्रसन्न हुए। दोनों ने मिल कर इन्द्रप्रस्थ में देखे भवन जैसा ही एक सभा मण्डप तैयार कराया और फिर बुलावा भेजने को कह दिया।

एक दिन धृतराष्ट्र ने विदुर जी को बुला कर चुपके से इस सम्बन्ध में उन से भी राय ली। विदुर जी ने इस बात का विरोध किया। पर धृतराष्ट्र ने अन्त में यह कह कर बात समाप्त कर दी कि—“जो हो मुझे भी ऐसा लगता है कि प्रारब्ध हमें नचा रही है। नाश होना है, तो होगा ही। उस से हम कैसे बच सकते हैं। अब तो मैंने निर्णय कर ही लिया, इस लिए तुम जाकर युधिष्ठिर को सभामण्डप देखने और खेलने का निमन्त्रण दे आओ।”

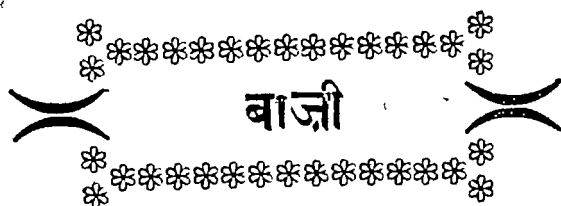
“मुझे ऐसा लगता है कि हमारे कुल का नाश होना अब आरम्भ होने वाला है। आपकी आज्ञा मानकर मैं चला भी जाऊ तो मेरी आत्मा मुझे बारम्बार धिक्कारती। शास्त्रों में जो सात दुर्व्यसन गिनाए गए हैं, जुआ उन में से प्रथम है। आप स्वयं उसे खिलाये वह बड़े दुख की बात है।” विदुर जी ने कहा।

धृतराष्ट्र ने कहा—“विदुर जी! तुम्हारी बात युक्ति संगत होती है भी आज मैं उसे अस्वीकार करने पर विवश हूँ। क्योंकि मैं दुर्योधन से वायदा कर चुका हूँ। यदि तुम्हारी आत्मा इन्द्रप्रस्थ जानें को स्वीकार नहीं करती, तो तुम्हारा जाना उचित नहीं है। मैं किसी दूसरे को भेज दूँगा।”

विदुर जी धृतराष्ट्र के इस निश्चय को सुन कर क्षुब्ध होकर वहाँ से चले गए। अन्त में जयद्रथ को भेजना तय पाया। जयद्रथ के प्रस्थान करने से पूर्व दुर्योधन और शकुनि ने उसे बहुत कुछ समझाया पढ़ाया।



* छटा परिच्छेद *



हस्तिनापुर में सभा मण्डप (भवन) तैयार हो जाने पर कुनि और दुर्योधन का सिखाया—पढाया जयद्रथ इन्द्रप्रस्थ पहुँचा। प्रचानक जयद्रथ के इन्द्रप्रस्थ पहुँच जाने पर युधिष्ठिर ने उस का बड़ा आदर सत्कार कर के पूछा—कहिए, हस्तिनापुर में तो सब सकुशल हैं ?”

जयद्रथ बोला—“सभी सकुशल एव प्रसन्न हैं। आप को हस्तिनापुर ले चलने के लिए आया हूँ।”

युधिष्ठिर ने गद गद हो कर कहा—“अहो भाग्य ! मुझे चाचा जी ने याद किया। क्या कोई उत्सव हो रहा है ?”

“धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर में एक सुन्दर सभामण्डप बनवाया है, वास्तव में आज पृथ्वी पर उस के समान सुन्दर एव मनोहर अन्य कोई भवन नहीं होगा। लाखों रुपये व्यय कर के बनवाया हुआ यह भवन सभी को पसन्द आया है, पसन्द ही नहीं, देखने वाले उस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर रहे हैं। दुर्योधन की इच्छा थी कि आपको भी वह भवन दिखाया जाय। अतः धृतराष्ट्र ने आप को अपने परिवार सहित हस्तिनापुर चलने का निमन्त्रण देने के लिए भेजा है।” जयद्रथ ने कहा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया। अपने अन्य भ्राताओं को बुलाकर उन्हो ने धृतराष्ट्र का निमन्त्रण और अपना चलने का निर्णय सुना दिया। सभी भ्राता

धृतराष्ट्र के दर्शन करने के इच्छुक थे, वो सोचते थे हस्तिनापुर जा कर उन्हें विदुर चाचा और भीष्म पिता मह से भी भेंट करने का अवसर प्राप्त होगा और प्रेम भाव से दुर्योधनके मन में धक्का रही ईर्ष्या दावानल को शान्त करने का प्रयत्न भी कर सकेंगे, अतएव सभी चलने को तैयार हो गए ।

पाण्डव परिवार सहित हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। वे बड़े प्रसन्न थे, और हस्तिनापुर के नर नारियो, परिवार के प्रतिष्ठित वृद्ध जनों से भेंट करने की आशा से आनन्दित हो रहे थे, हस्तिनापुर पहुचने पर दुर्योधन शकुनि आदि ने उनका बहुत आदर सत्कार किया। एक सुन्दर भवन में उन्हें ठहरा दिया गया दूसरे दिन स्नान आदि करके सभा में मण्डप देखा वे बड़े प्रसन्न हुए और मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा की। भवन का कोना कोना उन्हें दिखाया गया, जब मुख्य स्थान पर वे पहुचे तो शकुनि ने कहा—“युधिष्ठिर ! खेल के लिए चौपड़ बिछा हुआ है, चलिए दो हार लें।”

“राजन् ! यह खेल ठीक नहीं है। इस में कोई साहस की बात होती नहीं, व्यर्थ ही समय जाता है और नये उत्पात ख हो जाते हैं। धर्म ग्रन्थों और सर्वज्ञ मुनियों का उपदेश है कि पाप का खेल खलना धोखा देने के समान है, यह मनुष्य के नाश का कारण बनता है। क्षत्रियों के लिए तो रण का क्षेत्र जीत और हार के लिए होता है। पाँसा फेंक कर भाग्यो का निर्णय करना अच्छी बात नहीं है।” —युधिष्ठिर ने शिष्टता पूर्ण उत्तर दिया।

यद्यपि यह सब बातें युधिष्ठिर ने सहज भाव से कही थीं पर उन के मन में जरा सा खेल लेने की भी इच्छा हो रही थी। शौकीन जो ठहरे। हा, उन्हें यह भी मान था कि यह खेल बुरा है, इस लिए इन्कार भी कर रहे थे।

शकुनि ने तुरन्त कहा—“महाराज ! आप जैसा खिलाडी भी ऐसी बातें करे तो आश्चर्य की बात है। इस में तो कोई धोखे की बात ही नहीं है। शास्त्र पढ़े हुए पंडित भी आपस में, शास्त्रार्थ किया करते हैं, जो अधिक विद्वान को परास्त कर देता है। युद्ध

मे भी शस्त्रो विद्या का पारगत नौसिखिये को परास्त कर देता है। यही बात इस खेल में भी है। मजा हुआ खिलाड़ी कच्चे खिलाड़ी को हरा देता है। यह भी कोई धोखे की बात हुई?—आप को कदाचित हारने का भय है, इस लिए आप धर्म की आड़ ले रहे हैं।

युधिष्ठिर को अन्तिम बात चुभ गई, उत्तेजित होकर बोले—
“राजन् ! ऐसी बात नहीं है, आप आग्रह करते हैं तो मैं खेलने को तैयार हूँ, मैं राजवशो की रीति के अनुसार खेलने को सदा तत्पर हूँ, पर मैं समझता उसे बुरा ही हूँ।”

युधिष्ठिर ने दुर्योधन के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कहा—
“भाई के प्रेम पूर्ण निमंत्रण को भला मैं कब अस्वीकार कर सकता हूँ। पर मेरे साथ खेलेगा कौन?”

“मेरी ओर से मामा शकुनि आप के साथ खेलेंगे, पर दाव पर लगाने के लिए रत्नादि जो धन चाहिए वह मैं दूँगा—दुर्योधन बोला।

युधिष्ठिर ने सोचा था कि यदि दुर्योधन खेलेगा तो उसे वे आसानी से ही हरा देंगे, पर जब शकुनि के साथ खेलने की बात आई तो वे हिचकिचाने लगे, क्योंकि शकुनि पुराना मजा हुआ खिलाड़ी है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे। बोले—“मेरी राय है कि किसी को दूसरे के स्थान पर न खेलना चाहिए। वह खेल के साधारण नियमों के विरुद्ध है।”

“अच्छा तो न खेलने का अब दूसरा बहाना बना लिया—
“शकुनि ने हसते हुए कहा।

युधिष्ठिर भला यह कब सहन कर सकते थे, कि कोई उन्हें बहाने वाज कहे, इस लिए उत्तेजित होकर बोले—“कोई बात नहीं मैं खेलूँगा।”

उसी समय भीम बोल पड़ा—“भ्राता जी ! आप धर्मराज होकर क्या करने जा रहे हैं। अब आप राजकुमार नहीं महाराजा विराज हैं। जुआ खेलना धर्म के प्रति कूल है। इस दुर्योधन ने

कितने ही परिवारों का नाश कर डाला कितनों को राजा से रंक बना दिया। - यह खेल नहीं झूठ, फरेव और कपट का दूसरा नाम जुआ है। आप तो धर्म नीति और राजनीति में पारंगत हैं, फिर भी जुआ खेल रहे हैं, यह बात साफ बता रही है कि आप अपने को स्वयं ही घोर सकटों में फंसा रहे हैं।”

दुर्योधन ठहाका मार कर हसा और अन्त में बोला—“यह भी खूब रही। सभी धर्म और नीति सिखाने वाले हो गए। भाई भाई में क्रीडाएं भी होती हैं, और मनोरजन भी। इस का मतलब क्या यह है कि महाराजाधिराज हैं तो भाईयो के साथ खेलने पर भी प्रतिबन्ध लग गया ?”

युधिष्ठिर ने भीम को शांत करके कहा—“भैया भीम ! राज वश की रीति के अनुसार मैं खेलने से इन्कार नहीं कर सकता। फिर यह जुआ, जुए की भांति नहीं, भाईयो का मनबहलाव होते हैं।”

इतने में विदुर जी भी आगए, पांचो भाईयो ने चरण छू कर प्रणाम किया, चौसर खेलने की तैयारी देख कर विदुर जी ने संकेत से युधिष्ठिर को रोकते हुए कहा—“बेटा युधिष्ठिर तुम तो धर्म ग्रंथों के विद्वान हो, तुम ने शास्त्रों में बताया है त्याज्य दुर्यसनों को भी पढा है। तुम भी नल के इतिहास की पुनरावृत्ति करना चाहते हो, तो खेलो और जी भर कर खेलो। क्योंकि वश की उन्नति के दिन तो हवा हुए, पाण्डु ने राज का विकास किया, तो तुम उसका मालियामेट कर डालो। कोई बात नहीं है, दुर्यसन तुम नहीं अपनाओगे तो नष्ट हुए दरिद्र लोग अपनायेगे क्या ?”

ताने भरी बात सुनकर युधिष्ठिर झिझकने लगे, तभी शकुनि ने कहा—“आप भी कैसी बातें कर रहे हैं, कितने दिनों में तो युधिष्ठिर हस्तिनापुर आये हैं, इस शुभ अवसर पर मन बहलाव हो जाय तो क्या डर है ?”

इसी प्रकार की बातों से युधिष्ठिर को शकुनि और दुर्योधन ने खेलने पर तैयार कर लिया, युधिष्ठिर की आत्मा तो

कहती थी कि यह बुरा हो रहा है; पर दिल कहता था कुछ बाजी खेलने में क्या बुराई है। घन तो हाथ का मेल है, कुछ हार भी गया तो कौन सी बात है।—आखिर हृदय की बात चल गई।

× × × × × × ×

और खेल आरम्भ हुआ, सारा मण्डप दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। द्रोण, भीष्म, तथा, विदुर और धृतराष्ट्र जैसे वयो वृद्ध भी विराजमान थे। विदुर जी के मुख पर खेद और क्षोभ के भाव झलक रहे थे, भीष्म ने खेल आरम्भ होने से पूर्व कहा—“युधिष्ठिर को चौसर पर देख कर ही मुझे बहुत दुख हो रहा है। न जाने क्यों मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज कुछ अनर्थ होने वाला है।” उसी समय विदुर जी बोले—“और मुझे तो ऐसा लगता है कि यह बाजी इस वश के पतन का श्री गणेश कर रही है। युधिष्ठिर स्वयं अपने धर्म पथ को भूल कर एक दुर्व्यसन में अपने आप को भोक रहा है, मानो भाग्य ही उस से और हम से रूठ रहे है।”

द्रोणाचार्य ने कहा—“युधिष्ठिर ! न जाने क्यों आज मेरा मन रो रहा है।”

उस समय दुर्योधन उनकी ओर आग्नेय नेत्रों से देख रहा था, क्रुद्ध होकर बोला—“तो क्या आप लोग यह नहीं चाहते कि हम दो भाई एक स्थान पर बैठ कर मनोरजन के लिए कुछ खेल भी ले ?”

धृतराष्ट्र ने बेटे को ढाढस बधाने और पीठ थपथपाते हुए कहा—“नहीं, नहीं मनोरजन करने या मन वहलाव से तुम्हें कौन रोकता है ? बस किसी प्रकार का भगडा फिसाद नहीं होना चाहिए।”

शकुनि मामा खेल में हो और कोई अनहोनी घटना न घटे यह कैसे हो सकता है ?” असन्तुष्ट भीम ने कहा।

“कहिए युधिष्ठिर महाराज ! क्या इरादा है, मैदान में

डटनों है या भाग जाना है।” शकुनि ने युधिष्ठिर को उत्तेजित होकर कहा ।

“पाण्डवों ने कभी भाग जाना नहीं सीखा । पास फेंको।” युधिष्ठिर ने उत्तेजित होकर कहा ।

किन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि यह चौसर का खेल उन से सारी सम्पत्ति छीनने के लिए रचा गया है । और जो पास फेंके जा रहे हैं, वे विशेषतया युधिष्ठिर को ही बरबाद करने की इच्छा से बनवाये गए हैं । उन्हें मुख्यता इसी खेल के लिए बनवाया गया था, जिन को फेंकने का तरीका और जिन से हर बार जीतने का उपाय केवल शकुनि को ही ज्ञात था । उन पाँसों से शकुनि जब चाहे जीत, जब चाहे हार सकता था, एक प्रकार से उन की कला शकुनि के हाथ में थी । इस लिए खेल में जीतने का श्रेय चाहे किसी को मिले, पर वास्तव में श्रेय था उस को, जिसने यह अदभुत पाँसे बनाये थे ।

यह बात साफ होने पर भी कि यह खेल भगड़े की जड़ सावित होगा, कुल वृद्ध उसे रोक नहीं पा रहे थे । उन के चेहरो पर उदासी छाई हुई थी । कौरव राजकुमार बड़े चाव से देख रहे थे ।

ज्यों ही पासों को हाथ लगाया गया, विदूर जो ने कहा—
“यंत्र का रहस्य उसका स्वामी ही जानता है, युधिष्ठिर, खेलने से पहले अपने अपने को तोल लो ।”

परन्तु खेल आरम्भ हो गया । पहले रत्नों की बाजी लगी, फिर मोने चादी के खजानों की, उसके बाद रथों व घोड़ों की, तीनों दाव युधिष्ठिर हार गए । तब चतुर शकुनि ने एक बार युधिष्ठिर को जिताना चाहा ताकि युधिष्ठिर दत्तचित्त हो कर खेल में लगे रहे, खेल बन्द न करदे । समस्त आभूषण दाव पर लगाए गए, उस बार युधिष्ठिर जीत गए । फिर क्या था युधिष्ठिर का हाँसला बढ गया, वह जोश से खेलने लगे ।

उसी दम भीष्म जी बोले—

जीते तो चस्का पड़े, हारे लेत उधार ।

ना मुराद इस खेल की, जीत भली न हार

फिर पासे फेंके गए, युधिष्ठिर ने जीते हुए धन और दासियों को दाव पर लगा दिया । उसे वे हार गए । फिर तो अपनी सारी सेना की बाजी लगादी और हार गए । एक बार सब हाथी लगा दिए, उन्हें भी हार गए । शकुनि का पासा मानो उस के इशारों पर चलता था ।

खेल चलता रहा । युधिष्ठिर बारी बारी से अपनी गायें भेड़-वकरियाँ, दास दासियाँ, रथ, घोड़े, हाथी, सेना और यहाँ तक कि देश की प्रजा को भी हार बैठे । परन्तु उनका चस्का न छूटा, तब भीम ने हस्तक्षेप करते हुए कहा—“भ्राता जी ! अब बहुत हो चुका । शास्त्रों में जो कहा है, उस का परिणाम मिल गया । अब आप इस नाश कर्ता खेल को बन्द कीजिए । क्यों दुनिया भर के सामने लज्जित होते हैं ? क्यों अपने माथे पर कलक लगाते हैं ।

उस समय शकुनि बोला—“भीम तुम चुप रहो । जब इधर से कोई नहीं बोल रहा, तो तुम क्यों हस्तक्षेप करते हो । जो हार गए, क्या पता दूसरे दाव पर उसे युधिष्ठिर जीत ले ? क्या हार कर वापिस जाना चाहते हो ?”

युधिष्ठिर के मन में जो आशा करवटे बदल रही थी, और सहारा मिला, वे भीम को शांत करते हुए बोले—“भीम तुम चुप रहो । इस बार न सही, तो अबकी बार तो मुझे और भी भाग्य आजमा लेने दो ।”

भाइयों के शरीर पर जो आभूषण थे, वह भी उन्होंने दाव पर लगा दिये, और हार गए ।

और कुछ शेष है ?” शकुनि ने पूछा ।

युधिष्ठिर यूँ हार मानने वाले न थे, भला वह कैसे सहन कर लेते कि वे जुए में चारों खाने चित हो गए, बोले—“यह

सावले रंग का सुन्दर युवक, मेरा भाई नकुल खंडा है, वह भी मेरा धन है, इसकी बाजी लगाता हूँ चलो ।”

“प्रच्छा तो यह बात है, तो यह लीजिए, आपका प्यारा भाई अब हमारा हो गया ।” उत्साह से कहते कहते पासा फेंका और बाजी मार ली ।

विदुर जी चिल्ला उठे—धिक्कार है, धिक्कार है, यह मन बहलाव हो रहा है या अत्याचार । तुम लोगों की धूर्तता की भी कोई सीमा है । धन दौलत, दास, दासी, हाथी घोड़े और प्रजा को हार गए, अब भाइयों की भी बाजी लगाने लगे ? तुम लोगों को लज्जा आनी चाहिए । यह खेल नहीं, निर्लज्जता और अन्याय का स्वाग हो रहा है । सुनते हो धृतराष्ट्र ! तुम्हारे चहेते मनुष्यों को बाजी पर लगा रहे हैं । तुम्हारे शकुनि और दुर्योधन कौरव वंश के मुख पर कालिख पोत रहे हैं । इन्द्रप्रस्थ का राज्य छीन लिया अब पाण्डवों को धातु की भांति प्रयोग कर रहे हैं । धृतराष्ट्र कुल की नाक बचानी है तो उठो इन पासों को भाड़ में फेंक दो और शकुनि को निकाल बाहर करो ।”

दुर्योधन जीत की खुशी में उछल रहा था, उसे जीतने का इतना नशा था कि वह विदुर जी को ललकारने लगा—आप क्यों शोर कर रहे हैं ? जब खेलने वाला मनुष्यों को दांव पर लगा रहा है, तो हम क्या कर सकते हैं ?” शकुनि ने उसी समय कहा—“युधिष्ठिर को अपने भाग्य पर विश्वास है, वे यूही नहीं खेल रहे, एक ही दांव पर वह सब कुछ वापिस ले सकते हैं ?”

“भाई धृतराष्ट्र ! देख नहीं सकते, तो सुन तो सकते हैं, वेदा शिष्टाचार को भी भूल गया, उसने लोक लज्जा को भी ताक पर रख दिया, और उधर तुम्हारे भतीजे सब खो रहे हैं । अब भी कुछ करो ।” विदुर जी ने व्याकुल हो कर कहा ।

धृतराष्ट्र बोले—“मैं तो वृद्ध हो चुका, अब मेरी कौन सुनता है ?”

भीष्म पितामह इस दशा को देख कर क्षुब्ध हो गए थे, कहने लगे—“आज क्या होने वाला है ? कुछ पता नहीं । मुझे तो ऐसा लगता है कि शकुनि के हाथ में पासा नहीं, बल्कि नगी तलवार है, और उससे वह निर्भय व स्वच्छन्द हो कर कुल मर्यादा, धर्म, नीति और वश की प्रतिष्ठा का वध कर रहा है ।”

धृतराष्ट्र को भी विवश हो कर कहना पड़ा— “दुर्योधन ! बस बस बहुत हो चुका । मैं सुन रहा हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति तुझे धिक्कार रहा है । अब यह महानाशक खेल बन्द कर दे ।”

“पिता जी ! आप शांत बैठे रहिए, युधिष्ठिर को आज जी भर कर खेल लेने दीजिए ।” —दुर्योधन बोला । “कहिए, अब क्या लगाते हैं, खेलते हैं या भाग्य को रोते हैं ? शकुनि ने युधिष्ठिर को ताना देते हुए कहा ।

युधिष्ठिर बोले— “क्यों गर्व करते हो, अब की बार न सही, इस बार तकदीर का पाँसा पलटेगा । यह जो मेरा भाई सहदेव है जो सारी विद्याओं में निपुण है, विख्यात पण्डित की बाजी लगाना उचित तो नहीं, फिर भी लगाता हूँ । चलो देखा जायेगा ।”

शकुनि ने पासे को हाथ में लिया और उत्साह से कहा—

निश्चित हो कर खेलिये भाग्य हो जब कि साथ ।

पाँसा शकुनि हाथ है, तो जीत भी अपने हाथ ॥

यह चला और वह जीता— कहते हुए पासा फेंक दिया और पासा गिरते ही प्रफुल्लित हो कर उछल पड़ा । बोला—“देखिये बाजी तो स्पष्टतया हमारी है, कहिए अब किस की वारी है ।”

युधिष्ठिर चिन्ता मग्न हो गए, तब शकुनि ने इस आशंका से कि कहीं युधिष्ठिर खेल न बन्द करदे, कहा “कदाचित् भीम और अर्जुन आप की दृष्टि में, नकुल और सहदेव से अधिक मूल्यवान् हैं ? हा, हो भी क्यों न वे माद्री के बेटे थोड़े ही हैं । सो उन्हें तो आप बाजी पर लगाने से रहे ।”

युधिष्ठिर बोले—“शकुनि, कदाचित् आप हम भाईयो में फूट डालने का असफल प्रयत्न कर रहे हैं। अधर्म तो मानो तुम्हारे रग रग में कूट-कूट कर भरा है। तुम क्या जानो कि हम पात्र भाईयो के सम्बन्ध कैसे हैं?”—युद्ध के प्रवाह में पार लगाने वाली नाव के समान, महान तेजस्वी, पराक्रम में अद्वितीय, विजय श्री का प्रिय, सर्वगुण सम्पन्न, भ्राता अर्जुन को अब की वार में बाजी प लगाता हूँ।”

शकुनि ने निर्णज्जता से कहा—वाह युधिष्ठिर महाराज वाह ! बाजी लगाने वाला हो तो ऐसा हो पर—

भाग्य खान की जीत है, भाग्य हीन की हार।

होनी होत टले नहीं, यह कर्मों की मार ॥

पासे फेंक कर बोला—“लीजिए महाराज अर्जुन भी आप के हाथ से हार गया, अब क्या भीम को बाजी पर लगाईयेगा ?”

कोई दैविक शक्ति मानो युधिष्ठिर को पतन की ओर खींचे ले जा रही थी, वे स्वयं अपने को इस विनाशक खेल-से रोकने का प्रयत्न करते, पर अपने पर काबू करने में असफल हो जाते, अपने कर्मों के फल से बंधे हुए युधिष्ठिर ने कहा—हा युद्ध में जो हमारा अगुआ हैं, असुरों को भयभीत करने वाला वज्र-धारी, इन्द्र सदृश तेजवान, महाबली, अद्वितीय साहसी, और पाण्डव कुल गौरव, अपने भाई भीम को दावपर लगाता हूँ।” युधिष्ठिर की बात समाप्त होते होते शकुनि ने पासा फेंक दिया और युधिष्ठिर भीम को भी हार गए।

शकुनि बोला—“तो आप ही रह गए, कहिए क्या विचार है?”

युधिष्ठिर ने कहा—“हा ! इस वार में स्वयं अपने आप का दाव पर लगाता हूँ जो हो, पासा फेंको।”

“लो, यह जीता” कहते हुए शकुनि ने पासा फेंका और बाजी भी ले गया।

दुर्योधन प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा, वह खड़ा हुआ और

एक एक करके सब पाण्डवों को पुकारा, घोषणा की कि अब वे उस के दास हो चुके हैं। शकुनि की दाद देने वालों के हर्ष नाद और पाण्डवों की इस दुर्दशा पर तरस खाने वालों के हाहाकार से सारा सभा-मण्डप गूँज उठा।

इधर सभा में खलबली मच रही थी, उधर शकुनि युधिष्ठिर से बोला “अब बताइये, क्या लगाते हैं।”

“अब मेरे पास धरा ही क्या है लगाने को, सब कुछ तो हार चुका।”—युधिष्ठिर ने निराशा व उदासीनता—भावों से दुखित हो कर कहा।

“नहीं, आपके पास एक और चीज शेष है, जिसके चरण घर में आते ही आपको सुख सम्पदा और यश प्राप्त हुआ।”—शकुनि ने द्रौपदी की ओर संकेत करते हुए कहा “मैं तुम्हारी बात समझा नहीं, ऐसी भला कौन सी वस्तु है”

“वही साक्षात् लक्ष्मी द्रौपदी, क्या पता उसी के भाग्य से आपको विजय प्राप्त हो जाये।” शकुनि ने युधिष्ठिर को फासने के लिए कहा।

—और जुए के नशे में चूर युधिष्ठिर, ‘जब तक स्वास, तब तक आश’ की लोकोक्ति के अनुसार कह बैठे—‘तो चलो, मैं उस रूपसि, लक्ष्मी, द्रौपदी की भी वाजी लगाई—‘यह मुंह से निकल तो गया, पर फिर वे स्वयं ही विकल हो गए, उसके परिणाम को सोच कर वे कांप उठे।

युधिष्ठिर की बात पर सारी सभा में हा हा कार मच गया, वृद्धजनों की ओर से “धक्कार धक्कार” की आवाजें आईं। विदुर जी बोल उठे—“जुए के नशे में अन्धों? क्या सती द्रौपदी की लाज का भी जुआ खेल रहे हो। तुम मनुष्य हो या पशु। देखो इस पाप से कहीं आकाश न टूट पड़े।”

कुछ लोग बोले—“छि छि कैसा घोर पाप है?” कुछ लोगों के नेत्रों में अश्रुधारा बह निकली, भीष्म और द्रोणाचार्य व्याकु

हो उठे, कितने ही लोग पसीने में नहा गए।

परन्तु दुर्योधन और उसके भाई मारे खुशी के नाचने लगे। पर युयुत्सु नाम का धृतराष्ट्र का एक बेटा शोक सन्तप्त हो उठा, उसके मुख से निकल ही तो गया— “जब यह घोर पाप होने लगा, तो कुरु वंश के नाश के दिन ही आ गए समझो।”— और मारे लज्जा के उसने अपना सिर झुका लिया।

शकुनि हर्षचित्त हो कर बोला—

अन्तिम बाजी है यही, यह भी मेरे हाथ।

बनी द्रौपदी भी गुलाम, अपने पति के साथ ॥

और उसने पांसा फेक दिया।

आनन्दित हो कर उसने शोर मचाया—“यह लो, यह बाजी भी मेरी ही हो गई।”

दुर्योधन को तो जैसे मन इच्छित फल मिल गया, वह विजय से मदान्ध हो कर विदुर जी को आदेश देता हुआ बोला—“आप अभी रनवास में जायें और उसे तत्काल यहां ले आये, आज से वह हमारी दासी है, उसे हमारे महल में भाड़ू देने का काम करना होगा आज मैं उस चुड़ैल से अपने अपमान का अच्छी तरह बदला लूंगा।”

विदुर जी को दुर्योधन की बात से बड़ा क्रोध आया, वे बोले “मूर्ख, क्यों मदान्ध हो कर अपनी मृत्यु और कुल के नाश को निमन्त्रण कर रहा है। पाप की ऐसी पट्टी तेरी आँखों और बुद्धि पर बन्व गई है कि मानवीय व्यवहार को भी भूल गया। सती द्रौपदी के लिए तेरे मुख से ऐसे शब्द निकलने लगे कि कोई गवार व्यक्ति भी अपने भाई की स्त्री के लिए नहीं कह सकता। अपने विछाये हुए जाल में युधिष्ठिर को फाँस कर क्या अब तू इतना पाप भी करने पर उतार हो गया है कि एक सती की आवरु पर भी हाथ उठाने को तैयार है। कुरु वंश के मस्तक पर कलंक लगाने से पहले, यह तो सोचा होता, कि जिन्होंने अपनी बल, बुद्धि से इतने बड़े पृथ्वी खण्ड पर राज्य किया है, वह इस लिए नहीं कि किसी एक

की दुष्टता से उन के इतिहास पर ही कालिख पुत जाये। अपने इस बूढ़े अन्धे बाप की प्रतिष्ठता का तो ध्यान रक्खा होता।”

दुर्योधन को फटकारने के पश्चात् विदुर जी सभा सदों को सम्बोधित करते हुए बोले—“अपने को हार चुकने के पश्चात् युधिष्ठिर को कोई अधिकार नहीं कि द्रौपदी को बाजी पर लगाए, साथ ही सती द्रौपदी कोई किसी की सम्पत्ति नहीं है, वह जीवन सगिनी है, तो इसका यह अर्थ नहीं हो जाता कि उसे पशुओं की भाँति किसी को सौंप दिया जाय। पांचाल राज्य की राजकुमारी को जुए में घसीटने का पाप करने का अधिकार किसी को नहीं है, उस का अपना स्वतः का अस्तित्व है। अतएव द्रौपदी को अपमानित करना एक घोर अन्याय है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि कौरवों का अन्त समीप आ गया है। इस लिए अपने ही हित की बातें उन्हें कड़वी लगने लगी हैं, और अपने ही हाथों अपने लिए गड्ढा खोद रहे हैं। आप लोग ऐसे अत्याचार को रोकने का प्रयत्न कीजिए, आखिर आप भी तो इन्सान है, क्या हमारे बहू बेटियाँ नहीं हैं? क्या हम सभी पगु बने हुए इस जघन्य, व पाशविक अत्याचार को देखते रहेगे। यह खेल नहीं कपट जाल है।”

उपस्थित लोगों में से कितने ही चिल्ला उठे—“विदुर जी ठीक कहते हैं, द्रौपदी को बाजी पर नहीं लगाया जा सकता वह नहीं हारी गई। यह युधिष्ठिर की अनाधिकार चेष्टा थी”

विदुर जी की बातों और लोगों के शोर को सुन कर दुर्योधन बौखला उठा, उसने अपने सारथी, प्रातिकामी को बुला कर कहा—

“विदुर, तो हम से ही जलते हैं और पाण्डवों से डरते हैं, तुम्हे तो कोई डर नहीं? अभी रनवास में जाओ, और उससे कहो कि अब वह हमारी दासी है, तत्काल यहाँ आये। तुम उसे साथ ले कर यहाँ शीघ्र आओ।”

इस समय चारों ओर से आवाज़ें आई—“यह अन्याय है अत्याचार है। नारी का अपमान घोर पाप है, छि. छि. यही है राजाओं का न्याय?”

कोई व्यक्ति जोर से बोला— “अन्धे धृतराष्ट्र की क्या बुद्धि भी मारी गई है, जो यह अन्याय करा रहे है। यह तो दरिद्र जुआरियो में भी नहीं होता।”

विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा— “सुन रहे हो ? लोग क्या कह रहे हैं ? तुम्हारा बेटा तुम्हारा नाम उछाल रहा है”

भीष्म पितामह ठण्डी स्वांस लेते हुए बोले— “इस घोर पाप को देखने से पहले ही मैं मर जाता तो अच्छा था।”

दुर्योधन इन आवाजों से व्याकुल हो कर चीख उठा— “बन्द करो यह बाते, जो होता है उसे देखते रहो।”



* सप्तम परिच्छेद *

द्रौपदी का चीर हरण

दुर्योधन की आज्ञा पा कर प्रातिकामी रनवास में गया और द्रौपदी को प्रणाम करके बोला— “रानी जी ! आप को महाराज दुर्योधन ने इसी समय सभा मण्डप में बुलाया है ।”

उस समय प्रातिकामी के मुख पर खेद के भाव छाये हुए थे, उसकी बात सुन कर शोक विह्वल चेहरा देख कर द्रौपदी ने आश्चर्य चकित हो पूछा— ‘ क्या कह रहे हो तुम ?— क्या मुझे सभा मण्डप में बुलाया है ? और वह भी दुर्योधन ने ? ”

गरदन झुकाए हुए प्रातिकामी बोला—जी हाँ, जी हाँ, महा राज युधिष्ठिर जुए में आप को हार चुके हैं । अब आप दुर्योधन की दासी हो गई हैं, आप को महल में भाड़ू देने का काम करना होगा । इसी आज्ञा को सुनाने के लिए आप को सभा में बुलाया गया है ।”

प्रातिकामी की बात सुनते ही द्रौपदी भौंचक्की सी रह गई, जैसे उन के कानों में किसी ने शूल ठोक दिए हो । उस के हृदय पर वज्राघात हुआ, कुछ देर तक वह मूर्तिवत् खड़ी रह गई । जो पाचाल देश की राजकुमारी, ऐश्वर्य और वैभव में जीवन व्यतीत करने वाली पुष्पों से भी अधिक नाजुक, प्रेम और वात्सल्य के सरोवर में पनपी कमलनि दास दासियों से सेवित रानी द्रौपदी को अनायास ही ऐसी बात सुनने को मिली कि जिसकी स्वप्न में भी कल्पना न की

जा सकती थी, अतः उसे मूर्छा आने लगी, पर अपने को सम्भाल कर उसने कहा— “प्रातिकामी ! मैं यह क्या सुन रही हूँ। तुम गलत कह रहे हो, या मेरे कान गलत सुन रहे हैं।”

क्या रवि भूमि की धूलि से उग सकता है ? बाज पर लगाने के लिए क्या महाराज युधिष्ठिर के पास और कोई चीज नहीं थी ?”

प्रातिकामी ने बड़ी नम्रता से सम्झाते हुए कहा— “हा महारानी जी, महाराजाधिराज युधिष्ठिर के पास और कोई चीज नहीं रह गई थी ?”

“यह कैसे हुआ ?” द्रौपदी के नेत्रों में असीम आश्चर्य छा मार रहा था।

तब सारथी प्रातिकामी ने जुए के खेल का आरम्भ से लेकर अन्त तक का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सारी बातें सुन कर द्रौपदी अचेत सी रह गई। उसका कलेजा फटा सा जा रहा था, उसे सार पृथ्वी घूमती सी, सारी वस्तुएँ चक्कर लगाती सी प्रतीत हुई। पक्षत्रिय-नारी थी, अतः उसने अपने को शीघ्र ही सम्भाल लिया। क्रोध के प्रारे उसके नेत्र अंगारों की भाँति लाल हो गए उसने प्रातिकामी से कहा— “रथवान जा कर उन हारने वाले जुए के खिलाड़ों और धर्म विरुद्ध कार्य करने में लज्जा न अनुभव करने वाले से पूछ कि पहले वे अपने को हारे थे या मुझे ? भरी सभा में उन से यह प्रश्न पूछना और जो उत्तर वह दे उसे मुझ से आकर बताना, उस के बाद मैं जाऊंगी।”

प्रातिकामी गया और भरी सभा में युधिष्ठिर से प्रश्न किया। सुनते ही धर्मराज युधिष्ठिर अवाक रह गए। वे उस प्रश्न का गहराई को समझते थे। वे अपने को मन ही मन धिक्कारते, वे अतिरिक्त कुछ न कर सके, उन से कोई उत्तर देते न बना।

इस पर दुर्योधन बोला— “वह चुड़ेल वहीं बैठे बैठे प्रश्न कर रही है, अपनी वर्तमान दशा को भी उसने नहीं समझा, प्रातिकामी

उससे जाकर कहो, कि तुम स्वयं चल कर जो चाहे पूछ लो। कोई उसके बाप का नौकर नहीं है जो उसके आदेश मान कर किसी से प्रश्न पूछता फिरे— जाओ, उसे अभी यहाँ ले आओ”

प्रातिकामी तुरन्त रनवास की ओर चला गया, पर उसी समय विदुर जी बोले— “दुर्योधन ! इतनी नीचता पर न उतर कि लोग तुझ से घृणा करने लगेंगे। तू अगर इन्सान है तो इतना तो समझ कि द्रौपदी का भरी सभा में बुलाना बहुत ही घृणास्पद है। वह तेरे भाई की ही पत्नी है और पांचाल देश की राजकुमारी है।”

भीष्म पितामह भी चुप न रह सके, दुःखित व क्रुद्ध हो कर बोले—‘नीच दुर्योधन ! यदि तू नीचता की चरम सीमा को पहुँचना चाहता है, यदि तू नारी, जो सदा आदरणीय है और वह भी सती द्रौपदी जैसी नारी को भरी सभा में अपमानित करना चाहता है, तो तेरा पिता तो अन्धा है ही, हमारी भी आँखें फोड़ दे, हमारे कानों के परदे तोड़ डाल ताकि हम द्रौपदी को उन आँखों से अपमानित होते न देख सकें जिनसे हम ने उसे आदरणीय के रूप में देखा है, उन कानों से उसके करुण चीत्कार न सुन सकें जिन से हम ने उसका मधुर प्रणाम सुना है। दुष्ट मत भूल कि वह एक सन्नारी है जिसने कभी हमारे सामने अपनी आँखें ऊँची नहीं की।”

सभा में उपस्थित लोग चिल्ला उठे—“अनर्थ हो रहा है, पाप हो रहा है।”

परन्तु दुर्योधन नीचता पूर्ण ठहाका मार कर हसता रहा। उधर प्रातिकामी ने द्रौपदी से विनम्र शब्दों में कहा—“राजकुमारी ! नीच दुर्योधन ने आदेश दिया है कि आप स्वयं चल कर युधिष्ठिर से पूछ लें।”

शोकविह्वल द्रौपदी ने कहा—“नहीं, नहीं मैं सभा में नहीं जाऊँगी, यदि युधिष्ठिर उत्तर नहीं देते तो उपस्थित सज्जनो को मेरा प्रश्न सुनाओ, और जो उत्तर मिले आकर मुझे सुनाओ।”

प्रातिकामी पुनः सभा में आया और सभासदों को द्रौपदी

का प्रश्न सुनाया ।

यह सुनकर दुर्योधन चिल्ला उठा, और अपने भाई दुःशास से बोला—“दुःशासन ! यह नीच पाण्डवों से डरता प्रतीत हो है, तुम्हीं जाकर उस घमडी औरत को ले आओ । और य वह आने में अना कानी करे तो उसकी चोटी पकड़ कर य घसीट लाओ ।”

तब विवश हो कर धृतराष्ट्र ने कहा— दुर्योधन ! क्यों वृ वश को कलंकित करता है, अपनी मूर्खता से बाज आ ।”

पर दुर्योधन ने सुनी अन सुनी कर दी । दुरात्मा दुःशास के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी, खुशी खु वह द्रौपदी के रनवास की ओर चल दिया । शिष्टता को ताक प रख कर वह द्रौपदी के कमरे में घुस गया और निर्लज्जता पूर्व बोला—“सुन्दरी ! आओ, अब क्यों देर लगाती हो । हमने तु जीत लिया है, अब शरमाती क्यों हो । अरी अब तक पाच की थ अब सौ कौरवों की बन कर गुलछरें उड़ाना । यह परदा बरदा छो अब तो सभा में चलो, बड़े भैया तुम्हें बुलाते हैं, उनका दिल खु करो ।”

“देवर ! तुम कैसा उपहास कर रहे हो, मुझे सभा में जाना चाहते हो । इस में तुम्हें लज्जा न आयेगी ।” द्रौपदी बोली दुःशासन को क्रोध चढ़ गया, बोला— “देवर, देवर कह कर ह अपमानित मत करो । कौन देवर किसकी भावी । अब तो तु हमारी दासी हो । इतनी ही लज्जावती थी तो ऐसे मूर्खों के घ में क्यों आई थी ;

“दुःशासन ! जरा होश सम्भाल कर बात कर ।” आवेश आकर द्रौपदी बोली ।

“चलती है या नहीं, या बताऊ होश की बात ? मैं नर से बात कर रहा हू तो तू सर पर चढ़ती जाती है ।”—चिल्ला क दुःशासन बोला और लपक कर हाथ पकड़ने की चेष्टा करते हु

कहने लगा—“तू ऐसे नहीं मानेगी, पैरो के बल नहीं सर के बल जायेगी।”

द्रौपदी तीर की चोट खाकर व्याकुल हरिणी की भाँति आर्तनाद करती हुई शोकातुर हो अन्त पुर में भाग चली। परन्तु द्रु शासन ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। दौड़कर उसे पकड़ लिया। द्रौपदी ने दीनता पूर्वक कहा—“आज मैं रजस्वला हूँ। एक ही साड़ी पहन रखी है, मुझे सभा में न ले चलो।”

किन्तु दुरात्मा द्रु शासन न माना उसने कहा “द्रौपदी ! यह तो और भी अच्छी बात है। आज तुम्हें अन्धे के पुत्रों की शक्ति का भान हो जायेगा। हमारी दासी है तू। तेरे नखरे नहीं चल सकते।”, द्रौपदी ने अपने आप को छुड़ाना चाहा, पर द्रु शासन कुत्ते की भाँति उस से चिपटा था, उसने उसके बाल बखेर डाले, आभूषण तोड़ फोड़ डाले, और उसी अस्त व्यस्त दशा में उस के बाल पकड़ कर घसीटता हुआ सभा की ओर ले जाने लगा।

घृतराष्ट्र के लड़के द्रु शासन के साथ मिल कर भारी पाप कर्म करने पर उतारू हो गए। पर द्रौपदी ने अपना क्रोध पी लिया।

सभा में पहुँच कर द्रु शासन ने उसे फर्श पर दे पटका। सती द्रौपदी सभा में उपस्थित वृद्धों को लक्ष्य करके बोली— “कपटजाल में फसा कर महाराज युधिष्ठिर को पापियो ने हस्तिनापुर बुलाया और मजे हुए खिलाड़ी और धोखे बाज़ लोगो ने उन्हें कुचक्र रचा कर अपने जाल में फंसा लिया। धर्म के प्रतिकूल यह दुर्व्यसन होता रहा, पाप व कपट का षडयन्त्र चलता रहा, पर आप सभी मौन रहे, इस पाप लीला को देखते रहे। आप लोग तो न्यायवंत, विद्यावान, धर्म रक्षक और बुद्धिमान कहलाते हैं, आप राज वंश की नाक हैं। क्या यही है आप का न्याय ? यही है आप का धर्म यही है आप की बुद्धिमत्ता। पापियो ने युधिष्ठिर को अपने जाल में फसा कर मुझे भी ढाँव पर लगवा लिया, आप सब लोगो ने इस अधर्म अन्याय, अत्याचार और कपट जाल को कैसे स्वीकार कर लिया, उस समय कहा गई थी आपकी बुद्धिमत्ता, उस समय आप का न्याय कहा जा कर सो गया था। आप की आँखों की लज्जा धर्मबुद्धि कहा चली गई थी—? क्या इसी विस्ते पर न्यायाधीश बनते

हो-? क्या यही है कुरुवश की नीति? क्या आप भी पापी के सहयोगी नहीं हैं? जो पहले ही अपने आप को पराधीन कर चुका हो, जिस की स्वतन्त्रता छिन गई, उसे एक नारी की वाजी लगाने का क्या अधिकार था? मुझे युधिष्ठिर को दाव पर लगाने का अधिकार किस ने दिया है यह, कहां का न्याय है कि कोई व्यक्ति पराधीन हो गया तो उसकी पत्नी भी पराधीन कर दी जाय? जिस अधर्म में मेरी कभी सम्मति नहीं हुई उस में मुझे हारने या जीतने का किसी को अधिकार नहीं है। मेरा अपना अस्तित्व है। मैं धातु नहीं हूं, मैं मानव हूं। मुझे अपने जीवन के सम्बन्ध में निर्णय करने का स्वयं अधिकार है। आपजो कुरुकुल के वृद्ध यहां बैठे हैं, आप की जवान को क्या लकवा मार गया है। कहां है आपकी वीरता कहां है आप का न्याय? वोलो क्या नारी का अपमान करना ही आप के कुल की परम्परा है। आप के भी बहू बेटियां हैं, आप भी किसी नारी की कोख से जन्म ले कर ही इतने बड़े हुए, क्या नारी को इस प्रकार अपमानित करते देखते समय आप को लज्जा नहीं आती? वोलो क्या है मेरे प्रश्नों का उत्तर। आज एक नारी आप से पूछती है, कि इस अन्याय के सम्बन्ध में आप का क्या विचार है? क्या यह जो कुछ हो रहा है, धर्मानुकूल है!”

इतना कह कर द्रौपदी मौन हो गई, उसने एक एक करके सभी के मुख को देखा और फिर पाण्डवों की ओर दृष्टि डाल कर उन्हें लक्ष्य करके सिंहनी की भांति गर्जना की— इसी विरते पर धर्मराज कहलाते हो, इसी विरते पर रण वीर, योद्धा, कर्मवीर, महाबली और गुणवत कहलाते हो? मैं युधिष्ठिर महाराज आप से पूछती हूं, कहां है आप का धर्म? कहां है आप का न्याय? किसने आप को मेरे भाग्य का निर्णय करने का अधिकार दिया था? मुझे अपने पाप की भट्टी में धकेलने का आपको क्या अधिकार था? यदि कौरव कुल ने लज्जा, मानवता, धर्म और न्याय को स्वार्थ एव नीचता की भट्टी में फेक दिया, यदि इन वृद्ध सज्जनों ने अपने पापी बेटों के हाथों अपने को गिरवी रख दिया है, यदि इन की बुद्धि को लकवा मार गया, तो आप तो धर्मराज हैं, आप क्यों इनके पडयन्त्र में फंसे चले गए?

फिर अर्जुन को लक्ष्य करके बोली—“मेरे सुहाग के स्वामी!

क्या इसी बलवृत्ते पर धनुर्धारी बने थे। आप से तो वह दरिद्री भी अच्छे जो जीते जी अपना सहर्षमिणी की ओर किसी को आँख उठा कर भी नहीं देखने देते। आप की भुजाओं में बहते गर्म लहू को आज क्या हुआ, आज जब भी सभा में मुझे अपमानित किया जा रहा है, आप की विद्या, आप का तेज, आपकी वीरता कहा जा कर सो गई? पर आप तो दुर्योधन के दास हैं, अब काहे को बोलेगे? इसी वीरता पर आप मुझे पांचाल देश से ब्याह कर लाये थे ?”

द्रौपदी के वाक्यों से व्याकुल अर्जुन अपनी गरदन झुकाए खड़ा रहा। फिर वह सन्नारी भीम, नकुल और सहदेव को सम्बोधित करके बोली—“मैं समझती थी कि पांडववीर हैं, उन की भुजाओं में जान है, वे धर्मवीर हैं धीर और गुणवान हैं। पर आज जब मुर्दों की भाँति गरदन लटकाए खड़े अपने सामने मुझको अपमानित होते देख रहे हैं, तो मुझे लगता है कि यह सब दिखाने भर के हैं, वरना इनका विवेक तो कब का मर चुका है। कहो, क्या पाँडु नरेश की सन्तान आप ही हैं?” डूब मरो-चुल्लू भर पानी में, तुम्हारे रहते आज मैं अकेली निस्सहाए अबला हो गई हूँ। यह दुष्ट मुझे भरी सभा में लाकर रक्त के आँसू रुला रहे हैं, और आप लोग मौन खड़े हैं, मिट्टी के बुतों की तरह?”

पांचाल राज की कन्या को तो आर्त्त स्वर में पुकारते और असहाय सी विकल देख कर भीम सेन सेन रहा गया, वह अपनी परिस्थिति को समझता था, इस लिए कड़ककर बोला—“भाई साहब! मुझे आज्ञा दीजिए कि जिन हाथों ने सती द्रौपदी के केशों को पकड़कर उसे घसीट कर यहाँ लाया है, अभी ही उसके हाथ अपनी गदा से तोड़ डालूँ। इन दुष्टों का क्षण भर में काम तमाम कर दूँ।”

“चुप रह ओ हमारे दास, मुझे मजबूर मत कर कि मैं अभी ही तेरी इस कैची की भाँति चलती जवान को भरी सभा में कटवा दूँ।” क्रोध से जलता हुआ दुर्योधन गुराया।

अर्जुन ने उसे शान्त करते हुए कहा—“भैया भीम! तुम चुप रहो। महाराज युधिष्ठिर की भूल के परिणाम को

मन मसोस कर सहलो।” तब भीम ने युधिष्ठिर को लक्ष्य करके कड़क कर कहा—“भाई साहब ! दरिद्र, अज्ञानी, अधर्मी और गवार जुआरी भी जुए में हार जाते हैं, पर अपनी रखैल स्त्री की भी बाजी नहीं लगाते। किन्तु आप अन्धे हो कर द्रुपद की कन्या को हार बैठे आप ने ही यह भूलकर के सती द्रौपदी का धूर्तों के हाथों अपमान कराया। इस भारी अन्याय को मैं नहीं देख सकता। आप ही के कारण यह घोर पाप हुआ है। भैया सहदेव ! कही से जलती हुई आग तो लेआ। जिन हाथों से महाराज युधिष्ठिर ने जुआ खेला, और जिन हाथों के कारण द्रौपदी भी का अपमान हुआ, उन्हीं को मैं जला डालू।”

भीम सेन को आपे से बाहर देखकर अर्जुन ने उसे रोका और बोला—“भैया संवधान ! युधिष्ठिर भाई के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात मुह से न निकालो। क्यों कि यदि हम आपस में ही ऐसी बातें करने लगे तो शत्रुओं की पूरी तरह से विजय हो जायेगी। यह हमारे पूर्व कर्मों का ही फल है, जो हमारी बुद्धि मारी गई और हम स्वयमेव ही अधर्म की ओर चले गए। शान्त हो जाओ और जो होता है उसे सहन करो।”

अर्जुन की बात सुन कर भीमसेन शान्त हो गया, अपने को सम्भाल लिया और क्रोध को पो गया।

द्रौपदी की ऐसी दीन अवस्था को देख कर दुर्योधन के एक भाई विकर्ण को बहुत ही दुःख हुआ, उससे न रहा गया खडा हो गया और बोला— उपस्थित क्षत्रिय वीरों, वृद्धजनों और दर्शकों। मैं नहीं चाहता था कि आपके सामने कुछ कहूँ। जिस सभा में कुल के वृद्ध मुलझे हुए, बुद्धिमान और अनुभवी लोग तथा वे लोग जो न्याय के रक्षक हैं, विराजमान हो तो कम आयु के लोगों को बोलना नहीं चाहिए, परन्तु जब न्यायाधीश ही चुप चाप तमाशा देखने लगे, जब कि अन्याय अपना नग्न ताण्डव करता हो, पर वृद्ध जनों के कान पर जू न रंगती हो, जब कि किसी सन्नारी के साथ अत्याचार हो रहा हो और विद्यावानों तथा न्यायकर्त्ताओं के मुह पर ताले पड़ गए हो, तो छोटे को जितकी बुद्धि सही सलामत है, जिन का विवेक जीवित है, जो न्याय प्रिय है, उन्हें विवश हो कर

बोलना ही पड़ता है। इसलिए मैं पूछता हूँ, कि अपने को न्यायाधीश कहने वाले, उच्चासनों पर विराजमान लोग इस अत्याचार लीला पर क्यों चुप्पी साधे बैठे हैं। यह स्पष्ट है कि महाराजा-धिराज युधिष्ठिर को कपट से बुला कर जुआ खेलने पर मजबूर किया गया, इकार करते मर ताने मारे गए और न जाने पासे पर क्या जादू पड़ा था कि युधिष्ठिर को कुछ ही समय में महाराजा-धिराज से रक बना दिया गया, रक भी नहीं, बल्कि दास बना लिया गया। मेरी आपत्ति एक तो यह है कि जब युधिष्ठिर पहले स्वयं को हार चुके तो उन्हें द्रौपदी को दाव पर लगाने का भला क्या अधिकार था ?

दूसरी यह कि क्षत्रियो ने चीसर खेलने के जो नियम बना रखे हैं उनके अनुसार विरोधी खिलाड़ी स्वयं कह कर किसी वस्तु की बाजी नहीं लगवा सकता। पर शकुनि मामा ने महाराज युधिष्ठिर को द्रौपदी का नाम ले कर उसे बाजी पर लगाने का प्रस्ताव ही नहीं किया, बल्कि उकसाया भी।

तीसरी बात यह कि द्रौपदी, पशु, पक्षी नहीं है, वह मानव है, बिना उसकी मर्जी के, और जब कि वह जुआ खेलना पाप समझती है, उसकी कोई सम्मति इस खेल में नहीं थी, तो द्रौपदी को इस अधर्म में क्यों धकेला जाये ? इस लिए मैं सारा खेल ही नियम विरुद्ध ठहराता हूँ। मेरी राय में द्रौपदी नियम पूर्वक नहीं जीती गई। इस लिए जो कुछ हो रहा है वह भयंकर अन्याय है, जिस का विरोध प्रत्येक न्याय प्रिय व्यक्ति को करना चाहिए।”

युवक विकर्ण के इस तर्क सगत वक्तव्य से, अब तक जिन के मस्तिष्क पर भ्रम का परदा पड़ा था, उठ गया और लोग चिल्ला उठे—“ठीक है विकर्ण ठीक कहता है। यह अन्याय हो रहा है। यह नियम विरुद्ध है। धर्म की रक्षा हो गई। धर्म की रक्षा हो गई।”

विकर्ण के वक्तव्य से दुर्योधन के पक्ष पातियो में खल बली मच गई। उस समय कर्ण, अपने मित्र दुर्योधन के हाथ पांव फूलते देख कर उठ खड़ा हुआ और गरज कर बोला “विकर्ण ! तुम निरे मूर्ख हो। तुम सभा में बैठने के भी योग्य नहीं हो। तुम्हें शिष्टाचार भी नहीं आता। जिस सभा में कुल वृद्धजन उपस्थित हो, छोटी को नहीं बोलना चाहिए। फिर तुम बिना आज्ञा के कैसे बोलने लगे

तुम मे न बुद्धि है और न विवेक ही, और खड़े हो गए तर्क वितर्क करने को । अरे मूर्ख, जब युधिष्ठिर ने पहली बाजी में अपनी सारी सम्पत्ति हार दी, तो फिर उसके पास बचा ही क्या ? द्रौपदी तो स्वयमेव ही हारी गई । युधिष्ठिर के शब्द नहीं सुने जो वह अपने भाईयो की बाजी लगाते हुए कह रहे थे । वह अपने भ्राताओं आदि को अपनी ही सम्पत्ति मानते हैं । इस लिए तुम्हारी शंकाएं पूरी तरह बकवास हैं, उन में कोई तथ्य नहीं । मेरी समझ में तो यह नहीं आ रहा कि अभी तक पाण्डव अपने राज्योचित वस्त्रों में क्यों है ? जब सारी सम्पत्ति हार गए तो पाण्डवों और द्रौपदी के सारे कपड़े तक भी दुर्योधन के हो गए । यह तो दुर्योधन का भ्रातृ प्रेम समझो कि वह इन मूल्यवान कपड़ों को पहनने की पाण्डवों और द्रौपदी को अभी तक छूट दे रहे हैं ।”

कर्ण की कठोर बातों से पाण्डवों पर तो वज्र टूट पड़ा । उन्होंने उसी समय बहुमूल्य वस्त्र उतार दिए । दुर्योधन को तो एक नया उत्पात सूझ गया, जो कदाचित्त अभी तक उस के मस्तिष्क में न आया था, उस ने दुःशासन को लक्ष्य करते हुए कहा —“यह द्रौपदी कैसे अभी तक साड़ी पहने खड़ी है । दुःशासन अभी ही, इसी समय इसकी साड़ी उतार लो ।”

सभा में उपस्थित लोग दुर्योधन के इस आदेश को सुन कर कांप उठे । न्याय प्रिय लोगों के नेत्रों से अश्रुधारा फूट पड़ी । वृद्ध जनो ने अपना मुह ढांप लिया । चारों ओर श्मशान की सी शांति छा गई ।

दुःशासन आगे बढ़ा और वह दुरात्मा द्रौपदी की साड़ी खींचने लगा । अब बेचारी द्रौपदी क्या करती । उसने मनुष्यों की आशा त्याग कर उस समय शासन देव को याद किया, जिन प्रभु की रक्षा लगाई, उसने आर्त स्वर में शील सहायक देव की टेर लगाई—“प्रभु ! अब तुम्हीं हो मुझ अवला की लाज के रखवारे । तुम्हारी शरण आती हूं । हे शासन देव ! यदि मैं वास्तव में पति व्रता और सती हू तो आओ मेरी लाज बचाओ । मेरे पति, और मेरे सभी सहायक इस समय मेरा साथ छोड़ चुके हैं, पर आप तो मेरा साथ न छोड़ना । लो मैं आप ही की शरण आती हूं ।”

द्रौपदी कहती कहती अचेत हो गई । उस समय एक अद्भुत

चमत्कार दिखाई दिया। सभासद आँखें फाड़ फाड़ कर देख रहे थे। दुःशासन द्रौपदी की साड़ी पकड़ कर खींचने लगा, ज्यों ज्यों वह खींचता जाता, त्यों त्यों साड़ी बढ़ती जाती। यह चमत्कार देख कर लोगो में कपकपी सी फैल गई।

निलंजज दुर्योधन भी पहले तो आखें फाड़ फाड़ कर देखता रहा, फिर बोला—“दुःशासन ! देखी द्रौपदी की करतूत, न जाने कितनी साड़ियां पहन कर आई है। ज़रा जल्दी जल्दी खींच ।”

दुःशासन ने तेजी से खींचना आरम्भ किया। पर और अलौकिक शोभा वाली साड़ी का ढेर लग गया। आखिर दुःशासन खींचता खींचता थक गया, सारा शरीर पसीने से तर हो गया, अन्त में उसके हाथों में खींचने की शक्ति नहीं रही और वह हाँपता हुआ अलग हट कर बैठ गया।

इतने में भीम सेन उठा, उसके होंट मारे क्रोध के फड़क रहे थे मुख मण्डल तम तमा रहा था, नेत्रों से ज्वाला निकल रही थी। ऊँचे स्वर में उसने प्रतिज्ञा की— “उपस्थित सज्जनो ! मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि जब तक भरत वंश पर बढ़ा लगाने वाले और मानवता को कलंकित करने वाले इस नीच दुःशासन की इन भुजाओं को न तोड़ दूँगा, जिनसे इसने सती द्रौपदी को अपमानित किया है, तब तक इस शरीर का त्याग नहीं करूँगा। जब तक रणभूमि में इस की छाती नहीं तोड़ दूँगा, तब तक चैन नहीं लूँगा।” भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुन कर सभा सदस्य थर्रा गए।

अचानक उसी समय सियार बोलने लगे, गधों के रोकने और मासाहारी चील कौवों के चीखने की आवाज़ सुनाई दी। इस प्रकार की मनहूस आवाज़ें कितनी ही देरी तक आती रही।

इन लक्षणों से धृतराष्ट्र समझ गए कि जो कुछ हुआ है, वह उस के पुत्रों के लिए बहुत ही दुखदायी होगा। सम्भव है उनके कुल का विनाश हो जाये। इस लिए उन्होने शीघ्र ही इस घटना पर पानी फेरने का उपाय करना आवश्यक समझा। इन्होंने द्रौपदी को अपने पास बुलाया। उसे समझाया, प्रेम पूर्वक उसे सान्त्वना दी। और जो हुआ उसे भूल जाने की प्रेरणा दी।

फिर युधिष्ठिर को समझाते हुए बोले— 'बेटा युधिष्ठिर ! तुम तो अजातशत्रु हो। उदार हृदय भी हो। मैं जानता हूँ कि तुम इतने विशाल हृदय हो कि अपने शत्रुओं को क्षमा दान कर सकते हो। दुर्योधन से तुम्हें कोई वैर नहीं है। तुमने उसे सदा अपना भाई समझा है। यह कुमित्रों के जाल में फस गया है। इसे अपने और पराये की पहचान नहीं है। इसे इस कुचात के लिए क्षमा करदो। और जो कुछ हुआ उसे अपने दिल से निकाल दो।”

उन्होंने दुर्योधन को अपने पास बुलाया और कहा— 'बेटा ! तुम्हारी भूले हमारे कुल के नाश का कारण बन जायेगी। तुम जिस रास्ते पर चल रहे हो, वह नाश का है, कलंक और पाप का है। अब भी समय है, सम्भल जाओ। और अपनी भूलों को सुधारने का प्रयत्न करो। इस समय जो हुआ वह घोर अनर्थ है। वह हमारे कुल के मस्तक का काला दाग बन जायेगा। तुम युधिष्ठिर की जीती सम्पत्ति वापिस करदो और उन्हें पहले के अनुसार राज्य करने दो, जिस आदर सत्कार से उन्हें बुलाया था, उसी आदर सत्कार से वापिस भेज दो। तुम्हारा और कुल का हिस्सा इसी बात में है। यदि तुम ने ऐसा न किया तो याद रखो तुम्हारा नाश अवश्यमभावी है। लक्षण बता रहे हैं कि अपनी वर-वादी के बीज तुम ने वो दिए हैं। चलो अब भी समय है। इन सब बातों को इस एक उपाय से धो सकते हो। मेरी बात मान कर युधिष्ठिर की सम्पत्ति वापिस करदो।”

दुर्योधन के मन में भी यह बात बैठ गई कि कुछ भूल हो गई है। लक्षण शुभ नहीं है। पापी कायर भी होता है। इसी कारण दुर्योधन उस समय मन ही मन ताप रहा था, पर वह सोचने लगा कि यदि युधिष्ठिर की सम्पत्ति उसे वापिस देदी, तो पाण्डव कभी इस घटना को न भूलेंगे और किसी न किसी समय अवसर पाकर अवश्य ही बदला लेंगे। सांप चोट खाकर बच निकलता है, तो वह अवश्य ही चोट करने वाले को डसता है। इसी प्रकार पाण्डव इन्द्रप्रस्थ पहुँचते ही अपने दल बल के साथ, मुष्क पर आक्रमण कर देंगे और भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेगा। इस

लिए भयभीत होते हुए वह बोला—“पिता जी ! जो सम्पत्ति युधिष्ठिर हार चुके उसे वापिस कैसे किया जा सकता है। हम ने उन से यह सम्पत्ति छीनी थोड़े ही है और न कोई अन्याय कर के ही ली है। नियम पूर्वक चौसर के खेल में जीती है। इस लिए अब युधिष्ठिर का उस पर कोई अधिकार नहीं। न उसे वापिस लेने का साहस ही करना चाहिए। हम ने बल पूर्वक तो यह सब कुछ दाव पर लगवाया नहीं। फिर भी आप की आज्ञा को मैं टाल नहीं सकता। मैं इतना कर सकता हूँ कि युधिष्ठिर मेरी एक शर्त मान ले, तो उन्हें उसका राज पाट वापिस मिल सकता है।”

“बोलो क्या शर्त है ?”

“शर्त यह है कि पाण्डव द्रौपदी सहित बारह वर्ष तक वनों में जाकर रहे और तेरहवें वर्ष में अज्ञात वास करे। यदि अज्ञात वास के समय में वे कही पहचान लिए तो फिर उन्हें बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास में व्यतीत करना होगा। यदि वे नहीं पहचाने गए तो तेरह वर्ष उपरान्त आकर वे अपना राज पाट वापिस लेने के अधिकारी होंगे। यह शर्त यदि पाण्डव मानें तो मैं भाई होने के नाते उन के साथ यह दया कर सकता हूँ।”—

“हम किसी की दया के मोहताज नहीं हैं। हमारी भुजाओं में शक्ति होगी तो हम स्वयं अपना राज्य वापिस ले लेंगे।”—

भीमसेन ने गर्जना की।

बात बिगड़ती देख कर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और बहुत ही विनम्र शब्दों में प्रेम पूर्वक उन्हें इस शर्त को मान लेने पर विवश किया, कभी पाण्डु का वास्ता दिया, कभी उनके दया भाव को याद दिलाया, कभी उन की सहनशीलता और भ्रातृ प्रेम को जागृत किया, तात्पर्य यह है कि हर प्रकार से उन्हें मजबूर कर दिया और अन्त में उन से शर्त मनवा ही ली।

बात तय हो गई और पाण्डव माता कुन्ती से विदा लेकर परिवार सहित वनों को चल पड़े।

द्रौपदी ने अपने बिखरे हुए केशों से अपना सारा मुह ढक लिया है और आसू बहाती हुई युधिष्ठिर का अनुसरण कर रही है।”

यह सुन कर धृतराष्ट्र की आशका और चिन्ता पहले से भी अधिक प्रबल हो उठी। उन्होंने उत्कठा से पूछा—“और नगर वासी क्या कह रहे हैं?”

“महाराज ! लोगो के नेत्रों से आसू और कण्ठ से कौरवों के लिए धिक्कार के शब्द निकले हैं। कह रहे हैं कि धृतराष्ट्र ने अपने बेटों को राज्य देने के लिए पाण्डवों को निकाल दिया। कुछ लोग कह रहे हैं कि कुरुवंश के वृद्धों को धिक्कार है जिन्होंने दुर्योधन और दुःशासन के कहने से यह अत्याचार किया। इसी प्रकार कोई कुछ और कोई कुछ कर रहा है देखो नीले आकाश में बिजली कौंध रही है। और भी कितने ही अनिष्टकारी लक्षण हो रहे हैं।”—

विदुर जी ने कहा।

विदुर और धृतराष्ट्र की यह बातें हो रही थी कि कहीं से नारद जी आ निकले। उन्होंने धृतराष्ट्र को बताया कि दुर्योधन के इस पाप के कारण चौदह वर्ष बाद कौरवों का नाश हो जायेगा। भविष्य के जानकारों का यही विचार है। यह भविष्य वाणी सुना कर नारद जी तो चले गए और धृतराष्ट्र और उसके साथी नारद की यह भविष्यवाणी सुन कर भयभीत हो आचार्य द्रोण के पास गए और उनके आगे गिड़ गिड़ाते हुए बोले—“आचार्य जी ! जब चारों ओर से हम पर विपत्तियाँ टूट पड़ने की आशका है, तब हम आप की शरण आये हैं। यह सारा राज्य आप का है, हम आप ही की शरण हैं, आप विद्यावान, दयावान और बुद्धिमान हैं, आप हमें शरण लीजिए। आप कभी हमारा साथ न छोड़ें।”

इस पर दोणाचार्य बोले—“पाण्डव अजेय हैं, वह न्यायवत एवं गुणवान हैं, यह जानते हुए भी चूँकि तुम लोग मेरी शरण आ गए हो, इसलिए मैं तुम्हें ठुकरा नहीं सकता। जहाँ तक मुझ से चैन पड़ेगा मैं तुम्हारी प्रेम पूर्वक हृदय से सहायता करूँगा। परन्तु होनी को कौन टाल सकता है। तेरह वर्ष उपरान्त पाण्डव बड़े

क्रोध से लौटेंगे। उन का स्वसुर द्रुपद मेरा शत्रु है। अपने अपमान का बदला लेने के लिए उसने तपस्या की थी जिससे धृष्टद्युम्न प्राप्त हुआ। मैं जानता हूँ वह मेरे प्राण हरने वाला है। उसके कारण मेरा नाश होना है। और अब सारे लक्षण बता रहे हैं कि मैं और तुम एक ही नौका में सवार हो गए हैं। यह नौका डूबनी अवश्य है। इस लिए जो पुण्य कर्म करने हो, वह इन तेरह वर्ष में ही कर लो। विलम्ब न करो, धर्म पथ पर बढ़ो। वरना मनुष्य जीवन बेकार हो जायेगा। दुर्योधन ! मेरी बात मान लो युधिष्ठिर से सन्धि कर लो। इसी में तुम्हारा भला है। मैंने अपनी राय दे दी, अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।”

द्रोणाचार्य को दुर्योधन अपने पक्ष में करने के लिए ही उनके पास गया था, पर वह कोई श्रेष्ठ राय मानने को तैयार नहीं था, उस ने उनकी बातें टाल दी।

× × × × × × ×

एक दिन संजय ने धृतराष्ट्र से पूछा—“आप चिन्तित दिखाई देते हैं, क्या कारण है ?”

पाण्डवों से बैर हो जाने के बाद मैं निश्चिन्त रह ही कैसे सकता हूँ ?” अन्धे राजा ने उत्तर दिया।

संजय बोला—“आप सच कह रहे हैं, जिसका नाश होता होता है उसकी बुद्धि फिर जाती है। आप ने लड़कों के कहने में आकर अधर्म को अपनी नीति का आधार बनाया। किसी के पापों का फल देने के लिए प्रकृति किसी के सिर पर कुल्हाड़ा थोड़े ही चलाती है, उसके पाप ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं, जिस से वह उल्टे रास्ते चल कर स्वयं गड्ढे में गिर जाता है।”

धृतराष्ट्र व्याकुल हो कर कहने लगे—“दुख तो इस बात का है कि मैंने विदुर की राय भी नहीं मानी। जब कि मैं सदा ही बुद्धिमान की बात मानता था, उसने जो राय दी वह धर्म और नीति के अनुकूल थी। किन्तु मैं अपने नासमझ बेटों की बात

मान बैठा । मुझे धोखा हो गया, मैं भटक गया ।”

‘ एक ओर धृतराष्ट्र विदुर जी की राय को न मानने पर दुखी हो रहे थे, दूसरी ओर देखिये वे विदुर जी के साथ क्या करते हैं ?—यह उदाहरण इस बात का कि जब नाश के दिन निकट आते हैं तो उल्टी सूझा करती है ।

“विनाश काले विप्रीत बुद्धि

विदुर जी बार बार आग्रह करते कि पाण्डवों के साथ सन्धि करलो, वे कहते—“आप के बेटो ने घोर पाप किया है, ऐसा पाप जिसका उदाहरण इतिहास में कहीं नहीं मिलता । उन के पाप से हमारे कुल का सर्व नाश हो जायेगा । आप अब भी सम्भलिए, अपने मूर्ख बेटो को सुपथ पर लाइये । पाण्डवों को वन से वापिस बुला लीजिए, उनका राज्य उन्हें दे दीजिए । यह सब करना आप ही का कर्तव्य है ।” विदुर जी प्रायः ऐसे ही उपदेश धृतराष्ट्र को दिया करते ।

विदुर जी की बुद्धिमत्ता का उन पर भारी प्रभाव था, अतः धृतराष्ट्र उनकी बातों को शुरु शुरु में सुन लिया करते थे । परन्तु बार बार विदुर जी की यह बातें सुनकर धृतराष्ट्र ऊब उठे ।

एक दिन विदुर जी ने फिर वही बात छेड़ी तो धृतराष्ट्र भुझला कर बोले—“विदुर ! तुम हमेशा पाण्डवों का पक्ष लेते हो और मेरे पुत्रों के विरुद्ध बातें करते रहते हो । इससे प्रकट होता है कि तुम हमारा भला नहीं चाहते, नहीं तो बार बार मुझे दुर्योधन का साथ छोड़ने को क्यों उकसाते । दुर्योधन मेरे कनेजे का टुकड़ा है, चाहे वह कुछ करे मैं उसे नहीं छोड़ सकता । तुम्हारी इन बातों को सुनते सुनते मेरे कान पक गए हैं । तुम्हारी बातें न न्यायोचित हैं और न मनुष्य स्वभाव के अनुकूल ही । यदि हम तुम्हें अन्यायी और पाण्डव पुण्यत्मा प्रतीत होते हैं, तो तुम हमारे पास क्यों हो, पाण्डवों के साथ ही वन में क्यों नहीं चले जाते ?”

धृतराष्ट्र क्रोध से ऐसे कह कर बिना विदुर का उत्तर सुने

ही अतःपुर मे चले गए ।

विदुर ने मन में कहा कि अब इस वश का नाश निश्चित है। उन्होंने तुरन्त अपना रथ जुतवाया और उस पुर चढ़ कर जंगल में उस ओर तेजी से चल पड़े जहां पाण्डव-वनवास के दिन बिता रहे थे।

विदुर जी के चले जाने के बाद धृतराष्ट्र को अपनी भूल सुभाई दी। वह सोचने लगे विदुर जी को भगा कर मैंने अच्छा नहीं किया। इससे तो पाण्डवों की शक्ति ही बढ़ेगी। अतः उन्होंने संजय को बुलाकर उसे विदुर जी को समझा बुझा कर वापिस ले आने को भेजा। संजय ने वन में जाकर विदुर जी को बहुत समझाया और धृतराष्ट्र की ओर से क्षमा मांगी और विदुर जी को वापिस हस्तिना पुर ले आया।

× × × ×

एक बार महर्षि मैत्रेय धृतराष्ट्र के महल में आये। धृतराष्ट्र ने उनका बड़ा सत्कार किया, फिर हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक कहा—“मुनिवर आप ने कुरु जंगल के वन में मेरे भतीजों को देखा होगा वे कुशल से तो हैं? क्या वे वन में ही रहना चाहते हैं? हमारे कुल में उन के वनवास से परस्पर मित्र भाव कम तो नहीं हो जायेगा?”

महर्षि बोले—“राजन्! काम्पक वन में अनायास ही पाण्डवों से भेंट होगई - उन पर जो वीती है, वो मुझे ज्ञात है। आप के और भीष्म जी के रहते हुए यह नहीं होना चाहिए था।”

उस समय दुर्योधन सभा में उपस्थित था, मुनिवर ने उसे लक्ष्य करके कहा—“राजकुमार! तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ कि पाण्डवों को छोड़ा देने का विचार छोड़ दो। पाप का परिणाम सदा दुःखदायी होता है। जो अन्याय तुम उनके साथ कर रहे हो वास्तव में तुम अपनी आत्मा के साथ ही वह कर रहे हो। अब भी अवर्म का गस्ता छोड़ कर सुपथ पर आजाओ। मैत्रि भाव और प्रेम पूर्वक रहो।”

हे राजकुमार शात्रों में कहा है.—

तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्यं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावे अव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिया वेयव्वं ति मन्नसि
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघेत्तव्वं ति मन्नसि
एवं तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्वेयव्वं ति मन्नसि ॥

अर्थात् जब तुम किसी को हनन, आज्ञापन, परिताप, परिग्रह, एवं विनाश योग्य समझते हो तो यह विचार करो कि वह तुम ही हो। उसकी आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक सी ही है। जैसे तुम्हें हननादि अप्रिय है, और तुम उससे बचना चाहते हो, उसी प्रकार उसकी आत्मा को भी है।

मुनिवर ने मधुर वाणो में दुर्योधन को समझाया पर जिद्दी दुर्योधन ने उनकी ओर मुह भी नहीं किया, कुछ बोला भी नहीं, बल्कि अपनी जाघ पर हाथ ठोकता रहा। और पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदता मुस्कराता रहा।

दुर्योधन की इस ठिठार्ई से मुनिवर को बड़ा खेद हुआ। धृतराष्ट्र ने हाथ जोड़ कर पूछा कि “भगवन ! आप दुर्योधन के भविष्य के सम्बन्ध में तो कुछ बताइये।”

मुनिवर बोले—देवों ने सर्वज्ञ देव से पूछकर जो बताया है, वह मैं कह सकता हूं, वह यह है कि दुर्योधन इस समय जिस जांघ को ठोक रहा है, युद्ध में भीम अपनी गदा से तोड़ेगा। और इसी से इसकी मृत्यु होगी।



* नवम परिच्छेद *

श्री कृष्ण की प्रतिज्ञा

जब श्री कृष्ण को हस्तिना पुर में हुई घटना की सूचना मिली और उन्हें ज्ञात हुआ कि पाण्डव सपरिवार बनो में चले गए हैं, तो वे तुरन्त पाण्डवों से मिलने के लिए चल पड़े। दूमरी ओर घृष्ट द्युम्न भी पाँचाल देश से कुरु जंगल के बनो की ओर चला।

श्री कृष्ण के साथ राजा कैकेय, भोज और वृष्टि जीत के नेता आदि भी थे। इन सभी का पाण्डवों के साथ बहुत स्नेह था और उन्हें बड़ी श्रद्धा के साथ देखते थे। अर्जुन के मित्र विद्याधर खेचर भी उनसे मिलने के लिए चले। इस प्रकार क्षत्रिय राजाओं का एक बड़ा दल और अनेक विद्याधर आदि पाण्डवों के आश्रम में पहुँचे।

पाण्डव बड़े हर्षचित्त होकर सभी से मिले। दुर्योधन और उसके साथियों की करतूतों का पूरा हाल जब सभी ने सुना तो सभी की खेद हुआ। सभी राजाओं ने एक स्वर से धृतराष्ट्र और उसके बेटों की भर्त्सना की। कितने ही राजा एक स्वर से बोले— “दुराचारी कौरवों का विनाश हम सबकी खड्ग से होना अवश्यमभावी है। हम इस अन्याय का बदला रण भूमि

मे लगे । उन के रक्त से हम पृथ्वी की प्यास बुझावेगे ।”

आगन्तुक राजा जब अपने अपने मन की कह चुके, तो द्रौपदी श्री कृष्ण से मिली । श्री कृष्ण को अपने सामने देखते ही उसकी आँखों से सावन भादों की झड़ी लग गई । अवरुद्ध कण्ठ बड़ी कठनाई से वह बोली—“मधु सूदन ! मैंने कौरवों के हाथों से जो अपमान सहा है, वह ऐसा है कि कहते हुए ही मेरा कलेजा फटा सा जा रहा है । उस समय मैं रजुस्वला थी, एक साड़ी ही पहनी हुई थी । दुष्ट दुःशासन ने मेरे केश पकड़ कर घसीटता हुआ भरी सभा में मुझे ले गया । कुरुकुल के सभी वृद्ध वहाँ उपस्थित थे । पर किसी ने इस पाप के विरुद्ध उफ तक नहीं किया । दुर्योधन की आज्ञा पर उस दुष्ट ने मेरी साड़ी खींचनी आरम्भ की, मुझे भरी सभा में नगा करने की चेष्टा की, उस समय महाराज युधिष्ठिर ने सिर नीचा कर लिया, धनुषधारी अर्जुन का गाण्डीव उस समय भूमि पर पड़ा था, महाबल भीम उस समय चुप खड़ा था, मेरा वहाँ कोई नहीं रह गया था । वृद्ध जन गरदन झुकाए बैठे थे । मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की बधु हूँ, पर वे इस बात को भी भूल गए थे । पाण्डु नरेश की बधु और पाँचाल नरेश की बेटी उस समय निस्सहाय व अवला बनो हुई थी । दरिद्र पुरुष भी होते हैं वे भी अपनी पत्नी के अपमान को सहन नहीं करते, पर मैं विश्व विख्यात धनुषधारी की पत्नी होकर अनाथ सी विलाप कर रही थी । उस समय यदि काम आया तो मेरा सती चारित्र्य । जिस समय से मुझे यह घोर अपमान सहन करना पड़ा उस समय से मैं तो यह समझ बैठी हूँ कि मेरा इस ससार में कोई नहीं है, न पति, न परिवार, श्रीहर, और न आप ही । पापी दुराचारी मेरे साथ प्रत्येक अन्याय कर सकते हैं । बोलो क्या मुझ जैसी अभागिन इस ससार में और भी कोई होगी ?”

—कहते कहते द्रौपदी का कोमल होठ फड़कने लगा, वह विलख विलख कर रो रही थी । उस के अश्रुओं की बहती गंगा यमुना में श्री कृष्ण की धारता भी बह चली । वे शोक विह्वल हो गए । परन्तु समय की नजाकत को समझते हुए उन्होंने अपने आप को बहुत सम्भाला और मिष्ट वचनों से द्रौपदी को सान्त्वना देने लगे,

और बोले—वहन द्रौपदी ! तुम विश्वास रखो कि पाण्डव और उनके सहयोगी इतने शक्ति शाली हैं कि वे तुम्हारे अपमान का बदला अवश्य लेंगे। तुम पर जो भी बीती है, उसे सुकर मेरा कलेजा फटा सा जाता है। पर एक बात से मुझे सन्तोह है कि जो कुछ हुआ है वह अवश्य ही तुम्हारे पूर्व कर्मों का फल है, दुर्योधन आदि तो निमित्त मात्र है। हा परन्तु उन्होंने जो कुछ किया वह बैरभाव से ही किया इस लिये उन भी अपने पाप का फल भोगना पड़ेगा। तुम शोक न करो मैं वह देता हू कि उन दुष्टों के विरुद्ध मे पाण्डवों को प्रत्येक सम्भव और उचित सहायता दूंगा। यह भी निश्चय मानो कि तुम पुनः महलो के वैभव को प्राप्त करोगी। महाराज युधिष्ठिर पुनः अपद को सुशोभित करेंगे। चाहे आकाश टूट कर गिर जाए, चाहिमालय फट कर बिखर जाय, चाहे पृथ्वी टुकड़े टुकड़े हो जाय चाहे सागर सूख जाय पर मेरा यह वचन भूठा नहीं होगा।”

श्री कृष्ण की इस प्रतिज्ञा मे द्रौपदी का मन खिल उठा उसने अर्जुन की ओर अर्थ पूर्ण दृष्टि से देखा। अर्जुन भी द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए बोला—“हे पाचाली, श्री कृष्ण का वचन भूठा नहीं होगा। वही होगा जो उन्होंने कहा है। तुम धीर धरो ! हमारे साथ वासुदेव हैं तो फिर हमे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।”

वृष्ट घुम्न ने अपनी वहन की बातों को सुन कर दुःखित हो कर कहा—“हे वहन ! मुझे तुम्हारी बातें सुन कर बड़ी लज्जा महसूस रही है। मेरे रहते मेरी वहन को कोई अपमानित करने का दुस्साहस करे, यह मेरे लिए डूब मरने की बात है।” —“पिता वह अपने आप को धिक्कारने लगा—“धिक्कार है मेरे पौरुष को टूट जाओ ऐ मेरी बलिष्ठ भुजाओ टूट जाओ, जब तुम अपनी वहन की रक्षा नहीं कर सकती तो तुम्हारा अस्तित्व व्यर्थ है हे मेरे नेत्रो अच्छा है तुम ज्योति हीन हो जाओ, मैं अपनी आँखों से अपनी वहन के नयनों को सजल कैसे देखू ? फूट जाओ मेरे कानों फूट जाओ, अपनी वहन के अपमान की कथा सुनने से अच्छा है कि तुम फूट ही जाओ।”

धृष्ट द्युम्न को श्री कृष्ण ने धैर्य बन्धाया। उस समय वह बोला—‘महाराज ! आज आप ने जो प्रतिज्ञा की है मैं उसे पूर्ण करने के लिये अपना सब कुछ दाव पर लगा दूंगा। मैं उसे द्रोणाचार्य को, जो कि मेरे पिता का शत्रु और आजकल कौरवों का संरक्षक है, मारूंगा। भीष्म को शिखण्डी, दुर्योधन को भीमसेन, और सूतपुत्र कर्ण को अर्जुन युद्ध में यमलोक पहुंचायेगे।’

श्री कृष्ण ने कहा—‘मैं उस समय द्वारिका में नहीं था। यदि होता और इस खेल का पता चलता तो चौसर के खेल को ही न होने देता, यह खेल धर्म के प्रतिकूल है। इस दुर्योधन में जो पड़ा है, उसका नाश हो गया है। धृतराष्ट्र के बुलाये बिना ही सभा में पहुंच जाता और भीष्म तथा द्रोण जैसे वृद्धजनों को समझा बुझाकर इस नाशकारी खेल को रुकवा देता।’

‘आप ऐसे समय द्वारिका से कहा चले गए थे ? धृष्ट द्युम्न ने पूछा।

जरासिन्ध के मित्र शाल्व ने उस समय जबकि मैं इन्द्रप्रस्थ में था, द्वारिका का घेरा डाल दिया था। पर बलराम की बुद्धिमत्ता और नगर की सुरक्षित स्थिति के कारण वह अपने मन्तव्य में सफल नहीं हुआ और मेरे द्वारिका पहुंचने से पहले ही घेरा उठाकर भाग गया था। मैं इन्द्रप्रस्थ से लौट कर उस घुर्त को परास्त करने चला गया था। उसे यमलोक पहुंचा कर आ ही रहा था कि मुझे इस काण्ड की सूचना मिली और मैं तुरन्त वन की ओर चल पड़ा।’ श्री कृष्ण ने बताया।

इसके पश्चात् श्री कृष्ण पाण्डवों से विदा हुए वे सुभद्रा और अभिमन्यु को अपने साथ लेते गए। धृष्टद्युम्न ने बहुत चाहा कि वह पांचाल देश चली चले पर वह तैयार न हुई। अतएव द्रौपदी के पुत्रों को ले कर धृष्टद्युम्न पांचाल देश की राजधानी को चला गया।

* दसम परिच्छेद *

दुर्योधन का कुचक्र

चाहे दुर्योधन ने अपने अभिमानी स्वभाव के कारण उस समय पूरी ठिठाई दिखाई थी। परन्तु महर्षि मैत्रेय की भविष्यवाणी ने उसके हृदय को हिला दिया था। देवर्षि नारद के कथन के पश्चात् उसी का अनुमोदन करती हुई वह वाणी रह कर उसके हृदय प्रदेश में गूँज रही थी। जिस से दुर्योधन का खाना पीना हराम हो गया था। कोमल शय्या पर करवटे बदलते बदलते ही प्रभात हो जाती थी परन्तु निद्रा देवी के दर्शन भी नहीं हो पाते थे।

इसी समय दूत ने आ कर उन सारी घटनाओं की सूचना दी जो कि वन में पाण्डवों के पास घटी थी। अनेक प्रवल विद्याधरो, नरेशो, मुख्यतया त्रिखंडाधिपति वासुदेव श्री कृष्ण की प्रतिज्ञा को सुन कर दुर्योधन का हृदय हाफ उठा उसका रहा सहा आत्म-विश्वास समाप्त हो गया। मौत की भयावह छाया उसकी आँखों के सामने मडराने लगी। पैरों को पटकता हुआ विक्षिप्त की सी अवस्था में वह कब तक महल में घूमता रहा इसका ध्यान उसे तब आया, जब कि उसके कानों में शकुनि को यह शब्द पड़े कि--

दुर्योधन, क्या कारण है तुमने अभी तक भोजन नहीं किया,

जब कि सूर्य मध्याह्न को भी लाघ गया है। और समीप में आने पर दुर्योधन के चेहरे पर उडती हुई हवाइयो और चढी हुई आखो को देख कर शकुनि स्तम्भित सा रह गया। मामा को अपने समीप में देख कर दुर्योधन स्मत्स्थ हुआ। और सिंहासन पर बैठते हुए भरपूर हुए कठ से कहने लगा मामा जी या तो इसके प्रतिकार का अपनी विचक्षण बुद्धि से कोई शीघ्र ही मार्ग निकालिये अन्यथा कौरव-कुल की नैया तो मझधार में ही डूबी हुई संभलिये।

क्यों-क्यों राजन्, ऐसी अशुभ वाणी क्यों मुह से निकाल रहे हो— बैठते हुए आश्चर्य-निमज्जित शकुनि ने दुर्योधन से कहा।

जब चारो तरफ से अशुभ ही अशुभ देखने और सुनने को मिल रहा है तो आप ही सोचिये मैं कब तक शुभ स्वप्नों की कल्पनाएँ करता हुआ बैठा रह सकता हूँ। समय रहते हुए यदि कुछ प्रबन्ध नहीं किया तो दावानल के धू धू करके चारो तरफ से महल को घेर लेने पर कुआँ खोदने के उपक्रम से कुछ होने जाने वाला नहीं है। इस तरह कहते हुए प्रतिहारी को भेज कर अपने अभिन्न हृदय कर्ण, दुःशासन आदि को भी दुर्योधन ने बुला लिया और अपनी व्याकुलता का समस्त रहस्य समझाते हुए बल दिया कि हमें कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिये कि साप मरे न लाठी टूटे।

कहते हैं पाप ही पापी के हृदय को दहलाता रहता है। इस समय इस चाडाल चौकड़ी के हृदय पर अपने कृत्यों के अवश्यम्भावी कुफल की विभीषिका पूरी रगत दिखलाई रही थी। परन्तु रस्सी जल जाने पर भी जैसे ऐठन सीधी नहीं बनती, त्यो अपने विनाश की काली रात्रि को सम्मुख देखते हुए भी, गाधारी पुत्र शालीनता एवं सद्वृद्धि को अब भी सम्मान देने को तैयार नहीं थे।

पाडवो की प्रतिष्ठा और उन्हें सुख प्राप्ति की कल्पना भी दुर्योधन के हृदय में ववडर उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त आधार थी परन्तु साथ ही साथ अपने अनिष्ट को सम्भावना के तूफान ने उसकी ईर्ष्या को ज्वालामुखी की भान्ति भयकर रूप से घघका दिया था। जिसके कारण इस समय उसके हृदय से निकलने वाले विचार

रूपी लावे से न्याय-नीति सौजन्यता या मानवता रूपी कल्पद्रुम झुलसते जा रहे थे। वह ऐसा उपाय ढूँढ़ निकालने में निमग्न था कि जिससे पांडवों का विनाश अवश्य-भावी हो। इस कुचक्र-योजना निर्माण में उसका मामा शकुनि मित्र कर्णादि सहयोगी एवं परामर्श-दाता बने हुए थे। काफी समय पर्यन्त विचार-विमर्श एवं वादविवाद के पश्चात्, अन्ततः यह मित्र-मंडली एक ऐसे विचार-विन्दु पर केन्द्रित हुई, कि जिससे दुर्योधन सहित सभी के चेहरे विजयोल्लास की सी दीप्ति से चमकने लगे। और "शुभस्य शीघ्रम्" का दुरुपयोग करते हुए, परस्पर के बुद्धि नैपुण्य की प्रशंसा करते हुए, योजना को क्रियान्वित करने के लिए धृतराष्ट्र के सत्रणा-गृह में जा उपस्थित हुए।

+ + + + X X X

वत्स चिरञ्जीव होवो। कहो इस समय किस कारण से आना हुआ। नमस्कार का उत्तर देते हुए वृद्ध राजा ने दुर्योधन से पूछा।

पिता जी, बंस अब बहुत हो चुका। पुरजनों की तीखी कड़वी बातों को सुनते-सुनते मेरे कान पक चुके हैं। अब मेरे से आपकी अपनी, अपने भाईयो की यह तीव्रनिन्दा एवं भर्त्सना नहीं सही जाती। इतने विशाल साम्राज्य को पा कर भी हमें यदि मनस्ताप से झुलसते रहना पड़े तो उसके रखने से क्या लाभ?

क्यों? क्यों पुत्र, किस घटना को लेकर पुरजन हमें धृणित दृष्टि से देखते हैं। उत्सुकता से धृतराष्ट्र ने पूछा।

यही कि जिस दिन से भाग्य ने हमारा साथ दिया। न्याय पुरस्कृत हमने द्यूत में युधिष्ठिर को पराजित किया, उसी दिन से पुरजन परिजन हाथ धो कर हमारे पीछे पड़ हुए है कि कौरवों से अपने भाईयो को वृद्धि नहीं देखी गई। उनका यश, राज्य, वैभव प्रतिष्ठा इन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाती। हमें कोई कुलगार कह कर श्रुतता है। कोई अत्याचारी को रट लगा रहा है। और यहाँ तक घृष्टता बढ़ गई है कि आपकी ही छत्र छाया में रहते हैं, और आपको

ही कहते हैं कि आंखों से तो अघा था ही, अब हृदय की भी फूट गई है। पिता जी, सच कहता हूँ कि इस अपमान से जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर है। मन करता है इन राज्यद्रोहियों को चुन चुन कर मौत के घाट उतार दूँ। परन्तु आपकी कोमल प्रकृति से विवश हो कर दाँत पीस कर रह जाता हूँ। अब जब सिर से भी पानी गुजरने लगा तो मेरे लिए आप से निवेदन करना आवश्यक हो गया है।

वृद्ध धृतराष्ट्र बुद्धिमान थे, न्यायशील भी। अपने भतीजों के प्रति उन्हें कुछ स्नेह भी था। उन्हें अपने पुत्रों के प्रति मोह था। उनके चक्षु ज्योति हीन थे। उनके स्वभाव में दृढ़ निश्चय करने और उस पर चलते रहने की कमी थी। किसी बात पर वे स्थिर नहीं रह सकते थे। अपने हठी पुत्र दुर्योधन को वश में रखने की उनमें क्षमता नहीं थी। इसी कारण यह जानते हुए भी कि दुर्योधन कुपथ पर जा रहा है, उसे रोकने अथवा सुपथ पर लाने में असमर्थ थे। इसके कार्यों को देख देख कर उनके मन में पीडा होती। पर वे मन ही मन में घुटते कुडते रहते पर प्रत्यक्षतः कुछ कह न पाते थे। परन्तु आज अपने पुत्र की बातों को सुन कर, जहाँ उन्हें अपने अपमान को जान कर दुख होना चाहिये था प्रत्युत प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा, चलो सुबह का भूला शाम को भी घर आ जाये तो खैर ही है। शायद कोई रास्ता ऐसा निकल आये जिससे अब यह पाडवों से विरोध करना त्याग देवे और प्रेम पूर्वक साथ रहना स्वीकार कर लेवे। इत्यादि विचार करते हुए राजा धृतराष्ट्र ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—

पुत्र, गुलाब केतकी कस्तूरी किसी से चिचौरिया करने नहीं जाती कि तुम हमें सुगन्धित रूप में बखानो। पारखी स्वयं उनकी सुगन्ध से आकर्षित होता है और प्रशंसा करता है। त्यों पांडव धर्मात्मा हैं, गुणवान हैं, सबसे समान स्नेह रखते हैं। इसी कारण प्रजा भी उन्हें चाहती है। उनकी सहायता करने वालों की भी कमी नहीं है। और जब से तुमने द्यूत के द्वारा पाडवों से विरोध खड़ा किया है। तब से प्रजा तो क्या हमारे वश के प्रतिष्ठित समस्त पुरुषों की भी दृष्टि से गिर गये हो। मुझे यह भय सताता रहता

है कि कही प्रजा विद्रोह न कर बैठे। हम लोक निन्दा और अपयश पात्र तो हो ही चुके हैं पर कही हस्तिनापुर से भी हाथ न धोना पड़ जाय। इस लिए अब भी समय है कि तुम पांडवों से प्रेम स्थापित कर लो। इससे तुम्हें यश भी प्राप्त होगा और निश्चित रूप से आनन्द मगल भी।

पिता के मुख से पांडवों की प्रशंसा सुन कर दुर्योधन के हृदय में एक बार फिर टीस सी पैदा तो हुई। परन्तु अवसर की अनुकूलता नहीं थी। अतः जहर की सी घूट पीते हुए, अपने रवे हुए जाल में फसाने के लिए प्रत्यक्षतः स्वर में कोमलता प्रदर्शित करते हुए बोला -

पिता जी मैं इस से नहीं घबराता कि कौन पांडवों का साथी है। और कितनी उनमें शक्ति है। हमारे भी मित्रों की कमी नहीं मुझे अपनी शक्ति का पूर्ण विश्वास है। मैं जब चाहे पांडवों को सदा की नीद सुला सकता हूँ। परन्तु मुझे दुख तो इस बात का है कि मैं जैसे २ पांडवों को चाहता हूँ वे त्यों त्यों प्रजाजनों में अधिक सन्मान के पात्र बनते जाते हैं। और हमें प्रतिष्ठा के स्थान पर अपयशकाभागी बनना पड़ता है। इस लिये कोई ऐसी युक्ति सुझाइये कि जिस से हमें भी ससार आदर की दृष्टि से देखने लगे और आप का सर्वत्र जय जयकार होवे।

बेटा तुम ने आज मेरे हृदय को अमृत से सींच दिया। भगवान तुम्हें सदा ही सबुद्धि देवे। पुत्र स्मरण रखो, यश रूपी वैभव से जो सम्पन्न है वह तीनो काल में सुखी और अजर अमर है और अपयशभागी त्रैलोक्येश्वर होकर भी दीनहीन और मृत प्राय होता है। अतः सर्वदा वह कार्य करो जिस से तुम्हारे यश की वृद्धि हो। दूसरे को बढ़ाने से ही मनुष्य वृद्धि पाता है। जितना किसी को सुख प्रदान करोगे उतनी ही तुम्हारी वृद्धि होगी। यश प्राप्ति होगी। जितना किसी को सताओगे, रुलाओगे, गिराओगे, उतना ही तुम्हें भी कष्ट उठाना पड़ेगा, रोना पड़ेगा और ससार की दृष्टि से गिर जाओगे। इस लिए पुत्र यदि तुम यशस्वी

एव सुखी बनना चाहते हो, तो सबसे प्रथम अपने भाई पांडवों के सुखो का निराकरण करो कि जिनको तुमने राजराजेश्वर की गद्दी से दीनहीन भिक्षुकों की सी दयनीय स्थिति में ला पटका है यदि तुम उन्हें सुख सुविधाएं प्रदान करो, तो प्रजा तुम्हारा अवश्य प्रभिनन्दन करेगी। और वत्स, मैं तो यह समझता हूँ कि यदि उनका राज्य तुम उन्हें समर्पण करदो, समस्त विसवाद ही समाप्त हो जाये और ससार भर में तुम्हारा जय जयकार गूँज उठे। प्रेम से दुलारते हुए अन्धे राजा ने दुर्योधन को सम्मार्ग पर लाने की चेष्टा की।

पिताजी आपका कथन धर्म नीति अनुमोहित है। सभी ग्रन्थ एव वृद्धजन यही कुछ समझते हैं परन्तु मैं तो राजनीतिज्ञों के इस कथन को प्राथमिकता प्रदान करता हूँ कि शत्रु एवं काटों को जब भी समय मिले मसल डालना चाहिये। परन्तु देखता हूँ कि इस पथ पर अग्रसर होते हुए प्रत्येक अवसर पर मुझे लाछित ही होना पड़ा है। अतः हृदय से न चाहते हुए भी, मात्र आप की आज्ञा को शिरोधार्य कर, एक बार इस शिक्षा की भी परीक्षा करके देख लेता हूँ। यदि इसमें कुछ हृदय को समाधान एव लोक में सफलता प्राप्त हुई, तो फिर जैसे भी आप की आज्ञा होगी उसे विना ननुनच के स्वीकार करता रहूँगा। परन्तु वर्तमान में मुझे यह उचित नहीं जचता कि मैं पांडवों को सहस्रों राज्य प्रदान कर दूँ। दुर्योधन ने कहा।

हां, दुर्योधन तुम्हारा कथन सोलह आने सत्य है। यदि इस समय पांडवों को राज्य लौटाया गया तो लोग समझेंगे कि दुर्योधन पांडवों से डर गया है। दूसरे इस समय वे लोग अपने किये का भोग रहे हैं। जो उन्होंने महाराज का अपमान किया था अब उसका उनको स्वाद मिल रहा है। गर्मी सर्दी, भूख प्यास आदि से व्याकुल होते हुए अवश्य ही तुम्हारे ऊपर दात पीसते होंगे। यदि ऐसे समय राज्य की वागडोर उनके हाथों समर्पण कर दी तो वह हाथ धो कर तुम्हारे पीछे पड़ेंगे। आश्चर्य नहीं उस समय हमें ही राज्य से हाथ न धोने पड़ जायें। इस लिये भले वनने की धुन में कहीं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी न मार बैठना। बात सम्भालते हुए

शकुनि ने कहा—

यही तो दुविधा है। एक तरफ तो पिता जी की प्रतिष्ठा के स्थापित करने का महाप्रश्न है दूसरी तरफ कुए से बचते हुए सा में गिरने का पूरा भय है। दुःशासन ने रग जमाया। यह सब ठीक है। परन्तु मैंने निर्णय कर लिया है कि एक बार पिता जी के सुभा हुए पथ पर भी चल कर परोक्षा करूंगा कि क्या परिणाम निकलता है। आज्ञाकारिता का नाट्य करते हुए दुर्योधन ने कहना आरम्भ किया— परन्तु आपहितैषियों की चेतावनो को भी झुठला न सकता। इस लिए मेरे तो विचार मे यही जचता है कि पांडव को वनवास से तो बुलवा लिया जाये और अपने आस-पास के कि छोटे नगर मे उनके निवास का, खान पान आदि सुविधाओं का प्रबन्ध कर दिया जाये। और देखा जाय कि हमारे इस कदम पर प्रजा पर और पांडवों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

ठीक है ठीक, कर्ण ने कहना शुरू किया— इससे एक तो की गति विधि पर भी नियंत्रण रखा जा सकेगा दूसरे हो सकता कि आपके सद्ब्यवहार से पांडव हृदय से आप को स्नेह करने जाये और हमारे महाराजा की इच्छा भी पूर्ण हो जाये।

मेरे विचार मे इस कार्य के लिए वारणावत का चुनाव अच्छा रहेगा। यहां से उन पर निगाह भी आसानी से रखी जा सके और वहां कोई विशेष सहायक भी उन्हे नही मिल सकेगा। यह भी उचित है। यदि पिता जी आज्ञा दे तो वहां एक आवत बनवाये देता हू जिस मे वे लोग राज्य कर्मचारियों से पृथक पृथक आराम से रह सकें। यदि उन्होंने भाई चारे का सबूत दि तो वनवास की अवधि के पूर्ण हो जाने के पश्चात् राज्य लौट का कार्य-क्रम भी बनाया जा सकेगा। दुर्योधन ने कहा—

धृतराष्ट्र जो दत्तचित्त हो इनकी बात-चीत के उतार चढ़ को जाँच रहे थे, बोले— पुत्र, मैं तो यही चाहता हूं कि इस परी के चक्कर में न पड कर सरलता पूर्वक पांडवों का राज्य उ समर्पण करदो। वे धर्मात्मा एवं कृतज्ञ हैं। कभी स्वप्नों मे

तुम्हारे अहित को नहीं सोचेंगे।

नहीं, नहीं पिता जी आप भूलते हैं। मैंने धर्म नीति का परीक्षण करने का निर्णय किया है इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम राजनीति को ताक पर ही रख दें। हमें फूक २ कर इस पथ पर कदम रखना होगा। उस समय आप तो सिर्फ इतनी ही आज्ञा दीजिये कि जल्दी से जल्दी एक आवास गृह वारणावत में बनवा हूँ और तब आप पांडवों को जैसे भी उचित समझे वैसे उसमें निवास करने के लिये बुलवा भेजिये। बस।

पुत्र, पाप का फल सदा बुरा होता है। राज्य के प्रलोभन में कोई ऐसा कार्य न कर बैठना जिससे तुम्हें नरकों के दुख भोगने पड़ें। और यह ससार भी तुम्हारे लिये नरक बन जाये। धृतराष्ट्र अभी तक दुर्योधन की तरफ से सशक्त थे। परन्तु उनमें उसे ललकारने की शक्ति नहीं थी।

पिता जी, विश्वास रखिये, ऐसी कोई बात मैं करने वाला नहीं हूँ कि जिसमें आपको किसी प्रकार का कष्ट उठाना पड़े। दुर्योधन ने आश्वासन देना प्रारम्भ किया और अपने कार्य में पूर्ण सहायता का वचन ले कर खुशी २ यह मडली अपने महल आई और पूर्व निश्चयानुसार कार्य में दत्तचित्त हो कर जुट गई।

× + × × ×

दुर्योधन ने अपने कुचक्र सभालन के लिए मुह मांगा घन प्रदान कर अपने पुरोहित पुरोचन को, जिसे कि पांडव भी श्रद्धा एवं विश्वास की दृष्टि से देखते थे, अपना अभिन्न हृदय बना लिया था। उसी की देख रेख में वारणावत में लाख, ओम आदि तुरन्त अग्निग्राह्य पदार्थों के समिश्रण से एक महल का निर्माण कराना प्रारम्भ किया, और धृतराष्ट्र का सन्देश लिखवा कर सदल बल युधिष्ठिर के पास बन में भेज दिया। जहा पर उसने येन केन प्रकारेण पांडवों को वारणावत में निवास करने के लिये और अपने साथ चलने के लिए तैयार कर धूम धाम से प्रवेश कराने के लिए वारणावत में कार्य कर रहे राजकीय कर्मचारियों एवं निवासियों को आगमन

की तिथि का समाचार भेज दिया ।

X X X X X X X X

जहां एक तरफ दुर्योधन पांडवों के विनाश का कुचक्र ख रहा था वहां दूसरी तरफ धर्मात्मा विदुर भी ज्ञान्त न बैठे थे। धृतराष्ट्र के द्वारा पांडवों को वारणावत-निवास कराने आदि का समस्त समाचार उन्हें ज्ञात हो चुका था। और दुर्योधन यह सब सदाशयता से कर रहा होगा यह उनका हृदय मानने के लिए तैयार न था। अतः चतुर दूतों को वारणावत भेज कर महल में प्रयुक्त की जा रही विशेष सामग्री आदि के द्वारा वह वास्तविकता को समझ चुके थे। अतः वारणावत में इस महल में ठहराने का दुर्योधन का क्या आशय है, और कैसे उससे अपनी रक्षा करनी चाहिये इत्यादि समस्त बातें उन्होंने सांकेतिक भाषा में लिख कर अपने विश्वस्त पुत्र को युधिष्ठिर के पास वारणावत में देने के लिए प्रेषित कर दिया।



* एकादस परिच्छेद *

लाख का महल

वारणावत के लोगों ने जब पाण्डवों के आगमन का समाचार सुना वे बड़े प्रसन्न हुए। और उनके स्वागत की तैयारियाँ जोर जोर से होने लगी। सभी लोग पाण्डवों के गुणों से परिचित थे, अतः वे उनका स्वागत करना अपना कर्तव्य समझते थे।

जब पाण्डवों ने वारणावत में प्रवेश किया, सहस्रों नर नारी उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा और जय जयकार करने लगे।

युधिष्ठिर और सती द्रौपदी के प्रति बहुत श्रद्धा दर्शाई गई। सारा नगर सजा हुआ था।

वारणावत के नागरिकों की ओर से किए गए अभूत पूर्व स्वागत से पाण्डवों का मन भी खिल उठा।

लाख का महल अभी तैयार नहीं हुआ था अतएव पुरोचन ने उन्हें दूसरे स्थान पर ठहराया। इसी समय विदुर द्वारा प्रेषित समाचार युधिष्ठिर को मिला, जिसे जानकर वे आश्चर्यचकित रह गये और भविष्य के चौकन्ने बन गये। कुछ दिनों पश्चात् महल तैयार हो जाने पर पुरोचन बड़े आदर पूर्वक उन्हें महल में ले गया।

महल की सुन्दरता को देख कर सभी प्रसन्न हुए ।

भीमसेन ने कहा— “भ्राता जी ! महल बड़ा सुन्दर है । दुर्योधन ने वास्तव में हमारे लिए कितना अनुपम महल बनवाया है । लगता है अब उनके मन में भ्रातृ स्नेह जागृत हो गया है ।”

नकुल ने आगे बढ़ कर दीवार के प्लास्टर को स्पर्श करके प्रसन्न हो कर कहा— “और इसमें मिट्टी कितनी चिकनी लगी है । पता नहीं चलता कि यह दर्पण है या चिकनी मिट्टी ।”

उसी समय युधिष्ठिर बोल उठे—“पर है यह सारी धोखे की टट्टी ।”

सहदेव ने आश्चर्य चकित होकर कहा—“भ्राता जी ! आप तो कभी ऐसी बातें कह जाते हैं कि आश्चर्य होता है । इतना बहुमूल्य सुन्दर महल है और आप कहते हैं इसे धोखे की टट्टी ।”

अर्जुन बोल उठे—“कई लाख की लागत से तैयार हुआ होगा । बाह्य रे पुरोचन, जी चाहता उसकी कला की प्रशंसा किए जाऊँ ।”

“हां, यह लाख का ही बना है । युधिष्ठिर बोले शिकारी ने शिकार करने के लिए नयनाभिराम व चित्ताकर्षक जाल बिछाया है ।”

चारों भाई युधिष्ठिर का मुंह ताकने लगे । भीम बोल पड़ा—“क्या कहते हैं भ्राता जी ! इस में लाख की ही लागत है, यह तो कई लाख का है ।”

“हां हा, है लाख का ही ।”

द्रौपदी भी युधिष्ठिर के शब्दों पर चकित थी । उस ने कहा—“इतना सुन्दर महल है कि सभी इस की प्रशंसा कर रहे हैं और महाराज बता रहे हैं इसे जाल ? बात क्या है ?”

भीम आग्रह करने लगा युधिष्ठिर से उनकी बात जानने का । तब युधिष्ठिर बोले—यद्यपि मुझे यह ज्ञात हो गया है कि

यह स्थान खतरनाक है। यह शीघ्र आग पकड़ने वाली वस्तुओं को विशेषतया, लाख को मिट्टी में मिलाकर बनाया गया है। फिर भी हमें इस रहस्य को अपने मन में छुगाकर रखना चाहिए। विचलित नहीं होना चाहिए। पुरोचन को भी यह ज्ञान न हो कि हमें महल का भेद ज्ञात हो गया है। विदुर चाचा ने यहां पहुंचने के समय ही मुझे महल का रहस्य सांकेतिक भाषा में बता दिया है। परन्तु अभी शीघ्रता में हम से कोई ऐसी बात न करे जिस से पुरोचन को तनिक सा भी सन्देह हो जाय।”

युधिष्ठिर की इस सलाह को सभी ने मान लिया और उसी लाख के भवन में रहने लगे। इतने में विदुर जी का भेजा हुआ सुरग बनाने वाला एक कारीगर वारणावत नगर में आ पहुंचा। उस ने एक दिन पाण्डवों को एकान्त में पाकर के अपना परिचय देते हुए कहा—“आप लोगों की भलाई के लिए हस्तिनापुर से अपने इनके द्वारा विदुर ने युधिष्ठिर को सांकेतिक भाषा में जो उपदेश दिया है उसको मैं जानता हूं। यही मेरे सच्चा होने का प्रमाण है। आप मुझ पर भरोसा रखें। मैं आपकी रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए ही यहां आया हूं।”

इसके पश्चात् वह कारीगर महल में पहुंच गया और गुप्त रूप से कुछ दिनों में ही उस ने एक सुरग बना दी। इस के रास्ते पाण्डव महल के अन्दर से नीचे ही नीचे महल की चहार दीवारी और गहरी खाई को लाघ कर और बच कर बेखटके बाहर निकल सकते थे। यह काम इतने गुप्त रूप से हुआ कि पुरोचन को अन्त तक इस बात की खबर न होने पाई।

पुरोचन ने लाख के भवन के द्वार पर ही अपने रहने के लिए स्थान बनवा लिया था। इस कारण पाण्डवों को सारी रात हथियार लिये चौकन्ता रहना पड़ता था। कभी कभी वे सैर करने के वहाने आसपास के वनों में घूम कर आते और वन के रास्तों को अच्छी प्रकार देख लेते। इस प्रकार पड़ीस के प्रदेश और जंगली रास्तों का उन्होंने खासा परिचय प्राप्त कर लिया

वे पुरोचन से ऐसे हिलहिलकर व्यवहार करते जैसे उस पर कोई सन्देह ही नहीं है; वल्कि वह उनका अपना व्यक्ति है। सदा हसते-खेलते रहते। उनके व्यवहार को देख कर किसी का तनिक सा भी सन्देह नहीं हो सकता था कि उन के मन में किसी प्रकार की शका, अथवा चिन्ता है।

उधर पुरोचन भी कोई शीघ्रता नहीं करना चाहता था उस ने सोचा कि ऐसे अवसर पर इस ढंग से भवन को आग लगाई जाये कि कोई उसे दोषी न ठहरा सके। दोनों ही पक्ष अपने अपने दाव खेल रहे थे। इसी प्रकार दिन बीतते रहे।

एक दिन पुरोचन ने सोचा कि अब पाण्डवों का काम तमाम करने का समय आगया, पाण्डवों को मुझ पर पूर्ण विश्वास है। महल को बने महीने बीत गए। इस समय आग लगाने पर कोई भला क्या सन्देह कर सकेगा? बुद्धिमान युधिष्ठिर उस के रण ढंग से ताड गए कि वह अब क्या सोच रहा है। उन्होंने अपने भाइयों से कहा—पुरोचन ने अब हमें जलाकर मार डालने का निश्चय कर लिया मालूम होता है। यही समय है कि हमें भी अब यहा से भाग निकलना चाहिए।”

युधिष्ठिर के परामर्श से द्रौपदी ने उस रात को एक बड़े भोज का प्रवन्ध किया। नगर के सभी लोगों को भोजन कराया गया। बड़ी धूम धाम रही मानो कोई उत्सव हो। खूब खा पी कर भवन के सभी कर्मचारी सो गए। पुरोचन ने भी छक कर खाया था वह भी गैर्या पर पडते ही खरीटे भरने लगा।

आधी रात के समय भीम सेन ने भवन में कई जगह आग लगादी और फिर पाचो भाई सती द्रौपदी के साथ सुरग के रास्ते अवेरे मे रास्ता टटोलते हुए बाहर निकल आये। वे भवन से बाहर निकले ही थे कि अग्नि ने सारे भवन को अपनी लपेट में ले लिया। पुरोचन के रहने के मकान में भी आग लग गई।

आग की लपटे आकाश की ओर उठ रही थी, ऐसा मालूम होता था कि आकाश को छूलेगी। लपटों का प्रकाश सारे नगर

पर छा गया। निद्रामग्न लोग जाग उठे। सारे नगर में खल बली मच गई। लोग तुरन्त महल की ओर भागे। पर जब तक कोई वहा पहुंचे, तो आग सारे महल में लग चुकी थी, भवन का काफी भाग भष्म हो चुका था। हतप्रभ लोग हाहाकार करने लगे। रुई की भांति जलते भवन को देख कर लोग समझ गए कि महल किसी शीघ्र आग पकड़ने वाली वस्तु का बना है। वे उसे दुर्योधन का षडयन्त्र समझने लगे और सभी कौरवों के अन्याय की आलोचना करने लगे। सभी समझ रहे थे कि पाण्डव इसी भवन में भस्म हो गए। यह सोच कर उनकी छाती फटने लगी, सभी के नेत्रों से अश्रु और क्रोध की चिनगारिया निकल रही थी।

कोई कहता—“पाण्डवों की हत्या करने के लिए ही पापी कौरवों ने यह षडयन्त्र रचा था।”

दूसरा कहता—“हम भी सोच रहे थे कि आखिर पाण्डवों के लिए कुछ दिन रहने के हेतु इतना विशाल भवन क्यों बनाया जा रहा है। लो यह षडयन्त्र था इस भवन की पृष्ठ भूमि में।”

तो कोई कहता—“पाण्डवों के शत्रुओं ने ऐसा अन्याय किया है, जिसका उदाहरण कहीं भी नहीं मिलता।”

इसी प्रकार क्षुब्ध जनता अनाप अनाप कहती रही। जो जिसके मन में आया क्रोध वश वही कहता। चारों ओर हाहाकार हो रहा था। लोगों के देखते देखते सारा भवन जल कर खक हो गया। पुरोचन का मकान और स्वयं पुरोचन भी आग की भेंट हो गया।

पाण्डवों की मृत्यु का भ्रम होने से सारा नगर विह्वल हो गया। सारे नगर में लोग पाण्डवों के गुणों को याद कर के रोते रहे। लोगों ने तुरन्त ही हस्तिनापुर में खबर पहुंचा दी कि पाण्डव जिस भवन में रहते थे, वह जल कर राख हो गया और महल का कोई भी व्यक्ति जीता नहीं बचा।

यह समाचार सुनकर वृद्ध धृतराष्ट्र को शोक तो हुआ पर मन ही मन उन्हें आनन्द भी हो रहा था कि उन के वेदों के शत्रु समाप्त हुए और भगड़ा समाप्त होगया। ग्रीष्म ऋतु में जैसे गहरे तालाब का पानी सत्तह पर गरम किन्तु गहराई में ठण्डा रहता है, ठीक उसी तरह धृतराष्ट्र के हृदय में शोक भी था और आनन्द भी। धृतराष्ट्र और उनके वेदों ने पाण्डवों की मृत्यु का बड़ा शोक मनाया। सब आभूषण और सुन्दर वस्त्र उतार दिए और एक एक मामूली कपड़ा पहन कर पाण्डवों तथा द्रौपदी को जलांजलि दी। फिर सब मिल कर बड़े जोर जोर से रोने और विलाप करने लगे। उनका यह शोक प्रदर्शन अपने षडयन्त्र पर परदा डालने और लोगो की गकाओ को निर्मूल सिद्ध करने के लिए था।

सारा हस्तिनापुर रो रहा था, परन्तु दार्शनिक विदुर ने यह कह कर कि जीना मरना तो प्रारब्ध की बात होती है, इस में किसी का क्या चारा? अधिक शोक न दर्शाया। उन्हें मन ही मन में यह विश्वास था कि पाण्डव अवश्य ही बच निकले होंगे। अतः दूसरो के सामने तो वे भी कुछ रोये पर मन ही मन यह अनुमान लगाते रहे कि पाण्डव किस रास्ते से किस ओर गए होंगे और इस समय कहाँ पहुँचे होंगे? इत्यादि पितामह भीष्म तो मानो शोक के सागर में डूब गए थे। परन्तु अन्त में उन्हें भी विदुर जी ने समझाया और पाण्डवों की रक्षा के लिए उनके द्वारा किए गए प्रवन्धों का वृत्तांत बता कर उन्हें चिन्ता मुक्त किया।

× × × × × × ×

लाख के महल को जलता छोड़ कर सुरंग के द्वारा निकल कर द्रौपदी सहित पाण्डव जंगल में पहुँचे। वनों के वीहड़ रास्ते को रातों रात तय करते रहे। प्रातः होने तक वह चलते रहे और वीहड़ पथ पर पैदल चलते चलते थक गए। द्रौपदी तो बुरी तरह थक कर चूर हो गई थी। उस के लिए एक भी पग उठाना दूभर हो रहा था, अतः वह यह कह कर भूमि पर गिर पड़ी और बोली कि मुझे आत्म शान्ति है पर मुझ से नहीं चला जाता, मैं तो

यही पड़ी रहूगी।”

समस्त पाण्डव भी प्यास से व्याकुल थे अतः भीम के अति-रिक्त सभी बैठ गए भीम जलाशय की खोज में गया। एक स्थान पर टक्करे खाकर उसे जलाशय मिल गया। उसने कमल के पत्तों में पानी भर लिया और जल में अपना दुपट्टा भिगो लिया और लाकर चारों भाइयों तथा द्रौपदी को पानी पिला कर सचेत किया। फिर भीम ने ढारस बघाई। प्रोत्साहन दिया और सती को कंधे पर उठा लिया। चारों भाई साथ हो लिए। भीम उन्मत्त हाथी की भाँति आगे आगे रास्ता साफ करता चला, अन्य भाई पीछे पीछे चलते रहे।

गंगा तट पर पहुँच गए। एक नाव के द्वारा उन्होंने गंगा पार की और फिर चलने लगे। कभी कभी किसी भाई के थक जाने पर भीम उसे भी उठा लेता और भूमता भ्रामता चलता रहता। चलते चलते रात्रि हो गई सभी भाई और द्रौपदी थक कर सो गए, पर भीम उस वीहड वन में अकेला ही जागता रहा। हिंसक पशुओं की भयानक आवाजें आ रही थी, पर भीम निश्चित हो कर बैठा था, वह समस्त वृक्षों व पक्षियों को देख कर मन में सोचता—“वन के यह वृक्ष, और पक्षी एक दूसरे की रक्षा करते हुए कैसे मौज से रह रहे हैं, पर धृतराष्ट्र और दुर्योधन मानव होते हुए भी शांति पूर्वक प्रेम भाव से नहीं रह सकते। उनसे तो यह वृक्ष और पक्षी ही भले।”

प्रातः हुई फिर वे चल पड़े।

पाँचों भाई और द्रौपदी अनेक विघ्न बाधाओं को भेदते हुए रास्ते पर बढ़ते रहे। वे कभी द्रौपदी को उठा कर चलते, कभी धीरे धीरे बढ़ते। कभी विश्राम करने लगते और कभी आपस में होड़ लगा कर रास्ता नापते। भूख प्यास से व्याकुल पाण्डव आगे बढ़ते ही गए।

रास्ते में उन्हें एक कर्म सिद्धान्त का ज्ञाता मिला और उनकी परस्पर बातें हुई। पाण्डवों को इस प्रकार वनों में भटकते हुए देखकर उस निश्चय व्यवहार के ज्ञाता ने उन से पूछा कि ‘महलों

मे वास करने वाले इस प्रकार निर्धनो और निस्सहायों की भाँति कहां जा रहे है ?”

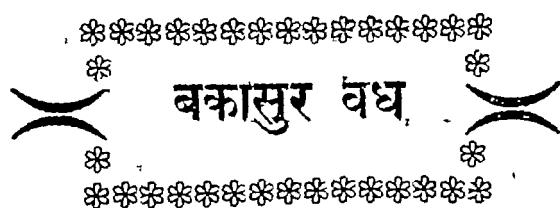
उत्तर मे युधिष्ठिर ने अपनी समस्त विपदाए कह सुनाई। द्रौपदी रोने लगी और उसने कौरवो के अन्याय की शिकायत की। तब सिद्धान्तज्ञाता बोले—ससार में प्रत्येक व्यक्ति पाप भी करता है, धर्म भी, जो पाप नहीं करता वह निवृत्ति मार्गी है। लक्ष्मी, सम्पत्ति और राज्य के लिए लोग नीच से नीच कार्य भी कर डालते है, पर संसार मे पुण्य पाप का चक्र चलता रहता है, जो सुख भोगते हैं वह अपने पुण्य से। आप का जितना पुण्य है उतना ही सुख आप को मिलेगा। न ससार मे कोई किसी को सुख देता है न दुख, यह मनुष्य के अपने कर्म है जिनका फल सुख या दुख के रूप में मिलता है। बाकी सब निमत मात्र बन जाता है। आप ओ भोग रहे है वह आप के पूर्व कर्मों का फल है, जो भोगना ही होगा। ऐसी ही सर्वज्ञ देव का सिद्धान्त कहता है। दुख के समय आप को विचलित नही होना चाहिए और किसी के अन्याय से पथ विमुख भी नही होना चाहिए।”

सिद्ध पुरुष के उपदेश से द्रौपदी को बहुत सान्त्वना मिली। और अपनी विपदाओ तथा दुर्योधन के अन्याय पूर्ण व्यवहार को अपने तथा पाण्डवो के पूर्व जन्मो के कर्मों का फल समझकर वह अपने भाग्य को तदवीर से बदलने के लिए पाण्डवों के साथ पुन चल पड़ी।

आगे जाकर जब वन समाप्त होने को था, पाण्डव भ्राताओ ने आपस मे विचार विमर्श किया कि भावी कार्य क्रम क्या हो ? युधिष्ठिर बोले—“अच्छा हो कि हम अभी कुछ दिनों दुर्योधन की आँखों से ओझल रहे। उसे इसी हर्ष में फूलता छोड दें कि हम सब अग्नि की भेट हो गए हैं। इस के लिए यह आवश्यक है कि हम अपना वेष बदल कर घूमे।”

अर्जुन ने युधिष्ठिर की बात का समर्थन किया और सभी ने एक मन होकर निश्चय किया कि वे गुप्त वेष धारण कर ले। अतएव उन्हो ने राजकुमारों के वस्त्र उतार डाले और साधारण वस्त्र पहन लिए। पथ कर वेपधारी पाण्डव वन से निकल कर वस्ती की ओर चले।

* द्वादस परिच्छेद *



द्रौपदी के साथ पाचों पाण्डव एक चक्री नगर में पहुंचे । वे एक ब्राह्मण के घर ठहर गए और भिक्षा माग कर अपनी गुजर करने लगे । कहते हैं भिक्षा से जो मिलता, उस में से आधा भीम को दे देते और शेष में चारों भ्राता तथा द्रौपदी गुजर करते । क्यों कि भीम सेन में जितनी अमानुषिक शक्ति थी उतनी ही अमानुषिक भूख भी थी । यही कारण था कि लोग उसे वृकोदर भी कहते थे । वृकोदर का अर्थ है भेड़िये के से उदर वाला । भेड़िये का पेट छोटा सा प्रतीत होने पर भी मुश्किल से ही भरता है । भीम सेन के पेट की भी यही दशा थी । भिक्षा से जो मिलता था उस में से आधा उसे मिलने पर भी उस से उसका पेट न भरता, उसे सन्तोष न होता । हनेशा ही भूखा रहने के कारण वह दुबला होता जा रहा था । भीम सेन का यह दशा देख कर द्रौपदी और युधिष्ठिर बड़े चिन्तित रहने लगे ।

जब थोड़े से अन्न से भीम की पूर्ति न होती और वह बुरी तरह परेशान रहने लगा तो उस ने एक कुम्हार से मित्रता कर ली और उसे मिट्टी खोदने आदि में सहायता देकर प्रसन्न कर लिया । कुम्हार उस से बहुत प्रसन्न था उसने एक बड़ी हाण्डी बना कर उसे दी । भीम जब हाड़ी को लेकर भिक्षा लेने जाता तो उसके

भीम-काय शरीर और विलक्षण हाडी को देख कर बालक हसते-हसते लोट पोट हो जाते ।

जब कभी पाण्डवों को भिक्षा लेकर घर लौटने में देरी हो जाती तो सती द्रौपदी बुरी तरह अशंकाओं से पीड़ित हो जाती । बड़ी चिन्ता से उनकी बाट जोहती रहती । वह बेचैनी में सोचने लगती कि कहीं दुर्योधन के दूतों ने उन्हें पहचान ले लिया हो, कहीं कोई विपदा न खड़ी हो गई हो ।

एक दिन चारों भाई भिक्षा के लिए गए, अकेला भीम सेन घर पर रहा । इतने में ब्राह्मण के घर के भीतर से बिलख बिलख कर रोने की आवाज आई । ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कोई बहुत ही शोक प्रद घटना घट गई हो । भीम का जी भर आया । वह इसका कारण जानने के लिये घर के भीतर गया । अन्दर जा कर देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी आखों में आसू भरें सिस-कियां लेते हुए एक-दूसरे से बातें कर रहे हैं ।

ब्राह्मण बड़े दुखी हृदय से अपनी पत्नी से कह रहा था—
“अभागिनी ! कितनी ही बार मैंने तुझे समझाया कि इस अन्धेर नगरी को छोड़ कर कहीं और चले जायें, पर तुम ने न माना । कहती रही कि इसी नगर में पैदा हुई, यही पली तो यही रहूंगी । माँ बाप तथा भाई बहनों का स्वर्ग वास हो जाने पर भी तू यही हठ करती रही कि यह मेरे बाप दादा का नगर है, यहीं रहूंगी । मैंने बहुत समझाया पर तेरी समझ में एक न आई । अब बोलो क्या कहती हो ?”

ब्राह्मण की पत्नी अपनी भूल पर पश्चात्ताप करती हुई बोली—“मुझे क्या पता था कि यह दिन हमें भी देखना पड़ेगा । अपनी मातृ भूमि में किसे प्रेम नहीं होता ? हा आज अवश्य पछताती हूँ । सोचती हूँ कहा चली गई थी तब मेरी बुद्धि । आज सिर पर आ बनी तो हाथ मलती हूँ । पर अब क्या किया जाय । वस यही कर सकती हूँ कि मेरी ही हठ से आज-इस परिवार पर यह विपत्ति पड़ी, आज मुझे ही इसका दण्ड भोगने दें । आप बालकों को सम्भालें और मुझे जाने दें ।”

ब्राह्मण द्रवित हो कर बोला—“तुम मेरी धर्म-कर्म की सगिनी हो, मेरी सन्तान की माँ हो और मेरी पत्नी हो। मैंने सदा ही तुम्हारे प्रेम की ऊष्णता से अपने सरद पड़ते विचारों तथा भावों को गरमी प्राप्त करी है। तुम ने जीवन के हर क्षण में मेरे साथ सच्चे मित्र की भाँति मेरा साथ दिया है। तुम ने निर्धनता में भी मुस्कान का हाथ नहीं छोड़ा। मेरा जीवन सर्वस्व तुम्हीं हो। तुम्हें मृत्यु के मुह में भेज कर मैं अकेले कैसे जीवित रह सकता हूँ ?”

“पिता जी ! आप मुझे ही भेज दें। मैं ऐसे मुसीबत के समय आप के काम आ सकूँ और माता पिता के ऋण से मुक्त हो सकूँ तो अहोभाग्य !” ब्राह्मण की कन्या बोली।

ब्राह्मण अवरुद्ध कण्ठ से बोला—“हाय मैं अपनी बेटो की बलि कैसे चढ़ा दूँ ? यह तो मेरे पास एक धरोहर है, जिसे सुयोग्य वर को व्याह देना मेरा कर्तव्य है। हमारे वंश की वेल को चलाए रखने के लिए हमें जो कन्या मिली है, भला इसे मौत के मुह में कैसे भेज सकता हूँ ? यह तो घोर पाप होगा।”

पुत्र तुतला कर बोला—“पिता जी ! तो मैं जाता हूँ।”

“नहीं, नहीं मेरे लाल ! मेरे कुल के तारे ! यह कदापि नहीं हो सकता। ब्राह्मण कहने लगा और फिर अपनी पत्नी को सम्बोधित करके बोला—तुम ने मेरा कहना न माना, उसी का फल अब भुगतना पड़ रहा है। यदि मैं शरीर त्यागता हूँ तो फिर इन अनाथ बालकों का पालन पोषण कौन करेगा ? हा देव ! अब मैं क्या करूँ ? और कुछ करने से तो अच्छा यही है कि हम सब एक साथ मृत्यु को गले लगा लें। यही श्रेयस्कर होगा।”—कहते कहते ब्राह्मण सिसक सिसक कर रो पड़े।

ब्राह्मण की पत्नी अवरुद्ध कण्ठ से बोली—“प्राण नाथ ! पति को पत्नी से जो कुछ प्राप्त होना चाहिए, वह मुझ से आप को प्राप्त होगया। पुरुष स्त्री के विवाह का उद्देश्य है वह पूर्ण हो गया। क्योंकि मेरे गर्भ से एक पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हो

चुके हैं।- मेरा कर्तव्य पूर्ण हुआ। अब मेरे न रहने पर भी आप इनका पालन पोषण कर सकते हैं। परन्तु आप के बिना मुझ से यह सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त दुष्टों से भरे इस ससार में अनाथ स्त्री का जीवन दुभर हो जाता है। जिस प्रकार मास के टुकड़े को चील कौए उठा ले जाने की ताक में मण्डराते रहते हैं, उस प्रकार इस नगर में दुष्ट पुरुष विधवा स्त्री को हड़प ले जाने के ताक में लगे रहते हैं। जैसे घी-लगे टुकड़े पर कितने ही कुत्ते भपट पड़ते हैं उसी प्रकार किसी अनाथ स्त्री पर बदमाश लोग भपट पड़ते हैं। आप न रहे तो अपनी लाज की रक्षा और इन बच्चों का लालन पालन कैसे मुझ से होगा? आप के बिना यह बच्चे तड़प तड़प के जान दे देंगे। इस लिए नाथ मुझे ही उस नर भक्षक के पास जाने दीजिए। पति के जीते जी पत्नी का स्वर्गवास हो जाय इस से बढकर और स्त्री के सौभाग्य की बात क्या हो सकती है? मैं पतिव्रता नारी के समान आपकी सेवा-सुश्रूषा करती रही। अपने धर्म का पूर्णतया पालन किया, अब मुझे मरने में कोई दुख न होगा। अतः आप मुझे सहर्ष आज्ञा दे दीजिये कि अपने परिवार के लिए मैं अपने प्राण दे दूँ।”

पत्नी की व्यथा पूर्ण वाते सुन कर ब्राह्मण से न रहा गया। उसने अपनी पत्नी को छाती से लगा लिया और असहाय सा हो कर दीन स्वर में अश्रुपात करने लगा। अपनी पत्नी को प्यार करते हुए बोला—प्रिये! ऐसी वाते मत कहो। पति का कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी की रक्षा और उसके जीते जो उसका साथ न छोड़े, इस लिए मैं अपने प्राण बचा कर तुम्हें भेजू तो मुझ से बड़ा पापी कौन होगा? नहीं, नहीं मैं यह घोर पाप नहीं कर सकता। मैं तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकता।”

माता पिता की वाते सुन कर पुत्री ने दीनता पूर्वक कहा—

“पिता जी! आप मेरी वाते भी तो सुनें, इस के पश्चात् आपकी जो इच्छा हो सोचें। मुझे तो कभी न कभी इस परिवार से चले ही जाना है। अपने परिवार के काम मैं आ सकूँ तो इस से अच्छी मेरे लिए सद्गति और क्या हो सकती है? आप

चले गए तो हम विलख विलख कर उसी प्रकार मर जायेंगे जिस प्रकार सरिता के सूखने पर मछलियाँ । मेरा छोटा भाई मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा । मेरी माँ पर न जाने कितनी विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़े । माँ मर गई तो बिना माँ के हमारा जीवन दूभर हो जायेगा । अतः जिस प्रकार नाव द्वारा नदी को पार किया जाता है इसी प्रकार मुझे उस मनुष्य भक्षी के पास भेज कर आप विपत्ति से पार उतरें । इस से मेरा जीवन भी सार्थक हो जायेगा । और नहीं तो मेरी ही भलाई को दृष्टि में रख कर आप मुझे भेज दें ।”

वेदी की बातें सुन कर माता पिता दोनों के आसू उमड़ आये उन्होंने वेदी को अपने कलेजे से लगा लिया और बारम्बार उसका माथा चूम कर अश्रुपात करने लगे लकड़ी भी रो पड़ी । सबको इस प्रकार रोते देख कर ब्राह्मण का नन्हा सा बेटा अपनी बड़ी बड़ी आंखों में माता पिता और वहन को देखते हुए उन्हें समझाने लगा और बारी बारी से उनके पास जाता और अपनी तोतली बोली में “रोओ मत, रोओ मत, मा रोओ मत, दीदी रोओ मत, पिता जी रोओ, मत” कह कर उन्हें चुप कराने लगा और फिर एक सूखी सी लकड़ी उठा कर बोला — “पिता जी आप मुझे जाने दें, मैं इस लकड़ी से ही उसको इस जोर से मर डालूंगा ।” बालक की तोतली बोली और वीरता का अभिनय देख कर इस सकट पूर्ण घड़ी में भी सबको हसी आ गई । कुछ क्षण के लिए वे अपना दुख भूल गए ।

भीम खड़ा खड़ा यह सारा दृश्य देख रहा था, उस ने सभी की बातें सुन ली थी । ब्राह्मण परिवार को दुखित होते देख कर उसका मन भर आया । अपनी बात कहने का यह सुन्दर अवसर देख कर वह आगे बढ़ा और बोला — “हे ब्राह्मण देवता ! क्या आप कृपा करके मुझे बता सकते हैं कि आप को इस समय क्या दुख है । मुझ से वन पड़ा तो मैं आप को उस दुख से छुड़ाने का प्रयत्न अवश्य करूंगा ।

“देव ! आप इस सम्बन्ध में भला क्या कर सकेंगे हताश हो कर ब्राह्मण बोला ।

“फिर भी बताने में तो कोई दोष नहीं है ।” भीम ने आग्रह

किया ।

“हा, वताने में क्या हर्ज है, ब्राह्मण ने कहना आरम्भ किया— सुनिये ! इस नगर के निकट ही एक गुफा में एक मनुष्य भक्षी पिशाच रहता है । पिछले तेरह वर्ष से वह नगर वासियों पर भाति भाति के अत्याचार कर रहा है । इस नगर का राजा इतना निकम्मा है कि, वह उसके अत्याचारों से नगर वासियों की रक्षा नहीं कर सकता । वह पिशाच पहले जहाँ किसी मनुष्य को पाता मार कर खा जाता था, क्या स्त्रिया, क्या बच्चे, क्या बूढ़ कोई भी उस के अत्याचार से न बच सके । इस हत्या काण्ड से घबरा कर नगर वासियों ने मिल कर उससे बड़ी अनुनय—विनय की कि कोई नियम बना वे लोगोंने कहा— इस प्रकार मनमानी हत्या करना तुम्हारे भी हक में ठीक नहीं है । अन्न, दही, मदिरा आदि तरह तरह के खाने की वस्तुएं जितनी तुम चाहो उतनी हांडियों में भर कर व बेल गाड़ियों में रख कर हम तुम्हारी गुफा में प्रति सप्ताह पहुंचा दिया करेंगे । गाड़ी हाकने वाले आदमी और बेल भी तुम्हारे खाने के लिए होंगे । इन को छोड़ कर अन्य किसी को तंग न करने की कृपा करो ।” वकासुर ने लोगो की यह बात मान ली और तब से इस समझौते के अनुसार यह नियम बना हुआ है कि लोग वारी वारी से एक एक आदमी और खाने पीने की वस्तुएं प्रति सप्ताह उसके पास पहुंचा देते हैं । और इसके बदले में यह बलशाली पिशाच बाहरी शत्रुओं और हिंस्र पशुओं से इस नगर की रक्षा करता है ।

“जिस किसी ने भी इस मुसीबत से इस नगर को बचाने का प्रयत्न किया, उसको तथा उसके बाल बच्चों को इस पिशाच ने तत्काल ही मार कर खा लिया । इस कारण किसी का साहस नहीं पड़ता कि कुछ करे । तात ! इस देश का राजा इतना कायर है कि उससे कुछ नहीं होता जिस देश का राजा अपनी जनता की रक्षा नहीं कर सकता, अच्छा हैं उस देश के नागरिकों के बच्चे ही न हों । अब हमारी व्यथा यह है कि इस सप्ताह में उस नर पिशाच के खाने को आदमी और भोजन भेजने की हमारी वारी है । किसी गरीब आदमी को खरीद कर भेजना चाहू तो इतना धन भी मेरे पास नहीं है, धनवाण तो ऐसा ही करते हैं । मैं इन बच्चों को छोड़

कर चला जाऊ या स्वयं वच कर पत्नी या चालको मे-से किसी को भेजू-यह मुझ से नहीं हो सकता, अतएव अब तो मैंने यही निश्चय किया है कि हम सभी एक साथ उस पिशाच के पास चले जायेंगे। यही हमारी व्यथा है, आप ने पूछी सो बता दी देव, भला आप इस सकट में हमारी क्या सहायता कर सकते हो। भीम ने यह सुन कर मुस्कराते हुए उत्तर दिया—प्रिय वर ! आप इस बात की चिन्ता छोड़ दें ! तुम्हारे स्थान पर उस नर भक्षक वकासुर के पास आज भोजन ले कर मैं चला जाऊँगा।

भीम की बातें सुन कर ब्राह्मण चौंक पड़ा और बोला—“आप भी कैसी बात कहते हैं। आप हमारे अतिथि हैं। आपको मृत्यु के मुंह में भेजू, यह कहा का न्याय है ? देव, मुझ से यह नहीं हो सकता।”

ब्राह्मण को समझाते हुए भीम बोला—द्विज वर ! घबराइये नहीं। मैं ऐसे मंत्र सीखा हुआ हूँ कि जिसके बल से इस श्रद्धाचारी पिशाच की एक न चलेगी। उसका भोजन बतने की बजाय उसे ही मार करके लौटूँगा। कई बलिष्ठ पिशाचों व राक्षसों को इत हाथों से मारे जाते मेरे भाईयों ने स्वयं देखा है। इस लिए आप चिन्ता न करें। हाँ इस बात का ध्यान रखें कि इस बात की किसी को कानो-कान खबर न हो, क्योंकि यह बात फैल गई तो फिर मेरी विद्या अभी काम न देगी।”

भीम को डर था कि यह बात फैल गई तो दुर्योधन और उस के साथियों को पता चल जायेगा कि पाण्डव एक चक्रा-नगरी में छुपे हुए हैं। इसी लिए उसने इस बात को गुप्त रखने का आग्रह किया था। ब्राह्मण को जब विश्वास हो गया कि वास्तव में इस के पास एक विचित्र विद्या है, जिसके बल से वह पिशाच को मार सकता है, और उसका बाल बाका भी न होगा, तो उसने भीम की बात मान ली। इस से ब्राह्मण परिवार की सारी व्यथा का अन्त हो गया और अपने अतिथियों के प्रति उन्हें बड़ी श्रद्धा हो गई।

भीम को जब निश्चय हो गया वह वकासुर के पास भोजन सामग्री ले कर जा सकता है तो वह फूला न समाया। उसके अंग

अंग में बिजली सी दौड़ गई। जब चारों भाई भिक्षा ले कर लौटे तो उन्होंने देखा कि भीमसेन के मुख पर असाधारण आनन्द की झलक है। युधिष्ठिर ने तत्काल ताड़ लिया कि भीमसेन को कोई बड़ा कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उन्होंने पूछा—आज भीमसेन बड़े प्रसन्न चित्त प्रतीत होते हैं, क्या कारण है? क्या आज तुमने कोई भारी काम करने की ठानी है?

भीम ने उत्तर में सारी बात कह सुनाई। युधिष्ठिर ने सुन कर कहा—यह तुम कैसा दुस्साहस करने चले हो तुम्हारे ही बलवृत्ते पर तो हम निश्चित रहते हैं। तुम्हारे अपार साहस से हम लाख बेमहल से जीवित यहाँ तक चले आये। तुम्हारे ही बल पर हम दुर्योधन से अपना राज्य छीनने की आशा लगाए बैठे हैं। ऐसे साहसी व बलिष्ठ भाई को हम कैसे हाथों से गवा सकते हैं। गवाने की आप को खूब सूझी?

युधिष्ठिर की इन बातों के उत्तर में भीम बोला—जिस ब्राह्मण के घर में हम इतने दिनों से आश्रय पाये हुए हैं। जिसके घर हम छुपे हैं, जिसने सदा ही हम से प्रेम प्रदर्शित किया, जब उस के परिवार पर विपत्ति पड़ी तो क्या मनुष्य के नाते हमें उसके दुख को दूर करना नहीं चाहिए? भाई साहब हम उस के उपकारों से उद्धृष्ट इसी प्रकार हो सकते हैं। मुझे अपने बल पर गर्व है। मैं अपनी शक्ति को खूब जानता हूँ। तुम इस बात की चिन्ता मत करो जो वारणावत से आप को यहाँ उठा लाया, जिसने हिंडव का वध किया, उस भीम के बारे में आप को न कुछ चिन्ता करनी चाहिये और न भय। मेरा वकासुर के पास जाना ही कर्तव्य है।

इसके पञ्चाशत नियमानुसार—नगर वासी मंदिर, अन्न, दही आदि खाने पीने की वस्तुएँ गाड़ी में रख कर ले आये। उस गाड़ी में दो काले बैल जुड़े हुए थे। भीमसेन हसता हुआ उछल कर गाड़ी में बैठ गया। ब्राह्मण परिवार मन ही मन उसकी विजय की कामना करने लगा। नगर वासी भी बाजे बजते हुए कुछ दूर तक उसके पीछे चले। एक निश्चित स्थान पर लोग रुक गए और अकेला भीमसेन गाड़ी दौड़ाता हुआ आगे चल पड़ा। उस समय

शेष चारो भाई भीम की हसरत भरी नजरों से देख रहे थे।

गुफा के निकट पहुच कर भीमसेन ने देखा कि चारो ओर स्थान स्थान पर हडियां ही हडिया बिखरी पड़ी हैं। रक्त के चिन्ह, मनुष्यों व पशुओं के बाल खाल इधर उधर पड़े हुए हैं। चारो ओर बड़ी दुग्ध आ रही है। आकाश में गिद्ध और चीले मण्डरा रही हैं।

इस का भी भत्स दृश्य की तनिक भी चिन्ता न करते हुए भीम ने गाड़ी वहीं खड़ी कर दी। और सोचने लगा कि—“गाड़ी में बड़ा स्वादिष्ट भोजन लगा है ऐसा खाना फिर कहां मिलेगा। वकासुर का वध करके यह भोजन खाना ठीक नहीं होगा, क्योंकि मार-धाड़ में क्या पता यह वस्तुएं बिखर कर खरोब हो जायें और किसी काम की भी न रहे। इस लिए यही ठीक है कि इन्हे यहीं सफा चट कर जाऊँ।”

उधर वकासुर मारे भूख के तड़प रहा था। जब बहुत देर हो गई तो बड़े क्रोध के साथ गुफा से बाहर आया। देखता क्या है कि एक मोटा सा आदमी बड़े आराम से बैठा हुआ भोजन कर रहा है। यह देख कर वकासुर की आँखें लाल हो गईं। इतने में भीमसेन की नजर भी उस पर पड़ी। हसरत हुए उसे पुकार कर कहा—“वकासुर कहो, चित्त तो प्रसन्न है।”

भीमसेन की इस छिठाई को देख कर वकासुर क्रोध से जल उठा और तेज़ी से भीमसेन पर भपटा। उस का शरीर बड़ा लम्बा चौड़ा था। सिर और पूछो के बाल भी आग की तरह लाल थे। मुह इतना चौड़ा था कि लगता था इस कान से उस कान तक फटा हुआ है। स्वरूप इतना भयानक था कि देखते ही रोगटे खंडे हो जाये।

भीमसेन ने जब वकासुर को अपनी ओर आते देखा तो उसकी ओर से पीठ फिर ली और कुछ भी परवाह किए बिना खाने में ही लगा रहा। वकासुर ने निकट आ कर भीमसेन की पीठ में जोर से एक मुक्का मारा : पर जैसे उसे तो कुछ हुआ ही नहीं। वह

शांति पूर्वक बैठा हुआ दही खाता-रहा। तब वकासुर को और भी अधिक क्रोध आया और उस ने अधिकाधिक जोर से प्रहार करने आरम्भ कर दिये। भीम सेन जब दही खा चुका तब पलट कर उसकी ओर रुख किया, हस कर बोला—“वकासुर! तू तो थक गया होगा, कुछ आराम करले।” वकासुर इस उपहास से चिड़ गया और एक सूखे वृक्ष को उठा कर उस के ऊपर दे मारा। परन्तु भीम सेन विद्युत् गति से ऐसा छिटका कि वृक्ष की एक टहनी भी उसके शरीर को न लगी। उलटा वकासुर ही वृक्ष के साथ पृथ्वी पर आ गिरा। भीम सेन ने दौड़ कर एक ऐसी ठोकर मारी कि वकासुर आँधे मूँह भूमि पर गिर पड़ा। भीम ने कहा—“ले अब कुछ देर आराम से सुस्ताले।” वकासुर थक गया था, कुछ देर तक वह न उठ सका। तब भीम ने उसे ठोकर मार कर कहा—“अब उठ और सामना कर।”

वकासुर उठा और उस पर आक्रमण करने को बढ़ा पर भीम ने पहले ही प्रहार कर दिया, वह बार बार उस के प्रहारों को रोकने का प्रयत्न करता पर लड़खड़ा कर गिर पड़ता। आखिर एक बार भीम ने उसे पकड़ कर सिर से ऊपर उठा लिया और कहने लगा “वकासुर तू खाता तो बहुत है। इस नगर के कितने ही निरपराधी मनुष्यों को तू खा चुका। नगर से आये हुए स्वादिष्ट भोजनों से तू वर्षों से पेट पूजा करता रहा है। पर तुझ में न बजन है और न बल। बिल्कुल गिद्ध ही रहा। ले अपनी नर्क गति को जा।”—और उसे इस जोर से एक शिला पर पटखा कि वकासुर के प्राण पखेरू उड़ गए। उस के मुँह से रक्त की धारा वह निकली।

कुछ लोगों का मत है कि भीम ने अपने घुटने से उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़ दी थी। जो भी हो भीमसेन की मारसे उस नरभक्षी का प्राणान्त हो गया। तब भीमसेन ने उसे बार बार उलट पलट कर देखा और जब उसे विश्वास हो गया कि वकासुर ससार से चल बसा तो उसने शव को घसीट लिया और नगर के फाटक पर ले जा कर फटक दिया। फिर घर जा कर स्नान किया और भाइयों से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह आनन्द और गर्व के मारे फूले न समाये

नगर पर वकासुर का शव पड़ा देख कर सारे नगर वासी प्रसन्न हो कर उसे देखने एकत्रित हो गए। उसकी भैसासी विशाल काया को क्षत विक्षत देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कौन महाबली है जिसने इस नर पिशाच से हमें अभय प्रदान किया? यह प्रश्न सब की जिह्वा पर थिरक रहा था। आज किसकी बारी थी इस राक्षस के पास जाने की इस बात की अन्वेषण करते २ नगर निवासी उसी ब्राह्मण के घर पहुँचे। जहाँ पाण्डव भीम के शरीर को मर्दन कर रहे थे। हो रही चेष्टा को और भीम को देखते ही वे पहचान गये कि यही वीर पुरुष है जिसे पक्वान्नादि देकर विदा किया था। और इसी के महापराक्रम से आज समस्त नगर वासियों को जीवन दान प्राप्त हुआ है। हर्षोन्मत्त हुए नागरिकों ने पाण्डवों को घेर लिया और नाचने कूदने एवं जय जयकारों से आकाश को गुंजायमान करने लगे।

युधिष्ठिर भीम आदि पाण्डव जिस स्थिति से बचे रहने के प्रयत्न में वेश परिवर्तन रूप पटाक्षेप किये हुए थे दुर्दैव कहिए अथवा सद्भाग्य प्रकृति के एक सकेत ने ही उस छद्मवेश को समाप्त कर दिया।

एक चक्री नगर के निवासी अपने उपकारी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन तो कर रहे थे परन्तु अभी तक उन्हें यह पता नहीं था कि यह ससर्थ पुरुष वास्तव में है कौन? इसी समय वहाँ के युवराज ने कुछ सेवकों सहित वहाँ पदार्पण किया, जो कि इसी अन्वेषण में निकला था। कि अन्ततः ऐसा कौन पराक्रमी है जिसने चिरकालीन हमारे मस्तक कलंक को दूर कर यशस्वी बनाया है?

नगर वासियों के आश्चर्य एवं हर्ष का पारावार उमड़पड़ा जब कि युवराज ने पाण्डवों को देखते ही पहचान कर राजराजेश्वर युधिष्ठिर धर्मराज की जय! के नारे लगावे एवं झुक कर नमस्कार करना आरम्भ कर दिया। वेशक पाण्डवों ने वेष बदला हुआ था परन्तु राजसूय यज्ञ के समय अच्छी प्रकार से परिचय प्राप्त किये हुए युवराज को, पाण्डवों को पहचानने में देरी न लगी। पाण्डवों के वनवास आदि घटना से युवराज पूर्ण परिचित था अतः उसे

वस्तुस्थिति को परखने में देर नहीं लगी। - नाना-प्रकार से कृतज्ञता प्रगट करने के पश्चात् अनुरोधपूर्वक द्रौपदी सहित पांडवों को राज भवन में ला कर उनकी सब प्रकार से सेवा सुश्रूषा करने में राज परिवार ने अपना परम सौभाग्य मंमथा। इस प्रकार पांडवों की सेवा प्राप्ति एवं वकासुर के उपद्रव निवृत्ति रूप दुहरे-हर्ष में एक चक्री नगर आनन्द में तन्मय था।

कोई नहीं चाहता था कि पांडव-यहां से जाये परन्तु युधिष्ठिर ने समझाया कि हम प्रतिज्ञानुसार वन में ही निवास करना चाहते हैं। कौरवों की बिना अनुमति के, कि जित से हम वचन बद्ध हैं अधिक समय तक नगर में निवास करना नैतिकदृष्टि से हमारे लिए ही हानिप्रद होगा। और कुछ दिवस आतिथ्य ग्रहण कर, समस्त राज परिवार राज कर्मचारी एवं नगर निवासियों को साश्रुपूर्ण विदाई ले द्रौपदी सहित पांडवों ने वन-प्रस्थान किया।

प्रश्न यह है कि वकासुर कौन था ?

आइये उम का संक्षिप्त वृत्तांत सुनाए। वह एक नरेश था, पर अपने मूर्ख और पापी परामर्शदाताओं, सखाओं और मित्रों के संगति से उसमें मांस भक्षण का दुर्व्यसन पड़ गया था। एक बार उसकी रसोई के कर्मचारियों ने उस के लिए मांस का प्रवन्ध न देख कर स्मशान भूमि से एक मृत बालक का मांस ला कर पका दिया। उस दिन के मांस का स्वाद भिन्न पा कर उस ने रसोइयों से इसका रहस्य पूछा। जब उसे पता चला कि यह मांस बालक का था तो उसने भविष्य में मनुष्य का मांस खाने का ही निश्चय कर लिया। वह बालकों को पकड़वा मगवाना और उनका मांस खा जाता। उसके इस घोर अन्याय से प्रजा विद्रोही हो गई। अन्यायी नरेश का सिंहासन पर आरुढ़ रहना देश के लिए कलक की बात है। उसे सिंहासन च्युत कर देना ही जनता का धर्म है इस सिद्धान्त के अनुसार जनता ने विद्रोह किया और उसे मार भगाया। तब वह एका चक्री नगर के पास की एक गुफा में रहने लगा और इक्के-दुक्के व्यक्तियों का दध करके खा जाता। कुछ दिनों पश्चात् वह इतना बलिष्ठ हो गया कि सारा नगर मिल कर भी उसे न पछाड़ पाया।

इधर सिंहासन पर एक निकम्मा शासक विराजमान हुआ, उसकी दुष्टता से कभी भी प्रजा एक हो कर उस दुष्ट बकासुर के विरुद्ध न लड़ पाती । अकेला एकाचक्री नगर उस पर काबू न पा सकता था ।

अन्य नगरों की जनता खामोश थी, उसे इस निकम्मे शासक की कुनीतियों के चक्र से ही फुरसत न मिलती थी । और शासक इस बात को समझता था कि यदि नगर से प्रति सप्ताह एक व्यक्ति ले कर बकासुर शत्रुओं से मेरे राज्य की रक्षा करता रहे तो घाटे का सौदा नहीं है । इस प्रकार बकासुर एकाचक्री नगर के रहने वालों के सिर पर लदा हुआ था । जिस का नाश अन्त में महाबली भीमसेन के हाथों हुआ ।

वीर पुरुष अपने पौरुष से प्रजा के दुखों को दूर करने में कभी नहीं हिचकते । वे दूसरों की रक्षा के लिए अपने को भी संकट में डालने पर हर्ष अनुभव करते हैं ।—

—एक विचारक

निकम्मे, अन्यायी और मदांघ शासन को उखाड़ फेंकना जनता का कर्तव्य है ।

.. क्रूर और जन द्रोही अन्त में विनाश को प्राप्त होते हैं ... ।

मुनि शुक्ल चन्द्र



* एकादस परिच्छेद *

गंधर्वों से मित्रता

अनेक कष्ट हसते-हसते सहन करते हुए पाण्डवों ने जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक ओर तो उन्हें हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा और जीवनयापन की समस्या को हलभाने में सदैव सजग और सतत प्रयत्नशील रहना पड़ता; दूसरी ओर उनकी ख्याती एक चक्री नगर के प्रकरण को ले कर दूर-दूर तक फैल चुकी थी। लाक्षाभवन के दाह के कारण पाण्डवों के दाह की जो आन्ति चारों तरफ फैलाई थी, वह दूर हो गई थी, जिस के कारण अनेक ब्राह्मण, मित्र श्रद्धालु भक्त आदि उन के पास पहुँच जाते। अतिथि सत्कार उन के लिए कई बार तो बड़ी ही विकट समस्या बन जाती। पर युधिष्ठिर कभी पीछे न हटते, स्वयं भूखा रहना पसन्द करते, पर अतिथि का समुचित सत्कार करते। कहते हैं एक बार दुर्योधन ने कुछ लोगों को यह कहला दिया कि वन में युधिष्ठिर मुक्त हस्त से दान दे रहे हैं। भिक्षा माँग कर उदर पूर्ति करने वाले, दरिद्री और दान से जीवन यापन करने वाले ब्राह्मणों का एक बड़ा दल दान के लोभ में पाण्डवों के आश्रम पर पहुँच गया और उस ने अपन आने का कारण कह सुनाया।

युधिष्ठिर क्रुद्ध नहीं हुए बल्कि उन्हो ने जो भी सम्भव हो सका, जो उनके उस समय पास था, दान में सब कुछ दे दिया। वनवास में भी उन्हो ने अपने स्वभाव का परित्याग नहीं किया।

उधर एक चक्री नगर का समाचार जब दुर्योधन को मिला, तो जैसे उसके स्वप्नों पर भयंकर वज्रापात हुआ हो। वह बहुत चिन्तित हो गया। उसके लिए लाख के महल से पांडवों का बच निकलना और इतने दिनों तक पता भी न लगना, एक अद्भुत बात प्रतीत हो रही थी। वह जितना ही इस रहस्यमयी बात पर विचार करता था, उतना ही उसे अपने सहयोगियों और अपने भाग्य पर अविश्वास होता जाता था। वह मन ही मन में पुरोचन को गालिया देने लगा। और अपनी योजना की असफलता का उत्तरदायित्व उसी के सिर थोपने लगा। दुःशासन और दुर्योधन, दोनों भाई अपने भाग्य पर अश्रुपात करने लगे।

उन्हो ने अपना दुखड़ा शकुनि को सुनाया—“मामा ! अब बताओ क्या करें ? दुष्ट पुरोचन ने हमें कही का भी नहीं छोड़ा। लाक्षाभवन की घटना को लेकर ससार का प्रत्येक विचारशील व्यक्ति हमें घृणा की दृष्टि से देखेगा। इससे हमें लाभ होने की अपेक्षा पांडवों को ही लाभ हुआ है। इत्यादि अनेक प्रकार से पछताते हुए अपने सिर को पीटने लगे।

पांडवों के प्रति दैवी हुई ईर्ष्या की अग्नि उस के हृदय में और भी प्रवल हो उठी। और पुरातन शत्रुता फिर से जाग उठी। फन कुचले सर्प की तरह दुर्योधन भयंकर रूप से विषवमन एवं चोट करने की सुविधा में घूमने लगा।

+ × + × + + ×

एक बार अर्जुन गाण्डीव धनुष को हाथ में लेकर वन की नैरे को निकला और सुर प्रेरणा से एक पहाड़ पर चला गया। अर्जुन एक शिला पर बैठ कर सुस्ताने लगा कि तभी एक विकराल

मूर्ति दीर्घ कृष्ण काम भील दूसरी ओर से आ निकला। उसके हाथ में प्रचण्ड धनुष बाण था, नेत्र चड़े हुए थे। अर्जुन ने व्या करते हुए कहा—‘हे वनवासी ! इस धनुष को क्यों उठाये फिरता है। यह तो किसी रण वीर के हाथ में ही शोभा देता है। तू क्यों व्यर्थ ही बोलूँ रहा है।’

“तो मैं क्या रण वीर नहीं हूँ ?” क्रुद्ध होकर भील ने पूछा।
अर्जुन उसकी बात पर हस पड़ा।
भील को बहुत क्रोध आया।

“रे युवक ! साहस है तो मेरा सामना कर, मेरा रण कौशल देख, मेरी वीरता का स्वाद चख। क्षण भर में यम लोक पहुँच जायेगा, तब तुझे मेरे शौर्य का ज्ञान होगा ?” भील बोला—और उस ने धनुष पर बाण चढ़ाना आरम्भ कर दिया।

अर्जुन ने कहा—“जा, जा क्यों अपनी शामत बुलाता है, अपना रास्ता नाप।”

परन्तु भील तो अपना धनुष सम्भाल चुका था, अर्जुन को भी गाण्डीव उठाना पड़ा। दोनों में भयकर युद्ध होने लगा। दोनों ओर से चलने वाले तीरों का एक मण्डप सा बन गया। उस समय क्रोध युक्त होकर अर्जुन ने जितने तीर छोड़े, भील ने सभी को निष्फल कर दिया। धनुष युद्ध को व्यर्थ समझ कर अर्जुन ने मल्ल युद्ध आरम्भ कर दिया। भील ने भी अपनी भुजा और ताल ठोक कर सामने आ गया। दोनों परस्पर भिड़ गए। खूब गुत्थम-गुत्था हुए, परन्तु अन्त में इस युद्ध में भी अर्जुन ने उस भील को परास्त करने का उपाय उसकी समझ न आया, परन्तु उसने आशा नहीं छोड़ी। वह उदासीन न हुआ, साहस का दामन अभी तक उसने न छोड़ा था। इतने में उसका दाव लग गया और उसने भील के दोनों पैर पकड़ कर चारों ओर चक्र की भाँति इस जोर से घुमाया कि वेचारा भील अर्धमृत समान हो गया। अर्जुन उसे पृथ्वी पर पटकना ही चाहता था, जिस से किसी शिला से टकरा कर उस के प्राण पखेरू उड़ जाते, कि अनायास ही वह भील आभूषण आदि

से भूषित हो दिव्य रूप में दिखाई दिया। अर्जुन अनायास ही उस के इस विचित्र परिवर्तन को देख कर आश्चर्य चकित रह गया। तुरन्त उसे छोड़ दिया और इस परिवर्तन के रहस्य पर विचार करने लगा।

उसी समय उस ने अर्जुन को पृथ्वी तक मस्तक झुका कर विनय पूर्वक प्रणाम किया और बोला—हे पार्थ ! मैं आप की वीरता साहस और असीम बल से बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। आप के दर्शन करके मुझे जो प्रसन्नता हुई है, उसे कह नहीं सकता। इस वर्ष के समय आप मुझ से जो चाहे माग लें, आप की प्रत्येक कामना को पूर्ण करके मैं प्रसन्नता अनुभव करूँगा।

अर्जुन उसकी इस बात को सुन कर चकित ही रह गया, वह उसे बड़ी विचित्र बात दिखाई दी, सोचने लगा कि इस से क्या मागू ? पता नहीं कितनी शक्ति है इसके पास ? कहा तक यह मुझे दे सकता है। यह बात उसको समझ में नहीं आई। तदपि उसने इस अवसर को भी हाथ से न जाने दिया, वह बोला—“यदि आप मुझ पर इतने दयालु हैं, तो कृपया आप मेरे सारथी बन जाइये।”

“तथास्तु”—वह बोला।

“आप अपना परिचय तो दें। नाम, धाम और यहाँ आने का कारण सभी कुछ बताइये।” अर्जुन ने कहा।

उत्तर में वह कहने लगा—‘मैं कौन हूँ, यहाँ क्यों आया और क्या चाहता हूँ ? यह एक बड़ी कथा है। आप बैठ जाइये और ध्यान पूर्वक सुनिये।’

इतना कह कर वह स्वयं भी बैठ गया, अर्जुन बैठ कर उसकी कथा सुनने लगा—उस ने कहना आरम्भ किया—हे पार्थ ! इसी भरत क्षेत्र में विजयार्द्ध नामक एक सुन्दर पहाड़ है उसकी दक्षिण श्रेणी में इथनू पुर नामक एक नगर है, जो कि अपने विशाल कोट आदि से अत्यन्त शोभायमान है। वहाँ का राजा विद्युत प्रभ था वह नमि के वंश का एक गुणवान एवं सुशील पुत्र था। अपने कौशल

और शुद्ध चरित्र के कारण वह विद्याधरो का अधिपति था। उसके दो पुत्र थे, एक का नाम इन्द्र और दूसरे का विद्युन्माली था। विद्युत् प्रभ ससार से विरक्त हो गया, उसने अपना राज्य इन्द्र को सौंप दिया और विद्युन्माली को युवराज पद से विभूषित कर दिया।

युवराज विद्युन्माली ने कुछ दिनों पश्चात् प्रजा पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। वह नगर वासियों की सुन्दर स्त्रियों और युवा कन्याओं का अपहरण कर लेता, धनिकों को दिन-दिहाड़े लूट लेता, इसी प्रकार के अन्य जघन्य अत्याचार वह करता। जिसके फल स्वरूप सारे नगर में उपद्रव होने लगा। जनता विद्रोही हो गई। वह राज वश को अपना शत्रु समझ कर उसे उखाड़ फेंकने का उपाय करने लगी। परिस्थिति का मूल्यांकन करके इन्द्र बहुत चिन्तित हो गया। उसने अपने भाई को एकान्त में बुला कर समझाया कि—“जनता ही जनार्दन होती है।—राज्याधिकारी जब प्रजा को अपनी पाप कामनाओं का शिकार बनाने लगते हैं, तो वही प्रजा जो पहले उनके प्रत्येक आदेश को सहर्ष स्वीकार करती रहती है, अन्त में अपना शत्रु समझ कर उन पर टूट पड़ती है। कोई भी राजा प्रजा की इच्छा बिना जीवित नहीं रह सकता। इसलिए तुम अपने इस पापाचार को बन्द करो, प्रजा को सन्तुष्ट करो और सुपथ पर आ कर प्रजा की सेवा में तन, मन, धन लगाओ। यही कल्याण मार्ग है।”

परन्तु जिस जीव का भवितव्य ही अच्छा न हो उसे को शुभ शिक्षा भी रुचिकर नहीं होती। वह तो कुपथ छोड़ कर सुपथ पर आने की अपेक्षा इन्द्र को ही अपना वैरी समझने लगा। वह समझता था कि वह राजा है, तो उसे अपनी प्रजा पर मन इच्छित अत्याचार करने का पूर्ण अधिकार है। और इन्द्र जो उसे ही जनता के विद्रोह का कारण समझता है, उस जनता का हिमायती है जो अपने युवराज के विरुद्ध विद्रोह करने का दुस्साहस कर रही है।

इन्द्र को उसके रंग ढग अच्छे नहीं लगे। उसने उसे बुला कर कहा—“विद्युन्माली ! तुम हमारे वश को कलकित कर रहे हो। तुम्हारे कारण हम किसी को मुख दिखाने लायक भी नहीं

रहे। अपनी करतूतों को बन्द करो, वरना मुझे राजा का कर्तव्य पालन करते हुए कुछ करना होगा।”

विद्युन्माली भला इन्द्र की बात का कोई उचित मूल्य क्यों आकता? वह तो मदान्ध था। पाप ने उस की बुद्धि हर ली थी। क्रुध हो कर महल से भाग गया और बाहर रह कर लोगों को लूटने खसोटने लगा। कुछ दिनों पश्चात् वह खर दूषण के वशजों के साथ स्वर्णपुर चला गया और उनके साथ रहने लगा।

अब वह खर दूषण के वशजों को साथ ले कर बार बार राज्य पर आक्रमण कर देता है, जनता को लूटता है, लोगों की बहू बेटियों की लाज लूटता है राज्य को क्षति पहुंचाता है और वापिस चला जाता है। राज्य की शांति भग हो गई है, लोग चिन्तित हैं। शत्रुओं ने इन्द्र को मिटा डालने की कसम खा रखी है।

मैं उसी इन्द्र के सेनापति विशालाक्ष का पुत्र हूँ, नाम है चन्द्र शेखर। मेरे पिता का स्वामी शत्रुदल से सदा ही भयभीत रहता है, मैं उसकी यह दशा न देख सका और एक निमित्तज्ञ से पूछा कि इन्द्र की मुसीबतों को दूर करने वाला, शत्रुदल का सहारक कौन होगा? उस ने मुझे बताया कि जो मनोहर गिरि पर तुम्हें परास्त कर देगा वही इन्द्र की समस्त विपदाओं का अन्त कर सकता है। वही, रथनुपुर की जनता के कष्टों का निवारण करेगा।

वस मैं उसी भविष्यवक्ता के वचन पर विश्वास करके भेप बदल कर यहा रहता था, अहो भाग्य ! आज आपके दर्शन हो गए। आप से प्रार्थना है कि मेरे साथ चलिए और इन्द्र को सकटों से उबारने का प्रयत्न कीजिए क्योंकि आप ही इस में समर्थ हैं।

चन्द्रशेखर की बातों को सुन कर अर्जुन बोला— “यदि मेरे द्वारा कोई व्यक्ति सुखी हो सकता है, तो मैं उसे सुखी देखने के लिए अपने प्राणों पर भी खेल सकता हूँ।

वे दोनों एक वायुयान द्वारा वहा से चल दिए और कुछ ही समय में विजयाद्वं महागिरि पर पहुंच गए। चन्द्रशेखर ने जा कर

इन्द्र को अर्जुन के आने का शुभ समाचार सुनाया । इन्द्र स्वयं अपने साथियों सहित स्वागत को आया, उसने बहुत ही आदर सत्कार किया ।

दूसरी ओर शत्रुदल को भी किसी प्रकार यह समाचार मिल गया कि प्रसिद्ध धनुर्धारी अर्जुन इन्द्र के यहाँ विराजमान है । अतः उन्होंने तुरन्त वायुयानों से आ कर सारे नगर को घेर लिया । रण भेरी बज उठी । अर्जुन भी इन्द्र के साथ मोर्चे पर आ डटा । चुनौती स्वीकार कर ली और युद्ध के लिए तैयार हो गया ।

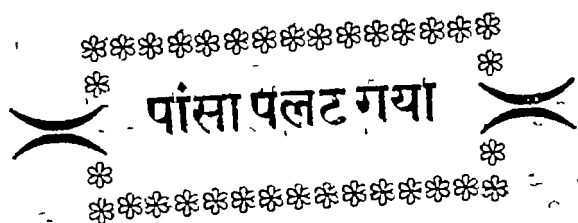
दोनों ओर से महा भयानक युद्ध होने लगा । कुछ ही देर में अर्जुन समझ गया कि विकट शत्रुदल का सामना है । उसे साधारण वाणों से नहीं जीता जा सकता । अतः उसने दिव्यास्त्रों को सम्भाला कितने ही शत्रुओं को उसने नाग पाश में बाध लिया, कितनों को अग्नि वाण से भस्म कर डाला, और अनेक को अर्धचन्द्र वाण से छिन्न भिन्न कर डाला । इस प्रकार तीन दिन घमासान युद्ध में अर्जुन ने शत्रुदल को समाप्त कर दिया और विजय के बाजे बजा कर, जय घोष के साथ इन्द्र सहित महल को वापिस आ गया ।

सारे नगर में हर्ष छा गया, नर नारी अर्जुन की प्रशंसा करने लगे, समस्त गधर्व उसके सामने नत मस्तक हो कर उसकी सेवा में लग गए । सभी गधर्व उसका गुणगान करने लगे और उसके मित्र हो गए । गधर्वों का प्रमुख नेता चित्रांगद अर्जुन का घनिष्ठ मित्र हो गया । चित्रांगद के साथ अर्जुन ने विजयार्द्ध की दोनों श्रेणियों का भ्रमण किया ।

धनुर्विद्या-विशारद चित्रांगद अपने सह योगियों सहित अर्जुन की सेवा में रहता । अन्त में अर्जुन अपने भाईयों के पास वापिस चला आया । चित्रांगद अन्य गधर्वों सहित उसके साथ था, इन सभी ने कितने ही दिनों तक पाण्डवों की सेवा की और हर प्रकार से सहायता करते रहने का वचन दिया ।



* द्वादस परिच्छेद *



पाण्डवों के पास कितने ही ब्राह्मण और दर्शनाभिलाषी लोग आते रहते थे, जो भी हस्तिनापुर पहुँचता, उसी से दुर्योधन पाण्डवों की दशा के सम्बन्ध में पूछता। जो कोई उससे कहता कि पाण्डव बहुत दुखी हैं, बड़े कष्ट उठा रहे हैं, दुर्योधन बड़ा प्रसन्न होता। यह सुन कर उसे सन्तोष मिलता कि पाण्डव त्रसित हैं। वे दुखों में हैं, असह्य कष्टों का सामना कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र जब किसी से सुनते कि पाण्डव वन में, आधी पानी और धूप में तकलीफें उठा रहे हैं, बड़ी यातनाएँ वे सहन कर रहे हैं, तो उनके मन में चिन्ता होने लगती। सोचने लगते कि इस अनर्थ का अन्त क्या होगा? इस के फल स्वरूप कहीं मेरे कुल का सर्वनाश न हो जाय।

वह सोचते—“भीम का क्रोध यदि अब तक रुका हुआ है तो युधिष्ठिर के समझाने बुझाने से। वह कब तक अपना क्रोध रोक सकेगा? सन्तोष की भी तो सीमा होती है। किसी न किसी दिन पाण्डवों का क्रोध सन्तोष का बाध तोड़ कर ऐसा तूफान की भाँति निकलेगा कि जिसमें सारे कौरव-वंश का सफाया हो जायेगा।

यह सोचते ही धृतराष्ट्र का हृदय काप उठता ।

कभी कभी वे सोचने लगते कि— “भीम और अर्जुन जरूर बदला लेंगे । पर दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि न जाने क्यों उस तूफान के बारे में कुछ नहीं सोचते । वे तो अपनी क्रूरता की परा-काष्ठा करने पर उतारू हैं । वे क्यों नहीं देखते कि भीम जैसा काला नाग उनके वश को ही डस जाने को तैयार है ।”

वे कभी अपनी ही भूल के लिए अपने को धिक्कारते । कभी दुर्योधन को दोषी ठहराते, कभी शकुनि और कर्ण को । वे इसी चक्कर में चिन्तित रहते । पर वे कोई उपाय ऐसा नहीं ढूँढ पाते कि जिससे इस द्वेष के दावानल को शान्त किया जा सके ।

किन्तु दुर्योधन और शकुनि बहुत प्रसन्न थे और यदि कभी कुछ सोचते भी पाण्डवों को दुःख देने के उपाय । एक बार कर्ण और शकुनि दोनों दुर्योधन को चापलूसी की बातें करके शब्दों द्वारा पृथ्वी से उठा कर आकाश पर रख रहे थे, और बारम्बार उसकी बुद्धि की सराहना कर रहे थे कि उसने ऐसा विचित्र उपाय किया जिससे युधिष्ठिर की राज्य—श्री अब उस की तेज और शोभा बढ़ा रही है । तभी दुर्योधन बोला— “तुम लोगो के सहयोग से ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ । पर मैं पाण्डवों को मुसीबतों में पड़े हुए अपनी आँखों से देखना चाहता हूँ और यह भी चाहता हूँ कि दुःखों से पीड़ित पाण्डवों के सामने अपने सुख भोग और ऐश्वर्य का भी प्रदर्शन करूँ, जिससे उन्हें अपनी दयनीय दशा का कुछ पता तो चले । झोंपड़ी में रहने वाला पीड़ित व्यक्ति अपनी पीड़ा का सही मूल्यांकन तब तक नहीं कर सकता जब तक वह किसी ऐश्वर्यवान्, वैभवशाली महल के निवासी के ठाठ को नहीं देखता । जब तक शत्रु के कण्ठों को हम अपनी आँखों से नहीं देख लेंगे तब तक हमारा आनन्द अधूरा ही रह जायेगा । कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे हमारी यह इच्छा भी पूर्ण हो जाये ।”

शकुनि ने उत्साहित हो कर कहा— “उपाय...? उपाय की इस में क्या बात है । चलो चले ठाठ-ठाठ के साथ । यह भी

कोई बड़ी बात है ?

कर्ण ने कहा— “दुर्योधन ! यदि मेरी बात मानो तो सैन्य बल के साथ चलो और वन में उन्हे जा कर घेर लो । बड़ा आनन्द आयेगा । थोड़े से ही बल से काम चल जायेगा ।”

दुर्योधन गम्भीरता पूर्वक बोला— “तुम लोग उसे जितना आसान समझते हो, उतनी आसान बात नहीं है । बात यह है कि पिता जी पाण्डवों में हम से अधिक तबोबल समझते हैं । इसी से वे पाण्डवों से कुछ डरते हैं । इसी कारण वन में जाकर पाण्डवों से मिलने की आज्ञा देने में वे डरते हैं कि कहीं इससे हम पर कोई आफत न आ जाये । लेकिन मैं कहता हूँ कि यदि हम ने द्रौपदी और भीम को जंगल में पड़े कष्ट उठाते न देखा तो हमारे इतने करने-धरने का लाभ ही क्या हुआ ? मुझे बस इतने से सन्तोष नहीं है कि पाण्डव वन में कष्ट उठा रहे हैं और हमें उनका इतना विशाल राज्य मिल गया है । मैं तो अपनी आखों से उनका कष्ट देखना चाहता हूँ । इस लिए कर्ण ! तुम और शकुनि कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे वन में जा कर पाण्डवों को चिड़ाने की आज्ञा हमें मिल जाय ।”

कर्ण ने इस उपाय को खोज निकालने का उत्तरदायित्व ले लिया ।

दूसरे दिन पौ फटते ही कर्ण दुर्योधन के पास गया और वड़े हर्ष से बोला— “लो, उपाय मिल गया । वन में कुछ ग्वालों की वस्ती है जो आपके आधीन है । प्रत्येक वर्ष वन में जा कर पशुओं की गिनती लेना राजकुमारों का काम है । बहुत काल से यह प्रथा चली आ रही है । अतः उस बहाने हमें अनुमति मिल सकती है । और वहा जा कर...

कर्ण ने बात पूरी भी न की थी कि दुर्योधन और शकुनि मारे खुशो के उछल पड़े । बोले— “बिनकुल ठीक सूझी है, तुम को ।” कहते कहते दोनों ने कर्ण की पीठ थपथपाई ।

ग्वालों की वस्ती के चौधरी को बुला भेजा और उस से बातें भी कर ली गईं ।

चौधरी ने धृतराष्ट्र से जाकर कहा — “महाराज !” गाए तैयार है । वन के एक रमणीक स्थान पर राजकुमारों के लिए प्रत्येक प्रकार का प्रवन्ध कर लिया गया है । प्रथा के अनुसार राजकुमार उस स्थान पर पधारें, और जैसा कि सदा होता आया है, चौपायों की सख्या, आयु, रंग, नस्ल इत्यादि जाच कर खाते में दर्ज कर लें और बछड़ों पर चिन्ह लगाने का काम पूर्ण कर के वन में कुछ देरी खेल कर थोड़ा मन बहला लें । चौपायों की गणना का काम भी पूर्ण हो जायेगा और उनका मन भी बहल जायेगा ।”

राजकुमारों ने भी धृतराष्ट्र से जाने की अनुमति माँगी पर धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया — “नहीं, द्वैत वन में पाण्डवों का डेरा है । तुम्हारा वनवास के दुखों से क्षुब्ध पाण्डवों के निकट भी जाना ठीक नहीं है । मैं भीम और अर्जुन के निकट पहुँचने की अनुमति नहीं दे सकता । चौपायों की गणना का ही प्रश्न है तो वह कोई और भी कर सकता है ।”

तब शकुनि ने समझाया — “महाराज ! अर्जुन और भीम चाहें कितने भी क्रुद्ध हो, पर वे युधिष्ठिर की आज्ञा बिना कुछ नहीं कर सकते और युधिष्ठिर १३ वर्ष से पूर्व कोई भी कुकर्म न होने देंगे । आप विश्वास रखें कि कौरव उनके पास भी न जायेंगे । मैं स्वयं उन के साथ जाऊँगा और कोई बखेड़ा न खड़ा होने दूँगा । आप इन्हे आज्ञा दीजिए ।”

इस प्रकार शकुनि ने समझा बुझा कर अनुमति ले ली । परन्तु धृतराष्ट्र ने चेतावनी देते हुए कहा — “खबरदार जो पाण्डवों के पास भी गए ।”

अनुमति मिलने पर कर्ण ने शकुनि को बधाई दी और दुर्योधन से बोला — “अब चलो और अवसर मिले तो पाण्डवों का मफाया करदो ”

एक बड़ी सेना और अनेक नौकर चाकर लेकर कौरवों ने द्वैत वन की ओर प्रस्थान किया। दुर्योधन और कर्ण यह सोच कर फूले न समाते थे कि पाण्डवों को कष्ट में पड़े देख कर बहुत आनन्द आयेगा और वे हमारे शाही ठाठ-वाठ देख कर जल उठेंगे।

वन पहुँच कर ऐसे स्थान पर अपने डेरे लगा दिए जो कौरवों के आश्रम से चार कोस की दूर पर था। कुछ देर विश्राम करके वे ग्वालों की वस्तियों में गए और चौपायों की गणना की रस्म अदा की। इसके बाद ग्वालों के खेल और नाच देख कर कुछ मनोरंजन किया। फिर वन घूमने की बारी आई। घूमते घूमते वे एक जलाशय के पास जा पहुँचे वहाँ का स्वच्छ जल और रमणीक दृश्य देखकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। जब इसे ज्ञात हुआ कि पाण्डवों का आश्रम निकट ही है, तो उसने अपने नौकरों को आदेश किया कि डेरे इस जलाशय के पट पर ही लगा दिए जायें। उसने सोचा था कि एक तो यह स्थान रमणीक है दूसरे, यहाँ से पाण्डवों के हाल चाल भी भलि प्रकार देखे जा सकेंगे।

× × × × × ×

जब दुर्योधन के नौकर चाकर जलाशय के तट पर डेरे लगाने गए, तो गन्धर्व राज चित्रांगद ने, जिस के डेरे जलाशय के निकट ही लगे हुए थे, डेरे लगाने से रोक दिया। नौकरों ने जाकर दुर्योधन से कहा कि कोई विदेशी नरेश जल शय के पास पड़ाव डाले है, उसके नौकर हमें डेरे नहीं लगाने देते। दुर्योधन को यह सुन कर बहुत क्रोध आया और गरज कर बोला — “किस राजा की मजाल है कि हमारे डेरे लगाने से रोक दे। जाओ किसी की मत सुनो कोई रोक तो उसे मार कर भगा दो।”

आज्ञा पा कर दुर्योधन के अनुचर फिर गए और तम्बू गाड़ने लगे, गन्धर्व राज के नौकरों ने आकर उन्हें रोका। जब न माने तो दुर्योधन के नौकरों को उन्होंने बहुत मारा, वे बेचारे अपने प्राण ले कर भाग आये।

दुर्योधन को जब पता चला तो उसके क्रोध की सीमा न रही, अपनी सेना ले कर जलाशय की ओर चल पड़ा।

वहा पहुचना था कि गन्धर्वों और कौरवों में युद्ध हो गया। घोर संग्राम छिड़ गया। आमने सामने के युद्ध में कौरवों की सेना न रुक सकी। यह देख कर गंधर्व राज को बहुत क्रोध आया और उसने माया युद्ध आरम्भ कर दिया। ऐसे ऐसे भयानक और विचित्र माया अस्त्र उसने बरसाये कि कौरवों की उनके सामने एक न चली। यहा तक कि कर्ण जैसे महारथियो के भी रथ और अस्त्र चूर चूर हो गए और भागते ही बना। अकेला दुर्योधन युद्ध में डटा रहा। गंधर्व राज चित्रांगद ने उसे पकड़ लिया और रस्सों से बांधकर अपने रथ में डाल लिया। फिर विजय घोष किया। कौरवों की सेना के सभी प्रधान वीर रस्सों में बंध चुके थे, सेना तितर बितर हो गई थी। बचे खुदे सैनिकों ने पाण्डवों के आश्रम में जा कर दुहुई मचाई और रक्षा की प्रार्थना की। बेचारे दुर्योधन का पासा पलट गया, वह गया था ठाठ दिखाने, और पाण्डवों का उपहास करने, बन गया बन्दी और स्वयं उपहास का विषय।

दुर्योधन और उसके साथियो के इस प्रकार अपमानित होने का समाचार सुन कर भीम को बड़ी प्रसन्नता हुई युधिष्ठिर से बोला—“भाई साहब ! गंधर्वों ने वही कर दिया जो हमें करना चाहिए था। दुर्योधन अवश्य ही हमारा मजाक उड़ाने आया होगा। सो उसे ठीक ही सजा मिली। गंधर्व राज को उनके इस कार्य के लिए बधाई भेजनी चाहिए।”

युधिष्ठिर बोले —“भैया ! दुर्योधन के गंधर्वों के हाथों बन्दी होने पर तुम्हें प्रसन्न नहीं होना चाहिए। आखिर को तो अपना भाई ही है। उसे गंधर्वराज की कद से छुड़ाना ही चाहिए। अपने कुटुम्ब के लोग कद में पड़े हो और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे यह कैसे हो सकता है। तुम्हें इसी समय दुर्योधन और उसके साथियो को मुक्त कराने जाना चाहिए।”

भीम झट्टा उठा, बोला—“वाह भाई साहब ! आप तो देवताओं जैसी बातें करते हैं यह बात तो उसके लिए होनी चाहिए जो हमें अपना भाई मानता हो। दुर्योधन तो हमें अपना वैरी समझता है। जिमने विष दे कर और गंगा में डुबा कर मुझे मार

डालने का प्रयत्न किया, जिसने हमे लाख के महल में जला मारने का षडयन्त्र रचा, जिसने सती द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित किया, जिसने कपट से आपका राज्य छीन लिया, उस नीच को भला हम कैसे अपना भाई माने ?”

“नही भीम ! हमे अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। तुम तो धर्म का ज्ञान रखते हो, वह अन्धा हो गया, तो क्या हम भी अन्धे बन जायें। वह जो कर रहा है, अपने लिए ही बुरा कर रहा है। जो दूसरे के लिए गड्ढा खोदता है, वही उसमें गिरता भी है। उसने हमे चिड़ाने का प्रयत्न किया, उसे इसका फल मिल गया। हमे अपने कर्तव्य से नहीं चूकना चाहिए” —युधिष्ठिर ने शांति पूर्वक कहा।

भीम और युधिष्ठिर की बातें हो ही रही थी कि बन्दी दुर्योधन और उसके साथियों का अतिनाद सुनाई दिया। युधिष्ठिर व्याकुल हो उठे और अपने भाईयों से बोले—“भीमसेन की बात ठीक नहीं है। भाईयों ! हमे अभी ही जा कर दुर्योधन को छोड़ा लाना चाहिए।”

युधिष्ठिर के आग्रह पर भीम और अर्जुन दौड़ पड़े और जल्ते ही गंधर्वों की सेना पर टूट पड़े। चित्रागद ने जब अर्जुन को देखा तो उसका क्रोध शांत हो गया। उसने कहा—“मैंने तो दुरात्मा कौरवों की शिक्षा देने के लिए ही यह किया था। यदि आप चाहते हैं तो मैं इन्हे अभी ही मुक्त किए देता हूँ।”

यह कह कर चित्रागद ने उन्हें तुरन्त बन्धन मुक्त कर दिया और साथ ही आज्ञा दी कि वे इसी समय हस्तिनापुर लौट जायें। अपमानित कौरव तुरन्त हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। कर्ण जो पहले ही भाग चुका था, रास्ते में दुर्योधन को मिला। ..

+ + + + +

दुर्योधन बड़ा ही दुःखित था, उसे अपने अपमान का, इस अपमान का कि इतने विशाल राज्य के उत्तराधिकारी को गंधर्व राज

ने वन्दी बना लिया, और उसके शत्रु पाण्डवों के कारण उसकी मुक्ति हुई, बहुत ही दुख था। उसने कर्ण को लक्ष्य करके कहा - “क भाई ! अब मेरा जीवन व्यर्थ है ; इस से तो अच्छा था कि गघराज मुझे मार डालता या पाण्डवों द्वारा मुक्त होने से पहले, मैं युद्ध में मारा जाता। मुझे जितने भयकर अपमान को सह करना पड़ रहा है, वह मेरे लिए असह्य है। मेरे शत्रु पाण्डवों मुझ पर एक अहमान कर दिया, वे कितने प्रसन्न होंगे और डघटना को ले कर मेरा कितना उपहास कर रहे होंगे। मेरी इच्छा है कि मैं अब हस्तिनापुर ही न जाऊ, बल्कि यही अनश करके प्राण लगा दूँ।”

दुर्योधन को इतना दुखी देख कर कर्ण ने उसे सान्त्वना दे हुए कहा—“दुर्योधन ! आखिर इतनी सी बात को ले कर तुम इतना निराश हो गए—

‘गिरने हैं शहमवार मैदाने जग में’

इस में कौन अपमान की बात है। पाण्डवों ने आकर, तुम्हें मुक्ति भी दिला दी तो क्या हुआ ? तुम स्वयं थोड़े ही उनसे सहायता की याचना करने गए थे। मैं तो समझता हूँ कि यह सारा काण्ड पाण्डवों की इच्छा से ही हुआ। अपने ही फैलाए जाल में उन्होंने तुम्हें फासा और स्वयं बड़े भारी दयावान बनने के स्वप्न में मुक्त करा बैठे, उनमें बुद्धि होती तो कहीं वे तुम्हें मुक्त कराते ? तुम्हें तो उनकी इस मूर्खता से लाभ उठाना चाहिए।”

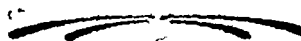
दुर्योधन के मन में बात नहीं बैठी, उस ने कहा—“नहीं, नहीं उनका बिछाया जाल भी हो तो भी मेरी सारी शक्ति उनके सामने हेच हो गई, यह क्या कम अपमान है। अभी से जब उन की इतनी शक्ति है, तो तेरह वर्ष पश्चात् तो और भी बढ़ जायेगी। फिर वे अवश्य ही राज्य छीन लेंगे।”

शकुनि ने उस समय धैर्य बर्णाते हुए कहा—“दुर्योधन तुम्हें भी उलटी ही सूझ करती है। जब जैसे तैसे छल कपट से मैंने

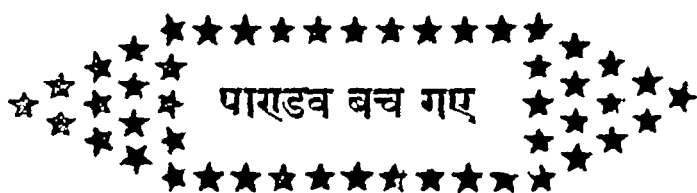
तुम्हे पाँडवों का राज्य छीन कर दिया और उसे भोगने का समय आया तुम आत्म हत्या करने की सोचने लगे। पाँडवों को नहीं देखते, कितनी विपदाएं पड़ रही हैं, तुम्हारे हाथों उनका कितना घोर अपमान हुआ, पर आज भी वे अपनी शक्ति द्वारा राज्य लेने की सोच रहे हैं। यदि आप हत्या करके ही मरना था तो मुझ से यह सब क्यों कराया ? इस से तो अच्छा है कि तुम हस्तिना पुर चलो और पाण्डवों को वन से बुलाकर उनका राज्य उन्हें वापिस कर के चैन से रहो।”

यह बात सुनते ही दुर्योधन के मन में पाण्डवों के प्रति ईर्ष्या को आग जाग उठी, दुर्योधन क्रुद्ध होकर बोला—“नहीं, पाँडव चाहे जो करे अब उन्हें राज्य की ओर मुह भी न करने दिया जायेगा। मैं अपनी इस तलवार की सौगंध खाकर कहता हू कि पाण्डवों के सामने कभी सिर न झुकाऊंगा।”

इस प्रकार क्रोध ने दुर्योधन के मन में आत्मग्लानि के उठते ज्वार को समाप्त कर दिया।



* त्रिदिस परिच्छेद *



दुर्योधन के मन में कभी कभी फिर भी अपमान का दुख जाग उठता। उस ने कहा—“मुझे गधर्वों द्वारा बन्दी बनाने का इतना दुख नहीं है जितना अर्जुन द्वारा मुक्त कराये जाने का। है कोई वीर जो मुझे इस दुख से मुक्त करा सके ? जो कोई पाण्डवों को मारकर मेरे इस दुख का निवारण करेगा, उसे मैं अपने राज्य का एक भाग्य दे दूंगा।”

दुर्योधन की इस घोषणा को सुन कर कनकध्वज राजा ने कहा—“महाराज ! मैं इस काम का बीड़ा उठाता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि आज से सातवें दिन ही पाण्डवों को काल के गाल में भेज दूंगा। यदि मैं यह काम न कर सका तो प्रतिज्ञा करता हूँ कि अग्नि कुण्ड में गिरकर भस्म हो जाऊंगा।”

प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात् वह दुष्ट बुद्धि ऋषियों के एक आश्रम में पहुँचा और कृत्या-विद्या को सिद्ध करने लगा। जब इस बात का पता नारद जी को लगा तो उसी समय पाण्डवों के पास गए उन से कनकध्वज की प्रतिज्ञा तथा उसकी पूर्ति के लिए कृत्या विद्या सिद्ध करने की बात सुनाई।

नारद जी की बात सुनकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा—“संसार में एक धर्म ही महान सहयोगी होता है। मनुष्यों

को सकट से उबारने वाला उसका अपना पुण्य है। अतः हम पर जो घोर सकट आने वाला है उस से बचने का एक मात्र उपाय है कि हम सभी अपने को धर्म ध्यान में लगाए।” भाइयों को धर्म ध्यान की प्रेरणा देकर युधिष्ठिर अपनी समस्त इच्छाओं का विषय भोग हटा कर धर्म ध्यान में तल्लीन हो गए। वे मेरु पर्वत सदृश निश्चल खड़े हो नासाग्र दृष्टि कर आत्मा का चिन्तन करने लगे। उनका विश्वास था कि धर्म ध्यान के प्रसाद से जितने भी अमंगल है वे सब नष्ट हो जाते हैं और निगिदिन नये मंगल होने लगते हैं। धर्म के प्रताप से ही दुख सुख रूप परिणमन होता है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की प्रखर किरणों के लगने से वृक्ष फलता है, इसी प्रकार धर्म धारण से इन्द्र तक का आसन कपायमान होता है।

युधिष्ठिर और उनके भाइयों द्वारा धर्म ध्यान व उपधान तप करने से एक देवता का आसन कम्पायमान हुआ और उसने अपने अवधिज्ञान के बल से जान लिया कि पाण्डवों पर कोई आकस्मिक विपदा आने वाली है। उसी के लिये वे घोर तप कर रहे हैं। वह तुरन्त भू लोक की ओर चल दिया और उसने सकल्प किया कि पाण्डवों को इस सकट से अवश्य ही उबारूंगा।

और प्रकट होकर पाण्डवों से बोला - पांडु पुत्रो ! निश्चित रहो कि कोई भी शत्रु तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। कोई भी सकट पड़ने पर मैं तुम्हारी रक्षा अवश्य करूंगा।” महाराज युधिष्ठिर बोले— ‘लेकिन कनकध्वज द्वारा विद्या सिद्ध कर लेने पर हमारी रक्षा कैसे हो सकेगी ?”

“धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम्हारा सहायक तुम्हारा पुण्य है।”—इतना कह कर वह देव वहां से चल पड़ा और कुछ दूर पर बैठी द्रौपदी को हर कर ले गया।

एक भांड की दृष्टि उस ओर पड़ी। पाण्डवों को उस पर बहुत क्रोध आया। युधिष्ठिर ने उसे पकड़ने के लिए नकुल और सहदेव को आदेश दिया। वे दोनों भ्राता उसी समय धनुष बाण मम्भाल कर उसके पीछे भागे।

तभी एक ब्राह्मण, जो पास ही रहता था, चिल्लाता हुआ आया—“महाराज ! दौड़ो, हिरण मेरी अरणी ले भागा ।”

युधिष्ठिर ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—“हिरण अरणी कैसे ले भागा ?”

“महाराज ! मेरी भीपड़ी के बाहर अरणी की लकड़ी टंगी थी हिरण आया और उस से अपने शरीर की खुजली मिटाने लगा, और खुजली मिटाकर भागने लगा, अरणी उसके सींग में अटक गई । सींग में अरणी अटकने से घबराकर वह बड़ी तीव्र गति से भागा जा रहा है ।” ब्राह्मण ने कहा ।

काठ के चौकोर टुकड़े पर मथनी जैसी दूसरी लकड़ी से रगड़ कर उन दिनों आग सुलगा लेते थे, उसको अरणी कहते थे ।

अर्जुन बोला—“तुम्हें अपनी अरणी की हो लगी है, द्रौपदी को एक दुष्ट हर ले गया, हमे उसकी चिन्ता है ।”

“महाराज मेरी अरणी” ब्राह्मण ने फिर पुकार की ।

युधिष्ठिर ने अर्जुन को रोकते हुए कहा—“ठीक है, इस ब्राह्मण की सहायता हमारे अतिरिक्त और कौन करेगा । जब ऐसे समय ब्राह्मण ने हमे याद किया है, तो हमे अवश्य ही उस की सहायता करनी चाहिए ।”

फिर स्वयं उस हिरण का पीछा करने के लिए दौड़े । उन्हें दौड़ता देख कर भीम और अर्जुन भी साथ हो लिए । परन्तु हिरण तो सींग में अरणी अटक जाने से छलांग लगाता बड़ी तीव्र गति से दौड़ा जा रहा था, अतः तीनों भाई पीछे भागते भागते थक गए, और हिरण आंखों से ओझल हो गया ।

तीनों बुरी तरह थक गए थे और प्यान तीनों को बड़े जोरों से लग रही थी, वे एक वरगद के पेड़ के नीचे बैठ गए । चारों

और दृष्टि डाली पर पानी कही दिखाई न दिया। दूसरी ओर से नकुल और सहदेव आगए।

युधिष्ठिर ने पूछा—“क्यों द्रौपदी कहा है?”

“महाराज। वह दुष्ट न जाने कहा छुप गया, बहुत ढूंढा दिखाई ही नहीं दिया। हमें प्यास बड़े जोरो की लगी है, पानी की खोज में इधर चले आये।” वे बोले।

अर्जुन को बड़ी निराशा हुई और वह कहने लगा—“भाई साहब! आप की एक भूल के कारण देखा। हमें कितने दुख भोगने पड़ रहे हैं। द्रौपदी का हरण हुआ, अब न जाने उसकी खोज में कहा कहा लड़ना मरना पड़ेगा।”

भीम भी बोला—“अधर्म का फल देख लीजिए। आप महाराजाधिराज थे, और आज वन में प्यासे बैठे हैं, जिह्वा प्यास के मारे ऐंठ रही है। और पानी का कही पता ही नहीं है।”

नकुल ने कहा—“भ्राता जी। प्यास के मारे हमारा बुरा हाल है, पानी कही नहीं मिला। मुझे तो ऐसा लगता है कि पानी बिना ही मैं मर जाऊंगा।”

“आओ बैठ कर भ्राता जी की बुद्धि को रोने।” भीम बोला।

युधिष्ठिर समझ गए कि प्यास के मारे सभी बौखला गए हैं। असहनी प्यास ने उनके विश्वास को भी झमोड़ डाला है। उन्होंने सहदेव से कहा—“वृक्ष पर चढ़ कर देखो तो सही कही जलाशय भी दिखाई देता है अथवा नहीं।”

सहदेव वृक्ष पर चढ़ा और उसने चारों ओर देख कर बतलाया कि कुछ दूरी पर कुछ ऐसे वृक्ष दिखाई देते हैं जो जलाशय के तट पर ही होते हैं। कदाचित्त वही जलाशय है।

युधिष्ठिर ने कहा—“तो फिर तुम जाओ और शीघ्र ही जल लेकर आओ।”

सहदेव उस जलाशय पर गया। उस ने सोचा कि पहले स्वयं पानी पी लूँ। फिर कमल के पत्तों में आताओं के लिए पानी ले जाऊंगा। ज्यों ही उस ने पानी में पैर रक्खा एक आवाज आई—“ठहरो ! यह जलाशय मेरे अधिकार में है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तब पानी पीना।”

सहदेव को यह बात सुनकर बड़ा क्रोध आया। वह बोला—“मैं तो प्यास के मारे मरा जा रहा हूँ। वहाँ मेरे भाई प्यास से तड़प रहे हैं और तुझे प्रश्नों की पड़ी है।”

इतना कह कर उसने अपनी शक्ति का विश्वास करते हुए पानी पिया। ज्यों ही पानी पीकर बाहर निकला। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

जब बहुत देरी हो गई और सहदेव न लौटा तो युधिष्ठिर ने नकुल को कहा—“सहदेव को गए हुए बहुत देरी हो गई। पर वह अभी तक नहीं लौटा। देखो तो सही क्या बात है?”

नकुल गया, तो उसे अपने भ्राता को अचेत अवस्था में पड़ा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने बहुत ध्यान से देखा पर उसे वह मृत प्रतीत हुआ वह क्रोध में भर गया, उसने कहा—“कौन है, जिसने मेरे भाई की हत्या की है। मेरे सामने आ।”

बार बार पुकारने पर भी जब कोई सामने न आया तो उसने सोचा कि पहले पानी पी लूँ फिर उस दुष्ट का सहारा करूँगा वह पानी में उतरने लगा। तो वही आवाज आई—“ठहरो ! यह जलाशय मेरे अधिकार में है, पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, तब पानी पीना।”

“अभी ठहर ! तुझे बताता हूँ। तूने ही मेरे भाई की हत्या की है। मैं तुझ से अपने भ्राता की हत्या का बदला लूँगा तनिक मुझे पानी पी लेने दे।” - नकुल ने पानी पिया, जब वह बाहर आया तो मूर्छित होकर गिर पड़ा।

जब नकुल को गए हुए भी बहुत देरी हो गई, तो युधिष्ठिर

ने अर्जुन को भेजा । अपने दो भाईयो को जलाशय के तत्पर मृतावस्था में देखा तो वह फूट फूट कर रोने लगा । उसकी छाती शोक से फटी सी जाती थी । कुछ देरी बाद वह उठा, पानी पीने के लिए बढ़ा । तभी आवाज आई—“ठहरो । इस जलाशय पर मेरा अधिकार है । पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो.. ..”

अर्जुन ने गरजकर कहा—“अच्छा तो तुम ही हो मेरे भाईयो के हत्यारे । दुष्ट सामने आ । पाण्डवों पर हाथ उठाने का मजा अभी चखाता हूँ ।”

दूसरी ओर से ठहाका मार कर हसने की आवाज आई ।

क्रुद्ध अर्जुन ने उसी समय गाण्डीव द्वारा शब्द वेधी वाण चलाने आरम्भ कर दिए । पर ठहाके की आवाज आती ही रही ।

अर्जुन ने गर्जना की—“कौन है ? छुपा हुआ क्यों है, शक्ति है तो सामने आ ।

तब अर्जुन ने सोचा कि पहले पानी पी लूँ, फिर इस की खबर लूँगा । वह ज्यों ही पानी पोककर बाहर आया तट पर आते ही मूर्छित होकर गिर पड़ा ।

जब अर्जुन को गए हुए भी बहुत देरी हो गई तो यह देखने के लिए कि माजरा क्या है ? यह सब कहा खो गए, भीम आया । जलाशय पर तीनों को मृतावस्था में देखा तो भ्राताओं से लिपट लिपट कर रोने लगा । और फिर कड़क कर बोला—‘किसने मेरे भ्राताओं की हत्या की है । सामने आये । मैं अभी ही उसे बता दूँगा कि पाण्डवों पर हाथ उठाने का मतलब है अपनी मृत्यु को निमंत्रण देना ।”

परन्तु कोई उत्तर न मिला । कोई सामने न आया । प्यास से व्याकुल भीम पानी पीने के लिए बढ़ा । तब फिर वही आवाज आई—“ठहरो ! इस जलाशय पर मेरा अधिकार है”

भीम कड़क कर बोला—“अरे दुष्ट ! हम शक्ति द्वारा भी

पानी पीना जानते हैं। तैरना साहस हो तो रोक।” “देखो! तुम्हारे भाइयों ने मत्ता करने पर भी पानी पिया था, वह मृत पड़े हैं। तुम भी ऐसी भूल मत करो।”—आवाज आई।

भीम की आखें लाल हो गई, वह बोला—“अच्छा तो मेरे भ्राताओं के हत्यारे तुम्ही हो। छुप क्यों रहे हो, कायर! तुम्हें अपनी शक्ति पर तनिक सा भी अभिमान है तो सामने आओ।”

कोई सामने नहीं आया। तब भीम ने कहा—“तो फिर मैं जल पीता हूँ। शक्ति हो तो आकर रोक।”

भीम ने पानी पिया और वह भी तट पर आकर बेहोश होकर गिर पड़ा।

जब चारों में से एक भी न लौटा, तो युधिष्ठिर समझ गए कि जरूर मेरे भाई किसी सकट में फस गए हैं। इसी लिए वे भाइयों की सहायता के लिए चल पड़े। जलाशय के पास आये तो चारों को मृत समान देख कर उन के नेत्रों से गंगा-यमुना वह निकली। वे कभी सहदेव के शरीर को टटोलते तो कभी अर्जुन के। कभी नकुल के पास बैठकर रोते तो कभी भीम के।

भीम के शरीर से लिपट कर बोले—“भैया भीम तुम ने कैसी कैसी प्रतिज्ञाएं की थी। क्या वे अब सब निष्फल हो जायेंगी। वनवास के समाप्त होते होते क्या तुम्हारा जीवन भी समाप्त हो गया। देवता की बातें भी आखिर झूठी ही निकली। हाय अब किसके बल पर मैं गर्व करूंगा? किस की गदा के बल पर मैं दुष्टों को चुनोती दूंगा?”

फिर वे अर्जुन के शरीर से लिपट कर विलख विलख कर रोने लगे—“अर्जुन! हाय आज तुम भी मुझे अकेला छोड़ गए। हाय अब मैं द्रौपदी को कैसे मुह दिखाऊंगा? यह तुम्हारा गाण्डीव अब कौन उठायेगा?”

वे नकुल और सहदेव से लिपट कर भी वच्चो की भांति

रोये। वे बार बार सोचते कि ऐसा कौन शत्रु हो सकता है जिसमें इन चारों का बंध करने की सामर्थ्य थी ?

वे अपनी भूल को ही भ्राताओं के बंध का कारण समझ कर पश्चात्ताप करने लगे—“हाय ! मैं ही यदि अधर्म पर पग न बढ़ाता जुआ न खेलता तो दिग्विजय की सामर्थ्य रखने वाले मेरे इन भ्राताओं का बंध न होता। शास्त्रों में ठीक ही कहा है कि जुआ नाशकारी खेल है। मैं ही इन की अकाल मृत्यु का कारण बना। परन्तु यदि वास्तव में मेरी भूल ही के कारण मुझ पर यह विपदा पड़ी, तो मुझे ही उस आजेय शक्ति ने उस का दण्ड क्यों न दिया ? क्यों मेरे प्रिय भ्राताओं को उसका दण्ड भोगना पड़ा।”

करुण क्रुन्दन करते करते युधिष्ठिर को कितना ही समय व्यतीत हो गया। और वे प्यास से व्याकुल होकर जलाशय की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने ज्यों ही पानी पीना चाहा। फिर वही आवाज आई। साथ ही यह भी आवाज आई कि—“युधिष्ठिर महाराज ! पानी न पियो। तुम ने भी यदि अपने भ्राताओं जैसी ही भूल की, मेरे चेतावनी देने के उपरान्त भी पानी पिया, तो तुम्हारी भी वही दशा होगी, जो तुम्हारे भ्राताओं की हुई है।”

आवाज सुनते ही महाराज युधिष्ठिर रुक गए और वह समझ गए कि यह किसी यक्ष की माया है। फिर भी वे यह सोच कर पानी पीने लगे कि—“जब मेरे भ्राता ही संसार में नहीं रहे तो मैं जी कर क्या करूंगा।”

दुखित युधिष्ठिर ज्यों ही जल पीकर बाहर आए तो अपने भ्राताओं के पास आते ही अचेत होकर गिर पड़े।

दूसरी ओर कनकध्वज ने कृत्या-विद्या सिद्ध करली। कृत्या उसके सामने पहुंची और प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूर्ण करने का वचन दिया।

वह बोली—“यदि तुम में अतुल्य शक्ति है, तो जाकर अभी ही पाण्डवों का काम तमाम कर दो।”

कृत्या वहाँ से चल कर उस स्थान पर आई जहाँ पाण्डव मृत समान पड़े थे। उस ने देखा कि पाण्डव मृत समान पड़े हैं, और एक भील उन्हें उलट पलट कर देख रहा है। उसने भील से पूछा—“इन पाण्डवों को क्या हुआ ?”

वह दुखित होकर बोला—‘दीखता नहीं यह मरे पड़े हैं। इन में जीवन का एक भी चिन्ह नहीं है। हाय, हाय, किसी दैत्य ने इन्हें मार डाला।’

“तुम्हें इन के मरने का इतना दुख क्यों है ? क्या तुम इन के दास हो ?”—कृत्या ने पूछा।

आखो में आसू भर कर भील बोला—“मैं क्या सारा ससार इनकी सेवा करने को तैयार रहता था। मैं दास तो नहीं, पर उनका भक्त अवश्य हूँ।”

“ऐसे क्या गुण थे इन में ?”

“यह दुखियो का दुख हरने वाले, न्याय वत, धैर्यवान, सहनशील, दानवीर, धर्म पर अडिग रहने वाले योद्धा, समस्त संसार का भला चाहने वाले, शत्रु के साथ भी मित्रों जैसा व्यवहार करने वाले और असीम साहसी थे। इनके मरने से दुष्टों को खुल खेलने का अवसर मिल गया। दरिद्रों का अब कोई सहारा ही नहीं रहा।” वह भील बोला।

कृत्या ने आश्चर्य से कहा—“अच्छा इतने गुणवत थे पाण्डव। तो फिर कनकध्वज उन्हें क्यों मारना चाहता था ?” “उसे इन की हत्या करने के पुरस्कार स्वरूप दुरात्मा दुर्योधन अपने उस राज्य का एक भाग देने का वायदा कर चुका था, जो एक दिन पाण्डवों का ही था, छल, कपट और अन्याय द्वारा जिसे उस दुरात्माने अपने दुष्ट सहयोगियों के सहारे छीन लिया था।”—भील बोला।

“भील तुम ने मुझे बता कर बहुत ही अच्छा किया। मैं कृत्या हूँ। मुझे कनकध्वज ने सात दिन की घोर तपस्या से सिद्ध

करके पाण्डवों की हत्या करने के लिए भेजा था।”—कृत्या बोली।

भील ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—“आप कृत्या विद्या हैं। और धर्मराज युधिष्ठिर के परिवार का नाश करने के लिए उस दुष्टात्मा के कहने से चली आई? आश्चर्य की बात है। आप को तो उसी दुष्ट का वध करना चाहिए।”

कृत्या भील की बात सुन कर तुरन्त वापिस चली गई और जाते ही कनकध्वज के सिर पर वज्र की भाँति गिरी जिस से उसका सिर फट गया और कनक ध्वज यमलोक सिंघार गया।



भील रूपी देव ने अमृत नोर का छोटा देकर धर्मराज युधिष्ठिर की मूर्छा दूर की। जब वे पूरे तरह सावधान होगए, तो अपने सामने भील को देख कर बोले—“भीलराज! वह कौन शक्ति है, जिसने मुझ मूर्छित किया था। उसो ने मेरे आताओं को अपनी माया से मृत समान कर दिया।”

भील रूपी देव ने कहा—“हे धर्मराज! मेरे प्रश्नों का उत्तर दें तो आप का सब दुख दूर हो सकता है। आप ने उस समय मेरी बात नहीं मानी और पानी पिया।”

युधिष्ठिर समझ गए कि वह भील नहीं बल्कि कोई यक्ष है। अतः तर्क वितर्क करना ठीक न समझ उन्होंने कहा—“आप प्रश्न कीजिए।”

तब भील रूपी देव ने प्रश्न किए और युधिष्ठिर उत्तर देने लगे।

प्रश्न—“मनुष्य का कौन मदा साध देता है?”

उत्तर—“धर्म ही उसका सदा माध देता है।

प्र०—कौन सा ऐसा शास्त्र (विद्या) है जिसका अध्ययन कर के मनुष्य बुद्धिमान होता है।

उ०—मुनि गण की संगति से ही मनुष्य बुद्धिमान होता है।

प्र०—भूमि से भी भारी वस्तु क्या है ?

उ०—सन्तान को कोख में धरने वाली माता भूमि से भी भारी होती है।

प्र०—आकाश से भी ऊँचा कौन है ?

उ०—पिता।

प्र०—हवा से भी तेज चलने वाला कौन है ?

उ०—मन।

प्र०—घास से भी तुच्छ कौन सी चीज है ?

उ०—चिन्ता।

प्र०—विदेश जाने वाले का कौन मित्र होता है ?

उ०—विद्या।

प्र०—घर ही में रहने वाले का कौन साथी होता है ?

उ०—पत्नि और धर्म।

प्र०—मरणासन्न वृद्ध का कौन मित्र होता है ?

उ०—दान, क्योंकि वही मृत्यु के बाद अकेले चलने वाला जीव के साथ-साथ चलता है।

प्र०—वरतनों में सब से बड़ा कौन सा है ?

उ०—भूमि ही सब से बड़ा वरतन है जिस में सब कुछ समा सकता है।

प्र०—मुख क्या है ?

उ०—मुख वह चीज है जो शील और सच्चरित्रता पर स्थित है।

प्र०—किस के छूट जाने पर मनुष्य सर्व प्रिय बनता है ?

उ०—अहभाव के छूट जाने पर !

प्र०—किस चीज के खो जाने से दुख नहीं होता ?

उ०—क्रोध के खो जाने से।

प्र०—किस चीज को गंवा कर मनुष्य धनी बनता है ?

उ०—लालच को।

प्र०—युधिष्ठिर ! निश्चित रूप से बताओ कि किसी का ब्राह्मण होना किस बात पर निर्भर करता है ? उस के जन्म पर विद्या पर या शील स्वभाव पर ?

जो लोए वंभणों वृत्तो, अग्नीव महिओ जहा ।
सया कुसल संदिष्ट, तं वयं वृम माहणं ॥

जिन्हे कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है, और जो संदा अग्नि के समान पूजनीय है, उन्हीं को ब्राह्मण कहता हूँ ।

जो न सज्जई आगंतु, पव्वयंतो न सोयई ।
रमए अज्ज वयणाम्मि, तं वयं वृम माहणं ॥

जो स्वजनादि में आसक्त नहीं होता और प्रवर्जित होने में सोच नहीं करता किन्तु आर्य वचनों में रमण करता है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जयारूयं जहा मडुं, निद्वंत मल पावर्ग ।
रागदोस भयाईयं, तं वयं वृम माहणं ॥

जिस प्रकार अग्नि से शुद्ध किया हुआ सोना निर्मल होता है उसी प्रकार जो राग द्वेष और भयादि में रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

तम पाखो धियाणित्ता, मंग हेण य थावरे ।
जो न हिंसई तिबिहेणं, तं वयं वृम माहणं ॥

जो व्रस और स्थावर प्राणियों को नक्षेप या विस्तार में जान कर त्रिकरण त्रियोग से हिंसा नहीं करता, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जई वा भया ।
मुमं न वयई जो उ, त वयं वृम माहणं ॥

क्रोध में, लोभ से, हास्य तथा भय से भी जो झूठ नहीं बोलता, उमी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

शास्त्रों में कहा है—

कम्मुणा वंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।

वइस्सो कम्मुणा होइ, सुदो हवइ कम्मुणा ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह सब कर्म से होते हैं जिसमें गील नहीं, वह ब्राह्मण नहीं, जिस में दुर्व्यसन है, वह चाहे कितना ही पढा लिखा हो, ब्राह्मण नहीं कहला सकता । चारों वेदों को कण्ठस्थ करके भी यदि कोई चरित्र भ्रष्ट हो तो वह नीच ही है । फिर चाहे उसने ब्राह्मण माता पिता से ही जन्म क्यों न लिया हो ।

प्रश्न—सब से अधिक आश्चर्य की क्या बात है ?

उत्तर—प्रति दिन अपनी आँखों के सामने छोटे बड़े जीवों, बड़े बड़े वलिकण्ठों, महाराजाओं, विद्वानों आदि को मरते देखकर भी मनुष्य भोग लिप्सा में अपने मनुष्य जीवन को गवाता है और अपने रूप, रंग, शक्ति धिया, और ज्ञान पर अहंकार करता है, यही सब से बड़ा आश्चर्य है ।

इसी प्रकार भील रूपी देव ने कितने ही प्रश्न किए और धर्मराज युधिष्ठिर ने उनके तर्क सगत, धर्मात्रुमार और शास्त्रों के अनुसार उत्तर दिए ।

अन्त में देव बोला—“राजन् । आपकी धर्म बुद्धि से मैं बहुत प्रसन्न हूँ । वास्तव में आप धन्य हैं । मैंने सुना था कि आप धर्मराज हैं, परन्तु आज मेरे नामने प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित हो गया । फिर भी अभी तक मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि आप जैसा व्यक्ति जुए जैसे दुर्व्यसन में फस गया ।”

लज्जित होकर युधिष्ठिर बोले—“आप ठीक कहते हैं । मैं राजवंश की रीति का त्याग न कर पाया, और आज अपनी उसी एक भूल का इतना भयकर फल भोग रहा हूँ ।”

“मैं आप के एक भाई को जिला सकता हूँ। बताइये आप इन-चार-मे से किसे जीवित देखना चाहते हैं ?”—देव ने कहा ।

युधिष्ठिर ने पल भर सोचा कि-किसे जिलाऊँ ? और तनिक देर बाद बोले—“मुझे तो सब ही मेरे प्रेम हैं। फिर भी, यदि आप एक को ही जिला सकते हैं, तो जिसका रंग सावला आखें कमल सी, छाती विशाल, और बाहें लम्बी लम्बी हैं और जो तमाल के वृक्ष-सा गिरा पड़ा है, वही मेरा भाई नकुल जी उठे ”

युधिष्ठिर की बात समाप्त होते ही भीम रूपी देव ने अपने देव रूप में प्रगट होकर कहा—“युधिष्ठिर ! भीमकाय शरीर वाले, वालिष्ठ भीमसेन को छोड़कर नकुल को तुम ने क्यों जिलाना ठीक समझा ? मैंने तो सुना था कि तुम भीम को ही अधिक स्नेह करते हो। और नहीं तो कम से कम अर्जुन को ही जिला लो, जिस का रण कौशल सदैव तुम्हारी रक्षा करता रहा। इन दो भाईयो को छोड़कर तुमने नकुल को जिलाने की इच्छा प्रकट की, इसका क्या कारण है ?

युधिष्ठिर बोले—“देवराज ! मनुष्य की रक्षा न भीम से होती है न अर्जुन से। धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है और विमुख होने पर धर्म ही से मनुष्य का नाश होता है। मेरे पिता की दो पत्नियों में से एक मैं, कुन्ती पुत्र बचा हूँ। मैं चाहता हूँ कि माद्री का भी एक पुत्र जी जाये। जिससे हिमाव बराबर हो जाए। इसी लिए मैंने नकुल को जिलाने की इच्छा प्रकट की। धर्म नीति यही कहती है।” पक्षपात से रहित राजन् ! तुम्हारे सभी भाई जी उठेंगे।—“इतना कह कर उस ने अमृत नीर वर्षाया और अचेत भ्राताओं में पुनः चेतना लौट आई।

उस के पश्चात् देव ने द्रौपदी को लाकर देते हुए कहा—“द्रौपदी हरण, मृग द्वारा अरणी ले जाना और आप सभी को मूर्छित करना यह मेरा ही काम था। मैं सौधर्म इन्द्र का प्रति पात्र एक एक देव हूँ। आप के धर्म ध्यान में मेरा आसन डोला और मैंने

पता लगाया कि क्या कारण है। जब मुझे ज्ञात हुआ कि तुम लोगो पर आपत्ति-आने वाली है, मैं वहाँ से चल कर आया और यह सब माया रची। जब तुम लोग मूर्छित अवस्था में पड़े थे, तब कनक ध्वज द्वारा सिद्ध कृत्या तुम्हारा वध करने आई। और तुम्हें मृत समझकर, मेरे समझाने से वह वापिस लौट गई और क्रुद्ध हो कर उसने कनकध्वज की ही हत्या कर दी।

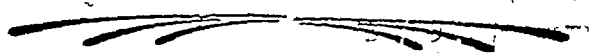
इस अवसर पर मैंने जो तुम्हारी परीक्षा ली, इस से मुझे ज्ञात हो गया कि तुम वास्तव में धर्मराज हो। तुम्हें कोई परास्त न कर सकेगा। अब तुम्हारे बारह वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। तुम्हारा एक वर्ष गुप्त रहने का काल भी ठीक प्रकार व्यतीत होगा। दुर्योधन तुम्हारा पता न लगा सकेगा।”

यह कह कर देव वहाँ से चला गया।

× × × × × ×

इस प्रकार कितने ही कष्ट सहन करते २ बनवास की बारह वर्ष की अवधि समाप्त हो गई। इस बीच अर्जुन ने पाशु पात विद्या सिद्ध कर ली, मामवभी नामक जलाशय के पास युधिष्ठिर की अपने पिता जो देव बने गए थे, से भेंट हो गई। अपने भाई दुर्योधन को मुक्त करके अपनी विशाल हृदयता का प्रमाण दे दिया।

यह कथा सुन कर जो कोई अपने आचार विचार को शुद्ध करने का प्रयत्न करेगा, वह अवश्य ही धर्म पथ पर बढ़ सकेगा।



* चौहदवां परिच्छेद *

तेरहवां वर्ष

पाण्डव दास रूप में

वनवास को अवधि पूर्ण होने पर युधिष्ठिर अपने आश्रम में रहने वाले विद्वानों से बोले —

हे विद्वानो ! धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों के जाल में फस कर हमें अपने राज्य से हाथ धोने पड़े। और महाराज पाण्डु की सन्तान होकर भी वनों में दीन-दरिद्रों की भाँति जीवन व्यतीत करना पड़ा। यद्यपि हम बड़ी कठनाई से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, परन्तु आप लोगों की कृपा व समय समय पर मुनि राजों के सतसग से यह दरिद्र्य पूर्ण जीवन भी हमने बहुत आनन्द पूर्वक व्यतीत किया। परन्तु अब हमारा वनवास काल समाप्त हो गया और अब हमें शर्त के अनुसार एक वर्ष तक अज्ञात वास में रहना होगा। और कितनी कठोर शर्त है यह आप को ज्ञात ही है, अतः हमारे साथ आप लोगों का रहना ठीक नहीं है। आप के रहते हम अज्ञात वास में नहीं रह सकते। हमें प्रत्येक उस व्यक्ति से छुप कर रहना होगा जो भय से अथवा प्रलोभन में आकर दुर्योधन को हमारा पता बतलादे। अतः आप से विदा चाहते हैं। आप हमें आशीर्ष देकर विदा करें।”

कहते-कहते युधिष्ठिर की आँखें डब डबा आईं। विद्वानों ने कहा—“महाराज ! आप के स्वभाव, दया भाव और प्रेम के कारण ही हम वन में आप के साथ रहे। आप के मन की व्यथा

को हम समझते हैं। परन्तु विपत्तिया किस पर नहीं पड़ती। जो विश्व विभूतिया होती हैं, उन पर सकट आते ही हैं, सकटों में ही उनकी परीक्षा होती है। विश्वास रखें कि आप शत्रुओं पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे।”

विद्वानों और अन्य मित्रों को इस बातोंलाप के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने विदा दी। वे सभी हस्तिनापुर की ओर चले गए और वहाँ जाकर लोगों में यह बात फैला दी कि पाण्डव आधी रात को हमें सोता छोड़कर कहीं चले गए। यह बात सुनकर उन लोगों में भान्ति भान्ति की शिकाए उत्पन्न हो गईं जो पाण्डवों के प्रशंसक अथवा भक्त थे। कुछ लोग तो इस समाचार से बहुत ही दुःखित हो गए।

विद्वानों तथा अन्य साथियों के चले जाने के उपरान्त पाण्डव एकान्त में बैठ कर भावी कार्य क्रम पर विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन को सम्बोधित करके कहा—“अर्जुन! तुम लौकिक व्यवहार में निपुण हो। तुम्हीं बताओ कि यह तेरहवा वर्ष किस देश में और कैसे बिताया जाय?”

अर्जुन बोला—“महाराज! स्वयं धर्म देव ने आपको वरदान दिया है, इस लिए मुझे पूर्ण आशा है कि हमारा तेरहवा वर्ष भी सुगमता से कट जायेगा और दुर्योधन हमारा पता न लगा सकेगा चारों ओर पाँचाल, मत्स्य, गाल्व, वैदेह, वालिहक, दशार्ण, शूरसेन, मगध आदि कितने ही देश हैं। उस में से आप जिसे पसन्द करें वही चलकर रहे। हां, मेरी राय यह है कि हम सभी को साथ ही रहना चाहिए। वेप चाहे भिन्न भिन्न हो।”

“फिर भी तुम इन सभी देशों में से किसे पसन्द करते हो?” युधिष्ठिर ने पूछा।

“महाराज! मेरी राय तो यह है कि मत्स्य देश में जाकर रहा जाय। वहाँ का अधिपति महाराज विराट है, उसकी राजधानी बड़ी ही सुन्दर और स्मृद्ध है। आगे आपकी जैसी मर्जी।”
—अर्जुन बोला।

‘हाँ, विराट राजा से तो मैं भी परिचित हूँ, वे बड़े ही शक्ति सम्पन्न, धर्म पर चलने वाले, धैर्यवान और सुलभे हुए वयोवृद्ध हैं, हमें चाहते भी बहुत हैं। दुर्योधन की बातों से भी आने वाले नहीं हैं। इस लिए मेरी भी यही राय है कि उनके यहाँ ही छुप कर रहा जाय।’—युधिष्ठिर ने अर्जुन की बात का अनुमोदन करते हुए कहा।

“अच्छा, यह तो तय हुआ समझों, पर यह भी तो सोचना है कि हम लोग वहाँ किस वेष में रहेंगे और उनका कौनसा काम करेंगे?”—अर्जुन ने प्रश्न उठाया और यह सोच कर उस का जी भर आया कि जिन धर्मराज युधिष्ठिर ने सम्राट पद प्राप्त किया था, वे ही अब विराट के सेवक या दास बन कर रहेंगे। और जिन धर्मराज को छल कपट छू तक भी नहीं गया, उन्हें ही छद्म वेष में रह कर नौकरी करनी पड़ेगी ?

कुछ देर विचार करने के उपरांत युधिष्ठिर बोले—“तो भाई ! मैंने अपने लिए तो सोच लिया। मैं तो महाराज विराट से प्रार्थना करूँगा कि वे मुझे अपने दरबारी काम के लिए रख लें। मैं सन्यासी का सा वेष बना कर कक के नाम से रहा करूँगा। राजा के साथ मैं चौपड़ खेलूँगा और इस प्रकार उनका मन बहलाया करूँगा। चौपड़ खेलने के अतिरिक्त मैं राज पण्डित का काम भी कर लूँगा। ज्योतिष, शकुन, नीति आदि शस्त्रों तथा जो कुछ ज्ञान मुझे है, उस से राजा को हर प्रकार में प्रसन्न रखूँगा। साथ ही सभा में राजा की सेवा टहल भी कर लूँगा। कहें दूँगा कि राजा युधिष्ठिर का मैं मित्र बन चुका हूँ। मैं इस प्रकार रहूँगा कि विराट को कोई सन्देह भी नहीं हो पायेगा और दुर्योधन के गुप्तचर भी न समझ पायेंगे कि वास्तव में मैं कौन हूँ। अब तुम लोग बताओ कि क्या क्या काम करोगे ?”

युधिष्ठिर की बात सुन कर सभी अपने अपने सम्बन्ध में सोचने लगे। कुछ देरी तक सभी विचार मग्न रहे; पूर्ण शांति च्याप्त रही, सभी शांति भग करते हुए युधिष्ठिर बोले—“भैया भीम ! तुम बताओ कि कौन सा काम करोगे ? तुम ने तो आज

तक किसी की बात सहन करनी नहीं जानी। जिसने तुम्हारे स्वाभिमान को चीट पहुँचाई उसी को तुमने अपने क्रोध को शिकार बनाया। तुम ने हिडम्बा सुर का वध किया, एक चक्रा नगरी मे वकासुर का वध कर के नगरवासियों को चिन्ता मुक्त किया। जब भी हम पर विपदा आई तुम अपने असीम बल की पतवार से हमारी नौका पार लगाते रहे। तुम कैसे किसी का सेवक होना स्वीकार करोगे ? और कैसे अपने को काबू मे रख सकोगे। वहा तो जिस के आधीन रहोगे उसकी उचित, अनुचित सभी बातें सहनी पड़ेगी। आह ! तुम कैसे अपने को छुपा सकोगे ? महाबली कैसे किसी का दास रह सकेगा ? मुझे सभी से अधिक चिन्ता तुम्हारी है। जिस प्रकार मुश्क और अगारे को कितना हा छुपा कर रक्खो पर वह छुप नहीं पाता, इसी प्रकार तुम्हारा गुप्त रहना दुर्लभ है।”

कहते कहते युधिष्ठिर का गला रुध गया। उन्होंने अपने आँसू पीते हुए कहा—“मुझे क्या पता था कि मेरा प्यारा भोम कभी किसी का दास बनने पर भी विवश होगा।”

भोम उन्हें धैर्य बन्धाते हुए बोला—“महाराज ! आप क्यों अधीर होते है ? मैं परिस्थित को भलि प्रकार समझता हू। बारह मास की ही तो बात है, जसे तैसे व्यतीत कर लूंगा। मेरा विचार है कि मैं राजा विराट का रसोइया बन कर रहूंगा। आप जानते ही है कि मैं रसोई बनाने मे बडा ही कुशल हू। राजा को ऐसे ऐसे स्वादिष्ट भोजन बना कर खिलाया करूंगा, जो उन्होंने कभी खाये न हो। मेरे कार्य से वे प्रसन्न हो जाये गे। जगल से लकड़िया भो ले आया करूंगा, इस के अतिरिक्त राजा के यहा कोई पहलवान आया करेगा, तो उस से कुश्ती लड कर राजा का मन बहलाया करूंगा। आप विश्वास रक्खे कि मैं कभी अपने को प्रकट न होने दूंगा।”

जब कुश्ती लडने की बात युधिष्ठिर ने सुनी तो उनका मन विचलित हो गया; वे सोचने लगे कि कहीं भीम सेन कुश्ती लडने लडने ही मैं कोई अनर्थ न कर बैठे जिसके कारण कोई और विपत्ति

खड़ी हो जाय और सारा वना बनाया खेल ही धूल में मिल जाये। युधिष्ठिर की बात भीम ने ताडली और गका समाप्त करने के लिए भीम ने कहा—“भ्राता जी। आप निश्चिन्त रहे। मैं किसी को जान से नहीं मारूंगा। हा जो अधिक अकड़ फूँ दिखाया करेगा उसकी हड्डिया अवश्य चटवा दिया करूंगा, पर किसी को प्राण रहित नहीं करूंगा।”

“हा” कहीं कोई नया उत्पात न खड़ा कर देना ?”

“आप विश्वस्त रहे। ऐसी कोई बात नहीं होगी जिस से मेरे कारण आप को किसी विपत्ति में फँसना पड़े। हसते हुए भीम ने कहा।

“भैया अर्जुन ! तुम्हारी वीरता और कान्ति तो छिपाये नहीं छिप सकती। तुम कौन सा काम करोगे ?” युधिष्ठिर ने भीम से आश्वस्त होकर अर्जुन से पूछा।

अर्जुन ने उत्तर दिया—“भाई साहब ! मैं भी अपने को छिपा लूंगा। विराट के रनवाम में रानियों और राजकुमारियों की सेवा टहल किया करूंगा।”

“तुम्हें रनवाम में भला रखेगा कौन ?” युधिष्ठिर हस कर बोले।

“मैं वृहन्नला वन जाऊंगा। मैं सकेद शस्त्र की चूड़िया पहन लूंगा, स्त्रियों की भाँति चोटी गूथ लूंगा और कचुकी भी पहन लूंगा। इस प्रकार विराट के अन्तःपुर में रह कर स्त्रियों को नाचना गाना भी सिखाया करूंगा। जब कोई मुझ से पूछेगा तो वह दूंगा कि मेने द्रौपदी की सेवा में रह कर यह हुनर सीख लिया है।”—अर्जुन यह कह कर द्रौपदी की ओर देख कर मुस्करा दिया।

अर्जुन की बात सुन कर युधिष्ठिर फिर उद्विग्न हो उठे। बोले—“देखो कर्मों की गति कैसी है। हमे कैसे कैसे नाच-नचा रहा

है। जो कांति और पराक्रम में वासुदेव के समान है, जो भारत देश का रत्न है, और जो मेरु पर्वत के समान गर्वोन्मित है, उसी अर्जुन को राजा विराट के रत्नवास में नपुंसक बन कर जाना पड़ेगा और रत्नवास में नीकरी करने की प्रार्थना करनी पड़ेगी। उफ़! हमारे भाग्य में क्या क्या लिखा है?”

इसके पश्चात् युधिष्ठिर की दृष्टि नकुल और सहदेव पर पड़ी। दुःखित हो कर पूछा—“भैया नकुल ! तुम्हारा कोमल शरीर यह दुःख कैसे सहन कर सकेगा ? तुम कौन सा काम करोगे ?”

नकुल जो अब तक अपने सम्बन्ध में पूर्ण विचार कर चुका था बोला—“मैं विराट के अस्तबल में काम करूंगा। घोड़ों को संधाने और उनकी देख रेख करने में मेरा मन लग जायेगा। घोड़े के डलाज का मुझे अच्छा ज्ञान है। किसी भी घोड़े को मैं कान्ठ में भी ला सकता हूँ। फिर चाहे घोड़ा सवारों का हो, अथवा रथ का, सभी को मैं साध लिया करूंगा। विराट से कह दूंगा कि पाण्डवों के यहाँ मैं अश्वपाल के काम पर लगा हुआ था। निश्चय ही मुझे अपनी वसन्द का काम मिल जायेगा।”

अब सहदेव की वारी आई। युधिष्ठिर बोले—“बुद्धि में बृहस्पति और नीति शस्त्र में शुक्राचार्य हो जिसकी समता कर सकते हैं, और मंत्रणा देने में जिसके समान कोई भी नहीं, ऐसा मेरा प्रिय अनुज सहदेव क्या काम करेगा ?”—युधिष्ठिर का गला उस समय अवरोद्ध था।

सहदेव बोला—“भ्राता जी ! जब सभी छोटा से छोटा कार्य करने को तैयार हैं, आप जैसे महाराजाधिराज, व वर्मराजे नीकर बन कर मेव टहल करने को तैयार हो गए, भीम भैया महावली रमोड़िया, अर्जुन जैसा धनुर्धारी नपुंसक और नकुल भैया अस्तबल का मेवक बन कर कार्य करेंगे तो फिर मुझे किस बात की परेशानी है। मैं अपना नाम नान्ति पाल रख कर विराट के चौपायों की देव भाल करने का काम कर लूंगा। भाग्य वालों को किसी प्रकार की बीमारी न होने दूँगा और जगलो जानवरों में उनकी रक्षा किया

कहूंगा कि उनकी संख्या भी बढ़ती जाये, वे हृष्ट पुष्ट हो और दूध भी अधिक देने लगे।”

इस के पश्चात् युधिष्ठिर द्रौपदी से पूछना चाहते थे कि तुम कौनसा काम करोगी, पर उसका साहस न हुआ। मुह से शब्द ही न निकलते थे वे मूक से बने रहे, जो आदरणीया है, देवी के समान जिसकी पूजा होनी चाहिए, वह सुकुमार राज कुमारी किसी की कैसे और कौनसी नौकरी करेगी। युधिष्ठिर को कुछ न सूझा। मन ही मन व्यथित होकर रह गए यह सोच कर भी उनका मन सिहर उठता था कि जिसने सदा ही दास दासियों से सेवा कराई है, जो दूसरो को आदेश देती रही है, वह कैसे किसी की दासी बन कर उसके आदेशो का पालन कर सकेगी ?

द्रौपदी समझ गई, और स्वयं ही बोली—“महाराज ! आप मेरे लिए शौकालु न हो। मेरी ओर से निश्चिन्त रहे। सांगन्ध्री बन कर मैं राजा विराट के रनवास में काम करूंगी। रानियों और राजकुमारियों की सहेली बन कर उन की सेवा टहल भी करती रहूंगी। अपनी स्वतन्त्रता और सतीत्व पर भी कभी आच न आने दूंगी। राजकुमारियों की चोरी गूथने और उनके मनोरजन के लिए हसी खुशी से बातें करने के काम में लग जाऊंगी। मैं कहूंगी कि महारानी द्रौपदी की कई वर्ष तक सेवा शुश्रूषा करती रही हूँ।”

द्रौपदी की बात सुन कर युधिष्ठिर के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसको सहन शीलता की प्रशंसा करते हुए बोले—“धन्य हो कल्याणी ! वीर वश की बेटा हो तुम ! तुम्हारी यह मंगलकारी बातें और सहन शीलता का आदर्श तुम्हारे कुल के अनुरूप हैं।”

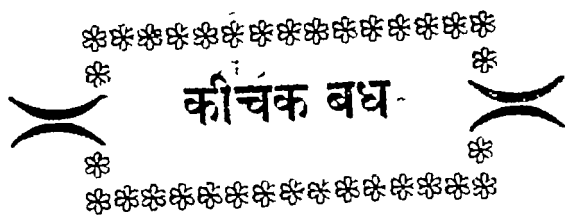


विद्याधर, सेचर आदि कितने ही अनेक प्रकार के लोग अर्जुन के मित्र थे। साथ ही महाराज युधिष्ठिर के पास वह अगूठी भी थी जो उन के पिता पाण्डु को किसी समय एक विद्याधर ने दी

थी। पाठको को याद होगा कि उसी अंगुठी के सहारे पाण्डु नृप कुन्ती से मिले थे। इस प्रकार की कितनी ही सुविधाएँ वे वदलने और रूप रंग आदि इच्छानुसार परिवर्ति न करने के लिए पाण्डवों को उपलब्ध थी। अर्जुन ने उस समय पाण्डु नृप वाली अंगुठी के सहारे अपना नपुंसक जैसा रूप धारण कर लिया और विराट नृप की राजधानी की ओर चल पड़े।



*** पन्द्रहवां परिच्छेद ***



मत्स्य नरेश विराट सिंहासन पर विराजमान थे। एक सेवक ने आकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—“महाराज की जय विजे हो एक सन्यासी आप के दर्शन करना चाहता है। अपना नाम और आने का तात्पर्य कुछ भी नहीं बताता।”

विराट नृप ने सेवक को आदेश दिया कि उसे दरवार में आने दो ।—और कुछ देर बाद एक सन्यासी वेपधारी व्यक्ति विराट के सामने आ उपस्थित हुआ । ब्राह्मण समझ कर विराट ने उस का अभिवादन किया और आने का कारण पूछा ।

वह बोला—“मेरा नाम कक है, मैं महाराजाधिराज युधिष्ठिर का मित्र हूँ। चौसर खेलने, ज्योतिष राजनीति आदि में निपुण हूँ। जब से सम्राट युधिष्ठिर का राज्य दुर्योधन ने छीन लिया और वे जंगलों में चले गए, तभी से वेकार मारा मारा फिर रहा हूँ। सम्राट युधिष्ठिर को मैंने बहुत खोजा, पर कहीं पता न लगा। जीवन यापन का कोई साधन नहीं था। आप के गुणों की प्रशंसा सुनी। युधिष्ठिर भी आप की बड़ी ही प्रशंसा किया करते थे, अतः विवश होकर आप की शरण आया हूँ। यदि आप मुझे अपनी सेवा में रख लें तो अति कृपा हो। महाराज युधिष्ठिर द्वारा पृथु सिंहासनावृद्ध होने पर मैं उनके पाम चला जाऊँगा।”

विराट ने युधिष्ठिर का नाम सुना तो उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुई वह कह बैठे—महाराजाधिराज युधिष्ठिर का जिक्र करके तुम ने हमारे मन में व्यापक दुख को हरा कर दिया। “ओह ! कितना अन्याय हुआ उन के साथ ? वे तो वास्तव में बड़े ही बुद्धिमान, दयावान और धर्म नीति का पालन करने वाले अद्वितीय नरेश हैं। पर उनकी एक भूल ने ही उन्हे राजा से रंक बना दिया। पर तुम उनके मित्र हो, अपने को चौसर के खेल में निपण बताते हो, फिर तुम्हारे रहते युधिष्ठिर चौसर में क्यों हार गए ?”

“महाराज ! उस समय मैं उनके पास नहीं था, उन्हे तो घोखे से हस्तिनापुर बुलाया गया था, यदि मैं उनके साथ होता तो फिर शकुनि की क्या मजाल थी कि वह उन्हे परास्त कर देता।” —कक ने कहा।

“जो भी हो, हम तुम्हे निराश नहीं करेंगे। महाराज युधिष्ठिर के दरबार की भाँति ही इस दरबार को समझो।” विराट बोले।

‘महाराज ! मुझे आप से ऐसी ही आशा थी। वास्तव में आप के सम्बन्ध में महाराज युधिष्ठिर ने जो बताया था, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रहा है।—मेरे साथ महाराज युधिष्ठिर के कुछ और सेवक भी हैं। जो अपने अपने काम में सर्व प्रकार से निपुण हैं। वे भी जीवन, यापन के लिए ही आप की शरण आये हैं।’ कक रूपी युधिष्ठिर ने कहा।

विराट ने उसी समय उन-लोगों को भी बुला लिया। भीम से पूछा—“तुम महाराज युधिष्ठिर के यहाँ क्या काम करते थे ?”

“महाराज ! मैं उनकी रसोई में काम करता था, मुझ से वह बहुत प्रसन्न थे।”

“डील डील से तो तुम्हारे कथन का समर्थन नहीं होता।”

“मुझे वचपन से पहलवानी का शौक रहा है, और महाराज युधिष्ठिर भी मुझे कभी कभी कुश्तियाँ लड़ाकर मनोरंजन किया

करते थे, वस यह डोल डोल उसी की निशानी है ।” —भीम बोला ।

“तो फिर यहाँ भी तुम्हें रसोई के साथ साथ कुश्तियाँ भी दिखानी पड़ा करेगी ।” —विराट ने कहा ।

—और भीम को रसोइया रख लिया गया । फिर नम्बर आया अर्जुन का ।

“क्या तुम भी महाराज युधिष्ठिर के सेवक थे ?” —नपुंसक के रूप में अर्जुन ने विराट ने प्रश्न किया ।

“जी ! मैं सेवक नहीं सेविका थी ।”

तुम्हारा यह रूप क्या है, वस्त्र नारियों से, आवाज और शरीर की बनावट पुरुषों सी । आधा तीतर आधा बटेर ।” —विराट ने हँसते हुए कहा ।

“महाराज ! प्रकृति ने मुझे न पुरुष बनाया और न स्त्री । मैं जाने क्या डूँछा थी प्रकृति की । वस श्रीच श्रीच का ही रूप बन गई । मेरा नाम बृहन्नला है ।” बृहन्नला रूपों अर्जुन ने कहा ।

“तो बृहन्नला ! तुम किस कार्य में दक्ष हो ?”

“महाराज मैं राजकुमारियों को नाचना, गाना, श्रृंगार करना आदि आदि बहुत से काम जिनका सरकार से वास्ता नहीं, रानियों और राज कन्याओं से ही सम्बन्ध है, करती रही हूँ ।”

इसी प्रकार नकुल और महर्देव ने अपने पूर्व निश्चयानुसार अपने अपने योग्य कार्य बताए । विराट ने युधिष्ठिर के नाम पर उन्हें उनकी मन पसन्द काम दे कर नौकर रख लिया । द्रौपदी और बृहन्नला को रत्नवास में लगा दिया गया ।

चूँकि राज पण्डित के स्थान पर नियुक्त कर दिये गए थे, वे विराट के साथ घोर खेल कर दिन व्यतीत करते, समय समय पर

उचित परामर्ग देते और नीति सम्बन्धी बातें बता कर विराट के सामने आने वाली समस्याएं सुलभाते। भीम रसोई में जी लगा कर काम करता, विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना कर राजा को खिलाता और विराट के राज्य के कितने ही प्रहलवानों से कुण्ठी लड़ कर राजा का मनोरंजन करता, इस प्रकार उसने विराट का मन जीत लिया। नकुल और सहदेव अस्तबल व पशुशाला में मन लगा कर काम करते, और घोड़ों तथा पशुओं की उचित प्रकार से देख भाल करके राजा को सन्तुष्ट करने में सफल हुए।

उधर अर्जुन बृहन्नला के रूप में विराट की कन्या-उतरा को नाच गाना सिखाता और द्रौपदी सौरन्ध्री के रूप में रानी मुदेष्णा की मन लगा कर सेवा करती। इस प्रकार वे दोनों ही रनिवास में छुपकर रहते रहे।

X X X X X X X

रानी मुदेष्णा का भाई कीचक बड़ा ही बलवान था, वह अपनी बहन के यहां ही रहता था। उसने अर्जुन भाईयो को साथ लेकर विराट की सेना को सशक्त बना रखा था उसकी वीरता से प्रभावित होकर विराट ने उसे अपनी सेना का सेनापति बना दिया था। वह सारे राज्य पर छा गया था और अपनी चतुरता एवं वीरता से उसने अपना एक ऐसा स्थान पा लिया था कि विराट के राजा होते हुए भी एक प्रकार से मत्सय देश पर कीचक ही राजा करता था। उसकी बात टालने या उसकी इच्छा विरुद्ध चलने का साहस विराट को भी न होता था। अतएव समस्त प्रजा भी रचनात्मक रूप से कीचक को ही राजा मानती और विराट मन ही मन उसमें डरते थे।

कीचक चूलिका नरेश चूलिका का बेटा था। उसे विराट के यहाँ जो शक्ति प्राप्त थी उस से उसे अहंकार हो गया था। वह जो चाहे कर सकता है, उस का उसे अभिमान था।

कीचक ने जब इन्द्राणी समान सुन्दरी द्रौपदी को देखा तो वह एक ही भलक में अपना दिल दे बैठा। सौरन्ध्री के रूप पर

वह मुग्ध हो गया और उसे दासी समझ कर आसानी से ही फंसा लेने की आशा करने लगा। सौरन्ध्री के प्रति उसकी आसक्ति की यह दशा हो गई कि सोते जागते, हर समय उस के नेत्रों में सौरन्ध्री की छवि ही घूमती रहती और वह जैसे तैसे उस से मिलने का प्रयत्न करने लगा।

सौरन्ध्री ने कीचक के नेत्रों में तैरते विषयानुराग को भाँप लिया, वह समझ गई कि यह पापी उसे भूखे नेत्रों से क्यों देखता है और उसके नेत्रों में उमड़ती वासना की बाढ का क्या परिणाम निकल सकता है, वह उसकी शक्ति को अच्छी तरह समझती थी। अतएव वह सदा ही उस से चौकन्ती रहती, और कोई ऐसा अवसर न आने देती, जिस से कि कभी एकान्त में कीचक का सामना हो।

पर वह बेचारी दासी जो थी, अपने पति की वर्तमान दशा को भलि प्रकार समझती थी, अतः यह जानते हुए भी कि उसका पति इतना महान शक्तिवान है कि कीचक जैसे दुराचारियों को एक ही वार से ठिकाने लगा सकता है, अपने मन में उठते भय के ज्वार को मन ही में दफन कर लेती, अपने पति अर्जुन से कभी कुछ न कहती।

वह सोचती, ग्यारह मास बीत चुके, वस एक मास और शेष है, इस समय को जैसे तैसे अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए बिता देना ही ठीक है। कही अर्जुन को इस नीच की दुर्भावना का पता चला गया तो वह आग बबूला होकर इस दुष्ट को दण्डित कर डालेगा और न जाने इस के कारण इसका क्या परिणाम निकले, महागज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा पूरी न हो सकेगी और पुनः उन्हें १२ वर्ष के लिए वनवास मिलेगा।

परन्तु कीचक की पाप दृष्टि तो उन कुत्तों की भाँति सदा उसका पीछा करती रहती थी, जो कि माँस के एक टुकड़े के लिए जोश निकाले फिरते हैं। सौरन्ध्री रूपी दीप शिखा पर कीचक रूपी पतिगा जल मरने तक को तत्पर था। जहाँ यह दीप शिखा पहुँचती, वही कीचक की भूखी दृष्टि आ जाती। सौरन्ध्री के

एक एक पग पर वह अपने हृदय को न्योछावर करने को तत्पर रहता : उस के लिए अब वह केवल उसकी बहन की दासी नहीं रह गई थी; उसके हृदय की रानी, उसके हृदय की एक एक धड़कन में—सौरन्ध्री का नाम बस गया था। वह प्रत्येक क्षण उस के अपनी कामवासना का निकार बनाने की युक्तियां सोचता रहता। वह जब भी सौरन्ध्री को देखता उसके रक्त का ताप मान बढ़ जाता, हृदय की गति तीव्र हो जाती और उस का मन उसकी अपंग निकट खींच लेने के लिए उतावला हो जाता, पर सौरन्ध्री कभी ऐसा अवसर ही नहीं आने देती, जब कि वह कामान्धु एकांत में उसे पा सके।

परन्तु भेड़िये की माद में रह कर भेड़िए का सामना न—यह भला कैसे सम्भव है? एक दिन अनायास ही सौरन्ध्री व सामना हो गया। एक सौरन्ध्री थी और दूसरा था कीचक। इन अतिरिक्त वहां कोई न था।

“सौरन्ध्री !” — कीचक ने पुकारा।

सौरन्ध्री चौंक पड़ी और कीचक को देखते ही उसका सा शरीर कांप उठा। भय उस के मन पर छा गया। अपनी मनोदशा छुपाने की उस ने लाख कोशिश की पर कीचक भाप गया।

“तुम कुछ भयभीत दिखाई देती हो। क्या बात है?”

“जी, कोई देव ... ”

“ओह यह बात है? नहीं नहीं इस बात से भयभीत हो की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं। तुम जानती हो यहाँ मेरा राज है, विराट तो नाम मात्र के लिए है।”

सौरन्ध्री ने वहां से खिसकने का प्रयत्न किया तो दुष्ट कीचक बोल उठा—“भागनी कहा हो? तनिक मेरी छाती पर तो हाथ रख कर देखो। तुम्हारे लिए मेरे हृदय की धड़कनें क्यों कहती हैं सौरन्ध्री। कदाचित नभार में तुम ही एक मात्र सुन्दरी हो जिसे मन्दिर में मेरी आँखों से नींद और हृदय से चैन छीन लिया है।”

पर तुम हो कि मैं जितना तुम्हारे निकट आने का प्रयत्न करता हूँ, उतनी ही तुम मुझ से दूर रहने के लिए प्रयत्नशील रहती हो। आखिर इतनी घृणा का क्या कारण है ?”

“आप को किसी पर-नारी से ऐसी बातें करते लज्जा नहीं आती ?”—सौरन्ध्री ने अपने मनोभावों को छुपाने का प्रयत्न किया और कीचक की बातों से उस के हृदय में उस के प्रति जो घृणा एवं क्रोध का तूफान उठा था, उसे रोके रहने का असफल प्रयत्न किया, पर जैसे किसी कटोरे में मात्रा से अधिक पानी भर देने से पानी छलक पड़ता है, उसी प्रकार सौरन्ध्री का क्रोध भी छलक पड़ा।

“तुम लज्जा की बात कहती हो, पर मेरे हृदय की दशा को नहीं जानती ? तुम्हें पता नहीं कि मैं तुम्हारे लिए किस प्रकार तड़प रहा हूँ। तुम्हारा सौभाग्य है कि मुझ जैसे सर्व शक्ति सम्पन्न सेनापति ने अपना मन तुम जैसी दासी पर दार दिया है। पर वास्तव में तुम्हारे रूप ने मुझे घायल कर दिया है। और तुम्हीं मुझे लज्जा का पाठ पढ़ाती हो। सौरन्ध्री ! मेरे हृदय से इतना अन्याय पूर्ण खेल मत करो।”—कीचक ने बहुत ही प्रेम पूर्ण स्वर से कहा।

सौरन्ध्री की आँखों में खून उबल आया, बोली—“कामान्ध होकर यह मत भूलो कि मैं एक बलिष्ठ गंधर्व की पत्नी हूँ। मेरे साथ पाप लीला रचाने का विचार भी तुम्हारे लिए नाश का कारण बन सकता है। समझे ?”

“सुन्दरी ! तुम्हारे रूप में जितनी शीतलता है, तुम्हारे कण्ठ में भी उतनी ही नम्रता होनी चाहिए। मैं तो समझता था कि तुम मुझे अपने पर आसक्त जानकर हर्षतिरेक से उछल पड़ोगी, पर देखता हूँ कि तुम्हारा दिमाग आस्मान पर चढ़ गया है। गीदड़ के विण्ट की आवश्यकता पड़े तो गीदड़ पहाड़ पर जा चढ़ता है। उम्मीलिए तो कदाचित किसी ने कहा है।

गर गदही के काल में कह दूँ कि मैं तुम्हें पर-किदा।

बहुत मुमकिन है कि वह भी घाम माना छोड़ दे ॥”

—कीचक ने इतना कह कर सौरन्ध्री की ओर घूर कर देखा।

मैं यहा दासी के रूप में हूँ, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं तुम्हारी कामाग्नि का शिकार हो जाऊँ ? —सौरन्ध्री बोली।

—सौरन्ध्री ! जब से मैंने तुम्हें देखा है, मैं तुम्हारे रूप का प्रणसक और तुम्हारे प्रेम का भूखा हो गया हूँ। तुम यदि अपने भाग्य के सितारे को चमकाना चाहो तो मेरे प्रेम को उत्तरे प्रेम में बदल फिर देखो मैं तुम्हें दासी से रानी बना दूँगा।”

“तेरी रानी के पद पर मैं एक बार नहीं सहस्र बार थूकता हूँ। धिक्कार है तुम्हारी आत्मा को धिक्कार है तुम्हारे उच्च पद पर तुम अपनी वासना के मद में इतना भी भूल गये कि मैं किसी की पत्नी हूँ। और पतिव्रता नारी स्वप्न में भी किसी पर पुरुष की ओर नहीं देखती ?”—अपने क्रोध को नयन्त्रित रखते हुए सौरन्ध्री ने कहा।

कीचक का रोम रोम जल उठा, एक बार उसका हाथ खड़ग की मूठ पर गया, पर तत्क्षण सम्भल कर उसने अपने मन नियन्त्रण किया, क्रोध को पीकर बोला—“कल्याणी ! तुम्हारी वाते तो इतनी कटु हैं कि मुझे जैसा वीर उन्हें सहन नहीं कर सकता। पर क्या करूँ बिना जाने पहचाने ही मैं तुम्हें अपना हृदय दे बैठा हूँ। अतएव मैं फिर तुम्हें सुपथ पर आने के लिए अवसर देता हूँ। वास्तव में तुम्हारा यह अलौकिक रूप, दिव्य छवि और तुम्हारी यह सुकुमारता ससार में अतुल्य है। तुम्हारा उज्ज्वल मुख तो चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहा है। तुम जैसी मनोहारिणी स्त्री इससे पहले मैंने ससार में नहीं देखी। कमलो में वास करने वाली लक्ष्मी की साक्षात् मूर्ति को दासी के रूप में देखकर मुझे मानसिक दुःख होता है। हे साकार विभूति, लज्जा, श्री, कीर्ति और काति जैसी देवियों का प्रति मूर्ति ! तुम तो सर्वोत्तम सुख भोगने योग्य हो, पर हाय ! तुम जघन्य दुःख भोग रही हो। मैं तुम्हारा उद्धार कर तुम्हें तुम्हारे अनुरूप स्थान देना चाहता हूँ। तुम चाहो तो मैं तुम्हारे लिए अपनी अन्य पत्नियों को त्याग दूँ, या उन सभी को तुम्हारी सेविकाएँ बना दूँ। मेरी प्रेम याचना स्वीकार करो और अपने भाग्य पर गर्व करो कि दासी होते हुए

भी तुम्हारे रूप पर मुझ जैसा शूरवीर आसक्त हो रहा है। वह शूरवीर जिसके शौर्य से मत्स्य नरेश तक कापता है, जिसकी उगली के इशारे पर सारा मत्स्य देश नाचता है। जिसके असोम-बल के सामने विश्व के सभी योद्धा सिर झुकाते हैं। ऐसे वीर की पटरानी बनने का अवसर तुम्हें मिला है, इसे हाथ से जाने देना बुद्धिमानी नहीं है।”

कीचक को इस सीख का भी सौरन्ध्री हपी द्वीपदी पर कोई प्रभाव न पड़ा, उसने दात पीसते हुए कहा—निर्लज्ज! अपने इसी पौरुष पर इतराता है जो एक स्त्री के रूप के सामने ततमस्तक हो गया। एक सती की लाज का सौदा करने का साहस करता है। मुझे ज्ञात नहीं था कि विराट नरेश के राज प्रासाद में ऐसे नीच लोग भी रहते हैं, जिन्हें लज्जा, शर्म, धर्म और बुद्धि छू तक नहीं गई। मैं अपने सतीत्व के सामने सारे ससार की वीरता, उच्च से उच्च पद और स्वर्ग के वैभव तक को ठुकरा सकती हूँ। याद रख कि मुझ जैसी पतिव्रता के सामने तेरे सारे प्रलोभन और भय व्यर्थ सिद्ध होंगे। खबरदार! जो भविष्य में कभी इस प्रकार का विचार भी तेरे मस्तिष्क में उभरा।”

“ओ दासी! कीचक के नम्र निवेदन को ठुकराने का परिणाम क्या होगा? जानती है?”—कीचक ने क्रोध से जलते हुए कहा।

“जानती हूँ। तेरा क्रोध उबल पड़ेगा और तू स्वयंमेव अपनी मृत्यु को आमन्त्रित करने से न चूकेगा?”—सौरन्ध्री बोली।

अपमानित कीचक सौरन्ध्री के उत्तर से तिल मिला उठा। उस ने सौरन्ध्री की ओर हाथ बढ़ाया, पर वह विद्युत गति से वहाँ से हट गई। क्रोधाग्नि में जलता कीचक देखता ही रह गया।

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

शास्त्रों में ठीक ही कहा है कि वासना लिप्सा में फसे वीर भी कायर हो जाते हैं, उनकी बुद्धि पर वामना परदा डाल देती है और

वह नाश को प्राप्त होते हैं। यह ऐसा दावानल है जो मनुष्यत्व को भस्म कर डालता है।

मदान्ध कीचक पर सौरन्ध्री के दृढता पूर्वक कहे गए कटु वचनों का भी कोई प्रभाव न हुआ। सती द्रौपदी के धर्मकी चेतनावनी भरे वाक्यों से भी उसकी वासना का नशा हिरने न हुआ। वह स्वयं ही बेचैन रहा और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए विभिन्न उपाय करने पर विचार करने लगा।

एक दिन कामदेव का दास कीचक अपनी वहन रानी सुदेष्णा के पास गया। बाल उलभे हुए। नेत्रों में लाली ऐसी लाली जो इस बात का प्रतीक थी कि वह कई दिन से सोया नहीं है। कपड़े भी कई दिन से नहीं बदले गए थे। ऐसी अवस्था में गया वह अपनी वहन के सामने।

सुदेष्णा उसकी इस दशा को देखते ही विस्मित रह गई।

सुदेष्णा ने पूछा—“भैया ! यह कैसी दशा बना रखी है ! कुशल तो है।”

“कुशल तो तुम्हारे हाथ में है।”

“क्यों क्या बात है ?”

“वहन ! चारों ओर से निराश होकर तुम्हारे पास आया हूँ अब तुम्हीं हो जो मुझे जीवन दान दे सको।”

सुदेष्णा का हृदय कांप उठा, एक अजीब अशका उस के मन में जागृत हो गई। बोली—“क्या मेरे बस की बात है ? तब फिर तुम्हें काहे की चिन्ता है। जो बात है निस्संकोच कहो। अपने भैया के लिए अपने प्राण तक दे सकती हूँ।”

“वहन ! मुझे तुम्हारे प्राण नहीं चाहिए, मुझे अपने प्राण चाहिए।”

कौन है ऐसा शत्रु जिसके कारण तुम्हारे प्राणों

आवनी । क्या ससार में ऐसा भी कोई है जिस से तुम इतने भय-भीत और निराश हो गए । मत्स्य देश में तो ऐसा कोई भी नहीं । तुम साफ साफ क्यों नहीं.....”

कीचक बीच ही में बोल उठा । “इस धरती पर ऐसा कोई और नहीं उत्पन्न हुआ जिस से मुझे किसी प्रकार का भय हो । तुम इस सम्बन्ध में निश्चक रहो । पर

जब आते हैं किस्मत के फेर
मकड़ी के जाल में फसते हैं जेर”

“पहेलियों क्यों बुझा रहे हो । साफ साफ बताओ न । मैं तुम्हारी बातों से बेचैन हो उठी हूँ ।” मुदेष्णा बोली ।

“बहन ! विवश हो कर लज्जा की ताक पर खूब कर अपनी बहन के सामने मैं अपनी बात कह रहा हूँ । वह जिस की मुठ्ठी में मेरे प्राण हैं, तुम्हारी नई दासी है, मौरन्धी ।”

कीचक की बात ने मुदेष्णा को और भी चक्कर में डाल दिया यद्यपि एक बार उसकी छाती धड़की, और वह सही बात का अनुमान लगाते लगाते रह गई । शका को विश्वास में बदलने के लिए पूछ बैठी—“भैया ! उस दासी के हाथ में तुम्हारे प्राण कैसे हासिल हैं । वह तो स्वयं हमारी ही कृपाओं की मोहताज है ।”

मुदेष्णा ! रूप में वह शक्ति है जिसके सामने ससार की समस्त शक्तियाँ शक्ति हीन हो जाती हैं ।”—कीचक ने कहा ।

“तो यूँ कहो न कि काम वामना वह बला है जो सिद्ध को कुत्तों के रूप में परिणत कर डालती है ।”—मुदेष्णा ने सब कुछ समझ कर अपने भाई को एक मौख देने के लिए कहा ।

“तुम भी मुझे निराश कर दोगी, ऐसी तो मुझे स्वप्न में भी आती न थी । उनका तो मानो कि तुम्हारे और मेरे शरीर में बर्तने शक्त में कि अभिन्न सम्बन्ध है । तुम ने जिस कोश में पर पसीरे हैं, उसी कोश में मुझे जीवन मिला है । मैं जो भी हूँ, जैसा

भी हूँ. तुम्हारा भाई हूँ । तुम्हारे ही सहारे मैं अपने देश को छोड़ कर यहाँ चला आया । मैं सदा ही तुम्हारे राज्य, तुम्हारे पति के सिंहासन के लिए अपने प्राण तक देने को तैयार रहा । तुम्हारे शत्रुओं को अपना शत्रु समझा । जान बूझ कर मृत्यु से टक्कर लेने में भी नहीं हिचका । क्यों ? क्या केवल तुम्हारे लिए ही नहीं । तुम्हारे सुहाग और तुम्हारे पति के सिंहासन के लिए ही क्या मैंने रण भूमि में शत्रुओं को नहीं ललकारा । आज मेरा काम पड़ा है तो क्या मुझे तुम्हारे उत्तर से लज्जित होना पड़ेगा ?”

रानी सुदेष्णा को यह समझते देर न लगी कि कीचक काम देव के पूरी तरह से अधिकार में आगया है, वासना ने उसे उस स्थान पर लेजा पटखा है जहाँ से वापिस लौटाना असम्भव नहीं तो अति कठिन कार्य अवश्य है फिर भी उस ने कहा—“भैया । सौरन्ध्री मेरी दासी है, तो तुम्हारी भी दासी हो है । तुम सेना पति हो । इस राज्य के सब से ऊँचे व सम्मानित आसन पर आसीन हो । तुम अपनी दासी के मोह जाल में फसो यह तो तुम्हें शोभा नहीं देता । तुम्हारे घर में एक से एक सुन्दर रानी है ।”

“सुदेष्णे । प्रेम और आसक्ति नीच और ऊँच के झगड़ों से ऊपर की बातें हैं । रूप सौंदर्य चाहे जहा हो उसके आकर्षण में कोई कभी कदापि नहीं होती । यह वह जादू है जिसका वार कभी खाली नहीं जाता । तभी तो लोग कहते हैं कि प्रेम अच्छा होता है । मेरे मन में सौरन्ध्री की छवि इतनी चुभ गई है, कि निकालने नहीं बनती । इस सम्बन्ध में कोई भी सीख व्यर्थ है ।”
—कीचक बोला ।

रानी सुदेष्णा ने गम्भीरता पूर्वक उसे समझाने की चेष्टा करते हुए कहा —“मनुष्य को अपनी प्रतिष्ठा, मान और लोक लज्जा के लिए कितनी ही प्रिय वस्तुओं को तिनाञ्जलि देनी पड़ती है । धर्म त्याग का ही रूप है । वीर वह नहीं है जिस के अरीर में अनुत्प शक्ति है, अथवा जो अपने शत्रुओं पर विजय पाता है, बरन वह है जो दुष्ट इच्छाओं को कमजोरियों और अपनी इन्द्रियों पर विजय पाता है । काम मनुष्यत्व का मद्य में बड़ा व भयंकर शत्रु

है, जो उस पर विजय पाता है, वास्तव में वही वीर है। तुम स्वयं वीर हो, अपने को वीर कहलाना चाहते हो, अपने शौर्य पर तुम्हें गर्व है, फिर तुम काम देव के वशीभूत होकर एक दासी के सामने प्रेम याचना करो, या वासना के लिए अपने शौर्य को कलंकित करो; तुम्हीं सोचो यह तुम्हारे लिए लज्जा की बात नहीं तो और क्या है ?” —

‘वहन ! मैं स्वयं अपनी कमजोरी पर लज्जित हूँ। परन्तु अब तो बिना सौरन्ध्री को प्राप्त किए मेरा जीवन दुर्लभ है। जो भी हो। अब तो कोई ऐसा उपाय करो जिस से सौरन्ध्री मुझे स्वीकार करे, वरना मैं उसके मोह में प्राण दे दूंगा।’

“भैया ! सौरन्ध्री जितनी रूपवती है, उतनी ही उच्च विचारों की सती भी। वह किसी बलवान् गंधर्व की पत्नी है। पर—स्त्री पर कुदृष्टि डालने का दोष कर रहे हो। जानते हो यह कितना बड़ा पाप है। पता नहीं इसके कारण तुम्हें कितने नारकीय दुःख भोगने पड़े। यदि तुम इस लिए भी तैयार हो जाओ तो भी सौरन्ध्री पति व्रत धर्म का उल्लंघन करने को तैयार हो जायेगी, इसकी आशा मैं तो कर नहीं सकती। वह तो साक्षात् सती प्रतीत होती है। इसी कारण वताओं में कर ही क्या सकती है ?” सुदेष्णा ने विवशता प्रकट करते हुए कहा।

कीचक बोला —“सुदेष्णे ! लोग जितने उच्च देखते हैं वास्तव में होते उतने ऊँचे नहीं। स्त्रियों के स्वभाव में मैं भलि भाँति परिचित हूँ। प्रत्येक जीव सुख चाहता है। सुख का मोह मनुष्य से दुष्कृत्य से दुष्कृत्य करा डालता है। वैभव का आकर्षण बड़ा ही भयानक होता है। तुम यदि उसे मेरे द्वारा उल्लवध सुख का मोह दशाओं तो विश्वाम रुक्मों कि वह अवश्य पिघल जायेगी। तुम प्रयत्न तो करो।”

‘उसके ललाट पर चमकता तेज कदाचित् तुमने नहीं देखा,—सुदेष्णा ने कीचक को सौरन्ध्री की उच्चता समझाने हेतु कहा—उस के तेज की शक्ति के सामने मैं किसी ऐसी शक्त

की आशा ही नहीं कर सकती जिसे स्वयं में ही अधर्म समझती है। वह तो धर्म के सम्बन्ध में पारंगत है। मैं उस से ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं कर सकती जिसके स्वीकार होने की किंचित मात्र भी आशा नहीं है।”

“ऐसा लगता है कि तुम पर उसकी बातों का जादू चढ़ गया है। वरना तुम तो उसकी मालकिन हो, भला तुम्हारा वह क्या बिगाड़ सकती है ?”

“हा बिगाड़ तो नहीं सकती, पर मैं अधर्म से अपने को सम्मिलित नहीं करना चाहती।”

“तो फिर यह क्यों नहीं कहती कि मैं तुम्हारे काम में कोई सहायता ही नहीं करना चाहती।”

“नहीं, भैया नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। पर तुम तो पत्थर पर जोख लगवाना चाहते हो।”

“यही तो बात है, तुम जिसे पत्थर समझती हो, वास्तव में उसका रूप भले ही पाषाण समान हो, है वह अन्दर से पोला ही, बिल्कुल मोम समान। तुम एक बार प्रयत्न तो करके देखो।”

रानी सुदेष्णा कीचक के वारम्बार आग्रह के कारण विवश हो गई उसी काम के लिए जिसे करना वह स्वयं पाप समझती थी। पर वह पाप करने में घबराती भी थी। उसने कहा — “भैया ! तुम मुझे विवश कर रहे हो, अपनी स्थिति का दुरुपयोग कर रहे हो — अच्छा ! मैं इतना कर सकती हूँ कि मैं सौन्दर्या को तुम्हारे पास एकान्त में अकेली भेज दूँ। और तुम वहाँ उसे समझा बुझा कर प्रेमन्न कर लेना। वस डम में अधिक की आशा मुझ से मत करो।

कीचक को यह बात माननी पड़ी।



एक पर्व के अवसर पर कीचक ने अपने घर बड़े भोज का आयोजन किया और सोम रस तैयार कराया । सौरन्ध्री को फासने के लिए ही यह पड़यन्त्र रचा गया था । रानी सुदेष्णा ने सौरन्ध्री को बुला कर कहा—“कल्याणी ! भैया के यहाँ बहुत ही अच्छा सोम रस तैयार किया गया है । मुझे बड़े जोर की प्यास लगी है । तुम भैया के यहाँ जाओ और एक कलश भर कर सोम रस ले आओ ।”

रानी का आदेश सुनकर सौरन्ध्री (द्रौपदी) का कलेजा धड़क उठा । बोली—“इस अन्धेरी रात्रि में मैं कीचक के यहाँ अकेली कैसे जाऊँ ? मुझे डर लगता है । महारानी आपकी कितनी ही अन्य दासियाँ हैं । उन में से किसी एक को भेज दीजिए । मुझे इस कार्य के लिए क्षमा ही कर दे तो बड़ी कृपा हो ।”

“सौरन्ध्री ! भैया के घर जाने में तुम्हें डर काहे का ? तुम राज महल की दासी हो । तुम्हारे ऊपर कोई निगाह उठा कर भी देख ले तो उसकी आफत आ जाए । जाओ तुम्हें कोई भय की बात नहीं है ।” सुदेष्णा बोली ।

“आपने सदा मेरे ऊपर कृपा की है । क्या आज इस आदेश से मुक्त करके मुझे कृतज्ञ न करेगी ? वास्तव में मैं वहाँ जाते हुए घबराती हूँ । वरना आज तक मैंने आप के किसी आदेश को टालने की चेष्टा नहीं की ।”—सौरन्ध्री ने नम्र शब्दों में विनती की ।

सुदेष्णा ने क्रोध का अभिनय करते हुए कहा—“सौरन्ध्री ! तेरा यह साहस कि मेरी ही अवज्ञा करने लगी ? भय का वहाना बनाकर क्यों धोखा देती है ? साफ साफ क्यों नहीं कहती कि तू जाना नहीं चाहती ?”

सौरन्ध्री ने नम्रता पूर्वक कहा—“महारानी जी ! आप कृपया मेरी नियत पर सन्देह न कीजिए । मैं आपकी दासी हूँ और आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है । परन्तु नन्य यह

है कि सेनापति मुझे कुदृष्टि से देखते हैं। वे कामदेव के बशीभूत होकर धर्म को भूल जाते हैं। उनकी आखों में सदा ही वासना अकित रहती है। वे काम सन्तुष्ट हो मेरे सतीत्व का हरण करना चाहते हैं। अतएव इतनी गहन रात्रि में मैं उनके घर जाती घबराती हूँ। मैं ने जब के ग्रहा नौकरी की थी, आपको याद होगा कि आपने मेरे सतीत्व की रक्षा का वचन दिया था। अतएव आप मुझे वहाँ न भेजिए। वे काम से पीडित हैं, मुझे देखते ही अपमान कर बैठेंगे।”

“तू तो काम से वचने के साथ साथ मेरे भाई पर भी दोषारोपण करने लगी?—रानी सुदेष्णा ने बल खाते हुए कहा—क्या तू अपने को इतनी रूपवती समझती है कि कोई उच्चपदासीन राजकुमार अपनी चन्द्र मुखी रानियों को छोड़ कर तुझ दासी पर कुदृष्टि डालेगा। नहीं यह सब तेरी बहानेबाजी है”

“नहीं, महारानी! आप ऐसा न कहे मैं आप के आदेश का पालन करने के लिए प्राण तक दे सकती हूँ। पर अपने सतीत्व की रक्षा करना भी तो मेरा धर्म है। मैं यही किसी पर दोषारोपण नहीं करती।”—सौरन्धी ने कहा।

“तो फिर तुझे ही जाना होगा। मैं कहती हूँ कि मेरे आदेश का पालन करते हुए तझे कोई आँख उठा कर भी नहीं देख सकता तू कलश लेकर जा और रस लेकर तुरन्त चली आ।

रानी की आज्ञा का पालन करना आवश्यक हो गया। सौरन्धी रोती और डरती हुई कलश लेकर कीचक के घर की ओर चली। मन ही मन वह जिनेन्द्र व शील सहायक देव का स्मरण करती जाती थी। भयभीत हरिणी की भाँति उसने कीचक के रनवास भवन में पदार्पण किया।

उसे देखने ही कीचक आनन्द विभोर हो उठा। हर्षितरेक से उछल कर खड़ा हो गया, बोला—सुन्दरी! तुम्हारा हार्दिक स्वागत है। तुम ने मेरे घर पधार कर मेरे लिए जो उल्लास का प्रादुर्भाव किया है, उसके लिए शत शत धन्यवाद! आज की रात्रि

प्रभाव मेरे लिए बड़ा मंगलमय होगा ।”

सौरन्धी ने अपने मन में उठे घृणा एवं क्रोध के तूफान को रोक कर कहा—“मुझे महारानी जी ने सोमरस लेने के लिए यहाँ भेजा है। कृपया कलश भरवा दीजिए। उन्हें प्यास सता रही है।”

“और मुझे जो तुम्हारे सौंदर्य की प्यास सता रही है, क्या तुम्हें उसका तनिक सा भी ध्यान नहीं। इतनी कठोर मत बनो, मृग नयनी!”—कीचक बोला।

“घर पर आये शत्रु का भी अपमान नहीं किया करते। क्या वह रीति भी भूल गए। कामान्ध होकर असम्य मत बनो। सौरन्धी बोली।

“मैं तुम से सम्यता की शिक्षा नहीं लेना चाहता। मुझे तो प्रेम की तृप्ति की भिक्षा चाहिए।”

“सेनापति! आप राज कुल के हैं और मैं ठहरी एक नीच दासी। फिर आप मुझे क्यों चाहने लगे? यह अधर्म करने पर आप क्यों तुले हुए हैं। मैं पर-नारी हूँ। यदि आप ने मेरा स्पर्श भी किया तो आप का सर्वनाश हो जायेगा। स्मरण रखिये कि मैं एक गधर्व की पत्नी हूँ। वे क्रोध में आगए तो आपका प्राण ही लेकर छोड़ेंगे।”—द्रौपदी ने पुनः उसे सावधान किया।

“कल्याणी! तुम जो भी हो, मेरे लिये रानी हो। मैं तुम्हारे प्रेम के लिए प्राण तक न्योछावर कर सकता हूँ। हाँ वस मुझे एक चार तृप्त कर दो। मैं तुम्हारे लिए स्वर्ग समान वैभव के द्वार खोल दूँगा। मैं तुम्हारी इच्छा पर अपना सब कुछ हाँम करने को प्रस्तुत रहूँगा। मेरा प्रेम ऊपरी नहीं है, इसका सम्बन्ध मेरी आत्मा से है। यदि तुम मेरी हो जाओ तो फिर गधर्व तो क्या ससार की कोई शक्ति मेरे नाश का कारण नहीं बन सकती। प्रिय रानी! आओ मुझे जीवन दान दो।” कीचक ने फिर वही वेमुरी रागिनी छोड़ी।

“मैं तुम्हारी भूर्खता में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहती—

सौरन्ध्री ने आवेश में आकर कहा—मुझे रानी जी ने आज्ञा दी है कि अविलम्ब सोमरस ले आऊ। अतः रस देते हैं या चली जाऊ।”

“कल्याणी ! रस तो कोई और दासी भी ले जा सकती है—कीचक ने कामान्ध होकर कहा—तुम आई हो तो मेरी कामना को तृप्त व मुझे सन्तुष्ट करती जाओ। तुम मधुर कण्ठ वाली सौम्य मूर्ति हो, करूणा की प्रति मूर्ति हो, कठोर मत बनो। आओ जीवन का सच्चा आनन्द ले।”

“पापी ! मुझे दासी रूप में देख कर तेरा मस्तक फिर गया है। मैंने कभी स्वप्न में भी पर पुरुष की ओर कुदृष्टि से नहीं देखा, धर्म विरुद्ध आचरण नहीं किया। अपने धर्म व सतीत्व के प्रभाव से मैं तुम्हें तेरी मदान्धता का मजा चखा दूंगी।”—सौरन्ध्री ने क्रोध में आकर कहा।

अनुनय विनय और अग्रह से काम न बनता देख दुष्ट कीचक ने वल पूर्वक अपनी इच्छा पूर्ण करनी चाही और सौरन्ध्री स्त्री द्रौपदी का हाथ पकड़ कर खींच लिया। सौरन्ध्री ने कलश वहीं पटक दिया और झटका मार कर उस से अपना हाथ छुड़ाकर राज सभा की ओर भागी। क्रोध से भरा और द्रौपदी से मात खाया हुआ कीचक चोट खाये नाग की भाँति उसके पीछे दौड़ने लगा। सौरन्ध्री हरिणी की भाँति भय विह्वल होकर विराट नरेश की दुहाई मचाती हुई राज सभा में जा पहुँची। वह हाप व काप रही थी। उस ने अवरुद्ध कण्ठ से सारी सभा को सुना कर विराट नरेश के सामने जाकर कहा—“दुहाई है महाराज की ! यह कैसा अन्याय है। कैसा आप का शासन है। आपका सेनापति मेरे सतीत्व को नष्ट करने पर तुला है। वह वल पूर्वक मुझे भ्रष्ट कर डालना चाहता है। वचाइये ! वचाइये ! मेरे सतीत्व की रक्षा कीजिए। वह दुष्ट व्यभिचारी”

इनमें ही में कीचक भी वहाँ आ गया। वह क्रोध में पाँव हो गया था। मदाव ने आगे बढ़ कर सौरन्ध्री को ठोकर मार कर गिरा दिया और अपजवद कहे। सारे सभा सदस्य देखते रह गए। किसी

का साहस न पड़ा कि उस अन्याय का विरोध करता। मत्स्य नरेश को जिस ने अपनी मुठ्ठी में कर लिया था उस के विरुद्ध बोलने का साहस भला कौन करता। उस समय राजसभा में युधिष्ठिर और भीम सेन भी बैठे थे। अपनी आँखों के सामने द्रौपदी का इस प्रकार अपमान होते देख कर दोनों भाई अमर्ष से भर गए। भीम तो उस दुष्टात्मा को मार डालने की इच्छा से क्रोध के मारे दान पीसने लगा। उसकी आँखें लाल हो गई, भींहे टेड़ी हो गई और ललाट से पसीना बहने लगा। वह क्रोधावेश में उठना ही चाहता था कि युधिष्ठिर ने अपना गुप्त रहस्य प्रगट हो जाने के भय से अपने पैर के अंगूठे से उसका अंगूठा दबा कर सकें पूर्वक उसे रोक दिया।

चोट खाई हुई सिंहनी की भाँति सौगन्ध्री रूपी द्रौपदी गर्जना कर उठी।—“मेरे पति समस्त विश्व को मार डालने की शक्ति रखते हैं, मैं उस परिवार को बहू हूँ जो सारे जगत को अपने अस्त्रों शस्त्रों से भस्म कर सकता है। किन्तु वे धर्म के पाश से बन्धे हैं मैं सम्मानित धर्म पत्नी हूँ। तो भी आज एक सूत पुत्र ने मुझे लात मारी है। भरी सभा में मुझ पर अन्याय किया है, एक पतिव्रता का अपमान हुआ है, और सभी सभासद सब मौन बैठे हैं, किसी को उस अन्याय पर कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा। क्या इसी विरते पर आप लोग न्याय रक्षक कहलाने का दम भरते हैं? हाय! जो शरणार्थियों को सहारा देने वाले हैं और हम जगत में गुप्त रूप में विचरते रहते हैं वे मेरे पति महारथी व उनके गोदवा आता आज कहा है? अत्यन्त बलवान तथा तेजस्वी होते हुए भी वे अपनी प्रियतमा एवं पतिव्रता पत्नी को एक सूत पुत्र के हाथों अपमान होने कैसे कायगो की भाँति सहन कर रहे हैं? आज पतिव्रता का अपमान हो रहा है, क्या इन भुजाओं और पैरों पर बज्र नहीं टूटेगा जिन में मेरे शरीर का स्पर्श हुआ है?”

क्रोधन करती सौगन्ध्री उठी और निर्भय होकर विराट नरेश को ललकार कर बोली—“मैंने तो सुना था कि मत्स्य नरेश न्याय प्रिय व निर्भय व्यक्ति है, पर आज उनकी आँखों के सामने यह दुष्कृत्य हुआ है जो किसी हीन में हीन नरेश के दरबार में भी

नहीं होता। निरपराध नारी को अपने सामने मार खाते देवक भी जिसकी भुजाएँ नहीं फरकी, जिसकी जिह्वा नहीं हिली, उसे न्यायधीश कहलाने, और किसी देश का राज्य संचालन का क्या अधिकार है। शास्त्र कहते हैं जो पीड़ितों की रक्षा नहीं कर सकता, न्याय का संरक्षण नहीं कर सकता जिसकी भुजाएँ निरश्रुतों और निपराधियों की रक्षा में नहीं उठ सकती, जो नारी को उस का उचित स्थान नहीं दिला सकता, व्यभिचारियों को दण्ड नहीं दे सकता, वह शासनारूढ रहने का अधिकारी नहीं है। ऐसे नरेश के होने से तो देश को बिना नरेश रहने में ही भला है। मैं तो समझती थी कि विराट नरेश की व्यवस्था विराट है, हृदय भी विराट है, ज्ञान और क्षमता भी विराट ही होगी पर आज ज्ञात हुआ कि वह नाम मात्र का नरेश है। वरना शासन सत्ता तो अन्यायियों के हाथ में है।”

कीचक क्रन्दन करती सौरन्ध्री को एक ठोकर मार कर चला गया और कहता गया—मूर्ख! मेरे विरुद्ध कितना ही शोर मचा, कितना ही विलाप कर, इन सब से कुछ होने वाला नहीं है। मैं जो चाहूँ वह कर सकता हूँ। भेड बकरियाँ सिंह का क्या खाकर सामना करेगी।”

विलखती सौरन्ध्री विराट और उसके सभासदों को उलाहना देती रही। कीचक के जाने के बाद सभासदों ने उस कलह का कारण पूछा। अवरुद्ध कण्ठ से सौरन्ध्री ने कीचक के पापाचार का भण्डा फोड़ दिया। विराट ने उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न किया, सभासद मन ही मन कीचक को कोसने लगे। विराट भी विलखती सौरन्ध्री के वृत्तांत को सुनकर दुःखित हुए, उन्हें क्रोध भी आया, पर विलकुल ऐसे ही जैसे किसी चिड़िया को बाज पर आता है। विराट क्रोध करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे।

एक सभासद ने सौरन्ध्री (द्रौपदी) की व्यथा सुनकर कहा—
“यह साध्वी जिस पुरुष की धर्म पत्नी है, उसे जीवन में महानतः लाभ मिला है। मनुष्य जाति में ऐसी सदाचारणी और सती व मिलन कठिन ही है। मैं तो इसे मानवी नहीं देखी मानत

हूँ ।”

दूसरा बोला — “जिसका धर्म सेनापति जैसे अत्यन्त बलवान् उच्चपदासीन, वैभव शाली, सर्व शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के प्रलोभनों और धमकियों के सामने भी नहीं डिगा, वह धन्य है, दासी रूप में देख कर हमें आश्चर्य होता है यह तो किसी उच्च कुल की मस्तान है ।”

जब समस्त सभासद मुक्त कण्ठ से द्रौपदी की प्रशंसा कर रहे थे, उसी समय युधिष्ठिर ने द्रौपदी को लक्ष्य कर के कहा — “सौरन्ध्री ! अब यहाँ क्यों खड़ी हो, विलाप करते और मोती समान अश्रु बिन्दु लुटाने से क्या लाभ ? तेरा पति और उसके भाई गन्धर्व अभी समय नहीं देखते । इसी लिए नहीं आ रहे । समय को देख कर, परिस्थिति का सही मूल्यांकन न करके, क्रोध और आवेश में जो कार्य होता है वह दुखदायी ही होता है । अबसर पाकर वे तेरा प्रिय कार्य अवश्य ही करेंगे । तू सन्तुष्ट रह । अपने पति पर और अपने धर्म पर विश्वास रख । महल में रानी सुदेष्णा के पास जा और प्रतिज्ञा कर । न्याय की रक्षा करने के लिए महाराज विराट भी उत्सुक हैं तेरे पति की तो बात ही न पूछी क्रोध को पी जाना ही श्रेयस्कर है ।”

सौरन्ध्री के बाल खुले थे, कमर पर छिटक रहे वेश उसके टूक टूक हुए हृदय का प्रतिबिम्ब प्रतीत होते थे, नेत्र अश्रुपूर्ण थे और दहकते अगारों की भाँति जल रहे थे । वह महाराज युधिष्ठिर जो अनुचर रूप में थे की बात समझ गई और वहाँ से चली गई ।

राणी सुदेष्णा ने जो सौरन्ध्री की दशा देखी तो उनका मन संशक हो उठा । मन के भाव छुपाते हुए उस ने पूछा — “कन्याजी ! तुम्हारे यह क्या दशा हो गई है ? तुम तो सोमरस लेने गई थी कलश कहाँ है ? है हाँ, यह तुम्हारे नेत्रों में अश्रुबिन्दु क्यों बिखर रहे हैं ? क्या किसी ने कोई अनर्थ कर डाला ?

रानी पर सौरन्ध्री का कोई सन्देह नहीं था, अपनी स्वामिन समझ कर उगने सिखिया भर कर, मुँह बन्दे हुए, कहा — “महा-

रानी जी ! वही हुआ जिसकी मुझे अशका थी । उस समय आप ने मेरी एक न सुनी और आज सेनापति ने मेरे साथ घोर अत्याचार किया ।”

विस्फारित नेत्रों ने उसकी ओर देखते हुए रानी ने पूछा—
“यह मैं क्या सुन रही हूँ । मुझे सब कुछ बताओ कि उसने तुम्हारे साथ क्या अन्याय किया ।”

“उस दुष्ट ने मेरा सतीत्व भग करने का असफल प्रयास किया—सौरन्ध्री वेष धारिणी द्रौपदी बोली—और जब मैंने उस काम सन्तप्त, कामान्ध और व्यभिचारी का विरोध किया तो उसने वन पूर्वक पाप लीला करनी चाही, मैं उसकी वलिष्ट भुजाओं ने मुक्त होकर राज दरवार की ओर भागी । उसने पीछा किया और भरे दरवार में मुझे मारा । सभी सभासद और यहां तक कि महाराज भी यह सारा दृश्य मौन बैठे देखते रहे । किसी ने इतना भी साहस न हुआ कि उस पापी को दुष्कृत्य के विरोध में एक शब्द भी कहता ।”

“क्या इतने समय में यह सब कुछ होगया ?—आश्चर्य प्रकट करते हुए सुदेष्णा ने कहा—तुम्हें वापिस आने में देरि हुई तभी मेरा माथा ठनका था । हाय ! मुझ ही से भूल हो गई जो तुम्हें विवश करके वहां भेजा । . . . पर अब पश्चात्ताप से क्या होता है । वास्तव में कीचक ने यदि ऐसा ही किया है तो यह उमका घोर अपराध है । तुम कहो तो मैं उसे मरवा डालू ।”

वेचारी सौरन्ध्री ने रानी के शब्दों को उसी रूप में समझा जिस रूप में कहे गए थे, जबकि रानी भी कदाचित्त जानती होगी कि कहने को वह कह गई पर यह बात उस के दम के बाहर की थी ।

सौरन्ध्री ने उत्तर दिया—‘महारानी जी ! आप को कष्ट करने की आवश्यकता नहीं । उस दुष्ट का वही दण्ड होंगे जिनका वह अपराध कर रहा है ।’

रानी सौरन्ध्री के शब्दों को सुन कर मिह्र उठी । भयानक

आगका से उसका हृदय कपित हो गया ।

अपमानित सौरभिणी (द्रौपदी) लज्जा और क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गई थी । अपनी हीन और असहाय अवस्था पर उसे बड़ा क्षोभ हुआ । उम का धीरज टूट गया । अपना परिचय ससार को मिल जाने से जो अनर्थ हो सकता था उम की भी चिन्ता न कर के वह मन ही मन कीचक के वध की बात सोचने लगी । कहते हैं कि उस ने सर्व प्रथम अर्जुन से जो उम समय बृहन्नला के रूप में थे, अपनी व्यथा और कीचक वध का प्रस्ताव कहा । अर्जुन बोले—प्रिये ! तुम्हारे अपमान की बात सुन कर मेरे हृदय पर जो बीत रही है उसे मैं गब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता । मेरा खून खौल रहा है । भुजाएँ फड़क रही हैं । बार बार गाण्डीव का स्मरण हो रहा है । मुझे अपने पर निमंत्रण रखना दुर्लभ हो रहा है । परन्तु फिर भी मुझे महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का ध्यान आता है । मैंने तुम ने और मेरे अन्य भाईयो ने उनकी प्रतिज्ञा के कारण जो जो कष्ट उठाए हैं, वे ऐसे हैं जिन के कारण कोई भी स्वभिमानी व्यक्ति विचलित हो सकता है । और तुम ने तो हम सभी से अधिक दुःख भोगे हैं और भोग रही हो । पर मैं इस समय आता जी के आदेश से बन्धा हूँ । विवश हूँ, वल्कि पगु ही समझो ।”

यशस्वी अर्जुन को बात से द्रौपदी को शान्ति न मिली । दुःखित होकर बोली—“प्राण नाथ ! मैं पांचाल नरेश की पुत्री हूँ, क्या इन्हीं दुरावस्थाओं में डालने के लिए ही आप मुझे स्वयंवर में जीत कर लाये थे ? उस दिन की बात तो आप न भूलें होंगे जब दृष्ट दुःशामन मुझे ‘दासी’ कह कर, मेरे केश पकड़ कर भरी नगा में खींच लाया था । और भरी नगा में मुझे वस्त्र हीन करने की चेष्टा की थी । आज भी मेरे केशों में मुझे उम पापी के हाथों की दुर्गन्ध आती है । उस अपमान की आग में मैं नदी ही जलती रहती हूँ । मेरे अनिरक्त नसार में और कौन सी राज कन्या है जो उनमें अन्याय सहन कर के भी जीवित हो ? वनवास के दिनों में दृष्ट जयद्रथ ने मेरा स्पर्श किया, वह मेरे लिए

दूसरा अपमान था. वह भी मैंने सहन किया और अब यहाँ के राजा विराट के सामने भरी सभा में मैं अपमानित हुई। कीचक ने भरी सभा में मुझे ठोकर मारी और महाराज युधिष्ठिर तथा भीम सेन बैठे देखते रह गए। इस बात से मेरे हृदय को कितनी चोट पहुँची मैं ही जानती हूँ।”

“दुष्ट कीचक कितने ही दिनों से मेरे सतीत्व को नष्ट करने का षडयन्त्र कर रहा है। वह इस देश का वास्तविक नरेश है। विराट तो नाम मात्र के ही नरेश हैं। उस दिन कामान्ध ही मुझे बलपूर्वक अपनी वासना की अग्नि में जलाना चाहा, मैं जैसे तैसे बच निकली और अपमानित हुई पर ऐसे कब तक काम चलेगा? प्रति दिन उसके पाप पूर्ण प्रस्तावों को सुन कर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। जब मैं महाराजाधिराज युधिष्ठिर को, जो धर्मराज कहलाते हैं, अपनी जीविका के लिए कायर नरेश की उपासना करते देखती हूँ, तो मेरा हृदय फटा जाता है।”

महावली भीमसेन को जब मैं रसोइया के रूप में देखती हूँ, तो मुझे बहुत दुख होता है। पाकशाला में भोजन तैयार होने पर जब वे बल्लभ नाम धारी रसोइया के रूप में विराट की सेवा में प्रस्तुत होते हैं तो मेरा हृदय रौने लगता है। और आप जो अकेले ही रथ में बैठ कर मनुष्यों की तो क्या देवताओं को भी पराजित करने की शक्ति रखते हैं आज रनिवास में विराट की कन्याओं को वृहन्नला के वेप में नाच गाना सिखाते दिखाई पड़ते हैं तो मेरे हृदय में कितनी वेदना होती है, उसे व्यक्त करना सम्भव नहीं है। और! कितना बड़ा अनर्थ है कि धर्म में, सत्य भाषण में और शूरता में जो जगत प्रसिद्ध हैं वही ही जड़े बने हुए हैं। आपके छोटे भाई सहदेव को जब मैं गौओं के साथ ग्वालों के वेप में आते देखती हूँ तो मेरे शरीर का रक्त सूख जाता है, बरबस अश्रु छल छला आते हैं। मुझे याद है जब वन को आने लगी उस समय माता कुन्ती ने रोकर कहा था—“पाचाली! सहदेव मुझे बड़ा प्यारा है, यह मधुर भापी सम्य धर्मात्मा तथा अपने सब भाइयों का आदर करने वाला है, किन्तु है बड़ा ही सकोची। तुम इसे अपने हाथ में ही भोजन कराना। देखना! इसे कोई कष्ट न होने पाये।”

आज उसी सहदेव को देखती हूँ कि गौग्रो के पीछे डण्डा लेकर प्रातः से सायंकाल तक घूमता है और रात्रि को कम्बल बिछा कर सो जाता है। जो रूखा सूखा मिलता है उसी से उदर पूर्ति कर लेता है। यह सब देख देख कर दुखी होती हूँ, हृदय का रक्त पीती हूँ, आसू मन ही मन पी जाती हूँ, बोझल मन लिए जीती हूँ। यह कैसी समय की विडम्बना है कि सुन्दर रूप, अस्त्र विद्या और मेधा शक्ति इन तीनों गुणों से सम्पन्न है वह प्रिय नकुल बेचारा आज विराट जैसे नरेश की अश्व माला का सेवक है। मनुष्यों की सेवा न कर के उसे घोड़ों की सेवा में लगा देखती हूँ फिर क्या मेरा हृदय विदीर्ण नहीं होता ? न जाने कैसे जी रही हूँ।" पूर्व जन्म के दुष्कर्मों का ही फल है।

‘देखा, शास्त्रों के प्रति कूल कार्य करने का परिणाम। महाराजाधिराज युधिष्ठिर को यदि जूए का दुर्व्यसन न होता तो सारे परिवार की यह अधोगति क्यों होती ? मेधावी पाण्डु की वह, पांचाल देश की राजकुमारी, आज किस दशा में है, सुनने वाले भी रो उठेंगे। मेरे इस क्लेश से पाण्डवों और पांचाल राज्य का भी अपमान हो रहा है। आप के जीवित होते मुझे यह कष्ट भोगने पड़े, धिक्कार है ऐसे जीवन को।”

कहते कहते सौरन्ध्री (द्रौपदी) क्रोध से भर गई, पर अपने पर नियंत्रण रखते हुए वह फिर बोली—“एक दिन समुद्र के पाम तक की धरती जिसके आधीन थी आज वही द्रौपदी मुदेष्णा के आधीन हो कर सदा भयभीत रहती है। यही नहीं, कुन्ती नन्दन ! पहले मैं किसी के लिए, स्वयं अपने लिए भी उबटन नहीं पीसती थी परन्तु आज राजा विराट के लिए चन्दन घिसना पड़ता है रानी के लिए उबटन पीसना होता है। देवो ! मेरे हाथों में घट्टे पड़ गए हैं। क्या ऐसे ही थे पहले मेरे हाथ।

कहते हुए द्रौपदी ने अपने हाथ अर्जुन के सामने फेंका दिए और सिसकती हुई बोली—“न जाने मैंने क्या ऐसा अपराध किया जिसका फल मुझे इतना भयकर भोगना पड़ रहा है।”

अर्जुन ने उसके पतले पतले हाथों को देखा, सच मुच काले काले दाग पड़ गए थे। उन हाथों को अपने मुह से लगा कर वे रो पड़े। नेत्रों से सावन भादों की झड़ी लग गई। क्लेश से पीड़ित हो कर अर्जुन कहने लगे—‘पांचाली ! मेरे गाण्डीव को धिक्कार है, तुम्हारे काले पड़ गए हाथों को देख कर मुझे आत्म ग्लानि हो रही है। क्या करूँ जो मैं आता है कि ऐश्वर्य के मद उन्मत्त कामान्ध कीचक का इसी क्षण वध कर डालूँ, इस कायर नरेश को यमलोक पहुँचा दूँ पर क्या करूँ भ्राता जी की प्रतिज्ञा मेरे रास्ते में रोड़ा बन गई है। प्रिये ! जहाँ मेरे पास शक्ति है, उत्साह है, विद्या है वही मुझे बुद्धि भी मिला है। भ्राता जी ने धर्म और बुद्धि से काम न लिया तो उन्हें और उन के आश्रित हम सबों को आज का दिन देखने को मिला यदि वही भूल अर्थात् बुद्धि से काम न लेने की भूल मैं भी करूँ तो क्या पता हम पर और क्या विपदाएँ पड़ें। तुम बुद्धि मती हो। क्रोध का दमन करो। पूर्व काल में भी कितनी ही पतिव्रता नारियों ने पतियों के साथ दुःख भोगे हैं। सती सीता का उदाहरण तुम्हारे सन्मुख है। अतएव कल्याणी ! तुम कुछ दिनों के लिए सन्तोष करो। वह दिन शीघ्र ही आयेगा जब तुम्हारे कष्टों का निवारण करने के लिए मैं स्वतन्त्र हो जाऊँगा।”

सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी को इसी प्रकार समझा बुझा कर अर्जुन ने शान्त किया। पर अलग होते ही पुनः कीचक द्वारा किया गया अपमान उसके हृदय को कचोटने लगा। उसे रह रह कर अपमान का तुरन्त बदला लेने की इच्छा सताती। तब उसका ध्यान भीम सेन की ओर गया और उस के हृदय ने कहा—“पांचाली ! ऐसे समय भीम सेन; केवल भीम सेन ही तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिए तैयार हो सकता है, बदला लेना है तो उसी के पास चल।”—और उस ने निश्चय कर लिया कि वह भीमसेन से एकान्त में मिलेगी और अपनी व्यथा सुना कर इस के निवारण का उपाय करने को कहेगी। वह अवश्य ही ऐसे आड़े समय पर मंत्र कुछ कर डालने को तैयार हो जायेगा। उसकी भुजाओं में शक्ति है, उस के रक्त में गर्मी है, उम के मन में चंचलता है। उत्साह क्रोध और शत्रु पर

विजय पाने को उसकी उत्कठा ही उसका गुण बनो हुई है। वह अवश्य ही कीचक का वध करने को तैयार हो जायेगा। यदि कीचक का वध न हुआ तो उस का मन सदा ही अपमान से जलता रहेगा और किसी वार भी भयकर घटना घट जाने का भय बना रहेगा।

सभी बातें विचार कर उस ने भीमसेन से मिलने का निश्चय कर ही लिया।

× × × × × × ×

रात्रि अपने यौवन पर है। अल्हड रात्रि का घोर तिमिर व्याप्त है। पहेरेदारो के अतिरिक्त सभी निद्रामग्न है। कभी कुत्तो के भूंकने से रजनी की निस्तब्धता विदीर्ण हो जाती है। दूर जंगलो मे सियार अपनी स्वभाविक ध्वनि से वन की शांति को भंग कर देते हैं। पहेरेदारो की आवाज और मैनिको की सीटियों की ध्वनि भी कभी कभी तिमिर मे चुभ जाती है। रनिवास मे पूर्ण शांति है, सभी खर्राटे भर रहे हैं, पर बेचारी द्रौपदी को नींद कहा, हार्दिक वेदना मे वह तडप रही है।

जब उसे विश्वास हो गया कि अब कोई नहीं है जो उस की गतिविधियों को देख सके। वह उठी और बिल्ली के पैरो मे पग रखती हुई रनिवास से बाहर हो गई। पट्टची भीमसेन के पास जाकर भीमसेन को जगाया। उसे इतनी रात्रि को द्रौपदी के आकस्मिक आगमन से आश्चर्य हुआ। आखे मल कर उस ने देखा और विस्मय पूर्ण शब्दो मे बोला—“है, यह क्या? पाचाली तुम यहा, इतनी रात्रि को कैसे?” “तुम यहा खर्राटे भर रहे हो। पर मुझे नींद कैसे आये। मेरे हृदय मे तो विष पूर्ण तीर चुभा है।”—द्रौपदी बोली।

“साफ साफ बताओ ना कि क्या बात है? क्या कोई भयंकर घटना घटी है?”

“इस मे भयंकर घटना और क्या हो सकती है कि परम

प्रतापी मेघावी नरेश पाण्डु की वहू, पाचाल की राज कन्या के सतीत्व को राहू ग्रस जाना चाहता है। मैं जिसने कभी कुन्ती माता का भी भय नहीं माना आज वही द्रौपदी भयभीत हरिणी की भाँति अपने को बचाने का प्रयत्न कर रही है। वीर पुरुषों के 'सग निर्भय होकर जीवन व्यतीत करने वाली नि सहाय श्रवला की भाँति ठोकरे खा रही है। बोलो और क्या भयकर घटना होनी शेष रही है?" सिसकती हुई द्रौपदी बोली।

“क्या हुआ ?” विस्फारित नेत्रों से देखते हुए भीमसेन ने पूछा।

“यह पूछो कि क्या नहीं हुआ ? क्या उस दिन की बात भूल गए जब भरी सभा में पापी कीचक ने मुझे लात मारी थी।— द्रौपदी ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा—महाबली ! आखिर मैं यह अपमान पूर्ण जीवन कब तक व्यतीत करती रहूँ ? मुझ से यह अपमान नहीं सहा जाता नीच दुरात्मा कीचक का तुम्हें इसी समय बध करना होगा। महारानी होकर भी यदि मैं विराट की रानियों के लिए चन्दन व उबटन पीसती रही, और दासी बनी तो तुम लोगों की प्रतिज्ञा के लिए। तुम लोगों की खातिर ऐसे लोगों की सेवा चाकरी कर रही हूँ जो आदर के योग्य नहीं है। मैं आज रनिवाम में थर थर कापती रहती हूँ। मेरे इन हाथों को तो देखो।”

कह कर द्रौपदी ने अपने हाथ भीमसेन के आगे पसार दिये। भीमसेन ने देखा कि कोमलागनी द्रौपदी के हाथों में काले काले दाग पड़ गए हैं। भीमसेन का मन रो पड़ा। आक्रोश में आकर बोला—“कल्याणी ! धिक्कार है मेरे बाहु बल को, धिक्कार है अर्जुन की शूरता को। हमारे जैसे बलिष्ठों के रहते तुम्हारी यह दशा हो हमारे लिए डूब मरने की बात है। अब मैं न तो युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का पालन करूँगा, न अर्जुन की सलाह की ही चिन्ता करूँगा। जो तुम कहो गी वही करूँगा इसी घड़ी जाकर कीचक का बध किए देता हूँ।”—इतना कह कर भीमसेन उसी क्षण फुरती से उठ खड़ा हुआ। भीमसेन को इस प्रकार एक दम उठते हुए

देख कर द्रौपदी सभल गई और भीमसेन को सचेत करते हुए बोली—“नही, नही आक्रोश में कोई ऐसा कार्य मत कर बैठना जिसे कोई नई विपत्ति आने का भय हो। उनावली में कोई काम कर बैठना ठीक नहीं।”

“तो फिर ?”

“तुम्हें सर्व प्रथम यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि मेरे इस प्रकार मिलने को रहस्य में ही रखना होगा। किसी से भी इसका जिक्र न हो। दूसरे कोई ऐसा उपाय करना होगा कि कीचक का वध भी हो जाय पर गुप्त रूप में। किसी को कानों कान पता न चले कि किस ने उसे मारा। कीचक का वध इस लिए आवश्यक है कि वह दुष्ट अपनी नीचता से बाज न आयेगा और समय पाकर फिर अपना कुत्सित प्रस्ताव करेगा। अवसर पाकर बलात्कार करने का प्रयत्न करेगा। परन्तु इस का यह भी तो अर्थ नहीं कि तुम उस पापी को दण्डित करते करते स्वयं ही विपत्ति में फस जाओ ?”—द्रौपदी संभल कर बोली।

“तो कोई उपाय ही सोचो।”

“हा तुम भी विचार करो।”

फिर दोनों विचार मग्न हो गए। दोनों सोचने लगे। और बहुत नोच विचार के उपरान्त यह निश्चय पाया कि कीचक को धोखे से राजा की नृत्यशाला के किसी एकान्त स्थान में बुला लिया जाय और वही उसका काम तमाम कर दिया जाय।

× × × × × × ×

दूसरे दिन प्रातः काल अनायास ही दुर्गन्धा कीचक का मामला हो गया। पूर्व योजित याज्ञना के आधार पर मौनश्री स्त्री द्रौपदी ने उस दुष्ट में वन निकलने की कोई चेष्टा न की। कीचक ने निपट पट्ट कर कहा—“देखा ! मेरा प्रभाव। मैंने तुम्हें भरी मन्ना में विराट के सामने ही लात मार कर गिरा दिया, किसी को चुनक करने का साहस न हुआ। तुम समझती थी कि विराट की

शरण जाकर तुम्हारी रक्षा हो सकेगी, पर मूर्ख सौरन्ध्री क्या तू नहीं जानती कि विराट तो मत्स्य देश का नाम मात्र का राजा है, असल में तो मैं ही यहाँ का सब कुछ हूँ। यदि मेरी इच्छा पूर्ति करोगी तो महारानी का सा सुख भोगोगी, और मैं तुम्हारा दास बन कर रहूँगा। वरना तुम्हारा जीवन भी दुर्लभ हो जायेगा। मेरे पजे से तुम्हें कोई नहीं बचा सकता। इस लिए मेरी बात मान लो।”

उस समय दौपदी ने कुछ ऐसा भाव बनाया मानो कीचक का प्रस्ताव उसे स्वीकार है और वह उस के प्रभाव में आ गई है। वह बोली।

सेनापति ! मैं आप की बात टालने का साहस भला कैसे कर सकती हूँ। पर लोकलज्जा मेरे आड़े आती है। मैं सब कहती हूँ कि मुझे अपने पति से बड़ा भय लगता है। यदि आप मुझे वचन दें कि आप मेरे साथ समागम की बात किसी को मालूम न होने देंगे तो मैं आप के आधीन होने को तैयार हूँ ! लोक निन्दा से मैं डरती हूँ और यह नहीं चाहती कि यह बात आप के साथी सम्बन्धियों को ज्ञात हो। वस इतनी सी ही बात है।”

कीचक की बाँछे खिल गई। आनन्द विभोर हो कर बोला—“वस इतनी सी बात पर तुम परेशान हुई फिरती हो और व्यर्थ ही बात का वनगड बनवा रही हो। तुम्हें विश्वास आये न आये पर वास्तव में मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करूँगा और इस बात का पता किसी को न चलने दूँगा। मैं वचन देता हूँ कि मैं तुम्हारे रहस्य को अपना रहस्य समझ कर अपने हृदय में दफन कर दूँगा। वस मुझे तो तुम्हारी ‘हा’ की आवश्यकता थी। अब बोलो मैं तुम्हारे लिए और क्या कर सकता हूँ।”

“आप की सेवा में फिर यह दासी भी उद्यत है।”

“तो फिर मधुर मिलन के लिए कोई समय, कोई स्थान ?”

“नृत्य गाला में स्त्रियाँ दिन के समय तो नृत्य कला सीखती

रहती हैं—द्रौपदी ने अपने मन में उठ रहे घृणा तथा क्षोभ के भयकर तूफान को छुपाते हुए कहा—रात को वे सब अपने घर चली जाती हैं। वहाँ कोई नहीं रहता। वही स्थान उपयुक्त है आप आज रात्रि को वही आकर मुझ से मिले। मैं वही मिलूंगी, किवाड़ खुले होंगे आप चुपचाप वहाँ आ जायें। देखिये किसी को कुछ भी पता न चले।”

कीचक के आनन्द का ठिकाना न रहा।

बड़ी बेचैनी से दिन बीता। वारम्बार कीचक आकाश की ओर देखता रहा, उसके अनुमान से वह दिन द्रौपदी के चीर की भाँति बढ़ता जा रहा था। पर द्रौपदी का चीर तो असीम था, दिन तो उतना ही लम्बा था, आखिर किसी तरह रात हुई। कीचक के दिन ढले ही स्नान किया। रात्रि का अधिकार फैलते ही बदन ठण्डा कर निकला और दबे पाँव नृत्यशाला की ओर बढ़ा। नृत्यशाला के किवाड़ खुले थे, देखते ही उसका हृदय वासी उछलने लगा। शीघ्रता से वह अन्दर घुस गया ताकि कोई देख न ले।

नृत्यशाला में अंधेरा था। कीचक ने गौर से देखा तो पलंग पर कोई लेटा हुआ दिखाई दिया। उसने समझा उस के स्वप्नों की रानी पलंग पर लेटी है। उस के हृदय ने कहा—

“ओह ! अपने वचन की कितनी धनी है बेचारी। कदाचित् दिन ढले ही आ गई है और मेरी प्रतीक्षा करते करते थक कर पलंग पर सो गई है।”

अंधेरे में टटोलता हुआ पलंग के पास पहुँचा। और धीरे से फुम फुमाहट में बोला—

“मेरे हृदय की रानी ! मृगनयनी ! प्रियतमा ! तुम आ गई। ओह ! मुझे कितनी देर हो गई। धमा करना। मैं तुम्हारे वचन की पूर्ति के लिए बहुत छुपकर यहाँ आया हूँ।”

कीचक ने पलग पर लेटी हुई आकृति को सौरन्ध्री समझ कर बड़े प्यार से उस पर हाथ फेरा। उस समय कामात्तुर होने के कारण उसका हाथ काप रहा था। उसने कहा—‘कोमलांगनी उठी। मैं आगया। मैं तुम्हारा प्रेमी! कितने दिनो से जिस कल्पना को मन में सजोया था आज उसकी पूर्ति हुआ चाहती है। मेरे मन की चाह पूर्ण होगी। तुम जो सारे ससार में सर्वाधिक सुन्दर हो, आज मुझ मिली। कितना उल्लास है मेरे मन में? वस क्या बताऊ। मुझ जैसा सौभाग्य शाली और कौन होगा, जिसे तुम जैसी अप्सरा का प्रेम मिला हो।’

उसी समय वह आकृति विद्युत गति से जाग उठी। भपट कर उसने कीचक दुष्ट का हाथ पकड़ लिया। जिस प्रकार मृग पर सिंह भपटता है, उस प्रकार वह आकृति भपटी। और कीचक का हाथ दबोच लिया। और इतने जोर का धक्का मारा कि प्रेम विह्वल कीचक घड़ाम से धाराशायी हो गया। कीचक समझ गया कि आकृति सौरन्ध्री न होकर उस का पति गंधर्व ही है। गंधर्व से पाला पड़ा जान कर वह सम्भल कर उठा। कीचक भी कोई कम शक्तिवान न था। वह उठा और भिड़ गया। दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा। यह इन्द्र वाली और सुग्रीव के युद्ध के समान था। दोनों ही बड़े वीर थे। उन की रगड़ से वास फटने की सी कड़क के समान भारी शब्द होने लगा। जिस प्रकार प्रचण्ड आधी वृक्ष को झटका डालती है उसी प्रकार कीचक से लड़ने वाले यादवा ने उसे धक्के दे देकर सारी नृत्य शाला में घुमाया। वही कीचक ने भी अपने धुटनो को चोट से शत्रु को भूमि पर गिरा दिया। तब वह वीर दण्ड पाणि यमराज के समान बड़े वेग से उछल कर खड़ा हो गया। एक बार क्रुद्ध होकर उसने कीचक को अपनी भुजाओं में कस लिया, जैसे रस्सी से पशु को बाध देते हैं। अब कीचक फूटे हुए नगारे के समान जोर जोर से डकारने और उमकी भुजाओं में अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करने लगा। तनिक सी देरी ही में कीचक का गला उस वीर के हाथ में गया और उसने कीचक के सभी अंगों को चकना चूर

कर दिया। कीचक की पुतलियां बाहर निकल आईं। उसी समय जबकि कीचक अन्तिम सासे गिन रहा था, वह वीर बोला—“दुष्ट कीचक! तेरे पापाचार का दण्ड देने के लिए मैं आया था। याद रख भीम के ससार में रहते-किसी की शक्ति नहीं जो उस सन्नारी की लाज से खिलवाड़ कर सके, जिसे तू सौरन्ध्री समझता है।”

तो वह वीर था भीमसेन। वह भीमसेन जिस के बाहु बल पर महाराजाधिराज युधिष्ठिर और माता कुन्ती को बहुत ही अभिमान था।

भीमसेन ने उस दुष्ट की ऐसी गति बना दी कि उसका एक गोलाकार माम पिंड सा बन गया। फिर द्रौपदी से विदा लेकर भीमसेन रसोई घर में चला गया और आराम से सो रहा।

इधर द्रौपदी ने नृत्य शाला के रखवालों को जगाया और बोली—“तुम्हारा सेनापति दुष्ट कीचक कामाँध होकर प्रतिदिन मुझे तग किया करता था। आज वह मुझ से बलात्कार करने आया था। मेरे पति के भ्राता गधर्व ने अनायास ही यहां पहुंच कर उस दुष्ट को दण्डित किया। जाओ देखो तुम्हारे सेनापति की क्या गति हुई। व्यभिचारी, मदान्व और अत्याचारियों की यह दशा होती है। देखो तुम्हारे सेनापति वहा मृत पड़े हैं।”

मुनते ही रखवाले कांप उठे। उन्होंने जाकर देखा कि वहाँ पर सेनापति नहीं, बल्कि खून से लथ पथ एक मांस पिंड पड़ा था।

× × × × × × ×

कीचक के भाई उपकीचक कहलाते थे। नृत्य शाला के पहरेदारों ने कीचक की मृत्यु का समाचार उपकीचक को दिया। यह ऐसा समाचार था कि उपकीचक को मुनते ही बड़ा आघात लगा पर उन्हें तुरन्त ही विश्वास न हुआ कि मत्सर में कोई ऐसी

भी शक्ति हो सकती है जो कीचक जैसे शूरमा का वध कर सकती है। उनकी समझ में न आया कि सेनापति कीचक क्योंकर मारा गया। इस समाचार की सच्चाई को जानने के लिए वे दौड़े दौड़े नाट्य शाला गए और जब उन्होंने कचक का मांस पिण्डी की भाँति पड़ा शव देखा, तो हठात् उनकी आँखों से अश्रु धारा बह निकली। वे सब उस शव के चारों ओर बैठ कर कर्ण श्रवण करने लगे। विलाप करते करते जब उन्हें बहुत देरी हो गई और उधर राज प्रासाद के सभी लोग कीचक के अन्तिम दर्शन करने एकत्रित हो गए तो उपकीचक ने से एक बोला—“इस प्रकार विलाप करते रहने से क्या लाभ! अब चलो भ्राता जी का अन्तिम सस्कार कर ले। जो होता था सो तो हो ही गया।”

अपने आँसू पोछ कर एक बोला—“पर अभी तक यह तो पता चला ही नहीं कि यह दुस्साहस किस मूर्ख ने किया कि सेनापति का वध कर डाला। हम लोगो के रहते वह वदमाश हमारे भाई का वध कर के निकल जाये यह तो हमारे लिए डूब मरने की बात है।”

“हा ठीक है। हम उस मूर्ख दुस्साहसी का सिर काट डालेंगे हम उसे जीवित नहीं छोड़ेंगे। हम उसे बता देंगे कि कीचक परिवार पर हाथ उठाना अपने नाश को निमन्त्रित करना है।” तीसरे उपकीचक ने कहा।

फिर तो सभी की मुटुिया बघ गई। सभी क्रुद्ध होकर कीचक के हत्यारे को गालियाँ देने लगे। पहरेदार को बुलाया गया और हत्यारे के बारे में पूछा। जब उस ने बताया कि कीचक का वध सौरन्ध्री के कारण हुआ और हत्यारा गधर्व सेनापति की हत्या करके निकल गया तो उन सभी को सौरन्ध्री पर बहुत क्रोध आया। उन्होंने सौरन्ध्री को पकड़ लिया।

एक उपकीचक बोला—“इस स्त्री के कारण ही हमारे भ्राता का वध हुआ। यही है कीचक की हत्या की जिम्मेदार।

हम यह किसी प्रकार सहन नहीं कर सकते कि कीचक का वध करा कर यह पापिन जीवित रह कर हृदय जलाती रहे। इसे भी कीचक के साथ ही जलना होगा।”

ठीक है, ठीक है। इसे भी कीचक के शव के साथ ही जला दो।” समस्त उपकीचकों ने कहा।

राजा विराट कीचक के वध से बड़े दुःखित थे क्योंकि अब वे अपने को निस्सहाय समझने लगे। कीचक से वे जहां भयभीत रहते थे, वही उनके सहारे वे निश्चिन्त थे। उन्हें अपने वैरियों का कोई भी भय नहीं रहा था। परन्तु कीचक के वध से उन के सामने पुनः वैरियों का भय उपस्थित हो गया था। और साथ ही वे उस गधर्व से बहुत ही भयभीत थे जिसने कीचक को मार डाला था। वे सोचते थे कि सौरन्ध्रो के कारण आज तो कीचक जैसा चलवान सेनापति मारा गया, कल को कहीं कुछ और न हो जाय।

इस लिए जब उपकीचकों ने सौरन्ध्रो को कीचक के शव के साथ ही जला डालने का निश्चय किया तो उन्होंने ने कोई विरोध न किया। यद्यपि उसी समय उन्हें यह भी ध्यान आया कि सौरन्ध्रो के जला डालने पर यदि गधर्वों ने मत्स्य देश को ही तहम नहस कर डालने की ठान ली तो क्या होगा? पर उसी समय उन्हें यह भी ध्यान आया कि यदि उपकीचको के आड़े आये और वे रुक हो गए तो क्या होगा। वस इन प्रश्नों से विराट बड़े असमजस में पड़ गए। चक्कर में पड़े विराट को कुछ न सूझा कि क्या करे। वस वे चिन्तित रहे।

उधर उपकीचको ने कीचक की अर्थी के साथ सौरन्ध्रो को बाध लिया। और श्मशान भूमि की ओर चल पड़े। पांचाल देश की राजकुमारी और परम तेजस्वी धनुर्धारी अर्जुन की जीवन सगिनी द्रौपदी, सौरन्ध्रो के वेष में उस समय उपकीचको के चंगुल में फस कर अचला की भांति विलाप कर रही थी। उस ने कहकर श्रन्दन करते हुए कहा—“कहा है मेरे सिरताज! कहा है मेरे

जीवन साथी वीर ! कहां हैं मेरे रखवारे शूरवीर । हाय ! मुझे अवला समझ कर यह दुष्ट जीवित ही चिता में जलाने लैजा रहे हैं । दौड़ो ! मुझे बचाओ ।”

इसी प्रकार आवाहन करती, विलाप करती, चीखती पुकारती द्रौपदी अर्थी के साथ वधी हुई श्मशान भूमि में गई । लगता था कि आज द्रौपदी के जीवन का अन्त कायर उपकीचकों के हाथों ही होना है ।

श्मशान भूमि में चिता सजाई गई । कीचक का शव रख दिया गया और अग्नि लगाई ही जाने वाली थी, कि द्रौपदी ने बड़े करुण शब्दों में रोकर कहा—“पापियो किसी सन्नारी को जीवित जलाते हुए तुम्हे लज्जा नहीं आती ? क्या वीर पुरुषों का यही धर्म है ? एक अवला के साथ इतना अन्याय करते हुए तुम्हारा हृदय नहीं कांपता ? अरे दुष्टो इतना तो सोचो कि तुम भी किसी नारी की ही सन्तान हो । तुम ने भी किसी नारी की कोख से ही जन्म लिया ।”

पर उन दुष्टों की समझ में एक बात न आई । तब द्रौपदी ने पुकार कर कहा—“हे नाथ ! आप तो दुखियों के सहारे हैं । आप के वनूप में तो इतनी शक्ति है कि सम्पूर्ण मत्स्य देश को भी नष्ट भ्रष्ट कर डाले ऐसी दशा में आपकी सहघर्मिणी दुष्टों के हाथों अवला की नाई जीवित जलाई जा रही है, तो आप कहां हैं ? नाथ ! आप ने तो जीवन पर्यन्त मेरा साथ देने और मेरी रक्षा करने की शपथ ली थी ।”

कुछ देरी रुक कर बोली—“हे दिशाओं ! मेरे सहयोगी उस वीर गंधर्व ने जाकर कहदो, जिम ने कीचक जैसे बलिष्ठ को मार गिराया कि इस समय यदि उस ने सहयोग न दिया तो वह जिसकी आंखों से आंसू न बहने देने के लिए वह गंधर्व समार भर में टक्कर लेने को भी तैयार हो जाता है, इस सप्सार में चली जायगी और हृदय में शिकायत लेकर मरेगी कि जब समय आया तो पात्र बलशाली

गंधर्वों में से एक भी काम न आया।”

“इस चुड़ैल को भौंकने दो जी ! लगाओ आग ! हम ने बहुत घुरंघर गंधर्व देखे हैं।” एक उपकीचक ने इतना कहा और आग लगानी चाही।

उसी समय श्मशान भूमि के एक कोने से आवाज़ आई—
“ठहरो ! अभी आग न लगाना।”

देखा तो एक बड़े वृक्ष को कंधे पर रखे हुए एक भीमकाय व्यक्ति चला आ रहा है। उसे देखते ही उपकीचक सन्न रह गए। काटो तो शरीर में रक्त नहीं। गला सूख गया। हाथ और पैर कापने लगे। उस आगन्तुक के शरीर और कंधे पर रखे वृक्ष को देख कर उन्होंने समझा कि हो न हो यही वह गंधर्व है जिसे सौरन्ध्री पुकार रही थी।

आते ही उस वीर ने देखते ही देखते सभी उपकीचकों को मार डाला। उन में से किसी का साहम न हुआ कि उसका मुकाबला करता। द्रौपदी के उल्लास का ठिकाना न रहा।

वात यह थी कि वह वीर भीमसेन था। जो उपकीचकों में पहले ही श्मशान भूमि में आ छुपा था।

उपकीचकों को मार कर द्रौपदी को भीमसेन ने नगर को भेज दिया और स्वयं दूसरे रास्ते में महल में चला गया।

× × × × × × ×

विराट चिन्ता मग्न बैठे थे। एक दूत ने प्रवेश करते हुए प्रणाम किया और हकलाने हुए कुछ कहना चाहा।

विराट नरेंद्र ने उसकी ओर देखा। वे ममभ गए कि दान में कुछ काला है। पूछ बैठे—“कहो, कहो क्या बात है ?”

“सहाराज गलब हो गया।”

“क्या बात है ?”

“उप..... कीचक मारे गए।” उस ने कापते हुए कहा ।

सुन कर विराट भी कांप उठे । स्वयं कुछ न पूछ सके । कक ने पूछा—“कैसे मारे गए उपकीचक ? किस ने मारा उन्हें ?

“महाराज ! श्मशान भूमि में जब सौरन्ध्री को कीचक के शव के माथ चिता पर रख कर आग लगानी चाही । उसी समय कोई गधर्व वहाँ पहुँचा और उसने सभी उपकीचको को मार डाला।” दूत ने कहा ।

कक रूपी युधिष्ठिर समझ गए कि वह गधर्व कौन हो सकता है । फिर भी कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा —“हैं—क्या ऐसा हो गया—यह तो बड़ा बुरा हुआ ।”

विराट के मुख से कुछ भी न निकला । उनकी आँखों के सामने तो महानाश की कल्पना आ गई ।

× × × × × × ×

सौरन्ध्री ! हम तुम्हारी सेवा से बड़े प्रसन्न हैं । तुम वास्तव में बड़ी ही बुद्धि मति सन्नारी हो ।” रानी मुदेष्णा ने कहा ।

द्रौपदी हाथ जोड़ कर बोली —“आप मुझ से सन्तुष्ट हैं यह मेरे लिए बड़ी सौभाग्य की बात है ।”

“परन्तु रुष्ट न होना । अब महाराज को तुम्हारी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रही । मुझे खेद है कि अब मैं तुम्हारी सेवाओं से वंचित रहूँगी ।”—रानी बोली ।

ऐसी क्या त्रुटि हुई मुझ में ?” द्रौपदी ने विस्मित हो

कर पूछा ।

“नहीं त्रुटि तो कोई नहीं हुई । पर अब हम तुम्हें अपने महल में नहीं रख सकते ।”
“सो क्यों ?”

“वात यह है कि महाराज तुम्हारे गधवों से घबराते हैं । और वह नहीं चाहते कि तुम्हारे कारण कोई नई मुसीबत खड़ी हो जाय ।”—रानी सुदेष्णा ने कहा ।

राजा विराट ने पहले ही रानी सुदेष्णा को कह दिया था कि सौरन्ध्री को उचित पुरस्कार देकर विदा कर देने में ही हमारा कल्याण है । पता नहीं उसके गधर्व क्या कर डाले । इसी लिए सुदेष्णा ने जो स्वयं ही द्रौपदी से भयभीत हो गई थी, उक्त बात कही थी ।

द्रौपदी को बड़ी ठेस लगी । फिर भी उसने नम्रता पूर्वक कहा—“महारानी जी ! केवल १५ दिन मुझे और यहाँ रहने की आज्ञा दे दीजिए । तब तक मेरे पति का एच्छिक वायं तथा मन्तव्य पूर्ण हो जायेगा । और वे स्वयं ही मुझे यहाँ से ले जायेंगे । आप ने जहाँ और बहुत सी कृपाएँ की हैं इतनी और कीजिए ।”

रानी ने यह बात विराट से जा कही । और उन दोनों ने द्रौपदी के पति के भय से, द्रौपदी की विनती स्वीकार कर ली ।

नगर के जो लोग भी द्रौपदी को देखते, कह उठते—“इम का रूप ही इतना आकर्षक है कि कोई वीर उस पर आसक्त होकर अपने प्राण दे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । पर है यह बड़ी भयानक । इस की ओर किसी ने कुदृष्टि से देखा और प्राण गए ।”

द्रौपदी से सभी घबराने लगे थे । अतएव कोई उसे किनी कार्य को न कहता । बात तक करते हुए घबराते । परन्तु द्रौपदी उन्मी प्रकार सेवा कार्य करती रही । जबकि रानी सुदेष्णा उसे कहा करती कि वह अधिक काम न किया करे । आराम से रहे ।

है या मर गए। कुछ समय में नहीं आता कि वे किधर निकल गए।” — उस गुप्तचर ने खेद पूर्वक कहा।

“गाव में नहीं, शहरों में नहीं, पहाड़ों पर नहीं, जंगलों में नहीं तो फिर वे कहाँ निकल भागे। उन्हें जमीन खा गई या आसमान निगल गया? नहीं, नहीं तुम मूर्ख हो। तुम ने ठीक प्रकार देखा ही नहीं। वरना वे सूई तो है नहीं कि कहीं पत्तों या राख में दुबके पड़े रहें। तुम सब नमक हराम हो।” — दुर्योधन ने गर्ज कर कहा।

उसी समय एक और गुप्तचर आया।

दुर्योधन ने उसकी ओर टेढ़ी नजर डाल कर कहा—“हा, तुम लो! तुम ने भी कुछ किया या नहीं?”

“महाराज! मैंने समस्त साधु सन्तों के उपाश्रय देखे। विद्वानों के आश्रमों में खोज की। पर पाण्डव कहीं दिखाई न दिए और जब मुझे विश्वास हो गया कि पाण्डव इस धरती पर हैं ही नहीं तो वापिस चला आया।” — गुप्तचर ने कहा।

अभी दुर्योधन उसकी बात पर टिप्पणी भी नहीं कर पाया था कि एक दूत ने आकर कहा—“महाराज मत्स्य देश से जो हमारे गुप्तचर आये हैं उन्होंने बताया है कि मत्स्य का सेनापति कीचक किसी गधर्व के हाथों बड़े रहस्य पूर्ण ढंग से मारा गया। और उस के बाद कीचक के सारे भाई भी मार डाले गए।”

इस समाचार से दरबार में उपस्थित सभी लोग विस्मित रह गए। त्रिगर्त राज सुशर्मा समाचार सुन कर उछल पड़ा। उस ने सन्तोष की सांस लेने हुए कहा—“ओह कितना शुभ समाचार है। आज मेरे हृदय की शांति मिली। कीचक मार डाला गया तो मेरी छाती पर रखी एक भारी शिला उतर गई। मत्स्य देश की सेनाओं ने कई बार हमारे ऊपर आक्रमण किए और वे सब आक्रमण दुष्ट कीचक के कारण ही हुए। कीचक ने मेरे बन्धु

वांधवों को बहुत तग किया था। कीचक बड़ा ही बलवान; क्रूर, असहन शील और दुष्ट प्रकृति का पुरुष था, वह मारा गया अब हम मत्स्य नरेश से अच्छी तरह निवट सकते हैं।”

दुर्योधन ने कहा—“त्रिगर्त्तराज ! लो तुम्हारी चिन्ता तो समाप्त हुई। अब जब कहोगे तभी तुम्हारे शत्रु से बदला ले लिया जायेगा, पर पहले यह तो सोचो कि पाण्डवों का पता कैसे चले। उनके अज्ञात वास का समय समाप्त होने वाला है। यदि शीघ्र ही उनका पता न चला तो अज्ञात वास काल समाप्त होते ही वे गुराँते हुए यहाँ आ पहुँचेंगे और एक बड़ी मुसीबत खड़ी हो जायेगी। यद्यपि वे बेचारे अब हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते परन्तु फिर भी यह कितना अच्छा हो कि हम अज्ञात वास काल में ही उन्हें ढूँढ़ निकालें और वे यहाँ आकर क्रोध को पीते हुए पुनः बारह वर्ष के लिए जंगलों की खाक छानने के लिए चले जायें।”

कर्ण ने परमर्श देते हुए कहा—“मैं आप के विचारों से सहमत हूँ। मेरी राय से तो अब दूसरे कुशल गुप्तचर भेजे जायें जो भिन्न भिन्न देशों में जायें तथा सुरम्य सभाओं में, सिद्ध महात्माओं के आश्रमों में, राज नगरों में, गुफाओं में वहाँ के निवासियों से बड़े ही विनीत शब्दों में युक्ति पूर्वक पूछ कर पता लगावें।”

दुशासन बोला—“राजन् ! जिन दूतों पर आपको विशेष भरोसा हो वही शीघ्र ही मार्ग व्यय लेकर चले जायें। देरी करना ठीक नहीं है।”

दुर्योधन ने तत्त्वादशीं द्रोणाचार्य की ओर दृष्टि डाली, तो वे बोले—“पाण्डव शूरवीर, विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से चलने वाले हैं। ऐसे महापुरुष न तो नष्ट होते हैं और न किसी से पराजित हो। उन में धर्मराज तो बड़े ही शुद्धचित्त, गुणवान्, सत्यवान्, नीतिमान्, पवित्रात्मा और तेजस्वी हैं। अपनी शुभ प्रकृति के कारण उन में इतनी शक्ति है कि जब वह छुप कर रहना चाहें तो

उन्हे अपना आंखों से देख कर भी कोई पहचान न सकेगा। अतः इस बात को ही ध्यान में रख कर हमें विद्वान, सेवक, सिद्ध पुरुष अथवा उन अन्य लोगो से, जो कि उन्हे पहचानते हैं, ढूँढवाना चाहिए।”

दुर्योधन महाराज युधिष्ठिर की प्रणसा से चिड़ता था, उस ने कहा—“गुरुवर ! आप तो पाण्डवों को न जाने क्या समझते हैं। आप मुझे पूर्ण प्रयत्न कर लेने दीजिए, जब मेरे गुप्तचर उन्हे खोज निकालेंगे और वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पुन १२ वर्ष के लिए वनो में भटकने चले जायेंगे तब आप का भ्रम टूटेगा।”

द्रोणाचार्य मौन रह गए। उसी समय दुर्योधन ने भीष्म पितामह की ओर देख कर कहा—“पितामह ! आप भी तो अपना मत दीजिए। पाण्डवों की खोज कैसे की जाय। अब उनके अज्ञात चास के दिन समाप्त हो रहे हैं। यदि शीघ्र ही कोई उपाय न किया गया तो पाण्डव इस दाँव से बच निकलेगे और फिर युद्ध आनदेंगे।”

पितामह बोले—“पाण्डवों की प्रणसा सुनना तुम नहीं चाहते। अतः मैं उनकी शक्ति का वर्णन नहीं करता। हा, इतना अवश्य कहता हूँ कि जहाँ धर्मराज तथा उनके शुभ प्रकृति के भ्राता होंगे, उस देश में समृद्धि का राज्य होगा, वहाँ उत्तरोत्तर उन्नति हो रही होगी। धन धान्य की बाहुल्यता हो गई होगी और वह राज्य सभी प्रकार के अन्नकों में शून्य होगा।”

“इस का तो यह अर्थ हुआ कि हम पहले उन देश की खोज करें जिसमें गत दस ग्यारह मास के भीतर समृद्धि का साम्राज्य हुआ हो।” दुर्योधन बोला।

“दीपक जहाँ जलेगा, वहाँ प्रकाश होगा। और जहाँ प्रकाश है वही दीपक को खोज लो।” पितामह बोले।

दुर्योधन ने कहा—“पितामह ! आप तो हमें कोई नीपा

सादा उपाय बताइये। समय कम है। आप की राय की हमे आवश्यकता है और आप की कृपा बिना हमारा किसी कार्य मे सफल होना दुर्लभ है।”

तब भीष्म जी बोले—“राजन् ! युधिष्ठिर जैसे धर्मगज, अर्जुन जैसे धनुर्धारी और भीम जैसे बलवान से टक्कर लेनी आसान बात नहीं है। फिर भी चूँकि तुम टक्कर लेना ही चाहते हो तो इतना करो कि ऐसे महाबली की खोज कराओ जिस ने गत दम ग्यारह मास मे कोई विचित्र तथा दुस्साहस पूर्ण कार्य किया हो, जिस को देख कर या सुन कर लोग अचम्भे मे पड़ गए हो। वस समझ लो कि वह भीम ही है। क्योंकि भीम शांत प्रकृति का व्यक्ति नहीं है। जैसे रवि मेघ खण्डो के नीचे छुपा होने पर भी अपना अस्तित्व बिल्कुल ही नहीं छुपा सकता उसी प्रकार भीमसेन लाख छुपने का प्रयत्न करे पर वह कोई न कोई ऐसा दुस्साहस पूर्ण कार्य अवश्य ही कर बैठेगा, जिस से सभी चकित हो जायें। याद रखो कि भीम की टक्कर का अब वस एक ही व्यक्ति और शेष है वह है बलराम। कीचक था, पर भीम से कम।”

इतना सकेत पा कर कर्ण ने तुरन्त पूछा—“राजन् ! पिता-मह ने एक बात बड़े काम की कही। कीचक वास्तव में बड़ा ही बलवान था। तनिक इस बात का पता तो लगाइये कि कीचक का वध कैसे हुआ।”

दुर्योधन ने तुरन्त उस दूत को बुलवाया जिस ने कीचक के वध का समाचार दिया था और उस ने पूछा कि कीचक का वध किस ने और कैसे किया।

वह बोला—“महाराज यह तो ज्ञात नहीं हुआ कि कीचक को किस ने मारा। पर इतना मुना है कि उसका वध किसी स्त्री के कारण हुआ।”

दुर्योधन ने बात ताड ली। वह एक दम प्रमत्त हो उठा और उन्लामातिरेक मे बोला—“लीजिए पता लग गया। हम ने पाण्डवो को खोज लिया।”

कर्ण के हर्ष का ठिकाना न रहा। पूछा—“कैसे ? कहा है यह ? बताइये तो सही।”

“वे मत्स्य देश में है।”

“यह कैसे ज्ञात हुआ ?”

“कीचक को भीम तथा बलराम दो ही वीर मार सकते हैं। बलराम का कीचक से कोई द्वेष नहीं। अवश्य ही उसे भीम ने मारा है और जिस स्त्री के कारण उसका वध हुआ वह द्रौपदी होगी।”—दुर्योधन ने उत्साह पूर्वक कहा।

“ठीक है। आप बिल्कुल ठीक कहते हैं।”—कर्ण बोला।

उसी समय त्रिगर्त देश के वीर सुशर्मा ने कहा—“तो फिर आप मुझे मत्स्य देश पर आक्रमण करने दीजिए। यदि पाण्डव वहाँ छुपे हैं तो वे अवश्य ही विराट की ओर से युद्ध करने आयेंगे। तब उन्हें हम पहचान लेंगे और आप अपने मन्तव्य में सफल होंगे।”

दुर्योधन ने सुशर्मा की बात स्वीकार करली और उसने निश्चय किया कि सुशर्मा मत्स्य देश पर दक्षिण की ओर से आक्रमण करे और जब विराट अपनी सेना लेकर सुशर्मा के मुकाबले के लिए जाये तो उसी समय मैं अपनी सेना लेकर उत्तर की ओर से छापा मार दूंगा। दूतर्पा युद्ध के द्वारा हम विराट का मारा गौधन लें आयेंगे। उसे परास्त कर उसका राज्य छीन लेंगे और यदि पाण्डव वहाँ हुए तो उनका पता लग जायेगा। साथ ही यदि पाण्डव युद्ध करने आये तो उन्हें युद्ध स्थल पर मार कर निर्विघ्न राज्य करने का अवसर पा जायेंगे।

विराट नरेश ने दुर्योधन की मित्रता को सदैव दुःकराया था इसलिए दुर्योधन तो उस पर खार खाये ब्रथा था और सुशर्मा विराट से बदला लेने का इच्छुक था। कर्ण प्रत्येक दशा में दुर्योधन की प्रशंसा देखना चाहता था। इस लिए तीनों ने मिल कर पूरी योजना बना ली और मैदानों का आदेश दे दिया गया।

योजना अनुसार सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया। मत्स्य देश के दक्षिणी भाग से त्रिमत्त राज की सेना छा गई और गायो के भुण्ड के झुण्ड सुशर्मा की सेना ने हथिया लिए, लहलहाते खेत उजाड़ डाले, बाग बगीचों को तबाह कर दिया। ग्वाले तथा किसान जहाँ तहाँ भाग खड़े हुए और राजा विराट के दरबार में दुहाई मचाने लगे। विराट ने जब यह समाचार सुना उसे बड़ा खेद हुआ। उसने कहा - “हा, गोक! ऐसे समय पर शूरवीर कीचक नहीं रहा। उसी को मृत्यु का समाचार पा कर ही सुशर्मा को मत्स्य देश पर आक्रमण करने का साहस हुआ।”

उन्हे चिन्तातुर होते देख कर कंक (युधिष्ठिर) ने उनको भान्त्वना देते हुए कहा—राजन् ! आप चिन्तित क्यों होते हैं। कीचक नहीं रहा तो क्या मत्स्य राज्य अनाथ हो गया? आप मेनाए तो तैयार कवाये। सुशर्मा जैसे लोगों का यह भ्रम आपको तोड़ना ही चाहिए कि कीचक मारा गया तो विराट नरेश के पास कोई शक्ति ही नहीं रही।”

“यह भ्रम टूटे तो कैसे? मैं स्वयं तो वृद्ध हो चुका हूँ। कीचक और उपकीचक सभी मारे गए अब सेना में ऐसा कोई वीर नहीं जो सुशर्मा का सामना कर सके। अफसोस कि मैंने सौरन्ध्री को अपने रनिवास में स्थान देकर स्वयं ही अपनी वरवादी को निमन्त्रित किया।”—इतना कह कर विराट बहुत दुखित होने लगे।

उसी समय कंक ने कहा—“महाराज ! आप घबराइये नहीं। यद्यपि मैं मन्यासी ब्राह्मण हूँ फिर भी अस्त्र विद्या जानता हूँ। मैंने सुना है कि आपके रसोइये, बल्लभ अश्वपाल ग्रंथिक और ग्वाला रनिपाल भी बड़े कुशल योद्धा हैं। मैं कवच पहन कर रथा रुढ़ होकर युद्ध क्षेत्र में जाऊँगा। आप उनको भी आज्ञा दें। उनके लिए रथों, वस्त्रों तथा अस्त्र शस्त्रों का प्रबन्ध कर दें। फिर देखिये कि सुशर्मा का भ्रम कैसे टूटता है।”

“क्या वास्तव में तुम चारों अस्त्र शस्त्र चलाना जानते हो?”

“हा, महाराज ! आप निश्चिन्त हो ।”

“तो क्या तुम्हें विश्वास है कि सुशर्मा को मुह”

“हा, हा, सुशर्मा बेचारा किस खेल की मूली है !”

यह सुन विराट बड़े प्रसन्न हुए। उनकी आज्ञा अनुसार चागे वीगे के लिए रथ तैयार होकर आ खड़े हुए। अर्जुन को छोड़ शेष चारों पाण्डव उन पर चढ़ कर विराट और उसकी सेना सहित सुशर्मा से लड़ने चले गए।

राजा सुशर्मा और राजा विराट की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ दोनों ओर के असंख्य सैनिक खेत रहे। सुशर्मा तथा उसके साथियों ने राजा विराट को घेर लिया और रथ से उतरने पर विवश कर दिया। अन्त में सुशर्मा ने विराट को कैद करके अपने रथ पर बिठा लिया और विजय का शख बजाते हुए अपनी छावनी में चला गया। जब राजा विराट बन्दी बना लिए गए तो उनकी सेना तितर बितर होगई। सैनिक प्राण लेकर भागने लगे। यह हाल देख कर युधिष्ठिर भीम को आज्ञा देते हुए बोले—“भीम ! अब तुम्हें जी लगा कर लड़ना होगा। लापरवाही से काम नहीं चलेगा। अभी ही विराट को छुड़ा लाना होगा। तितर बितर हो रही सेना को एकत्रित करना होगा और फिर अपने बाहुबल से सुशर्मा का हर्ष चूर्ण करना होगा।”

भीमसेन को तो ज्येष्ठ भ्राता के आदेश की देरी थी। अभी युधिष्ठिर की बात पूर्ण भी न होने पाई थी कि भीमसेन दौड़ कर एक भारी वृक्ष के पास गया और उसे उखाड़ने लगा। युधिष्ठिर ने तुरन्त जाकर उसे रोका और कहा—यदि तुम सदा का भाति पेड़ उखाड़ते तथा सिंह की सी गर्जना करने लगे तो शत्रु तुम्हें तुरन्त पहचान लेगा। इस लिए और लोगों की ही भांति रथ पर बैठे हुए धनुष बाण के सहारे लड़ना ठीक होगा।”

भ्राता की आज्ञा मान कर भीमसेन रथ पर बैठे ही सुशर्मा को सेना पर बाणों की बौछार करने लगा। थोड़ी देर की लड़ाई के बाद भीम ने विराट को छुड़ा लिया और सुशर्मा

को बन्दी बना लिया । मत्स्य देश की सेना जो सुशर्मा के भय में भाग गई थी पुनः मैदान में आ डटी और सुशर्मा की सेना में युद्ध करने लगी । भीम सेन के नेतृत्व में विराट की सेना ने सुशर्मा की सेना पर विजय प्राप्त करली ।

विराट भीम का ऐसा पराक्रम देख कर बहुत ही प्रसन्न हुआ । युधिष्ठिर ने कहा—“महाराज ! सुशर्मा का हर्ष च्छ करने के लिए ही हम लोग आये थे । वह हो गया । अब सुशर्मा को मुक्त कर दीजिए क्योंकि क्षमा शीलता धर्म का आभूषण है दया वीरो को जोभा देती है ।”

कक रूपी युधिष्ठिर की बात महाराज विराट ने स्वीकार कर ली और सुशर्मा को मुक्त कर दिया ।



सुतारहवां परिच्छेदः

दुर्योधन से टक्कर

(राजकुमार उत्तर)

उधर राजा विराट, चार पाण्डवों के सहयोग से सुशर्मा से लड़ रहे थे, इधर उत्तर दिशा से दुर्योधन ने अपनी सेनाओं तथा सहयोगियों सहित आक्रमण कर दिया। उसकी सेनाओं ने लाखों गौएँ हाँक लीं; लहलाते खेतों को नष्ट कर डाला। ग्रामीण अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए और उन्होंने जाकर राजकुमार उत्तर के सामने दुहाई मचाई।

वोले—“दुहाई है राजकुमार की हम पर भारी विपदा का पहाड़ टूट पड़ा है। कीरव मेना हमारी गाएँ, भगा लेजा रही है। हमारे खेतों खलिहानों को तबाह कर डाला गया है। हमारे ग्रामों पर मौत मडरा रही है। हम वरवाद हो रहे हैं। हमें बचाइये।”

राजकुमार बोला—“तुम्हारी व्यथा को सुन कर हमारा हृदय शोकातुर हो गया है। हमें तुम्हारे प्रति सहनुभूति है। विश्वास रखो कीरव सेनाओं का सिर कुचल दिया जायेगा। वस महाराज को वापिस आ लेने दो। वे दुष्ट सुगर्मा को परास्त करने गए हैं। आते ही होगे।”

“राजकुमार ! महाराज तो जानें कब तक लौटें।
—ग्याने और किमान दीनता पूर्वक बोलें—युद्ध में न जाने कितना समय लग जाए। उस समय तक तो हमारा सर्वनाश हो जायेगा।

और क्या पता कौरव सेना तबाही मचाती हुई उस समय तक राजधानी तक भी पहुँच जाय। आप हमारे राजकुमार हैं भावों राजा हैं। इस अवसर पर आप ही हमारे एक मात्र रक्षक हैं।”

जिस समय ग्वाले और कृषक अपनी दुख भरी गाथा सुना रहे थे, कितने ही नगरवासी वहाँ आगए थे और रनिवास की स्त्रिया ऊपर खड़ी २ सारी बातें सुन रही थी। राजकुमार भला अपने को कायर कहलाने को कब तैयार हो सकता था। उमने जोश में आकर कहा—“धवराने की कोई बात नहीं है। यदि महाराज नहीं तो क्या हुआ मैं तो हूँ। यदि मेरा रथ हाकने वाला कोई सारथी मिल जाये तो मैं अकेला ही जाकर शत्रु सेना के दात खट्टे कर दूँगा और एक २ गाय उन दुष्टों के फदे से छुड़ा लाऊँगा। ऐसा कमाल का युद्ध करूँगा कि लोग भी विस्मित होकर देखते रह जायेंगे। कहेंगे—‘कही यह अर्जुन तो नहीं है’ मैं महाराज विराट की सन्तान हूँ। मेरी भुजाओं में क्षत्रिय रक्त दौड़ रहा है।”

ग्वाले और कृषक राजकुमार उत्तर की इस उत्साह पूर्ण बात को सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने हाथ जोड़ कर गद गद कण्ठ से कहा—“धन्य हो राजकुमार! आप वास्तव में वीर सन्तान हैं। आपके रहते मत्स्य देश वासियों को भला किस का भय? बस कृपा कर जल्दी ही चले चलिए।”

“अरे! तुम बड़े मूर्ख हो। बात नहीं समझे? मैं कह रहा हूँ कि एक सारथी का प्रवन्ध करदो। यदि रण स्थल में रथ हाकने का अनुभव रखने वाला कोई सारथी मिल जाय तो मैं अभी, इसी समय चल सकता हूँ। वरना पैदल थोड़े ही युद्ध होता है। और ऐसे सारथी सभी महाराज के साथ गए हैं। ऐसी दशा में तुम्हीं बताओ मैं कर क्या सकता हूँ?”—राजकुमार उत्तर ने ग्वालों तथा कृषकों के सामने एक उलझन उपस्थित करदी। अब भला बेचारे ग्वाले और कृषक कहा से सारथी लायें। उनका मुँह फैला का फैला रह गया। विवशता नेत्रों में झाँकने लगी। उन बेचारों का क्या पता कि राजकुमार के पास सारथी हो या न हो पर बल तथा साहस की बहुत कमी है।

उस समय द्रौपदी भी रनिवास की अन्य स्त्रियों के साथ खड़ी सारी बातें सुन रही थी। उसने राजकुमारी उत्तरा के पास जाकर कहा —“राजकन्ये ! देश पर विपदा आई हुई है। ग्वाने और कृपक घवराये हुए राजकुमार के आगे दुहाई मचा रहे हैं कि कौरवों की सेना उत्तर की ओर से नगर पर आक्रमण कर रही है। और मत्स्य देश की सैकड़ों हजारों गाए लूट ली है। इस समय महाराज दक्षिण की ओर मुशर्मा से युद्ध करने गए हैं ! राजकुमार देश की रक्षा के लिए युद्ध करने को तैयार है, किन्तु कोई सुयोग्य सारथी नहीं मिलता। इसी से उनका जाना अटका हुआ है।”

“तो इस में मैं क्या कर सकती हूँ ?”

“आपकी वृहन्नला रथ चलाना जानती है। जब मैं पाण्डवों के रनिवास में काम किया करती थी तो उस समय मैंने सुना था कि वृहन्नला कभी कभी अर्जुन का रथ हाक लेती है। यह भी सुना था कि अर्जुन ने उसे धनुर्विद्या भी सिखाई है। इस लिए आप अभी वृहन्नला को आज्ञा दे दे कि राजकुमार उत्तर की सारथी बनकर रणांगण में जाकर कौरव सेना को रोके।”

—द्रौपदी के मुख से यह बात सुन कर राजकुमारी के आश्चर्य की सीमा न रही।

“मौरुध्रो ! क्या वृहन्नला इतनी गुणवती है ? आश्चर्य है।”

“और जब वह युद्ध में जाकर अपने कमाल दिवायेगी तो आपको और भी अधिक आश्चर्य होगा ? अर्जुन इसी कारण तो वृहन्नला का बहुत आदर करते थे।”

“कहीं तू झूठ ही तो नहीं कह रही ?”

“क्या आपने मेरे मुख से आज तक कोई असत्य सुना ?”

राजकुमारी निरुत्तर हो गई।

उमने अपने भाई के पास जाकर कहा—भैया ! मैंने सुना है कि तूम कौरव सेनाओं का संहार करने जा रहे हो।”

‘तो इस मे आश्चर्य की क्या बात है? क्या मैं वीर विराट की सन्तान नहीं हूँ।’

“भैया ! मुझे आज तुम्हारे मुख से यह बात सुनकर कितना हर्ष हो रहा है, वस मैं ही जानती हूँ। तुम विजयी होकर लौटो मेरी यही हार्दिक कामना है।”

उत्तरे ! विजय तो मेरी निश्चित है पर मैं ज्ञाऊ तो कैसे? कोई सारथी तो है ही नहीं।”

“भैया ! मैं तुम्हें यही शुभ सन्वाद सुनाने आई थी।”

“क्या ?”

“सारथी मिल गया और वह भी अर्जुन का।”

आश्चर्यपूर्वक उत्तर ने पूछा—“कौन है वह ? कहा है ?”

“यह हमारी बृहन्नला है ना। यह अर्जुन का रथ हांक करती थी। इसे अर्जुन ने धनुर्विद्या भी सिखाई है। वस यह तुम्हारे सारथी का काम देगी।”

अपनी बनी बनाई धाक को चोट पहुचने के भय से राजकुमार उत्तर ने कहा—“उत्तरे ! तुम भी क़ैसी मूर्खता की बातें करती हो। कहा बृहन्नला नपुंसक और कहाँ युद्ध रथ का मारथी। अरे तुम ने भाग तो नहीं खा ली तनिक सोचो तो कि क्या अर्जुन को यही मिली थी रथ हाकने को ?”

“नही भैया ! मौरन्ध्री कहती है अर्जुन इसे बहुत स्नेह करते थे। तुम युद्ध मे जाना चाहो तो बृहन्नला को अपना मारथी बना लो। न जाना चाहो तो दूसरी बात है।”

उत्तरा की उस बात मे राजकुमार उत्तर ने अपनी बात बनाव रचने के लिए कहा—“नही ! मुझे तो कोई आपत्ति नहीं बृहन्नला यदि वास्तव मे रथ हाक सके। तो मेरे साथ चले।”

“तुम अब जवान हो। किसी भी दिन तुम्हें शामन की वागडोर सम्भालनी पड़ सकती है, इस लिए युद्ध में जाओ और अपनी तलवार के जौहर दिखा कर कीर्ति तथा अश प्राप्त करो।”

जब किसी को वीर कहने लगे तो उसे भी अपने बारे में भ्रम होने लगता है। फिर उत्तर तो अपने को वीर समझता ही था। यह उसका पहला अवसर था कि अकेला युद्ध के लिए तैयार हो, लड़कपन के उत्साह तथा चंचलता से जोर-मारा और वह तैयार हो गया।

राजकुमारी उत्तरा ने रत्निदाम से जाकर बृहन्नला से कहा—“बृहन्नला! मेरे पिता की सम्पत्ति और मत्स्य देश वासियों की गौश्री को कौरव सेनाएं लूट लिए जा रही हैं दुष्टों ने ऐसे समय पर आक्रमण किया है कि जड़ राजा नगर में नहीं है। मेरे भैया उत्तर उन दुष्टों को मार भगाने के लिए युद्ध करने जाने को तैयार है, पर उन्हें कोई साथी नहीं मिल रहा। मौरन्ध्री कहती है कि तुम्हें अस्त्र शस्त्र चलाना आता है और तुम अर्जुन का रथ हांक चुकी हो, तो तुम्हीं राजकुमार उत्तर का रथ हांक ले जाओ न?”

“वाह राजकुमारी जी!—बृहन्नला रूपी अर्जुन ने कहा—आप भी बहुश्री से चोर मगवाने जैसी बातें करती हैं। कहा मैं और कहा साथी बनना। आप मेरा बंध करवाना चाहती हैं तो अपने आप मिर काट डालिए। पर मुझ कौरव वीरों की तलवार से काटने का दण्ड न दीजिए। ओह! जिस समय युद्ध में धनुषों की टंकार सुनाई देगी। हाथी घोड़ों की चिघट गूजेगी, मेरी छाती फट जायेगी। मैं तो बिना मारे ही मर जाऊंगी। हाय! उस समय तो मेरे जब को कोई ठिकाने लगाने वाला भी होगा। राजकुमारी जी! मैं मगध में नहीं जाऊंगी।”

बृहन्नला की कृत्रिम घबराहट के भावों को व्यक्त करने वाली बात ने राजकुमारी का विश्वास न टिका। उसने कहा—“बृहन्नला बात बताने की चेष्टा न करो। ऐसे मरने के समय में भी यदि तुम शामन जाओगी, तो तुम्हारी विद्या और गोप्यता का भला क्या लाभ?”

“अजी राजकुमारी जी ! योग्यता तो मेरे पास भी नहीं फटकती और विद्या की पूछती हो, तो वह तो एक मील दूर से ही मुझ से न क सिकोड़ कर भागती है। हा, कौरव सेनाओं को नाच गा कर रिझाना हो तो फिर बन्दी तैयार है, पर इस के लिये साजिन्दे भी दरकार है।” — बृहन्नला ने आंखें मटकाते हुए कहा।

बृहन्नले ! तू मुझे निरा मूर्ख क्यों समझती है। बात बना कर वहकाने से क्या लाभ ! तुझे मैं भलि प्रकार समझती हूँ और सौरन्ध्री तो तेरी रग रग से परिचित है।” — राजकुमारी बोली।

“अजी ! सौरन्ध्री का क्या ठिकाना। वह नपुंसको को भी अर्जुन समझ बैठे ? अपना तो काम नाचना गाना है, और बेचारी सौरन्ध्री सग्राम को भी हीजड़ों का खेल समझ बैठी है। उनसे पहले यह तो पूछिए कि नाट्यशाला और सग्राम भूमि में दूर कितने अंगुल की होती है।” बृहन्नला ने अपने को छुपाने का भरसक प्रयत्न करते हुए कहा।

“तू अपनी बहानेबाजी से उस राज्य के सकट के समय काम आने से मुह छुपाती है, जिसका तूने इतने दिनों तक नमक खाया है और ऐश से रही। आज काम न आयेगी तो क्या मरहम बना कर फोड़े पर लगाई जायेगी ? ठीक ही है नपुंसक से आड़े समय पर काम आने की आशा रखना रेत से तेल निकालने के समान है।” राजकुमारी उत्तरा ने धुब्ध होकर कहा।

बृहन्नला ने इस ताने में प्रभावित मी होकर कहा—“राजकुमारी ! आप तो इतनी सी बात पर रुष्ट हो गईं। भला मैं आपके काम न आऊंगी तो किस के काम आ सकती हूँ। मैं तो यह कहती थी कि आप तो ऐसी को सारथी के काम पर नियुक्त कर रही हैं जो घोड़ों से इतना घबराने की है कि छाती वासी कूदने में लगती है और घोड़ों को लगाम तो क्या अपने हृदय की लगाम तक सम्भलने में सफल नहीं होती। फिर भी संकट आया है तो लीजिए अब यह काम भी कर लूंगी। आप रथ जुड़वाइये और इन लचकीले हाथों में घोड़ों की लगाम दीजिए। इस नजाकत

से हाकूगी। कि मुए कौरव मोहिन न होकर रह जाये तो तब कहिए।”

उसी समय द्रौपदी वहा आ गई और उसी के साथ साथ रनिवास की अन्य स्त्रिया भी यह देखने के लिए वहा पहुची कि वृहन्नला सारथी रूप मे कैसे जा रही हैं। द्रौपदी ने कहा—“अभी वाते ही हो रही हैं, तुम्हे तो अब तक नगर से बाहर हो जाना चाहिए था।”

“नगर से बाहर कहा उसे तो महल से निकलने में ही मीत आ रही है। कहती है कि घोडो को हाकना तो यह जानती ही नही।” राजकुमारी उत्तरा बोली।

‘क्यो री वृहन्नला ! क्या ऐसे समय मे भी तुम्हे हास्य परिहास ही सूझ रहा है।’—द्रौपदी ने कहा।

“नही जी ! हास्य परिहास तो आप को सूझा है। भला मैं और युद्ध मे सारथी बन कर जाऊँ। स्वामी मुनेगे तो क्या कहेगे ?”—वृहन्नला वेपधारी अर्जुन ने द्रौपदी को सकेत कर के कहा।

सकेत को समझ कर द्रौपदी बोली—“स्वामी तो स्वयं रण म्थल मे अपने हाथ दिखा रहे हैं। यही समय है जब नरेश को तुम अपना कमाल दिखा सको। और फिर तुम्हे अपने कामान दिवाने का अवसर भी तो मिल रहा है। एक साल पूर्ण होना चाहता है जब से तुम ने महाराज विराट का नमक खाना आरम्भ किया है। अब भी यदि अपनी वफादारी का प्रमाण देने तथा उचित अवसर मे लाभ उठाने का प्रयत्न न किया गया तो वृहन्नला के वास्तविक रूप को कौन जानेगा ?”

द्रौपदी का इतना सकेत पाना था कि वृहन्नला की बातों को दिसा ही बदल गई, उसने कहा—“तो फिर सौमन्थ्री ! जो थोड़ा बहुत मैं जान पाई हूँ उसे अवश्य काम लाऊंगी। पर कोई भूत होगई तो तु जाने।”

‘हा, हा तुम जाओ तो सही।’

तो फिर मुझे कोई वडिया सी साढी तो दिलवा दीजिए।”

‘साढी क्यों?’

कौरव वीरो के सामने जाना है। उनमें राजे महाराज वहां होंगे राजकुमार होंगे। उन के सामने इन साधारण कपड़ों में जाऊंगी तो लाज की मारी मर न जाऊंगी। कोई क्यों कहेंगा कि राजा विराट के महल में रहती है और कपड़े तक...

द्रौपदी (सारथी) ने बात बीच ही में काट दी—‘वृहन्नला! सारथी बन कर जाना है, अथवा नाचने? कुछ सोच करता बात करो।’

‘हाय राम! सारथी बनूंगी तो राजकुमार ही की तो। फिर यह कपड़े क्या लजायेगे नहीं।’

‘वृहन्नले! बात क्यों बनाती हो। कपड़े तो वही पहनो ना, जो अर्जुन की सारथी बन कर पहनती थी। देखो! अब परिहास अच्छा नहीं। विलम्ब न करो।’—द्रौपदी बोली।

‘तो फिर आप क्यों नहीं कहती कि मुझे अर्जुन की सारथी का भेष धरना है।’

‘और क्यों...’

कवच लाया गया और राजकुमार ने सोत्साह उसे दिया। वृहन्नला के वेष में अर्जुन नाटक करता हुआ उसे उल्टी ओर से पहनने लगा। देख कर सभी स्त्रियाँ खिले खिले कर हस पड़ी। किसी ने कहा—‘फिर तो वृहन्नला ने राजकुमार को जिता दिया समझो। यह क्या वहां घोंडे होंगी। जिसे कवच पहनना भी नहीं आता।’

उस समय द्रौपदी को अर्जुन पर बड़ा क्रोध आया। और अर्जुन ने कान दबा कर कवच ठीक प्रकार पहन लिया। परन्तु

भी वह सभी के सामने नाचने लगा। स्त्रियों की हसी रोके न सकती थी। परन्तु जब महल से बाहर आकर उस ने घोड़े को रथ में जोता तो वह एक कुशल सारथी प्रतीत हुआ। राजकुमार उत्तर जब रथ में आकर बैठा तो राजकुमारी ने कहा—“भैया ! मत्स्य राज की लाज अब तुम्हारे हाथ है।”

उत्तर में बृहन्नला ने कहा—“विश्वास रखो कि युद्ध में राजकुमार की विजय अवश्य होगी। और शत्रुओं के अस्त्र शस्त्र हरण करके रनिवास की स्त्रियों को पुरस्कार के रूप में दे दिए जायेंगे।”

राजकुमार ने इस घोषणा का अपनी गौरवमयी मुस्कान से समर्थन किया और बृहन्नला ने रथ हाक दिया। जैसे ही घोड़े को चलने का इशारा किया और रथ चल पड़ा तो रनिवास की स्त्रियों के आश्चर्य की सीमा न रही। सिंह की ध्वजा फहराता रथ बड़ी शान से कौरव सेना का सामना करने चल पड़ा। उस समय बृहन्नला की कुशलता, चपलता तथा निपुणता देखकर सभी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।



* अठारहवां परिच्छेद *

वृहन्नला रण योद्धा के रूप में

वृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर जब नगर से चला तो उस का मन उत्साह से भरा था वह बार बार कहता—“रथ तेजी में चलाओ । देखो जिधर कौरव सेना गई भगाए ले जा रही है, उसी ओर भगाओ रथ को ।”

राजकुमार का आदेश पाते ही वृहन्नला ने घोड़ों की बाग ढीली करदी और घोड़े बड़े वेग से भागने लगे । हवा से बाते करते हुए अश्व तीव्र गति से राजकुमार को कौरव सेना की ओर लेजा रहे थे । राजकुमार उत्साह के मारे रथ में बैठा बैठा ही उछल उछल कर कौरव सेना को देखने का प्रयत्न कर रहा था । चलते चलते दूर कौरवों की सेना दिखाई देने लगी । धूल उड़ रही थी जो पृथ्वी से उठ कर आकाश को स्पर्श कर रही थी । उस धूल के आवरण के पीछे विशाल सागर की भांति चारों ओर कौरवों की विशाल सेना खड़ी थी । राजकुमार ने तो अपने मस्तिष्क में कौरव सेना की यह कल्पना की थी कि कुछ व्यक्ति होंगे जो झुण्ड बनाए हुए गए भगा ले जा रहे होंगे । परन्तु वहां तो वह विशाल सेना थी जिसका संचालन भीष्म, द्रौण, कृप, कर्ण और दुर्योधन जैसे महारथी कर रहे थे । देख कर उत्तर के रोगटे खड़े होगए । कहां उसकी कल्पना और कहा यह वास्तविकता ? उसे कंप कंपी होने लगी । वह सम्भल न सका । सामने थे हजारों अश्व सवार, रथ सवार, गज सवार और पैदल वीर,

समस्त प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से लैस। रथों पर भिन्न भिन्न चिन्हों की पताकाएं फहरा रही थी। जिधर दृष्टि जाती उधर रणवीर ही रणवीर दिखाई देते। और फिर-साहस ही के लिए तो वह विशाल सेना क्या थी, सीधा नाग का महासागर उमड़ा था। इस लिए इतनी विशाल सेना को देख कर ही राजकुमार का अंग अंग कम्पित हो गया। भय विह्वल होकर उसने दोनों हाथों से अपनी आंखें मूंद ली। उस से यह सब कुछ देखते भी न बना।

बोला—“बृहन्नला! रथ रोक लो।”

रथ फिर भी चलता रहा।

कापती आवाज में राजकुमार ने डूबते स्वर में कहा—
बृहन्नले! क्या कर रही है रथ रोको, रथ रोको।”

बृहन्नला ने घोड़ों की बाग खींच ली। पूछा—“कहिए! क्या हुआ?”

“क्यों?”

“मैं नहीं लड़ूंगा मुझे मेरे घर पहुंचा दो। जन्दी करो, कहीं तुम मुझे देख लिया तो मेरी खैर नहीं।”

बृहन्नला ने राजकुमार की बात सुनी तो उसे इस कायन्ता पर बड़ा क्रोध आया। फिर भी सावधानी से कहा—“राजकुमार! कैसी कायरता की बात कर रहे हो? तुम तो शत्रु से लड़ते आये हो। विजय प्राप्त करते आये। और कहते हो कि...”

“नहीं, नहीं बृहन्नला। इतनी बड़ी सेना से भना मैं अकेला कैसे लड़ सकता हूँ?”—भयभीत राजकुमार ने कहा—“वह देखो जितनी बड़ी सेना खड़ी है। लगता है सारी दुनियां को समेट पाये है कौन।”

“इतनी बड़ी सेना हुई तो क्या बात है। एक निह के सामने चाहे नान्य भेद भी आ जायें, निह का क्या विगड़ता है?”

“तुम नहीं जानती बृहन्नले ! इस सेना में बड़े बड़े वीर होंगे । बड़े बड़े अनुभवी सेनानी होंगे और मैं ठहरा अकेला और अभी बालक । मुझ में इतनी योग्यता कहाँ कि इन कौरवों से पार पा सकूँ ?”

“किन्तु तुम तो शत्रुओं से युद्ध करने आये हो, तुम मत्स्य देश के भावी राजा हो । सारे देश का भाग्य तुम्हीं हो । मत्स्य देश की लाज आज तुम्हारे ही हाथ में है ।”

“राजा तो मेरे पिता है—राजकुमार उत्तर ने कहा और अभ किया—और वे ही सेना लेकर मुशर्मा को परास्त करने गए हैं । सेना भी सारी उनके ही साथ है । फिर भला मैं अकेला इन असंख्य शत्रुओं से कैसे लड़ूँ ?

बृहन्नला बोली—“राजकुमार ! महल में तो तुम बड़ी डींगें हांक रहे थे । बिना कुछ आगा पीछा सोचे मुझे साथ लेकर युद्ध के लिए चल पड़े और प्रतिज्ञा करके रथ पर बैठे थे । तब के लोग तुम्हारे ही भरोसे पर हैं । सौरन्ध्री ने मेरी प्रशंसा कर दी और तुम जल्दी में तैयार होगए मैं तुम्हारी वीरता पूर्ण बातों को सुनकर तुम्हारे साथ चलने को तैयार होगई । अब यदि हम गए छुड़ाए बिना वापिस लौट जायेंगे तो लोग हमारी हसी उड़ायेंगे इस लिए मैं तो लौटने को तैयार हूँ नहीं । तुम घबराते क्यों हो । डट कर लड़ो ।”

बृहन्नला ने घोड़ों के रस्से ढीले कर दिए थे । रथ बड़े वेग से जा रहा था । बृहन्नला ने उसे रोकने की कोशिश नहीं की और शत्रु सेना के निकट पहुँच गया । यह देख उत्तर का जी और घबरा गया । उसने सोचा कि मौत के मुहाने पर आ गया ।

“तुम रथ रोकती क्यों नहीं ?”

“रथ तो शत्रुओं की सेना में घुस कर चकेगा ।”

“नहीं, नहीं, यह मेरे बसका रोग नहीं । मैं नहीं लड़ूँगा । मैं जान बूझकर मौत के मुँह में नहीं कूदूँगा ।”

"तुम ने तो शत्रुओं के वस्त्र व शस्त्र हरण करके रनिवास स्त्रियों को पुरस्कार स्वरूप देने की प्रतिज्ञा की है। सोजो नहीं, तुम उन्हें कैसे मुह दिखाओगे।"—बृहन्नला ने लोक लाज का भय दर्शाकर उसे सम्भालना चाहा।

"कौरव जितनी चाहें गौए चुरा कर ले जायें—उत्तर कहने लगा—स्त्रियां मेरी हमी उड़ाएं तो भले ही उड़ाए। पर मैं लड़गा नहीं। लड़ने से अखिर लाभ ही क्या है? मैं लौट जाऊंगा। रथ मोड़ लो।"

"नहीं। मैं राजकुमार की हमी उड़वाना नहीं चाहती। मुझे अपनी इज्जत का भी तो ख्याल है।"

"भाड़ में जाये तुम्हारी इज्जत। मैं मौत के मुह में नहीं लूँगा। तुम रथ नहीं मोड़ोगी तो मैं रथ से कूद कर अकेले ही पदल लौट पड़ूंगा।"

"राजकुमार। ऐसी बातें मुह से न निकालो। तुम वीरो की सन्तान हो। तुम्हारी भुजाओं में इतनी शक्ति है कि ऐसी ऐसी एक नहीं हजार कौरव सेनाओं को आन की आन में मार भगाए। और फिर तुम्हारे साथ मैं भी तो हूँ। मैं मरूंगी तो तुम मरना बरना कौन भला तुम्हारे मुकाबले पर डट सकता है।"

बृहन्नला के साहस दिलाने पर भी उत्तर अपने को न सम्भाल पाया। उसने आवेश में आकर कहा—"तुम्हें तो अपनी जान में मोह नहीं। पर मैं क्यों मरूँ? तुम रथ नहीं लौटाती तो न लौटाओ। मैं पदल ही भाग जाऊंगा।"

कहते कहते राजकुमार उत्तर ने धनुष बान धिरे और और चलने रथ में ही कूद पड़ा। भय के सागे वह आँखों में न रहा और पागलों की भाँति नगर की ओर भागने लगा।

"राजकुमार। रुहरो, भागो मत। शत्रुओं को नम तेसा करने हो। छोड़ो। देखा वधु क्या कहेंगे। जगन्नाथों क्या कहेंगे? कहेंगे हूँ बृहन्नला ने भागते राजकुमार का पीछा

किया। उसकी चोटी नागिन सी फहगने लगी। माड़ी अस्त्र ध्यस्त होकर हवा में उड़ने लगी। आगे आगे उत्तर-पीछे पीछे बृहन्नला। उत्तर बृहन्नला की पकड़ में नहीं आ रहा था और रोता हुआ इधर उधर भाग रहा था। सामने कौरव सेना के वीर आचार्य चकित हो यह दृश्य देख रहे थे। उन्हें हंसी भी आ रही थी।

आचार्य द्रोणा के मन में कुछ शका जागृत हुई। सोचने लगे—“कौन हो सकता है यह? वेष भूषा तो स्त्रियों की, पर चाल ढाल पुरुषों के समान प्रतीत होती है। पर नपुंसक सा व्यक्ति रण स्थल में क्यों आया?”

दूसरे वीर भी कुछ ऐसी ही बातें सोच रहे थे। प्रकट रूप में आचार्य द्रोण बोले—“इसका भागना तो प्रकट करता है, कि यह कोई बलिष्ठ व्यक्ति है। आगे वाला व्यक्ति रोता हुआ भाग रहा है और पीछे वाला उसे पकड़ने दौड़ रहा है। आखिर चूहे विल्ली की दौड़ इन में आपस में क्यों हुई? कहीं स्त्री वेष में कोई योद्धा तो नहीं? और कहीं अर्जुन ही हो तो?”

“अर्जुन नहीं हो सकता—कर्ण ने कहा—और अगर हुआ भी तो क्या? अकेला ही तो है। दूसरे भाईयो के बिना अर्जुन हमारा कुछ नहीं दिगाड़ सकता। पर इतनी दूर की क्यों सोचे?”

“तो फिर यह नपुंसक रूपधारी कौन हो सकता है?”
—द्रोणाचार्य ने प्रश्न उठाया।

“चात यह है कि राजा विराट अपनी समस्त सेना नैकर सुगर्मा के मुकाबले पर गया मालूम होता है। नगर में अकेला राजकुमार ही होगा। कोई कुशल मारथी मिला न होगा तो रनिवास में मेवा टहल करने वाले हीजड़ों को मारथी बना लिया और हम ने लड़ने चला आया है।”—कर्ण ने उत्तर दिया।

इधर यह बातें हो रही थी उधर बृहन्नला राजकुमार उत्तर की पकड़ने का प्रयत्न कर रही था। जो तोड़ कर इधर-उधर

भागने वाले राजकुमार को भाग दौड़ करके वृहन्नला ने पकड़ ही लिया। राजकुमार हाथ जोड़कर बोला — “वृहन्नला ! मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ। मुझे छोड़ दे। मैं युद्ध नहीं करूँगा। मेरी गेखियों पर न जा। मुझे मेरी माता के पास चला जाने दे।”

“राजकुमार ! तुम्हें मैं लाई हूँ। मुझे अपने साथ तुम लाये हो।— दोनों साथ आये हैं तो साथ ही वापिस जायेंगे। शत्रुओं से क्यों हमी उडवाते हैं। क्षत्रिय कभी पीठ-दिखाकर नहीं भागा-करते। तुम इतना डरते क्यों हो ?”

— कहते कहते वृहन्नला ने उसे बलपूर्वक ले जाकर रथ पर बैठा ही तो दिया। बेचारे उत्तर ने बहुत प्रयत्न किया कि वृहन्नला से छूटकर भाग जाये। पर वह अपने को छुड़ा न सका। परन्तु वह था तो बहुत ही घबराया हुआ। काँप रहा था। उसने वृहन्नला से कहा “मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा, सुन्दर सुन्दर वस्त्र दूँगा। तुम जो चाहो मुझ से माग लेना। मुह मागी वस्तु दे दूँगा। तुम तो बड़ी अच्छी हो। देखो, तुमने मेरा कहना कभी नहीं टाला। इस समय मेरी इतनी सी बात मान लो। मुझे नगर में ले चलो। कहीं युद्ध में मुझे कुछ हो गया तो मेरी माँ रो रो कर मर जायेगी। उसने मुझे बड़े प्रेम से पाला है। मैं बालक ही तो हूँ। बचपने में बड़ी २ बातें कर गया था। मैंने कोई लड़ने वाली सेना देखी थोड़े ही थी। अब कौरवों की सेना देखकर तों मेरे प्राण ही निकले जा रहे हैं। वृहन्नला ! मुझे इस संकट से बचाओ। मेरी अच्छी वृहन्नला ! मैं जीवन भर तुम्हारा उपकार मानूँगा।”

इस प्रकार राजकुमार उत्तर को बहुत घबराया हुआ जानकर वृहन्नला ने उसे समझाते हुए तथा उसका साहस बढ़ाते हुए कहा—
— “राजकुमार ! घबराओ, नहीं। तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा।”
“नहीं, नहीं मर जाऊँगा मैं तो। मुझ से नहीं लड़ा जायेगा।”
“तुम तो बस घोड़ी की रास सभाल लो। इन कौरवों से मैं अकेली ही लड़ लूँगी। तुम केवल रथ हाँकते रहना। इसमें जरा भी न हरो। इस प्रकार निर्भय होकर डटे रहोगे तो मैं अपने प्रयत्न में

ही कौरवों को मार भगवजंगी, गौश्री को छुड़ा लूंगी। और तुम यगस्वी विजेता के साम-से प्रसिद्ध होगे।” — बृहन्नला ने कहा।

मुनकर राजकुमार के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या वह रही हो हजारों वीर एक ओर और तुम अकेली दूसरी ओर नहीं, नहीं भला यह कैसे सम्भव है ?”

“तुम घोड़ों की रास तो सभालो। देखो पानी की काँटी की भाँति क्षण भर में इस सेना को बीच से ही काँटती हूँ।”

“नहीं, नहीं। तुम तो स्वयं ही मर जाओगी और साथ ही मुझे मरोगी। ना ऐसी मूर्खता मैं नहीं करूँगा। मेरी मानों तो विलम्ब न करो, भाग चलो। प्राण है तो सब कुछ है। वरना”

“राजकुमार ! मुझ पर विश्वास करो। मैं तुम्हारा बाल भी बाका न होने दूँगी !”

बड़ी कठिनाई से राजकुमार घोड़ों की रास सभालने को तैयार हुआ। तब बृहन्नला ने कहा—“नगर के बाहर जो श्मशान है, उसके पास वाले शमी के वृक्ष की ओर रथ को ले चलो।”

—और रथ उस ओर तेजी से चल पड़ा।

उधर आचार्य द्रोण उनकी गतिविधियों को सावधानी से देख रहे थे, उन्हें शंका हो रही थी कि नपुसक के वेष में कहीं अर्जुन न हो। सकेत से यह बात उन्होंने भीष्म को भी बताया।

यह ख़ास सुन दुर्योधन कर्ण से बोला—“हमें इस बात से क्या मतलब कि नपुसक के वेष में कौन है। मान लिया कि अर्जुन है फिर लाभ ही लाभ है। यत् के अनुसार पाण्डवों को फिर बारह वर्ष के लिए वनवास भुगतना पड़ेगा।”

उधर शमी के वृक्ष के पास पहुँच कर बृहन्नला ने उत्तर से कहा—“राजकुमार ! तुम्हारी जय हो। वस अब एक काम और करो, इस शमी के वृक्ष पर चढ़ जाओ। ऊपर एक गठरी टगी है,

से उतार लाओ।”

“क्यों ?”

“उस में कुछ हथियार बचे हैं।”

“नहीं, इस वृक्ष पर तो लोग कहते हैं, किसी बुढ़िया की लाश टगी है। मैं नहीं चढ़ूंगा।”

“राजकुमार ! तुम क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी इतने डरपोक क्यों हो ? वृक्ष पर चढ़ जाओ और देखो तो सही वह लाश है, अथवा शस्त्रों की गठरी।”

“माना कि उस में शस्त्र ही हैं, तो भी रथ में किन शस्त्रों की कमी है ? जो मुझे बेकार वृक्ष पर चढ़ाते हो।”

“तुम नहीं जानते राजकुमार ! रथ के अस्त्र शस्त्र मेरे काम के नहीं। वृक्ष पर टगी गठरी में ही मेरे काम के अस्त्र शस्त्र हैं। तुम चढ़ो भी।”

“आखिर उस गठरी में ऐसे कौन से अस्त्र शस्त्र हैं जिन के बिना तुम्हारा काम न चलेगा।”

“मैं जानता हूँ कि उस गठरी में पांडवों के अस्त्र शस्त्र हैं।”

यह बात और भी आश्चर्य जनक थी, उत्तर के लिए। उस ने कहा—“तुम तो ऐसी पहेलिया बुझा रहे हो कि अपनी तो समझ में साफ नहीं आता।”

वृहन्नला ने एक बार आखें तरेर कर उसकी ओर देखा और कहा—“राजकुमार ! तुम इतने कायर होगे, मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी।”

लाचार होकर उत्तर को उस वृक्ष पर चढ़ना पड़ा। उस पर जो गठरी थी, उसे खूब देखभाल के पश्चात् उतारा और मुह बनाते हुए नीचे उतर आया। वृहन्नला ने ज्योंही गठरी खोली उस में मे शूय की भाँति जगमगाने वाले दिव्यास्त्र निकले।

उन अस्त्रों की जगमगाहट देखकर उत्तर की आंखें फैली-फैली रह गई । जगमगाहट की चकाचौंध से अधा सा होकर कुछ देर वह यूही देखता रहा । फिर सम्भल कर बोला—“वृहन्नला ! यह तो बड़े विचित्र अस्त्र है ।”

“इसी लिए तो इनकी मुझे आवश्यकता थी ।”

राजकुमार ने इन दिव्यास्त्रों को एक एक करके बड़े कौतूहल के साथ स्पर्श किया । इन दिव्यास्त्रों के स्पर्श मात्र से राजकुमार उत्तर का भय जाता रहा और उसमें वीरता की विजली सी दौड़ गई । उत्साहित होकर पूछा—“वृहन्नला ! सचमुच क्या यह घनुष बाण और खडग पाण्डवों के हैं ? मैंने तो सुना था कि वे राज्य से वचित होकर जंगलों में चले गए थे और फिर १२ वर्ष बाद उनका कुछ पता न चला कि मर गए या जीते हैं । क्या तुम पाण्डवों को जानती हो ? कहा है वे ?”

तब वृहन्नला ने कहा—“राजा विराट की सेवा करने वाले कंक ही युधिष्ठिर हैं ।”

राजकुमार को असीम आश्चर्य हुआ । पूछा—“क्या सच ?”

“हां, हा महाराज युधिष्ठिर वही हैं ।”

“अरे ?”

“और रसोइया वल्लभ वास्तव में भीमसेन है । और जिस का अपमान करने के कारण कीचक को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा वही सीरन्ध्री पांचाल नरेश की यशस्वनी राजकुमारी द्रौपदी है । अश्वपाल ग्रंथिक, और ग्वाले का कार्य करने वाला तंतिपाल और कोई नहीं, नकुल तथा महदेव ही हैं ।”—वृहन्नला ने कहा, जिसे सुनकर जहाँ राजकुमार को आश्चर्य हुआ, वहाँ हर्ष भी ।

वह पूछ बैठा—“तो फिर वीर अर्जुन कहां है ?”

“अर्जुन तुम्हारे नामने उपस्थित है ।”

राजकुमार उत्तर ने आंखें मल मल कर अपने सामने डधर उधर दूर तक देखा और फिर बोला—“कहाँ है वीर अर्जुन ?”

“वह मैं ही हूँ।”

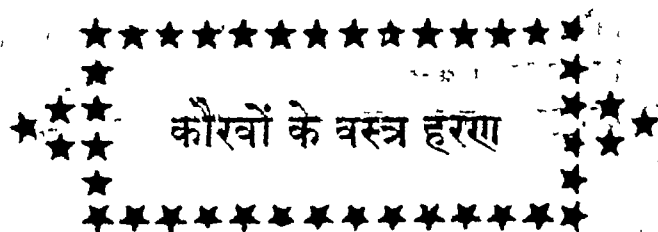
वृहन्नला की यह बात सुनकर राजकुमार खोया सा रह गया। वृहन्नला वेपधारी अर्जुन बोला—“राजकुमार ! धवराओ नहीं। अभी अभी मेरी बात की सत्यता का प्रमाण मिल जाता है। भीष्म, द्रोण, और अश्वस्थामा के देखते देखते कौरव सेना को मैं अभी ही हरा दूंगा, सारी गोए छुड़ा लाऊंगा और तुम्हें यशस्वी बना दूंगा।”

यह सुनते ही उत्तर हाथ जोड़कर अर्जुन को प्रणाम करके बोला—“पार्थ ! आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ। क्या सचमुच ही मैं इस समय यशस्वी धनजय को अपने सामने देख रहा हूँ ? जिन्होंने मुझे कायर में बोरता का संचार किया क्या वे विजयी अर्जुन ही हैं ? नादानी के कारण यदि मुझ से कोई भूल हुई तो आप इसे के लिए मुझे क्षमा कर दें”

कौरव सेनाओं को देखकर कही फिर उत्तर धवरा न जाय और उसे विश्वास हो जाय कि वास्तव में अर्जुन वही है, अर्जुन ने पूर्व युद्धों की कुछ मुख्य मुख्य घटनाएँ सुनानी आरम्भ कर दीं। इस प्रकार उत्तर को सन्तुष्ट करके तथा उसका माहम बढ़ाकर अर्जुन ने रथ कौरव सेना के सामने ला खड़ा किया। चूड़िया उतार फेंकी और अगुलि प्राण पहन लिये। खुले खुले केश सवार कर कपड़े से कस कर बांध लिए। जिन प्रभु का ध्यान लगाया और गाण्डीव धनुष सम्भाल लिया। इसके पश्चात् गाण्डीव पर डोरी चढ़ाकर तीन बार टंकार किया। जिसे सुनकर कौरव सेना के कुछ वीरों के दिल दहल गए और कुछ हठात् चीख उठे—“अरे यह तो अर्जुन के गाण्डीव की टंकार है।”

कौरव सेना टंकार की दगों दगाओं को गुंजा देने वाली ध्वनि ने स्वस्थ भी न होने पाई थी कि अर्जुन ने खड़े होकर अपने देव दंत नामक धनुष की ध्वनि की, जिसमें कौरव सेना घबरा उठी। उस में खलबली मच गई कि अर्जुन आगया।

उन्नीसवां परिच्छेद



अर्जुन का रथ जब धीरे-गभीर घोष करता हुआ आगे बढ़ा तो धरती हिलने लगी। गाण्डीव की टंकार सुनकर और अर्जुन का मुकाबले पर आना जानकर कौरव-वीरो का कलेजा कांप उठा।

उस समय द्रोणाचार्य बोले, “सेना की व्यूह रचना सुव्यवस्थित होगी पर कर लेनी होगी। इकट्ठे होकर सावधानी से लड़ना मालूम होता है सामने अर्जुन आगया है जिसके सामने आना जान कर ही हमारे सैनिक भयभीत होगए है।”

आचार्य की शका और घबराहट दुर्योधन को न सुझाई। वह कर्ण से बोला—“पाण्डवों को अपनी शर्त के अनुसार १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास में व्यतीत करना था। परन्तु अभी तेहरवा वर्ष पूरा नहीं हुआ और अर्जुन प्रकट हो गया। हमारे तो भाग्य खुल गए। आचार्य को तो चाहिए कि वे आनन्द मनावें पर वे तो भय विह्वल हो गए हैं। बात यह है कि पाण्डवों का स्वभाव ही ऐसा होता है। उनकी चतुरता तो दूसरों के दोष निकालने में ही दिखाई पड़ती है। अच्छा यही होगा कि उन्हें पीछे खींच कर हम आगे बढ़ें और स्वयं सेना का संचालन करें।”

कर्ण तो ठहरे दुर्योधन का धनिष्ठ मित्र। उसकी हा में ही बिनाता हुआ बोला—“विचित्र बात है कि सेना के नायक तथा

मुख्य योद्धा तक भयभीत है, कांप रहे हैं जब कि उन्हें दिल खोल कर लड़ना चाहिए। आप लोग यही रट लगा रहे हैं कि सामने जो स्थिति आ रहा है उस पर धनुष ताने अर्जुन बैठा है। पर वहाँ अर्जुन के स्थान पर परशुराम भी हो, तो हमें क्या डर है? मैं तो अकेला ही उसका सामना करूँगा और आपको उस दिन जो वचन दिया था उसे आज पूर्ण करके दिखाऊँगा। सारी कौरव सेना और उस के सभी नेता नायक भले ही खड़े देखते रहे, चाहे गायों को भगा ले जायें, मैं अन्त तक डटा रहूँगा और यदि वह अर्जुन ही है तो अकेला ही उससे निव्वट लूँगा।”

कर्ण को यो दम भरते देख कर कृपाचार्य भैरवा उठे। बोले—“कर्ण! मूर्खता की बातें न करो। हम सब को मिल कर अर्जुन का मुकाबला करना होगा, उसे चारों ओर से घेर लेना होगा। नहीं तो हमारे प्राणों की खतर नहीं। अर्जुन की शक्ति को मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ। तुम अकेले ही उसके सामने जाने का दुस्माहस मत कर बैठना।”

कर्ण को यह बात अपने गर्व तथा मान पर आघात प्रतीत हुई उसने चिढ़ कर कहा—“आचार्य जी तो अर्जुन की प्रशंसा करने ही नहीं सकते। इन्हें अर्जुन की शक्ति बड़ा बड़ा कर दिखाने की आदत सी होगई है। न जाने उनको यह बात भय के कारण है अथवा अर्जुन के साथ अधिक प्रेम होने के कारण है। जो हा, जो डरपोक है अथवा केवल उदर पूर्ति के लिए ही दुर्याधन के आश्रित है वे भले ही हाथ पर हाथ धरे खड़े हैं न करे युद्ध या वापिस लौट जाय। मैं अकेला ही डटा रहूँगा। जो शत्रु को प्रशंसा करने हैं या उसके भय से मारे होश हवास खो रहे हैं भला उनका क्या काम।”

जब कर्ण ने आचार्य पर उस प्रकार अभिप्राय लगाया, और ताना मारा तो उनके भानजे अश्वत्थामा ने न रुका गया। उसने भैरवा को कहा—“कर्ण! अभी तो गाढ़ लेकर हम हस्तिनापुर नहीं पहुँचे हैं। क्या तो तुम ने अभी तक कुछ नहीं और दीग हाजिर रहे हो दृष्टिग भंगी। हम भले हाथ धरिय न हो, मान्य

रटने वाले तथा विश्वास देने वाले हो हो, पर राजाओं को जुए से हराकर उनका राज्य छीनने तथा वनों में भटकने के लिए भेजने की बात हमने न क्षत्रियोचित धर्म में देखी है और न शास्त्रों में पढ़ी है। फिर जो लोग युद्ध के द्वारा राज्य जीतते हैं वे भी अपने मुँह से अपनी डींगें नहीं होंका करते। तुम लोगों ने कौनसा भारी पहाड़ उठा लिया जो ऐसी श्रेणी बघार रहे हो? अग्नि चुपचाप सब चीजों को पकाती है, सूर्य चुपचाप सब जगह प्रकाश करता है और पृथ्वी अखिल चराचर का भार वहन करती है। फिर भी यह सब अपनी प्रशंसा आप नहीं करने। तब जिन क्षत्रिय वीरों ने जुआ खेलकर राज्य छीन लिया है, उन्होंने कौन-सा ऐसा पराक्रम किया है जो अपने मुँह-मिया मिठू-वनकर फूले नहीं समाते? जैसे शिकारी जाल फैला कर भोली तथा निरपराधी चिड़ियों को फंसा लेता है, इसी प्रकार तुम लोगो ने पाण्डवों को फंसाकर राज्य छीना, फिर इतनी लज्जा तो होनी ही चाहिए कि अपने मुँह से अपनी प्रशंसा न करो।”

दुर्योधन तिलमिला कर बोला—“अश्वस्थामा ! शीक ही तो कह रहा था कर्ण। हम पाण्डवों से किस बात में कम हैं? कर्ण की टक्कर का पाण्डवों से है कौन? हम ने किसे धोखा दिया जो हरा नज्जित हो?”

अश्वस्थामा ने तुरन्त उत्तर दिया —“ऐसे शूरवीर हो तो वनाओं किम युद्ध में पाण्डवों को हराया है आप लोगो ने? एक वस्त्र में द्रौपदी को भनी सभा के बीच खींच लाने वाले वीरो! वनाओं तुम ने उसे युद्ध में जीता था? लेकिन मावधान हो जाओ आज यहा चौपड का खेल नहीं है जो शकुनि के द्वारा चालाकी से फोड़े पामा फेंका और राज्य हथिया लिया। आज तो अर्जुन के नवय रणागण में दो दो हाथ करने का मन्त्राल है अर्जुन का गण्डीव चौपड की गोटे नहीं फेंकेगा, बल्कि अपने बाणों की बौछार करेगा। वर्ण की धोम में काम चलने वाला नहीं है। यहाँ जिह्वा की नहीं वल की लड़ाई है।”

कर्ण बाध के मारे जलने लगा। गरजकर बोला—“अश्व-

अश्वत्थामा ! अर्जुन तो अर्जुन उसके साथ तुम जैसे उसके प्रशंसक भी प्रा जाये तो कर्ण उनका डट कर मुकाबला करने वाला है । चौपड के खेल की बात उठाकर पाण्डवों की मूर्खता के प्रति सहानुभूति दर्शाने वाले योद्धा । राजा दुर्योधन की सेना में खड़े होकर शत्रु का पक्ष लेते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ।”

“लज्जा तो उसे आये जो दुर्योधन की चापलूसी करते हुए न्याय अन्याय में भेद करना ही भूल गए । अथवा लम्बी चौड़ी डोंगे हाक कर युद्ध जीतने का स्वप्न देखे । मुझे लज्जा क्यों आने लगी है ?” — अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर कहा ।

दुर्योधन को अश्वत्थामा की खरी खरी बातों ने विचलित कर दिया । क्रोध के मारे कांपते हुए उसने कहा — “अश्वत्थामा ! आचार्य जी के कारण मैं तुम्हारी बातें सहन कर रहा हूँ । वरना अभी ही इस मूर्खता का मज़ा चखा देता । तुम यह भी भूल गए कि अपनी बातों से किसे अपमानित कर रहे हो । स्मरण रखो कि मैं अपमानित होने के लिए कभी तैयार नहीं हूँ । जिस समय हस्तिना पर राज्य के धन से तुम आनन्द लूटते हो उस समय तुम्हें यह क्यों नहीं याद आता कि यह वही धन है जो उसी दुर्योधन की सम्पत्ति है जिस ने पाण्डवों को जुए में हराया है । ऐसे लज्जाशील हो तो पाण्डवों के साथ जाकर भीख मागते क्यों नहीं घूमते ?”

“जिनके बल पर तुम अकडते हो, उनके लिए ऐसी बातें मुह से निकालते समय यह मत भूलो कि तुम सौभाग्य शाली हो कि आचार्यों के शुभ कर्मों के प्रताप से तुम्हारा पाप का घड़ा अभी तक खाली रह रहा है ।” — अश्वत्थामा ने बिगड़ कर कहा ।

“देखते हो, आचार्य जी ! अश्वत्थामा का दिमाग कितना बिगड़ गया है ?” — दुर्योधन ने कृपाआचार्य की ओर देखकर कहा ।

कौरव वीरों को इस प्रकार आपस में झगड़ते और परिस्थिति चिन्ता जनक होते देख भीष्म पितामह बड़े खिन्न हुए । वे हस्तक्षेप करते हुए बोले — बुद्धिमान व्यक्ति कभी अपने आचार्य का अपमान नहीं करते । योद्धा को चाहिए कि देश तथा कालको

देखने हुए उसके अनुसार युद्ध करे। कभी कभी बुद्धिमान में भ्रम में पड़ जाते हैं। समझदार दुर्योधन भी क्रोध के कारण भ्रम में पड़ गया है और पहचान नहीं पा रहा है कि सामने खड़ा वीर, अर्जुन है। अश्वस्थामा ! कर्ण ने जो कुछ कहा "मौलूम" होता है, वह आचार्य को उत्तेजित करने के लिए ही था। तुम उनकी बातों पर ध्यान न दो। द्रोण, कृपा तथा अश्वस्थामा कर्ण तथा दुर्योधन को क्षमा करे। सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान एवं क्षत्रियोचित तेज आचार्य कृप, द्रोण, और उनके यशस्वी पुत्र अश्वस्थामा को छोड़ कर और किस में एक साथ पाया जा सकता है। परशुराम को छोड़ कर द्रोणाचार्य की बराबरी करने वाला और कौनसा ब्राह्मण है ? यह आपस में लड़ने भगड़ने तथा वाद विवाद करने का समय नहीं है। अभी तो हम सब को एक साथ मिलकर शत्रु का मुकाबला करना है। शत्रु सामने धनुष ताने खड़ा है और तुम सब लोग आपस में भगड़ रहे हो, यह लज्जा की बात है।"

पितामह के इस प्रकार समझाने पर आपस में भगड़ रहे दुर्योधन, अश्वस्थामा आदि कौरव वीर शांत होगए।

उस समय दुर्योधन ने कहा—'पितामह ! आज बड़े हर्ष का अवसर है। पाण्डव अपनी-सूखता से फिर शिकार हुए। अर्जुन अज्ञात वास की अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही प्रकट होगया।"

"बेटा दुर्योधन ! अर्जुन प्रकट होगया वह ठीक है। पर उनकी प्रतिज्ञा का समय कल ही पूर्ण हो चुका। इस लिए तुम्हारा प्रसन्न होना व्यर्थ है।" —भीष्म जी ने कहा।

"—नही पितामह अभी तो कई दिन शेष हैं।"

"—तुम भूलते हो, दुर्योधन ! पाण्डव कभी ऐसी भूल नहीं करने वाले।"

"—परन्तु हमारे हिसाब से अभी तेहरवा वर्ष पूरा हुआ है नहीं।"

"—बेटा ! चन्द्र और सूर्य की गति, वर्ष, महीने और पक्ष

विभाग के पारस्परिक सम्बन्ध को अच्छी प्रकार जानने वाले, ज्योतिषी मेरे कथन की पुष्टि करेंगे। तुम लोगो को हिसाब में कहीं भूल हुई है। इसी लिए तुम्हें भ्रम हुआ है। ज्यों ही अर्जुन ने अपने गाण्डीव की टकार की, मैं समझ गया कि प्रतिज्ञा की पूर्ति पूर्ण होगई।”

—भीष्म पितामह ने ऐसी बात कह कर दुर्योधन की प्रसन्नता पर धूल फेर दी।

वह बोला—“पितामह ! खेद कि हम पाण्डवों का पता न लगा सके। और अब अवधि पूर्ण होते ही हमें अर्जुन से लड़ना पड़ रहा है। जिसकी मुझे आशंका थी वही हुआ। आज तो उस भयकर युद्ध का श्री गणेश समझिये जो वे मेरे विरुद्ध राज्य छीनने के लिए कर रहे।”

—“मेरा विचार है कि युद्ध आरम्भ करने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि पाण्डवों के साथ सन्धि कर ले या नहीं,—भीष्म पितामह गभीरता पूर्वक बोले—यदि सन्धि करने की इच्छा हो तो उस के लिए अभी समय है। बेटा, खूब सोच विचार कर बताओ कि तुम न्यायोचित सन्धि के लिए तैयार हो या नहीं।”

“पूज्य पितामह ! मैं सन्धि नहीं चाहता। राज्य तो रहा दूर मैं तो उसका कोई अंश भी उन्हें नहीं दे सकता। इसी लिए सन्धि की बात छोड़िये अब तो लड़ने की तैयारी कीजिए। देखिये। कितना सुन्दर अवसर है कि हमारी इतनी विशाल सेना का सामना अकेला अर्जुन करेगा। यही उन में सब से अधिक वीर हैं। यदि युद्ध में हम इसे मार भगाए या इसका बध हो जाये तो फिर शेष चार भाइयों को कभी भी लड़ने का सहस्र नहीं हो सकता। “—दुर्योधन ने कहा।

“पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की है तो तुम्हें भी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना ही श्रेयस्कर है। वरना रक्त पात होगा और उसका परिणाम चाहे जो हो, परन्तु उसका उत्तर दायित्व तुम पर आयेगा। इस लिए यदि मेरी राय मानो तो सन्धि के लिए उद्यत

हो जाओ।”—भीष्म पितामह ने अपनी राय प्रकट करते हुए कहा।

दुर्योधन ने बात टालना ही लाभ प्रद जानकर कहा—“पितामह ! शत्रु हमारे सिर पर खड़ा है; और हम ऐसे समय युद्ध न करके सन्धि की बात चलाए यह अच्छी बात नहीं है। आप इस समय तो युद्ध की ही योजना बनाइये।”

यह सुन द्रोणाचार्य बोले—“भीष्म जी की राय ठीक होती है भी चूँकि हम तुम्हारी सहायता के लिए आये हैं, इस लिए तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिए हमारा कर्तव्य है हम युद्ध की योजना बनायें। अच्छा तो फिर सेना का चौथाई भाग अपनी रक्षा के लिए साथ लेकर दुर्योधन हस्तिना पुर की ओर वेग से कूच करदे। एक हिस्सा गायो को भगा ले जायें। शेष जो सेना रहेगी उसे हम पाँच महारथी साथ लेकर अर्जुन का मुकाबला करें। ऐसा करने से ही राजा की रक्षा हो सकती है।”

आचार्य की योजना कुछ वाद विवाद के पश्चात् स्वीकृत हुई और फिर उनकी आज्ञानुसार कौरव वीरो ने व्यूह रचना की।

उधर अर्जुन राजकुमार उत्तर से कह रहा था—“उत्तर। सामने की शत्रु सेना में दुर्योधन का रथ दिखाई नहीं दे रहा है। अभी अभी वह कहीं गुम होगया। कवच पहने जो खड़े हैं वे तो भीष्म पितामह हैं, लेकिन दुर्योधन कहाँ चला गया। इन महारथियों की ओर से हट कर तुम रथ को उस ओर ले चलो जहाँ दुर्योधन हो।”

दुर्योधन भाग रहा होगा, भागता है तो भागने दो। आप को तो गौओं से मतलब।”—उत्तर बोला।

“मुझ भय है कि कहीं दुर्योधन गौओं को लेकर हस्तिना पुर की ओर न भाग रहा हो।”—अर्जुन ने उत्तर दिया।

उत्तर की समझ में आत आगई और उसने रथ उसी ओर हाक दिया जिधर से दुर्योधन वापस जा रहा था। जाते जाते

अर्जुन ने दो दो बाण आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की ओर इस प्रकार मारे कि जो उनके चरणों में जाकर गिरे। इस प्रकार अपने बड़ों की वन्दना करके अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा किया।

पहले तो अर्जुन ने गाये भगा ले जाने वाली सेना की टुकड़ी के पास जाकर बाण वर्षा की। तीव्र गति में हो रही बाण वर्षा के कारण सेना तनिक सी देर में ही इस प्रकार तितर-बितर हो गई जैसे मिट्टी के ढेलों की मार से काई। सैनिक प्राणों को लेकर भागने लगे और अर्जुन ने उनके अधिकार से गौओं को मुक्त करा लिया। फिर ग्वालों को गाये विराट नगर की ओर लौटा ले जाने का आदेश देकर अर्जुन दुर्योधन का पीछा करने लगा।

अर्जुन को दुर्योधन का पीछा करते देख कर भीष्म आदि सेना लेकर अर्जुन का पीछा करने लगे और शीघ्र ही उसे घेरकर बाणों की बौछार करने लगे। अर्जुन ने उस समय अद्भुत रण-कुशलता का परिचय दिया। सब से पहले उसकी कर्ण से टक्कर हुई। कितनी ही देरी तक कर्ण अबाध गति से बाण वर्षा करता रहा। अर्जुन तथा कर्ण का युद्ध देखकर कितने ही सैनिकों के होश जाते रहे। कुछ ही देर बाद अर्जुन ने एक ऐसे दिव्यबाण का प्रयोग किया कि कर्ण घायल हो गया और फिर उसे सभलने का तनिक सा भी अवसर न दे बाणों पर बाण मारता रहा। कर्ण बुरी तरह घायल हुआ और अन्त में उसे भागते ही बना।

तब द्रोणाचार्य ने उसे ललकारा—“अर्जुन ! अब सम्भलो। सावधानी से युद्ध करो।”

अर्जुन ने बाण छोड़कर प्रणाम किया और बोला—“गुरुदेव ! आप भी सावधानी से सामने आइये।

दोनों में भयकर युद्ध होने लगा। कितनी ही देर तक दोनों ओर से बाण वर्षा होती रही। अन्त में द्रोणाचार्य ने दिव्यास्त्रों का प्रयोग आरम्भ कर दिया, पर उन अस्त्रों को अर्जुन बीच ही में अपने अस्त्रों द्वारा प्रभाव हीन कर देता। फिर अर्जुन ने दिव्यास्त्रों का आक्रमण किया, जिसे द्रोणाचार्य सभाल न पाये और

उनकी बुरी गत होने लगी। हाथ पाव काँप उठे। यह देखकर अश्वस्थामा आगे बढ़ा और अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। अर्जुन स्वयं नहीं चाहता था कि उसके हाथों गुरुदेव द्रोणाचार्य के साथ कोई अशुभ घटना घटे, इस लिए उनकी ओर से हटकर अश्वस्थामा की ओर ध्यान प्रकट करके उसने द्रोणाचार्य को खिसक जाने के लिए मौका दे दिया। आचार्य भी ऐसे अवसर को खोना न चाहते थे, वह सुअवसर समझ शीघ्रता से खिसक गए।

उनके चले जाने के पश्चात् अर्जुन अश्वस्थामा पर टूट पड़ा। दोनों में भयायक युद्ध होता रहा। द्रोणाचार्य के दोनों ही शिष्य थे, और अश्वस्थामा तो ठहरा उनका पुत्र। पर अर्जुन के आचार्य ने पुत्रवत् शिक्षा दी थी। दोनों ही धुरन्धर योद्धा थे इस लिए प्रत्येक एक दूसरे को पछाड़ने के लिए प्रयत्नशील रहा। परन्तु जब अर्जुन ने गाण्डीव द्वारा दिव्यबाणों की वर्षा आरम्भ की तो अश्वस्थामा के लिए मुकाबले पर टिक पाना असम्भव होगया—और कुछ ही देर में अश्वस्थामा परास्त होगया।

तब कृपाचार्य की बारी आई। वे जाते ही क्रुद्ध होकर अर्जुन पर टूट पड़े। पर जिस वीर ने द्रोणाचार्य का साहस हल लिया था उसके सामने बेचारे कृपाचार्य क्या कर सकते थे। वे पूरी शक्ति से लड़े। जो भी अस्त्र शस्त्र उनके पास थे, पूरी शक्ति से उन्हें प्रयोग किया। परन्तु जब तक वे स्वयं अपने सभी अस्त्र शस्त्रों को अदल बदल कर प्रयोग नहीं कर चुके, अर्जुन ने अपना वार न किया। अन्त में कुछ देर के लिए अर्जुन ने अपने अस्त्र आक्रमण के रूप में प्रयोग किए और कृपाचार्य हार खा गए।

अर्जुन को युद्ध कला की अच्छी शिक्षा मिली थी और था उस में अद्भुत बल। वह निशाना मारने में कभी चूकता नहीं था, उसके हाथों में बड़ी फुर्ती थी और उसके बाण, बहुत दूर तक मार कर सकते थे। जिसके कारण वह अपने शत्रुओं के बाणों को अपने पास तक पहुँचने से पहले बीच ही में तोड़ डालता था। अतएव वह उन सभी वीरों को परास्त करने में सफल हुआ जो उस के सामने आये।

फिर अर्जुन ने उत्तर को लक्ष्य करके कहा—“जिस रथ पर मुवरागमि ताल के चिन्ह वाली ध्वजा लहराती है, उसी ओर मुझे ले चलो। वह मेरे पितामह भीष्म जी का रथ है, जो देखने में देवता के समान जान पड़ते हैं, परन्तु मेरे साथ युद्ध करने के लिए पधारें है।”

उत्तर का शरीर बाणों से घायल हो चुका था। परन्तु अभी तक वह किसी प्रकार यह सब घाव सह रहा था, क्योंकि इस बात ही ने कि वह वीर अर्जुन का रथ हाक रहा था, एक असीम साहस भर दिया था। फिर भी उस समय वह काफी शिथिलता अनुभव कर रहा था। बोला—“वारवर! अब मैं आप के घोड़े पर नियन्त्रण नहीं रख सकता। मेरे प्राण सन्तप्त हैं, मन घबरा रहा है। आज तक कभी भी मैंने इतने वीरों को युद्ध रत नहीं देखा था। आप के साथ जब मैं इतने वीरों को लड़ते देखता हूँ तो मेरा हृदय विचलित हो जाता है। गदाओं के टकराने का शब्द, शत्रु की उच्च ध्वनि, वीरों का सिंहनाद, हाथियों की चिंघाड़ तथा बिजली की गड़ गड़ाहट के समान गाण्डीव की टकार सुनते सुनते मेरे कान बहरे हुए जाते हैं, स्मरण शक्ति क्षीण हो रही है। अब मुझ में चाबुक और बागडोर सभालने की शक्ति नहीं रह गई है।”

अर्जुन ने उसे धैर्य वधाते हुए कहा—“नरश्रेष्ठ, डरो मत, तुम राजाविराट की वीर सन्तान हो। तुम पराक्रमी हो, मत्स्य नरेण के सर्व विख्यात वश के रत्न हो। सावधान होकर बैठे रहो धीरज रख कर घोड़े पर नियन्त्रण रखो। वस थोड़ी देरी की बात और है मैं शीघ्र ही समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लूँगा और फिर विजय पताका फहराता हुआ राजधनी लौटूँगा। लोग जानेंगे कि कौरव सेना पर विजय प्राप्त करने वाले युगस्वी एवं पराक्रमी वार तुम्ही हो। फिर माग नगर तुम्हारी जय जयकार मनायेगा। राजा तुम्हारी वीरता को सुनकर गद गद हो उठेगा। देखो इतना बड़ा मान वस थोड़े समय में ही तुम्हें मिलने वाला है। तुम देखते जाओ मैं कैसे तीर चलाता हूँ, कैसे दिव्यास्त्रों का प्रयोग करता हूँ सभी को गहरी दृष्टि से देखो, ताकि तुम भी अविष्य में इसी प्रकार

युद्ध कर सकों। तुम ने अब तक जो साहस दर्शाया है वह प्रशसनीय है।"

इस प्रकार अर्जुन ने उत्तर को धीरज बधाया। और फिर उत्तर साहस पूर्वक रथ को उसी ओर ले चला, जिधर भीष्म पितामह अपने अग रक्षको, सहयोगियो तथा साथी योद्धाओ के बीच खड़े थे, अपनी ओर अर्जुन को आते देख कर निष्ठुर पराक्रम दिखाने वाले शातनु नन्दन भीष्म जी ने बड़े वेग से अर्जुन पर बाण वर्षा-आरम्भ करके धीरता पूर्वक उसकी गति रोक दी। अर्जुन उन के बाणों को बीच ही में काटता रहा और कुछ ही देरी बाद एक ऐसा बाण मारा कि भीष्म जी के रथ की ध्वजा कट कर गिर पड़ी इसी समय महाबली दुःशासन, विकर्ण, दुःसह, और विविशति इन चार ने आकर धनजय को चारों ओर से घेर लिया। दुःशासन ने एक बाण से विराट नन्दन उत्तर को बीधा और दूसरे से अर्जुन की छाती पर चोट की। इस से क्रुद्ध होकर धनजय ने एक ऐसा तीख बाण मारा जिस से दुःशासन का सुवर्णजटित धनुष काट दिया और फिर एक के बाद दूसरा तडातड पांच बाण उसकी छाती को निशाना बनाकर मारे। उन पांच पैने बाणों की मार से कराहता हुआ दुःशासन युद्ध छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। परन्तु तभी विकर्ण अर्जुन पर बाण वर्षा करने लगा। कुछ समय तो अर्जुन ने उसके प्रहार में अपनी रक्षा करने के लिए ही गाण्डीव का प्रयोग किया, पर एक बार उस के ललाट पर अर्जुन ने एक तीखा बाण मारा, जिसके लगते ही घायल होकर विकर्ण रथ से गिर पड़ा। तदनन्तर दुःसह और विविशति अपने भाई का बदला लेने के लिए अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगे। पर दोनों के एक साथ प्रहार से भी अर्जुन तनिक सा भी विचलित न हुआ, उस ने कुछ देर अपनी रक्षा की ओर दायें लगा कर ऐसे बाण चलाये, जो उन दोनों के बाणों को तोड़ते हुए उनके घोड़ों, सारथी और स्वयं उनके शरीरों को बीचों-बीच में मफन हुए।

वीर अर्जुन द्वारा चलाए गए बाणों से जब दुःसह और विविशति के घोड़े मारे गए और उनका शरीर लोह-लुहान हो गया, तो उनके सेवक उन्हें युद्ध-भूमि से हटा कर उचित-चिकित्सा के

लिए दूर ले गए। और जिसका कभी निशाना गलत न बैठता था, वह अर्जुन सेना में चारों ओर प्रहार करने लगा।

धनजय के ऐसे पराक्रम को देखकर दुर्योधन की सेना के षष्ठ रहे सभी वीर चारों ओर से अर्जुन पर टूट पड़े और एक साथ ही बाण चलाकर अर्जुन को इतना अवसर न दिया कि वह किसी तरफ बाण चला सके। अनेक स्थानों पर उस का कवच टूट गया और उसके शरीर में कई घाव हो गए परन्तु वीर अर्जुन तनिक सा भी हतोत्साहित न हुआ। उसने तुरन्त ही एक ऐसा बाण मारा, जो मेघाच्छादित आकाश में कोधती बिजली की भाँति चमका और उस के प्रभाव से कौरव वीर बेहोश होने लगे। कहीं आग सी बिखरी और कहीं दुग्ध ने वीरों को घेर लिया। घबरा कर कुछ वीर प्राण लेकर वहाँ से भाग खड़े हुए। कुछ जीवित होते हुए भी मृत समान गिर पड़े। हाथी तक मूर्च्छित हो गए, इस से सभी कौरवों का उत्साह ठण्डा पड़ गया, सारी सेना तितर बितर होगई और साहसी वीर तक निराश होकर इधर उधर चारों ओर भाग पड़े।

यहाँ देखकर शान्तनुनन्दन भीष्म जी ने अपने सुवर्णजटित धनुष और मर्म भेदी बाण लेकर अर्जुन पर घावा कर दिया। सब से पहले उन्होंने अर्जुन के रथ पर फहराती ध्वजा पर फुफकारते हुए सर्पों के समान आठ बाण मारे। जिससे ध्वजा तार तार हो गई। अर्जुन ने इस प्रहार के उत्तर में एक लम्बे भाले से भीष्म जी का छत्र काट डाला, वह कटते ही भूमि पर आ गिरा और फिर उनके सारथी को, घोड़ों को, ध्वजा को और पार्श्व रक्षकों को घायल कर दिया। भीष्म पितामह भला कैसे सहन कर सकते थे कि कोई उनके सामने आकर उनके रथ, सारथी, घोड़ों आदि को घायल कर दे और उसका कुछ भी न बिगड़े, उन्होंने क्रुद्ध होकर दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इन के उत्तर में अर्जुन ने भी दिव्यास्त्र प्रयोग किये। और इस प्रकार दोनों में बड़ा रोमांचकारी युद्ध होने लगा।

कौरव भीष्म जी के रण कौशल को देखकर उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे— 'भीष्म जी ने अर्जुन के साथ जो भयंकर

युद्ध-ठाना है, वह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुन बलवान है, करुण है, रण कुशल और फुर्तीला है, तभी तो डटा हुआ है, वरना कौन है जो भीष्म जी के प्रहारों के आगे इस प्रकार ठहर सके।"

उस समय अर्जुन तथा भीष्म दोनों ने ही प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, रौद्र, वारुण, कौबेर, याम्य और वायव्य आदि दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे। कभी भीष्म जी किसी अस्त्र से अग्नि वर्षा करते तो उसके उत्तर में अर्जुन बिना मेंघ के ही सावन भादों सी झड़ी लगा देते, वर्षा होने लगती और भीष्म जी एक अस्त्र मार कर उस वर्षा को तुरन्त वायु के वेग से समाप्त कर देते। कभी अर्जुन मूर्छित कर डालने वाला अस्त्र चलाता तो भीष्म जी उस की प्रभाव हीन करने के लिए कोई अस्त्र प्रयोग करके तुरन्त ऐसा वाण मारते कि चारों ओर धूल ही धूल के बादल दिखाई पड़ते।

अर्जुन तथा भीष्म जी सभी अस्त्रों के ज्ञाता थे। पहले तो इन में दिव्यास्त्रों का युद्ध हुआ, इसके बाद वाणों का सग्राम छिड़ा। अर्जुन ने भीष्म का सुवर्णमय धनुष काट डाला। तब महारथी भीष्म जी ने एक ही क्षण में दूसरा धनुष लेकर उस पर प्रत्यक् चढ़ा दी और क्रुद्ध होकर वे अर्जुन के ऊपर वाणों की वर्षा करने लगे। एक वाण अर्जुन की बायीं पसली में लगा। परन्तु अर्जुन के मुँह से कोई चीत्कार न निकला। उस ने हसते हुए तीखी धार वाला एक वाण मारा और भीष्म जी का धनुष दो टुकड़े हागया। उसके बाद दस वाण मार कर भीष्म जी को छाती पर प्रहार किया, छाती पर कवच टूट गया और भीष्म जी का इतनी पीड़ा हुई कि वे रथ का कूबर ग्राम कर देर तक बैठे रह गए। भीष्म जी को अचेत जान कर मारथी को अपने कर्तव्य की याद आ गई और वह रथ को युद्ध भूमि से दूर ले गया।



* वीसवां परिच्छेद *

दुर्योधन की पराजय

भीष्म जी सग्राम का मुहाना छोड़ कर रण से बाहर हो गए, उस समय अर्जुन का रथ दुर्योधन की ओर बढ़ा। दुर्योधन भी क्रुद्ध होकर हाथ में धनुष ले अर्जुन के ऊपर चढ़ आया। उस ने कान तक धनुष खींच कर अर्जुन के ललाट में तीर मारा, और वह बाण ललाट में घुस गया, जिस से गरम गरम रक्त की धारा बह निकली। अर्जुन के ललाट को ही चोट नहीं पहुँची, बल्कि उस के मान को भी ठेस पहुँची। उसकी भुजाओं का रक्त उबल पड़ा और विपाणि के समान तीखे बाणों से दुर्योधन को बीधने लगा। इस प्रकार दोनों में भीषण युद्ध होता रहा। तत्पश्चात् अर्जुन ने एक पैने बाण द्वारा दुर्योधन की छाती बीध डाली और उसे घायल कर दिया। तभी दुर्योधन के अग्र रक्षक वीर चारों ओर से टूट पड़े परन्तु अर्जुन ने सभी मुख्य मुख्य योद्धाओं को मार भगाया। योद्धाओं को भागते देख दुर्योधन ने सभल कर आवाज लगाई—“वीरो! भागते क्यों हो? ठहरो मैं अभी ही इस दुष्ट को ठिकाने लगाता हूँ। ठहरो, हम सब मिल कर इसे मार भगायेंगे।” तभी अर्जुन ने एक दिव्यास्त्र छोड़ा जिससे चारों ओर घुआ ही धुआँ छागया! इस अद्भुत पराक्रम को देख कर कौरव वीरों के और भी पाव उखड़ गए और वे दुर्योधन को चिल्लाता छोड़ कर अपने प्राणों की रक्षा के लिए भागते ही रहे। तब दुर्योधन ने अपने को अकेला पाया और उसी समय अर्जुन ने एक ऐसा अस्त्र प्रयोग किया कि आग की लपटें

वरसने सी लगी। दुर्योधन ने भी, तब तो अपने वीरों का अनुकरण श्रेयस्कर समझा और वह भी वहा से निकल भागा।

अर्जुन ने देखा कि दुर्योधन घायल हो गया है और वह मुह से रक्त वमन करता बड़ी तेजी के साथ भागा जा रहा है। तब उसने युद्ध की इच्छा से अपनी भुजाए ठोक कर दुर्योधन को ललकारते हुए कहा— 'धृष्टराष्ट्रनन्दन ! युद्ध में पीछे दिखा कर क्यों भाग रहा है ? अरे, इस से तेरी विशाल कीर्ति नष्ट हो जायेगी। तेरे विजय के बाजे कैसे बजेगे ? तूने जिन धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य छीन लिया और अपनी इस कपट पूर्ण विजय पर फूला नही समाता, उन्ही का आज्ञाकारी यह माहयम पाण्डव, तो इस ओर खड़ा है, तनिक मुह तो दिखा। राजा के कर्तव्य का तो स्मरण कर। तुझे डूब मरने को कदाचित उधर कोई ताल न मिले, आ मैं मौत का रास्ता दिखाऊ। ... अरे, तू तो भागा ही जा रहा है। हां, तेरा कोई रक्षक नही रहा, जल्दी भाग, मेरे हाथो क्यों मरता है।”

कह कर अर्जुन ने एक व्यग्य पूर्ण अट्टहास किया।

इस प्रकार युद्ध में अर्जुन द्वारा ललकारे जाने पर दुर्योधन को बड़ी लज्जा आई। उसके सम्मान को धक्का लगा था जिसे वह यूही सहन नही करने वाला था। वह चोट खाये हुए नाग की भांति पीछे लौटा। अपने क्षत विक्षत शरीर को किसी प्रकार संभाल कर वह अर्जुन के मुकाबले पर आया और उस ने अपने वीरो को पकार कर कहा—कौरव वीरो ! तुम्हे अपने पौरुष की सौगंध ! आज अर्जुन का गर्व चूर्ण किए बिना गए ता तुम्हे जीने का कोई अधिकार नही। लौटा और युद्ध करो। दुर्योधन का जो भी मित्र, सहयोगी अथवा साथी हो, आड़े समय पर काम आने की इच्छा रखता हो, यदि वह अभी तक जीवित है तो आये और मेरा साथ दे।”

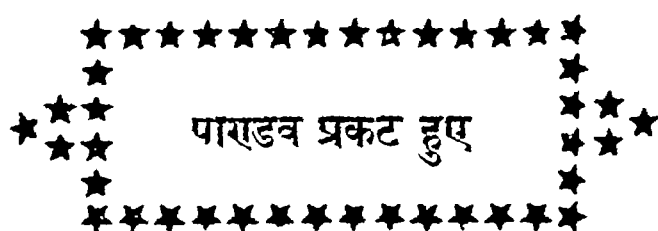
इस पुकार को सुन कर युद्ध भूमि से दूर विश्राम करता, कर्ण दुर्योधन की सहायता के लिए दौड़ पड़ा। उत्तर की ओर से कर्ण

को आते देख, पश्चिम दिशा से भीष्म जी धनुष चढ़ाये लौट पड़े। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविशति और दुःशासन भी अपने अपने धनुष लिए दुर्योधन की रक्षार्थ युद्ध भूमि में आ गए। इन सभी ने चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया और जैसे मेघ गिरि पर जल बरसाते हैं, इसी प्रकार यह सभी अर्जुन पर बाण तथा दिव्यास्त्र बरसाने लगे। अर्जुन अपनी रक्षा के लिए अपने दिव्यास्त्रों की तीव्र गति से प्रयोग करने लगा और अन्त में, यह समझ कि उन सभी का, जो प्राणों का मोहत्याग कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से आक्रमण कर रहे हैं, ऐसे ही सफल सामना दुर्लभ है, उसने तुरन्त कौरवों को लक्ष्य करके सम्मोहन नामक अस्त्र प्रकट किया, जिसका निवारण होना कठिन था। उसी समय उसने अपने हाथों में भयकर आवाज करने वाले अपने शस्त्र को धाम कर उच्च स्वर से बजाया उसकी गभीर ध्वनि में दिशा-विदिशा, भूलोक तथा आकाश गुंज उठे उस समय बहुत सभलते सभलते भी कौरव वीर मूर्च्छित हो गए, उनके हाथों से धनुष और बाण गिर पड़े तथा वे सभी परम शांत—निश्चेष्ट हो गए।

तब उसे अपनी उस घोषणा का ध्यान आया, जो उसने राजकुमार उत्तर की ओर से रनिवास की स्त्रियों के सम्मुख की थी, और जिसका समर्थन स्वयं राजकुमार उत्तर ने अपनी गौरव पूर्ण मुस्कान से किया था। अतः उत्तर से कहा—“राजकुमार ! जब तक कौरव वीर सचेत नहीं हो जाते, तुम इनके बीच से निकल जाओ और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा तथा दुर्योधन आदि प्रमुख वीरों के ऊपरी वस्त्र उतार लो। मैं समझता हूँ कि पितामह भीष्म सचेत है क्योंकि वे इस सम्मोहनास्त्र का निवारण करना जानते हैं अतः उनके घोड़ों को अपनी बायीं ओर छोड़ कर जाना, क्योंकि जो होश में है, उन से इसी प्रकार सावधान होकर चलना चाहिए।” “... और हाँ दुर्योधन तथा कर्ण के वस्त्र भी ले आना।”

अर्जुन के ऐसा कहने पर राजकुमार उत्तर घोड़ों की बागडोर छोड़ कर रथ से उतर पड़ा और कौरव वीरों के वस्त्र उतार लाया। उन दिनों प्रथा के अनुसार वस्त्र हरण करना जीत का चिन्ह माना जाता था।

✽ इक्कीसवां परिच्छेद ✽



जब राजा विराट चार पाण्डवों की सहायता से त्रिगर्त-राज मुशर्मा को परास्त करके नगर में वापिस आये तो पुरवासियों ने उनका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया। सारा नगर सजा हुआ था, जिधर से सवारी निकली पुष्प तथा मुद्राओं की वर्षा हुई। लोगो ने जय जयकार मनाई। विरुदावली गाई गई। अन्तःपुर में तो उनका बहुत ही उल्लासपूर्ण स्वागत किया गया। पर जब उन्होंने राजकुमार उत्तर को वहाँ न पाया तो उस के बारे में पूछ नाछक। स्त्रियो ने बताया कि राजकुमार कौरवों से लड़ने गए हैं। उन स्त्रियो की आँखों में तो राजकुमार उत्तर कौरव सेना की कौन कहे सारे विश्व पर विजय पाने योग्य था, और इसी लिए बड़े उल्लाम से उन्होंने राजा को यह शुभ समाचार सुनाया था परन्तु राजा तो इस समाचार को सुन कर ही एक दम चौंक पड़े। उनके विशेष पूछने पर स्त्रियो ने सारा वृत्तांत, कौरव सेना का आक्रमण, गाए चुराना, ग्वालों की टेर, और बृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर का युद्ध के लिए जाना यह सभी कुछ बताया।

राजा चिन्तित हो उठे। दुखी होकर बोले—“राजकुमार उत्तर ने एक हीजडे को साथ लेकर यह बड़े दुस्साहस का कार्य किया है। इतनी बड़ी सेना के सामने आखें मूढ़ कर ही कूद

पड़ा। कहा कौरवों की विशाल सेना, उसके यशस्वी रणकुशल वीर सेनानी और कहा मेरा मुक़ोमल प्यारा पुत्र? अब तक तो वह कभी-का मृत्यु के मुह में पहुंच चुका होगा। इस में कोई सन्देह ही नहीं है।”—कहते कहते बड़े राजा का कण्ठ रुक गया।

स्त्रियों को यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

राजा ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि सारी सेना ले जाय और यदि राजकुमार जीवित हो तो उसे सुरक्षित यहा ले आये। मन्त्रियों ने तुरन्त आदेश का पालन किया। सेना चल पड़ी, राज कुमार को खोजने।

राजा का हृदय पुत्र प्रेम में फटा जाता था, वे बड़े बेचैन थे। उन्होंने कहा—“हाय! दुख एक साथ किस प्रकार टूटा है कि उधर सुशर्मा ने आक्रमण किया और इधर कौरवों ने। मैं तो किसी प्रकार बच आया पर हाय मेरा पुत्र मेरे हाथों से गया।”

इस प्रकार शोकातुर होते देख कर सन्यासी वेष धारी कक ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा—“आप राजकुमार की चिन्ता न करें। बृहन्नला सारथी बन कर उन के साथ गई हुई है। उसे आप नहीं जानते, मैं भलि भाति जानता हू। जिस रथ की सारथी बृहन्नला होगी, उस पर चढ़ कर कोई भी युद्ध में जाय, उसकी अवश्य ही जीत होगी। इस लिए आप विश्वास रखें, राजकुमार विजेता होकर ही लौटेंगे। इसी बीच सुशर्मा पर आपकी विजय का समाचार पहुंच गया होगा, उसे सुन कर भी कौरव सेना में भगदड़ मच गई होगी। आप चिन्ता न करें।”

“नही, कक! मेरा बेटा अभी बड़ा कोमल है, वह इतने वीरों के सामने भला क्या कर सकता है। और बृहन्नला कुछ भी क्यों न हो, है तो हीजडा ही। उसके बस की क्या बात है।” राजा ने कहा।

“आप क्या जाने? बृहन्नला कितनी रणकुशल है?”

“कितनी भी हो अबेला चना-क्या भाङ्ग फोड़ेगा ?”

इसी प्रकार कक तथा राजा के मध्य वार्ता चल रही थी कि उत्तर का भेजा हुआ समाचार मिला—“राजन् ! आप का कल्याण हो । राजकुमार जीत गए । कौरव सेना भाग गई । गाये छुड़ा ली गई ।”

यह सुन कर विराट आखे फाड़ कर देखते रह गए । उन्हें विश्वास ही न होता था कि अकेला उत्तर सारो कौरव सेना को जीत सकेगा । वह अपने पुत्र के वास्तविक बल को जानते थे । और उन्हें यह भी विश्वास था कि जिस सेना का संचालन जगत विष्णुमातरण विद्या शिक्षक गुरु द्रोणाचार्य, देवता स्वरूप महान तेजस्वी भीष्म, साहसी रण कुशल कृपाचार्य महाबली दुर्योधन और असीम साहस के धारणकर्ता दानवीर कर्ण के हाथों में हो उसे परास्त करना, असम्भव को सम्भव कर दिखलाने के समान है । वे जानते थे कि यह वीर अर्जुन के अतिरिक्त और किसी के बस की बात नहीं है परन्तु उन्होंने अपने कानों से ऐसी बात सुनी थी, जिस पर कदाचिन् कोई विश्वास न करेगा । इस लिए उन्हें अपने कानों पर अविश्वास होने लगा ।

पूछ बैठे—“क्या कहा ? क्या मेरे पुत्र उत्तर ने कौरव वीरो को परास्त कर दिया ? क्या यह सही है ?”

दूत बोला “जी महाराज ! आप के राजकुमार ने कौरव सेना को मार भगाया । युद्ध मे भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, विकर्ण, दुर्योधन विविशति, दुशासन, दुसह आदि सभी महारथी बुरी तरह घायल हुए । उन्हो ने जितनी गौए हाक ली थी, सभी छुड़ा ली गई और अब राजकुमार कौरव वीरो के वस्त्र हरण करके विजय पताका फहराते हुए नगर लौट रहे हैं ।”

राजा विराट इस समाचार को पुन सुन कर मारे उल्लास के उछल पड़े और अपने मन्त्रियों को सम्बोधित करते हुए बोले— जाओ राजकुमार के स्वागत के लिए सारा नगर दुल्हन की भाँति सजवा दो । निर्धनो को मुह मांगा दान दो । जेलो मे सड रहे

वन्दियो को मुक्त कर दो ! नगर वासियो से कहो कि वे दीप मालिका का उत्सव मनाए । राज प्रसाद का शृंगार कराओ और राजकुमार का अभूत पूर्व स्वागत करो ।”

मन्त्रियो ने आज्ञा पाकर समस्त प्रबन्ध कर दिया ।

कक ने उस समय कहा—“राजन् ! देखिये मैंने कहा था ना, कि राजकुमार के साथ बृहन्नला है तो फिर आपको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है । बृहन्नला के होते कौरव वीरों की क्या मजाल कि जीत सके । आप नहीं जानते राजन् ! कि बृहन्नल रण कौशल मे कितनी प्रवीण है । वह तो शत्रुओं के लिए पराजय का सन्देश समझिए ।”

किन्तु विराट तो अपने लाडले के पराक्रम पर गर्व कर रहे थे, उन्होंने कहा—“कक, बृहन्नला तो नपुंसक है, उसे रण कौशल की क्या तमीज । और यदि वह कुछ जानती भी हो तो भी उसे तो रथ ही हाकना था, युद्ध तो राजकुमार ने ही किया होगा । इस विजय मे बृहन्नला का क्या हाथ है ?

“राजन् ! मैं फिर कहता हूँ बृहन्नला के सामने तो देवराज इन्द्र तथा श्रीकृष्ण के सारथी भी नहीं ठहर सकते । और यदि कही युद्ध मे उसके मुकाबले पर देवता भी उतर आये तो भी विजय बृहन्नला की हो । उसी महाबली बृहन्नला के कारण आपके पुत्र की विजय हुई —“कक ने बृहन्नला को विजय का श्रेय देते हुए जोरदार शब्दों मे कहा ।

“नहीं, नहीं. शिशु सिंह उत्तर का मुकाबला अब कोई नहीं कर सकता, यह प्रमाणित हो गया—“राजा विराट ने कहा और तभी एक दासी को बुला कर उन्होंने कहा—“आज हम बहुत प्रसन्न हैं । यह समझ मे नहीं आता कि हम अपनी प्रसन्नता को कैसे प्रकट करें । जाओ जरा चौपड़ की गोटें तो ले आओ, इस खुशी मे कक से दो दो हाथ ही हो जायें । आज खुशी के मारे मैं पागल हुआ जा रहा हूँ ।”

दासी ने तुरन्त आदेश का पालन किया । दोनों खेलने बैठ गए

और खेलते समय भी बातें होने लगी ।

“देखा, राजकुमार का शौर्य ? विख्यात कौरव वीरो को अकेले मेरे बेटे ने ही परास्त कर दिया । भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और दुर्योधन, अहा, हा, हा सब की वीरता, ख्याति तथा निपुणता धरी की धरी रह गई—” विराट ने कहा ।

“नि.सन्देह आप के पुत्र भाग्यवान है. नही तो उन्हे वृहन्नला जैसी सारथी कंसे मिलती ? राजकुमार की वीरता और उस पर भी वृहन्नला जैसी सारथी का साथ, दोनों ने मिल कर कौरवों का अभिमान भग कर डाला—“कक बोले ।

विराट भुभुला कर बोले—“ब्राह्मण ! आपने भी क्या वृहन्नला वृहन्नला की रट लगा रखी है ? मैं अपने महावीर राज कुमार की बात कर रहा हूँ और आप हैं कि उस हीजड़े के सारथीपन की बड़ाई कर रहे हैं ।”

कक ने गम्भीरता पूर्वक धीरज से कहा—“राजन् ! आपको सत्य के मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । वृहन्नला को आप साधारण सारथी न समझे वह जिस रथ पर बैठेगी उस पर कोई साधारण से साधारण रण योद्धा चाहे क्यों न सवार हो, पर विजय उसी की होगी । आज तक उसके चलाए रथ पर युद्ध में जाकर कोई विजय प्राप्त किये लौटा ही नहीं । यह उसके शुभ कर्मों, ज्ञान तथा निपुणता का प्रभाव है, जिसे वे सभी मानते हैं जो उसकी वास्तविकता से परिचित हैं ।”

कक की बात पर राजा विराट को दहृत क्रोध आया और उसने अपने हाथ का पासा कक (युधिष्ठिर) के मुह पर दे मारा और बोला—कक ! खबरदार जो फिर ऐसी बातें की । जानते हो तुम किस से बातें कर रहे हो ?”

पांसे की मार से युधिष्ठिर के मुख पर चोट आई और खून बहने लगा । सौरन्ध्री उस समय वहा उपस्थित थी, उस ने जब कक (युधिष्ठिर) के वदन से रक्त बहते देखा तो दौडकर अपनी साड़ी से उसे माफ करने लगी । पर साड़ी का वह कोना, जिस में रक्त

गोछा गया था, रक्त से तर हो गया। तब पास ही में रखे एक सोने के प्याले में उसने रक्त लेना आरम्भ कर दिया, ताकि रक्त की धारा फर्श तथा कपड़ों को न खराब करदे। यह देख राजा विराट ने आवेश में आकर कहा “सौरन्ध्री ! यह क्या कर रही है। सोने के प्याले में रक्त भर रही है ? क्यों ?”

सौरन्ध्री बोली—‘राजन् ! आप नहीं जानते कि आप ने—कितना भयकर अनर्थ कर डाला। जिनके वदन से रक्त बह रहा है, वे कितने महान व्यक्ति हैं, आप को नहीं मालूम। यह इसी योग्य है कि इनका रक्त सोने के प्याले में लिया जाय।’

राजा विराट को सौरन्ध्री की बात अच्छी न लगी। वे दात पीसने लगे। उसी समय एक दूत ने आकर सूचना दी कि राजकुमार उत्तर रण भूमि से वापिस आगए हैं। और उसी समय राजा ने स्वयं राजकुमार के स्वागत में वजा रहे मागलिकवाद्य यंत्रों की ध्वनि सुनी। जय जयकार की ध्वनि गूँज रही थी। और बाजों के स्वर चारों ओर सुनाई दे रहे थे। राजा उल्लास पूर्वक अपने बेटे का स्वागत करने के लिए उठ और बाहर चल दिए, परन्तु उसी समय राजकुमार उत्तर वहाँ पहुँच गया। उसने पिता को सादर प्रणाम किया। राजा ने उसे अपनी छाती से लगा लिया।

राजकुमार की दृष्टि कंक की ओर गई। उनका मुँह लहू-लुहान देख कर उसने कहा—‘पिता जी ! इन्हें क्या हुआ ? ‘बेटा ! तुम्हारी विजय की सूचना पाकर जब हम अपना हार्दिक उल्लास प्रकट कर रहे थे, उस समय यह महाशय बार बार वृहन्नला की प्रशंसा के पुल बाध रहे थे। इन का विचार था कि विजय वृहन्नला के कारण हुई, इस में तुम्हारी वीरता का कोई हाथ नहीं। जब यह बात सुनते सुनते मेरे कान पक गए तो मैंने इनकी जवान बन्द करने के लिए आवेश में आकर इनके मुँह पर पासा फेंक दिया। वस उसी से रक्त बह निकला। और कोई बात नहीं है।’—राजा ने कहा।

पिता की बात सुनकर राजकुमार उत्तर भय के मारे कांप उठा। उसकी चिन्ता की सीमा न रही।—क्योंकि वह तो जानता

था कि कंक वास्तव में कौन है। बोला—पिता जी ! आपने इन धर्मात्मा के साथ यह व्यवहार करके घोर पाप कर डाला। ऐसा पाप किया है आप ने कि इसका फल आपको क्या भोगना होगा, मैं नहीं जानता कि यह दास रूप में आज भले ही है, पर, वह हैं, एक महान् आत्मा। आप अभी ही इनके पैर पकड़ कर क्षमा याचना कीजिए, अपने किए पर पश्चात्ताप कीजिए, वरना ऐसे शुभ कर्मों वाले महापुरुष के साथ अन्याय करने के फल स्वरूप, सम्भव है हमारा वंश ही समाप्त हो जाये।”

पुत्र की बात सुन कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने से कंक के प्रति ऐसी पुत्र की भावना का रहस्य उनकी समझ में न आया। बोले—“तुम कैसी बातें कर रहे हो। मेरी तो समझ में कुछ नहीं आता। कंक भले ही विद्वान् हो पर इस का यह अर्थ तो नहीं कि अपने स्वामी की बातों को झुटलाए और तुम जैसे वीर के शौर्य को एक हीजड़े के सामने नगण्य सिद्ध करे।”

“पिता जी ! आप नहीं जानते कि कंक कौन है। जब आप जानेंगे तो स्वयं लज्जित होंगे। आप मेरे कहने से ही इन से क्षमा याचना करें।”

उत्तर की बात सुनकर राजा सोच में पड़ गए। परन्तु जब से उन्होंने राजकुमार की कौरव वीरो पर विजय का समाचार सुना था तभी से वे राजकुमार का हृदय से आदर करने लगे थे, इस लिए जब बार बार उत्तर ने आग्रह किया तो उन्होंने कंक से क्षमा याचना की।

×

×

×

×

राजा विराट ने बड़े प्रेम तथा आदर से उत्तर को अपने पास बिठा लिया और बोले—“बेटा ! अब तुम बताओ कि तुमने कौरव वीरों के साथ कैसे युद्ध किया ? उन्हें कैसे परास्त किया ? युद्ध में क्या क्या हुआ ? मैं तुम्हारी वीरता की सारी कथा सुनने को लालायित हूँ।”

उत्तर ने कहा—“पिता जी ! वास्तविकता यह है कि मैंने

कोई सेना नहीं हराई। मैंने कोई गौ नहीं छुड़ाई।

राजकुमार की बात सुन कर राजा की आंख फैल गई।

“क्या कह रहे हो तुम ?”

“ठीक ही कह रहा हू पिता जी।”

“तो फिर कौरव सेना को किस ने मार भगाया ?”

“वह तो किसी देव कुमार का चमत्कार था। उन्होंने ही कौरव सेना को तहस नहस करके गोए छुड़ा ली। मैं तो बस देखता ही रहा।”

बड़ी उत्कठा के साथ राजा ने पूछा—“कौन था वह देव कुमार ? कहा है वह ? उसे अभी ही बुला लाओ। मैं उस के दर्शन कर अपनी आखें धन्य करना चाहता हू, जिसने मेरे पुत्र को मृत्यु के मुह से बचाया और मेरे शत्रु को परास्त कर के हमारा गौधन उन से मुक्त करा लिया। मुझे बताओ वह कौन है। मैं स्वयं उसके दर्शन करूंगा।”

“पिता जी ! वह महान आत्मा अचानक प्रकट हुए और अपना चमत्कार दिखा कर अनायास ही अर्न्तद्धान होगए ! सम्भव है शीघ्र ही पुन यही प्रकट हो।”—राजकुमार बोला। उस ने यह बात इस लिए कही कि अर्जुन ने उस से उसके बारे में कुछ न बताने का वचन ले लिया था।

×

×

×

×

राजकुमार की विजय के उपलक्ष में राज्य मन्त्रियों ने एक विशेष उत्सव का आयोजन किया, जिस में राजा के सभी प्रमुख व्यक्तियों, सेना के मुख्य नायकों और मुख्य कर्मचारियों को निमन्त्रित किया। उस विशेष दरबार में राज्य के कोने कोने से प्रसिद्ध प्रसिद्ध कलाकार निमन्त्रित किए गए थे। सभास्थल बहुत ही मनमोहक एवं आकर्षक ढंग से सजाया गया था। नृत्य तथा अन्य कला प्रदर्शनों का भी प्रबन्ध था। वह उत्सव राज्य के इतिहास में

अभूतपूर्व ही था ।

नगर के मुख्य व्यक्ति अपने अपने लिए नियुक्त आसनो प विराज मान थे कि कक, बल्लभ, त्रतिपाल, ग्रथिक और बृहन्नल ने सभा स्थल में प्रवेश किया । सभी उपस्थित लोगो की दृष्टि उन पाँचो की ओर गई । वे सभा मे उपस्थित लोगों, नगर प्रमुख व्यक्तियों, राज्य कर्मचारियों, सेना नायको तथा अन्य उपस्थित प्रतिष्ठित लोगो के बीच से निकलते हुए राजकुमारो नियत आसनो पर जा बैठे । इस बात को देख कर सभी उपस्थित सज्जनो मे खलवली सी मच गई । यह एक अनहोनी घटना थी कहा सेवक और कहा राज कुमार ? राजकुमारो के आसन प सेवको के बैठ जाने से सभी का आश्चर्य स्वभाविक ही था । सभी आपस में कानाफूसी करने लगे । कोई उनकी आलोचना कर रहा था तो कोई कह रहा था—“भई, इन लोगो की सेवाओ से राज बहुत प्रसन्न होगे । क्या पता सुशर्मा को परास्त करने मे इन मिले सहयोग तथा युद्ध मे इनकी वीरता से प्रसन्न होकर राजा उन्हें इस आसन पर बैठने की अनुमति दे दी हो । राजाओ क्या है जिसको सम्मानित करना हो उसे किसी प्रकार भी सम्मान दे सकते हैं ।”

परन्तु उन पाँचो के इस प्रकार निर्भय होकर राजकुमारो के स्थानो पर बैठ जाने से सभी उपस्थित व्यक्ति उनके विषय मे कुछ न कुछ चर्चा अवश्य ही करने लगे । पर वे थे कि अपने आमन पर ठाठ से बैठे थे । मानो वे उन पर बैठने के पूर्ण रूपेण अधिकारी हो ।

कुछ ही देर बाद चोवदारों ने आवाज लगाई—“सर्विधान अनुशासन, मत्स्य राज्य के नरेश यशस्वी, कर्मवीर, न्यायी, प्रतापी विराट महाराज पधार रहे हैं ।” सभी उपस्थित व्यक्ति उनके सम्मान मे सिर झुका कर खड़े होगए । राजा आये और उपस्थित सज्जनो का अभिवादन स्वीकार करके अपने लिए नियत उच्च आसन पर विराजमान हुए । समस्त लोग अपने अपने आसनो पर बैठ गए । राजा ने चारो ओर विराजित निमंत्रित व्यक्तियों पर दृष्टि डाली ।

और जब उनकी नजर उन पाचो (पाण्डवो) पर पड़ी। उन के मोघ का ठिकाना न रहा। रोम रोम मे चिनगारिया जल उठी। ढो कठिनाई से वे अपने को नियन्त्रित कर पाये। जी मे आया के वे उन से इस धृष्टता के लिए सारे दरवार के सामने ही उत्तर मागे और दण्ड स्वरूप धक्के देकर वहा से निकलवा दे। पर उसी पमय उन्हे उन पाचो की सेवाओ का ध्यान आया। उन्हे सुशर्मा के मुकाबले पर इनका 'पराक्रम' स्मरण हो आया। इस लिए वे स्वयं अपने आसन से उठे और उनके पास जाकर पूछा

“आप लोग जानते है कि यह आसन किन के लिए है ?”

भीमसेन बोल उठा—“जी।”

“तो फिर आप लोग इन आसनो पर कैसे आ बैठे ?”

क्यों कि यह हमारे जैसो के लिए ही हैं।”—भीम ने उत्तर दिया।

“क्या आप लोग नही जानते कि यह राज कुमारो के बैठने का स्थान है ?”

‘ज्ञात है।’

“तो फिर आप का यह साहस कैसे हुआ कि सेवक होकर राज कुमारो का स्थान ग्रहण करे।”

“क्यों कि हमे इन स्थानो पर बैठने का अधिकार है।”

वह कैसे ?”—आवेश में आकर राजा ने पूछा।

“हम राजकुमार जो ठहरे।”—भीम बोला।

“दिमाग तो खराब नही हुआ ?”

‘दिमाग खराब हो हमारे शत्रुओ का। हम तो अपना स्थान स्वयं पहचानते है।’

“मैं आप लोगो की सेवाओ से सन्तुष्ट हू। इस लिए आप को

इस धृष्टता के लिए क्षमा करता हूँ और आदेश देता हूँ कि आप तुरन्त यह स्थान रिक्त कर लें।”

“और यदि हम ऐसा न करें तो... ?”

राजा दात पीसने लगा।

क्रुद्ध न होइये। आप यह बताइये कि यदि कोई अपना उचित स्थान स्वयं ग्रहण कर ले, तो क्या वह अपराध करता है?”

“लेकिन आप लोग सेवक है राजकुमार, नहीं।”

“आप की सेवा करते रहे तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम राजकुमार ही नहीं रहे।”

“अच्छा आप ऐसे नहीं मानेंगे ?”

“देखिये आप हमें सेवक समझना ही छोड़ दे तो अच्छा है।”

“तो क्या समझूँ आप को ?”

“यही कि हम पाँचों राजकुमार हैं।”

“भाँग तो नहीं खाली है ?”

“यदि यही प्रश्न कोई आप से करे ?”

“तो उसका उत्तर बल पूर्वक दिया जायेगा। आप लोग मुझ बल प्रयोग के लिए विवश न करें।”

इस प्रकार बातों-बातों में ही झूझट खड़ा होते देख, युधिष्ठिर (कक) ने बीच में हस्तक्षेप करना आवश्यक समझा और वे बोले—राजन् ! आप रुष्ट न हों। भीमसेन ठीक कहता है।”

भीम का नाम सुन कर राजा विराट आश्चर्य-चकित रह गए। बोले—“भीमसेन कौन ?

“आप भीम सेन को नहीं जानते ?”

“क्यों नहीं ? परन्तु क्या यह भीमसेन है ?”

“जी हाँ।”

भीमसेन ने कक की ओर सकेत करके कहा—“और यह है महाराज युधिष्ठिर।”

फिर तो महाराज युधिष्ठिर ने अपने सभी भ्राताओं का परिचय दिया और यह भी बता दिया कि इतने दिनों सेवकों के रूप में वे सब क्यों रहे -

अर्जुन ने फिर सारी सभा को अपना परिचय दिया। जब लोगों को पता चला कि सेवकों के रूप में पाण्डव हैं तो सारी सभा में कोलाहल मच गया। सभी के चेहरे खिल उठे। चारों ओर आनन्द एव उल्लास छा गया। पाण्डवों की जय जयकार मनाई गई।

राजा विराट का हृदय कृतज्ञता, आनन्द तथा आश्चर्य से तरंगित हो गया वे सोचने लगे, पाँचों पाण्डव और राजा द्रुपद की पुत्री मेरे यहाँ सेवा टहल करते हुए अज्ञात होकर रहे, इन्होंने मेरे तथा मेरे पुत्र के प्राणों की रक्षा की, मैंने उन्हें साधारण सेवकों की भाँति रक्खा, फिर भी कभी भी उन्होंने मेरी अवज्ञा न की मैं कैसे इन सबका बदला चुकाऊँ ? मैंने महाराज युधिष्ठिर के मुँह पर पासा फेंक कर मारा, फिर भी वे आज्ञाकारी सेवक की भाँति सहन कर गए, द्रौपदी के साथ कीचक तथा उपकीचकों ने अन्याय किया, पर मैंने उस की सहायता न की और फिर भी पाण्डव सब कुछ सहन कर के आशाकारी सेवक बने रहे, इन सब बातों के लिए कैसे उन्हें के प्रति कृतज्ञता प्रकट करूँ ? यह सोच कर राजा विराट का जी भर आया। वे युधिष्ठिर से बार बार गले मिले और गद गद होकर कहा—“मैं आप का ऋण कैसे चुकाऊँ ? मेरा यह सारा राज्य आपका है। मैं आपका अनुचर बन कर कार्य करूँगा। यदि मुझ से कोई भूल होगई हो तो क्षमा करें।

युधिष्ठिर ने प्रेम पूर्वक कहा—“राजन् ! मैं आपका बहुत

आभारी हूँ। राज्य तो आप ही रखिये। आप ने आड़े समय पर हमें जो आश्रय दिया, वही लाखों राज्यों के बराबर है।”

विराट ने कुछ सोचने के बाद अर्जुन से आग्रह किया कि आप राजकन्या उत्तरा से विवाह कर लें।

अर्जुन ने उत्तर दिया—“राजन् ! आप का बड़ा अनुग्रह है। परन्तु मैं आप की कन्या को नाच तथा गाना सिखाता रहा हूँ अतः वह तो मेरे लिए बेटी के समान है। अतएव मेरे लिए यह उचित नहीं कि अपनी शिष्या के साथ विवाह करूँ।”

‘लेकिन मैं तो चाहता हूँ कि अपनी कन्या का विवाह आप ही के परिवार में सम्पन्न करके एक भार से मुक्त हो जाऊँ, आप के परिवार से एक सशक्त सम्बन्ध स्थापित करके धन्य हो जाऊँ और आपकी सेवा करके अपने को कृत्य कृत्य कर लूँ।”—राजा विराट ने विनीत भाव से कहा। अर्जुन कुछ देरी के लिए विचार विमग्न हो गया और अन्त में कहा—“यदि आप की यही इच्छा है तो आप अपनी कन्या को मेरे पुत्र अभिमन्यु की सहर्षमिणी बना सकते हैं। इस सम्बन्ध को मैं सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।”

राजा विराट ने अर्जुन का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस के लिए हार्दिक आभार प्रगट किया।

अभी यह बातें हो ही रही थी कि एक चौवदार ने प्रवेश किया राजा तथा पाण्डवों का अभिवादन कर के उसने कहा—‘महाराज ! हस्तिना पुर नरेश दुर्योधन की ओर से एक दूत कोई विशेष सन्देश लेकर आया है। और महाराज युधिष्ठिर से मिलना चाहता है।’

“उसे सादर व ससम्मान यहाँ ले आओ ” युधिष्ठिर ने आज्ञा दी।

दूत ने आकर राजा विराट तथा पाण्डवों को प्रणाम किया।

युधिष्ठिर ने पूछा—“काह्ये, आप कहाँ से पधारे ?”

“मुझे महाराज दुर्योधन ने एक सन्देश लेकर भेजा है।”—उसने कहा।

‘क्या सन्देश है’ ?

“गांधारी पुत्र ! महाराज दुर्योधन का कहना है कि आप को प्रतिज्ञा के अनुसार १२ वर्ष वनवास तथा १ वर्ष अज्ञावास करना था। पर उतावली के कारण प्रतिज्ञा पूर्ति के पहले ही अर्जुन पहचाने गए हैं। अतएव शर्त के अनुसार आप को बारह वर्ष के लिए और वनवास करना होगा।”

दूत की बात सुन कर महाराज हस पड़े और बोले— “आप शीघ्र ही वापिस जाकर दुर्योधन से कहे कि वे पितामह भीष्म और ज्योतिष शास्त्रों के ज्ञानकारों से पूछ कर इस बात का निश्चय करे कि अर्जुन जब प्रकट हुआ तब प्रतिज्ञा की अवधि पूर्ण हो चुकी थी अथवा नहीं। मेरा यह दावा है कि तेहरवा वर्ष पूर्ण होने के उपरान्त ही अर्जुन ने गाण्डीवं धनुष की टंकार की थी।”

आज्ञा पाकर दूत हस्तिना पुर की ओर लौट पड़ा।

राजा विराट ने सभी उपस्थित व्यक्तियों को सुनाकर घोषणा की कि वास्तव में कौरव सेना का विजेता वीर अर्जुन है और यह उत्सव उसी वर्ष के उपलक्ष में मनाया जायेगा।

फिर क्या था, मंच पर चुने हुए कलाकार आये। उन्होंने ने अपनी कला का प्रदर्शन आरम्भ कर दिया। उल्लासपूर्ण गीतों तथा नृपुंरो की ध्वनि गूँज उठी और वर्ष का बातावरण मस्ती से झूम उठा।



* वाईमनां परिच्छेद *

परामर्श

अज्ञात वास की अवधि पूर्ण हो चुकने के कारण पाचो पाण्डु द्रौपदी सहित प्रकट रूप में रहने लगे । एक दिन युधिष्ठिर ने आप सभी भ्राताओं को अपने पास बुलाकर कहा:—

हमारी प्रतिज्ञा कभी की पूर्ण हो चुकी । शर्त के अनुसार अब हमे हमारा राज्य मिल जाना चाहिए । परन्तु लक्षण बता रहे हैं कि दुर्योधन सीधी तरह से हमे राज्य वापिस नहीं देने वाला । उसने हम से १३ वर्ष तक वनवास व अज्ञात वास करवा लिया, पर अब भी उसकी इच्छा हमे राज्य हीन रखने की ही है । ऐसी दशा मे अब हमे सोचना है कि क्या करे ? आप सभी विचार करें कि भावी कार्यक्रम क्या हो ?”

अर्जुन ने कहा—“धर्मराज ! हम तो सदा आप के आज्ञाकारी रहे हैं । पूज्य पिता जी के उपरान्त आप ही हमारे सरक्षक हैं । आप ने जुआ खेला, हम चुप रहे । आप ने राज्य हार दिया, हम कुछ न बोले । द्रौपदी का अपमान हुआ हम खून का घूट पी कर रह गए । आप ने वनवास और अज्ञात वास की शर्त मानी, हम ने उसे स्वीकार कर लिया । जो जो विपदाएं हम पर आई, हम ने सहर्ष सहन किया । और अब भी आप ही की इच्छा के दास हैं । हम तो पहले ही अनुभव करते थे कि १२ वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास तो दुष्ट दुर्योधन का एक वहाना है ।

वरना वह हमें टरकाना ही चाहता है पर आप ठहरे धर्मराज। आप ने अपनी जबान की भाति ही उसकी जबान को समझा और उसकी बात मान ली। पर वह चाहता था कि १२ वर्ष तक तो हम चुप चाप वनों में पड़े रहे और एक वर्ष की अज्ञात वास की अवधि में वह हमारा पता लगा कर १३ वर्ष के लिए और वनों में भेज दे। फिर एक वर्ष का अज्ञात वास करें और इसी प्रकार हम जीवन भर करते रहे। परन्तु उस की वह योजना सफल नहीं हुई, अब उस के पास राज्य देने से इन्कार करने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। इस लिए अब जो कुछ आप आज्ञा दे हम वही करें।”

भीमसेन बोला—“भैया अर्जुन ठीक कहते हैं। तेरह वर्ष पञ्चात भी हमारे सामने वही एक मात्र रास्ता है; राज्य पाने का कि हम अपने बाहुबल का प्रयोग करें। दुष्ट बुद्धि दुर्योधन इस प्रकार नहीं मानने वाला। इतना भला मानुस होता तो जुए में कपट से राज्य न छीनता।”

युधिष्ठिर जानते थे कि उनके भाइयों का मत अक्षरशः सत्य है, फिर भी वे धर्म नीति का उल्लंघन न कर सकते थे, बोले—“अभी से युद्ध की ही बात सोच लेना भूल है। हम ने जो कुछ किया उस से हमारा पक्ष दृढ़ हुआ और दुर्योधन को अन्यायी सिद्ध करने में हम सफल हुए। अब सारा ससार हमारे पक्ष का समर्थन करेगा। इस लिए किसी निष्कर्ष पर पहुचने से पूर्व हमें अपने सहयोगियों, मित्रों तथा सम्बन्धियों से परामर्श करना चाहिए। हम उनकी सहायता बिना कुछ कर भी तो नहीं सकते।”—महाराज युधिष्ठिर ने कहा।

“आप ठीक कहते हैं राजन् हमें अपने स्नेही मित्रों तथा सहयोगियों से मन्त्रणा करनी चाहिए”—नकुल बोला।

सहदेव ने भी उस समय अपनी राय प्रकट करते हुए कहा—“मेरा विचार है कि अब समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं हमें अपने सभी मित्रों-कृपालु सहयोगियों विचारवान तथा विद्वान सम्बन्धियों को बुला कर परामर्श करना चाहिए और वे जो कुछ कहें वैसा ही करना उचित है।”

इस प्रस्ताव को सभी ने स्वीकार किया और निश्चयानुसार अपने भाई बन्धुओं एवं मित्रों को बुलाने के लिए दूत भेज दिए गए।

+ + + + + + + ×

भाई बलराम, अर्जुन की पत्नी सुभद्रा तथा पुत्र अभिमन्यु और यदुवश के कई वीरों को लेकर श्री कृष्ण पाण्डवों के निवास स्थान पर आ पहुँचे। उनके आगमन का समाचार पाकर पाण्डवों तथा राजा विराट ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

इन्द्र सेन, काशी राज, और वीशैव्य भी अपनी अपनी सेनाओं के मुख्य नायकों सहित वहाँ पहुँच गए। पांचाल राज द्रुपद के साथ शिखण्डी और द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी के पुत्र भी वहाँ आ पहुँचे। और भी कितने ही राजा अपनी अपनी सेनाएँ लेकर युधिष्ठिर के पास आ गए।

सर्व प्रथम विधि पूर्वक अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह किया गया। इस के पश्चात् विराट राजा के सभा भवन में सभी आगन्तुक राजा लोग एकत्रित हुए।

विराट राजा के पास श्री कृष्ण तथा युधिष्ठिर बैठे, द्रुपद के पास बलराम तथा सात्यकि। और द्रुपद के पुत्र, अन्य पाण्डव तथा पाण्डवों के पुत्र स्वर्ण जटित सिंहासनो पर जा बैठे। समस्त प्रतापी राजाओं के अपने अपने आसनो पर विराज मान होने के उपरान्त श्री कृष्ण युधिष्ठिर से कुछ बातचीत करने के पश्चात् उठे और कहने लगे :-

“सम्मान्य बन्धुओं तथा वीर मित्रों! सबल पुत्र शक्रनि ने कपट द्यूत में हराकर महाराज युधिष्ठिर का राज्य जिस प्रकार हथिया लिया और उन्हें वनवास तथा अज्ञात वास के नियम में बाध दिया, यह सब तो आपको ज्ञात ही है। पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिए कितने प्रकार की दुःसह कठनाईयों को झेला, और तेरह वर्ष तक कैसे कैसे दारुण दुःख भोगने पड़े, इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। पाण्डव उस समय भी अपना राज्य वापिस लेने में ममर्ष थे, परन्तु वे सत्यनिष्ठ थे, उन्हें बल से अधिक धर्म

ति का पालन किया। अब हम यहाँ इस लिए एकत्रित हुए हैं कि कुछ ऐसे उपाय सोचें, जो युधिष्ठिर तथा राजा दुर्योधन के लिए लाभ प्रद हो, कर्मानुकूल हो और कीर्तिकर हो, न्यायोचित हो और जिन से पाण्डवों एवं कौरवों का सुयश बढ़े। जिसकी वस्तु है उसे मिल जाये, क्योंकि अधर्म के द्वारा तो धर्मराज युधिष्ठिर देवताओं का राज्य भी नहीं लेना चाहेंगे। यद्यपि घृतराष्ट्र के पुत्रों ने उन्हें घोखा दिया और भाति भाति की यातनाएँ पहुँचाई, फिर भी युधिष्ठिर तो उनका भला ही चाहते हैं। आप को कौरवों के अन्यायो तथा पाण्डवों की न्याय प्रियता, दोनों पर ही ध्यान देना है। हाँ, धर्म न्याय तथा अर्थ से मुक्त ही तो युधिष्ठिर को एक गाँव का अधिपत्य भी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं। परन्तु यह सर्वविदित है कि जिम राज्य को इनसे छीना था, वह इन के परम प्रतापी पिता और स्वयं इनके बाहुबल के द्वारा विजित हुआ था। यह लोग दुर्योधन से अपना हक माँगते हैं। इसलिए इनकी माँग सर्वथा धर्मानुकूल है। आज लोग यह भी जानते ही हैं कि कौरव बाल्यकाल से ही पाण्डवों के विरुद्ध भिन्न भिन्न प्रकार के षडयन्त्र रचते रहे हैं। और उन्हीं षडयन्त्रों की एक कड़ी थी जुए की वाजी। जुए में युधिष्ठिर को हराया गया और हारी हुई सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए जो शर्त रखी गई। उसे पाण्डवों ने पूर्ण किया। इसलिए दुर्योधन को अब शर्त के अनुसार इनकी सम्पत्ति लौटा देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पर चूँकि इस समय दूसरे के पक्ष के विचारों का पता नहीं है। इसलिए सबसे पहले, मेरे अपने विचार से एक ऐसे व्यक्ति को दूत बनाकर भेजना होगा, जो धर्मात्मा, परिभक्त, कुलीन, सावधान और सामर्थ्यवान हो। ताकि वह दुर्योधन को समझा बुझाकर उसके कर्तव्य का बोध करा कर उसकी इच्छा जान सके दुर्योधन की राय जानने पर ही कोई कार्यक्रम स्वीकार किया जाना चाहिए। आप सभी नीतिवान, विद्वान, न्याय प्रिय लोग यहाँ उपस्थित हैं, अतः इस सम्बन्ध में दोनों पक्षों के गुणों को ध्यान में रखकर सोचिए कि अधिकारी को उसका अधिकार दिलाने के लिए क्या किया जाना चाहिए।”

यह थी श्री कृष्ण की वह बात जिसके आधार पर उस दिन

की मन्त्रणा होनी थी। श्री कृष्ण ने अपना वक्तव्य समाप्त करके बलराम की ओर देखा।

तब बलराम उठे और बोले—“कृष्ण ने जो मत व्यक्त किया वह मुझे न्यायोचित लगता है और राजनीति के अनुकूल भी श्री कृष्ण ने जो मत व्यक्त किया वह जैसा धर्मराज के लिए हितकर है, वैसा ही कुरुराज दुर्योधन के लिए भी है। वीर कुन्ती पुत्र आधा राज्य कौरवों के लिए माँगते हैं। अतः यदि दुर्योधन इन्हे आधा राज्य दे दे तो वह बड़ी आनन्द से रह सकता है। बिना किसी युद्ध के, सन्धि से, शान्ति पूर्ण ढंग से ही यह समस्या सुलभ जाये तो उससे न केवल पाण्डवों की ही बल्कि दुर्योधन और उसकी सारी प्रजा की भी भलाई होगी। सब सुख चैन से रह सकेंगे और व्यर्थ का रक्तपात भी बच जाएगा। क्योंकि मैं इस बात का मानने वाला हूँ कि अहिंसा के सिद्धान्त से जो मिलता है, कल्याण उसी से होता है। यदि केवल एक राज्य के लिए निरपराधी मनुष्यों का रक्त बहे तो यह हम सभी के लिये बड़े कलक की बात होगी। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि महाराज युधिष्ठिर की ओर से कोई नीतिवान दूत जाये और वह युधिष्ठिर का विचार वहाँ जाकर सुनाये तथा महाराज दुर्योधन का विचार सुने। वहाँ जो दूत जाए उसे जिस समय सभा में भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वत्थामा विदुर, कृपाचार्य शकुनि कर्ण तथा शास्त्र और शास्त्रों में पारंगत दूसरे धृतराष्ट्र पुत्र उपस्थित हों और जब सब वयोवृद्ध तथा विद्या वृद्ध पुरवासी भी वहाँ आ जाए, तब उन्हें प्रणाम करके वे बातें कहनी चाहिए जिन से महाराज युधिष्ठिर के पक्ष का प्रतिपादन हो और दुर्योधन को अपने कर्तव्य का ज्ञान हो। किसी भी अवस्था में कौरवों को कुपित नहीं करना चाहिये। उसे बड़ी नम्रता से अपनी बात कहनी होगी और चाहे कैसा भी उत्तेजना का अवसर आये पर वह क्रोध में न आये। जरा झुकने से जो काम आसानी से निकल आता है वह तनने से कठिनाई से ही निकलता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि दुर्योधन ने सबल होकर ही इन का राज्य छीना था। युधिष्ठिर की जुए में आसक्ति थी, यह धर्म विरुद्ध लत के शिकार थे। जिन भाषित धर्म के प्रतिकूल चल कर इन्होंने जुआ खेला था, फिर यदि शकुनि ने इन्हे जुए में हरा दिया

केवल इसी बात से उसे अपराधी नहीं ठहराया जा सकता। युधिष्ठिर स्वयं जानते हैं कि स्वयं इनके भाइयों ने ही उन्हें जुआ खेलने से रोका था और इन्हे पहले से ही मालूम था कि शकुनि एक मजा हुआ खिलाडी है और वे उनके सामने खेल में ठहर नहीं सकते। शकुनि की निपुणता और अपने नौसिखे पन को ध्यान में रखते हुए और अपने आताओं के मना करने पर भी युधिष्ठिर ने जुआ खेला और अपना राज्य हार गए। यह तो आखों देखे अपने पैरों पर स्वयं ही कुल्हाड़ी चलाना था। इस लिए दुर्योधन के पास युधिष्ठिर का राज्य चला जाना, दुर्योधन का अन्याय पूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता। अब तो उस खोये हुए राज्य को प्राप्त करने के लिए बहुत नम्रता पूर्वक ही कहा जा सकता है। एक ही रास्ता है राज्य वापिस लेने का, कि बहुत ही मुक कर प्रार्थना की जाये। इस लिए दूत बन कर जाने वाला व्यक्ति मृदु भाषी हो, युद्ध प्रिय न हो। उस का उद्देश्य किसी न किसी प्रकार समझौता करना ही हो। यह बात आप को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि पाण्डवों ने जो दुःसह, दारुण दुःख भोगे हैं, वे महाराज युधिष्ठिर के धर्म के प्रति कूल कार्य के कारण ही भोगने पड़े। इस लिए हे राजा गण! दुर्योधन की मीठी बातों से ही समझाने का प्रयत्न कीजिए। शांति पूर्ण ढंग से जो सम्पत्ति मिल जाये वही सुख प्रद होगी। युद्ध चाहें जिस उद्देश्य से किया जाये, उस में अन्याय तथा हिंसा होती ही है और इस की हिंसा से जहाँ तक बचा जा सके उतना ही अच्छा है। यद्यपि गृहस्थाश्रम में रह कर विरोधी हिंसा से बचना असम्भव है, राष्ट्र तथा धर्म के लिए ऐसी हिंसा करनी पड़ती है, फिर भी जान बूझ कर युद्ध करना और हिंसा तथा निरपराधियों का रक्त बहाना, अधर्म हैं। युद्ध के द्वारा न्याय की स्थापना होना असम्भव है। वैर से वैर निकालने से वैर बढ़ता है। तीर्थङ्करों का उपदेश है कि हिंसा दूसरी हिंसाओं की जननी होती है। हिंसा किसी भी समस्या का पूर्ण समाधान नहीं कर सकती। पाण्डवों ने स्वयं अपनी आत्मा के साथ अन्याय किया है और दुर्योधन यदि शांति वार्ता के द्वारा समस्या नहीं सुलझाता तो वह स्वयं अपनी आत्मा के साथ अन्याय करेगा। केवली भगवान् ने कहा है कि एक पाप

दूसरे पाप को जन्म देता है जो धर्म के प्रति कूल कार्य करते हैं वे विपदाओं में फसते हैं। इस लिए दुर्योधन को अन्यायी बताने से पहले हमें अपने पक्ष की त्रुटियों को भी अपने सामने रखना चाहिए और वही उपाय अपनाना चाहिए जिस से शांति स्थापित हो।”

वलराम के कहने का सार यह था कि युधिष्ठिर ने जान बूझ कर अपनी इच्छा से जुआ खेल कर राज्य गवाया है। यह ठीक है कि शर्त के अनुसार उन्होंने १२ वर्ष और एक वर्ष का अज्ञात वाम भी भोग कर अपना प्रण निभा दिया। इस से वे दासता से मुक्त होकर स्वतन्त्र रहने के अधिकारी हो गए और खोये हुए राज्य को वापिस भी माग सकते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि दुर्योधन यदि उन्हें राज्य वापिस न दे तो वे बल पूर्वक उसे वापिस लेने के अधिकार हो गया। क्योंकि राज्य वापिस करने की दुर्योधन से याचना की गई थी और उसने एक शर्त रख दी थी, अब दुर्योधन का अपना कर्तव्य है कि वह राज्य वापिस करे। पर इस का यह अर्थ नहीं हो जाता कि यदि वह स्वेच्छा से राज्य वापिस न करे तो उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया जाय। हा, हाथ जोड़ कर उस से अपना वचन पूर्ण करने की प्रार्थना की जा सकती है। जुआ खेलना अधर्म है और जान बूझ कर अपनी सम्पत्ति को उस गवाना बहुत ही बड़ी नादानी है, लेकिन ऐसी नादानी करने वाले को यह अधिकार कदापि नहीं है कि वह अपनी भूल सुधारों के लिए बल प्रयोग करे।

इस के अतिरिक्त एक ही वज्र के लोगो का आपस में लड़ मरना भी वलराम को अच्छा न लगा। वलराम की राय थी कि युद्ध अनर्थ की जड़ होता है। उस से कभी भलाई नहीं हो सकती।

परन्तु वलराम की बातों को मुन कर पाण्डवों का हितैष्य मात्स्यकि आग बबूला हो गया। उस से न रहा गया। उठ कर कहने लगा—“वलराम जी की बात मुझे तनिक भी तर्क सगत प्रतीत नहीं होती। वाक पटुता से उन्होंने अपने विचार को न्यायोचित भले ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया हो, पर न्याय को अन्याय सिद्ध

रने का उनका प्रयास मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगा। हर किसी का सुन्दरता से समर्थन किया जा सकता है और शब्द जाल के पारो अन्याय को न्याय सिद्ध करने की चेष्टा भी की जा सकती है। किन्तु जो स्पष्ट अन्याय है वह कदापि न्याय नहीं हो सकता, न अधर्म धर्म ही हो सकता है। बलराम जी की बातों का मैं जोरो से विरोध करता हूँ। क्यों कि यह ठीक है कि धर्म राज जुआ खेलना नहीं जानते थे और शकुनि इस क्रिया में पारंगत था। किन्तु उनकी उस में श्रद्धा नहीं थी। ऐसी स्थिति में यदि उस ने इन्हे जुए के लिए निमन्त्रित कर के, जब कि यह उस निमन्त्रण को राजाओं की रीति के अनुसार अस्वीकार नहीं कर सकते थे, इन की सम्पत्ति को जीत लिया तो वह धर्मानुकूल जीत नहीं हो जाती। अजी। कौरवों ने तो इन्हे जुए के लिए कपट पूर्वक बुलाया था, फिर उनका यह कार्य न्यायोचित कैसे हो सकता है? कौन नहीं जानता कि खेल में बाग़म्वार महाराज युधिष्ठिर को ललकारा गया। और खेल में हारने के पश्चात् दुर्योधन ने राज्य वापिस करने के लिए एक शर्त रखी। वह शर्त धर्मराज ने पूर्ण कर दी। अब दुर्योधन की ओर से चीख पुकार हो रही है कि अर्जुन १३वें वर्ष की अवधि पूर्ण होने से पहले ही प्रकट हो गया। उन की यह बात सरासर झूठ है। बात यह है कि दुष्ट दुर्योधन वास्तव में हर प्रकार से अन्याय पर अडा हुआ है। वह नीच बिना बल प्रयोग के मानेगा ही नहीं। एक नहीं हजार दूत भेजिए वह दुरात्मा तो नभी मानेगा जब वह और उस के भाई युद्ध में मेरे तोरो के सामने अपने को मृत्यु का ग्रास होते पायेगे। मैं युद्ध में अपने बाणों से उस नीच को बाध्य कर दूंगा कि वह धर्म राज के चरणों में सिर रख कर अपने अन्यायों के लिए क्षमा याचना करे और यदि ऐसा नहीं होता तो उसे, उसके मन्त्रियों सहित यमपुरी पहुँचा दूंगा। उस दुष्ट को शांति की वार्ता से अकल नहीं आयेगी, उसकी बुद्धि तो युद्ध में ही ठिकाने आयेगी। भला ऐसा कौन है जो मगध भूमि में गाण्डीव धारी अर्जुन, चक्र पाणि श्री कृष्ण, दुर्धर्ष भीम, धनुर्धर नकुल, सहदेव, वीरवर विराट, द्रुपद तथा उन के पुत्रों अभिमन्यु आदि पराक्रमी वीरों का वेग सहन कर सके। मैं अकेल ही अपने बाणों से कौरवों के होश ठिकाने लगा दूंगा। धर्म राज

युधिष्ठिर भिन्न मंगे नहीं हैं जो दुर्योधन से याचना करते फिरें। वे अपने राज्य के अधिकारी हैं, उनकी यही कृपा काफी है कि उन्होंने अपने साम्राज्य के दो भाग सहन कर लिए। उनकी यही धर्मनिष्ठा तथा दयायु प्रियता पर्याप्त है कि वे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए इतने कष्ट उठाते फिरें। तेरह वर्ष तक वनों की यात्रा छानना और सेवक बन कर दूसरों की चाकरी करना हसी खेल नहीं है। यदि पाण्डवों ने यह स्वीकार कर लिया तो इसका यह अर्थ नहीं होगया कि कौरव कुल कलकियों के सामने माथा रगड़ते फिरें। ठीक है एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ होती हैं एक फलों से लदी होती है और दूसरी पर फल आता ही नहीं। एक ही कोश से जन्मे दो व्यक्ति भी इसी प्रकार दो भिन्न मनो वृत्ति के होते हैं। अब आप श्री कृष्ण तथा बलराम को ही ले, आपस में भाई भाई हैं, पर एक न्याय का पक्ष पाती है तो दूसरा अन्याय का। परन्तु हम लोग जो यहाँ इकट्ठे हुए हैं, दुर्योधन के अधर्म के पक्षपाती नहीं। हम धर्म राज को उनका अधिकार दिलाने पर विचार करते आये हैं, इस लिए हमारा धर्म है कि हम न्याय के पक्ष में कोई भी पग उठाने से न घबराये। तलवार लेकर सामने आये शत्रु से लड़ना अधर्म नहीं है। अन्यायी को उसके अपराध का दण्ड देना अधर्म नहीं है। और कपट से जुए में हरा कर किसी की सम्पत्ति को हड़प जाने वाले की प्रशंसा करना धर्म नहीं है। मेरा विचार है कि अब बिलम्ब करने से कोई लाभ नहीं होगा हमें तुरन्त रणभेरी बजाने को तैयार होना चाहिए और धृतराष्ट्र के बेटों को उन के अन्याय का मजा चखा देना चाहिए।”

सात्यकि की दृढ़ता पूर्ण और जोरदार बातों से राजाद्रुपद बड़े प्रमत्त हुए वे अपने आसन से उठे और बोले—

“सात्यकि ने जो कहा वह बिल्कुल ठीक है मैं उस का समर्थन करता हूँ। जिस व्यक्ति की आँखों पर लोभ की पट्टी बांधी जाती है, वह न्याय तथा धर्म नीति की बातें पहचान ही नहीं सकता। दुर्योधन को आधा राज्य मिला, वह उस में ही मन्तुष्ट न हुआ, उस ने पडयन्त्र करके पाण्डवों का सम्पन्न राज्य छीन लिया। अब वह किसी भी प्रकार मोठी मोठी बातों से मानने वाला नहीं।

लातो के भूत बातों से नहीं माना करते। दुर्योधन से महाराज युधिष्ठिर को उनका अधिकार दिलाने के लिए युद्ध करना ही होगा। पाण्डवों और कौरवों का फैसला रण भूमि में ही होगा। फिर भी मेरे कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि सन्धि वार्ता चलाई ही न जाय। हमें पहले अपने दूत शल्य, धृष्ट केतु, जयत्सेन, केकय, आदि मित्र राजाओं के पास भेज देने चाहिए; ताकि वे युद्ध की तैयारी करने लगे और दूसरी ओर सन्धि वार्ता के लिए निपुण विद्वान् दूत भेजना चाहिए। जो हर प्रकार से दुर्योधन को समझाये और उसे सन्धि के लिए तैयार करे। यदि दुर्योधन फिर भी सन्धि के लिए तैयार न हो फिर रण के लिए ललकारना चाहिए। आप चाहें तो मेरे दरबार में रहने वाले एक विद्वान् शास्त्रज्ञ, नीतिवान् राजा पुरोहित को दूत बना कर भेज दें। आप जो कहेंगे उसी के अनुसार वे कार्य करेंगे। इस प्रकार जिस तरह भी हो हमें महाराज युधिष्ठिर को उनका राज्य दिलाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। मेरी यही सम्मति है।”

राजा द्रुपद की बात समाप्त होने पर श्री कृष्ण उठे और कहने लगे:—

“सज्जनो ! पांचाल राज ने जो सलाह दी है वही ठीक है। वह राज नीति के भी अनुकूल है, उसी पर चलना चाहिए। ठीक है दुर्योधन की प्रकृति तथा स्वभाव को देखते हुए उस से यह आशा करना कि वह सन्धि के लिए तैयार हो जायेगा और शांति पूर्वक इस समस्या को सुलझाने का प्रयास करेगा, व्यर्थ है। हमें प्रत्येक सम्भव तथा धर्मानुकूल उपाय करने के लिए तैयार रहना चाहिए, तो भी नीति कहती है कि हम सर्व प्रथम अपनी ओर से शांति पूर्वक सन्धि वार्ता करने का प्रयास करें। महाराज युधिष्ठिर की ओर से एक दूत जाना ही चाहिए। कौन शक्ति इस के लिए उपयुक्त है और उसे क्या बातें कहा जाकर कहनी चाहिए, किम प्रकार सन्धि वार्ता उसे चलानी चाहिए, इस मद्देन्य में राजा द्रुपद ही निर्णय करले। जिसे वे उपयुक्त समझे उसे ही वे स्वयं सम्झा कर भेज दें। दुर्योधन के दरबार में जिन सुलभ हुए तथा वयोवृद्ध लोगो के सामने हमारे दूत को अपनी बातें रखनी हैं, उन

सभी के साथ वाल्य काल में पांचाल राज खेले हैं : ब्राह्मण तथा भीष्म आदि सभी के स्वभाव तथा गुणों से वे परिचित ही हैं और हम लोग तो उन के शिष्य वत हैं । अतः इस सम्बन्ध में उनका प्रत्येक कार्य हमें मान्य होगा । अब हमें आज्ञा दी जाय कि अपनी अपनी राजधानियों को लौट जाय । क्योंकि हम तो अभिमन्यु के विवाह में ही विशेष रूप से शामिल होने आये थे । पांचाल राज इस सम्बन्ध में जो करे और अन्तिम निश्चय जो हो, उस से हमें सूचित कर दिया जाय ।”

इस अवसर पर महाराज युधिष्ठिर बोले—“मैंने अब तक सभी सम्मानित बन्धुओं तथा हितैषियों की बातें सुनी । आप सभी के उदगार सुन कर मुझे अनुभव हुआ कि आप सभी हमारी महायत्ना के लिए तैयार हैं । बलराम जी ने जो भी मत व्यक्त किया, उस से हमें कोई खेद नहीं हुआ । यदि आप सभी यह अनुभव करते हो कि हमें राज्य वापिस मांगने का कोई अधिकार नहीं है तो हम प्रसन्नता पूर्वक अपना अधिकार छोड़ने के लिए तैयार हैं । परन्तु यदि आप हमारे पक्ष का समर्थन करते हैं तो मेरी इच्छा है कि यह मामला सन्धि वार्ता द्वारा ही सुलझ जाये । यदि दुर्योधन हमें कुछ भी देने को तैयार हो तो हम युद्ध नहीं करेंगे । फिर भी इस सम्बन्ध में आप सभी जो निर्णय करेंगे हमें स्वीकार होगा ।”

अन्त में सभी उपस्थित मज्जनों ने अपने अपने विचार प्रकट करके एक ओर सन्धि के लिए दूत भेजने और दूसरी ओर युद्ध की तैयारियाँ करने की राय दी । और इस कार्य क्रम का संचालन राजा द्रुपद को सौंपा गया ।

निश्चय हो जानें के पश्चात् श्री कृष्ण अपने साथियों सहित द्वारिका लौट गए । विराट, द्रुपद, युधिष्ठिर आदि युद्ध की तैयारियाँ करने लग गए । चाणो और दूत भेजे गए । नव मित्र राजाओं को सेना एकत्रित करने और अस्त्र शस्त्र तैयार रखने के संदेश भेज दिए गए । संदेश मिलने ही पाण्डवों के पक्ष के राजा गण अपनी अपनी सेना सज्जित करने लगे ।

इधर पाण्डवों के समस्त सहयोगी युद्ध की तैयारियों में लगे उधर दुर्योधन को अपने गुप्तचारों द्वारा पाण्डवों की तैयारियों का पता लग गया और उसने भी जोर शोर से तैयारियाँ आरम्भ कर दी। उसके सहयोगी भी जी जान से तैयारियों में लग गए। अपने मित्र राजाओं के पास दुर्योधन की ओर से सन्देश भेजे गए और सेनाएँ इकट्ठी की जाने लगी। इस प्रकार सारा भारत खण्ड युद्ध के कोलाहल से गूजने लगा। राजा लोग इधर से उधर दौरे करते। सैनिकों के दल के दल जगह जगह आते जाते। सेनाओं में वीर पुरुषों की भर्तियाँ खुल गईं। कारीगर शस्त्र तैयार करने में जुट गए। रथ, हाथी और घोड़ों को तैयार किया जाने लगा। दुर्योधन ने अपनी सेनाओं का बकाया वेतन चुकना कर दिया और सैनिकों को प्रसन्न करने के लिए वेतन में वृद्धि करने के साथ साथ अन्य प्रकार की सुविधाएँ दी जाने लगी। सारे देश में उथल पुथल मच गई और प्रजा को यह समझते देर न लगी कि एक भयंकर युद्ध का सूत्रपात हो रहा है। चारों ओर सेनाओं की भीड़ लग गई और पृथ्वी भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्रों के परीक्षणों में काप उठी।

+ + + + + + +

द्रुपदा राजा ने अपने महा मंत्री पुरोहित को बुला कर कहा—
“विद्वानों में श्रेष्ठ ! आप पाण्डवों की ओर से दूत बन कर दुर्योधन के पास जाएँ। पाण्डवों के गुणों से तो आप परिचित हैं ही और दुर्योधन के गुण भी आप से छिपे नहीं। आप को यह भी ज्ञात है कि किस प्रकार कपट पूर्वक दुर्योधन ने अपने मित्रों के सहयोग से और धृतराष्ट्र की सम्मति से पाण्डवों को जुएँ के लिए निमन्त्रित करके उनका राज्य छीन लिया। विदुर ने तो न्याय की बात कही थी, किन्तु दुर्योधन ने उसकी एक न सुनी। राजा दुर्योधन का धृतराष्ट्र पर अधिक प्रभाव है। आप वहाँ जाएँ और धृतराष्ट्र की नीति की बातें समझाएँ। विदुर से भी आप बातें करें। वे तो हमारे पक्ष में रहेंगे ही, सन्धि वार्ता को वे पसन्द करेंगे। भीष्म द्रोण, कृप, कर्ण आदि से अलग अलग बात करके प्रत्येक को सन्धि

के लिए तैयार कर । इस प्रकार सम्भव है कि भीष्म, द्रोण, कृप, आदि दुर्योधन के हितैषियों, मन्त्रियों तथा सेना नायकों में परस्पर मतभेद होजाय । यदि उस विषय में उन सभी में मतभेद हो जाये तो उन में फिर एकता होना कठिन है । एकता यदि हुई भी तो उस में काफी समय लगेगा । इस समय में उनकी तैयारियां शिथिल पड़ जायेगी और पाण्डव युद्ध की काफी तैयारी कर लेंगे । आप सन्धि की वार्ता इस प्रकार करे कि दुर्योधन आदि उत्तेजित न हो सके और सन्धिवार्ता में काफी समय लग जाये । इस प्रकार यदि सन्धिवार्ता सफल भी न हुई तो हमें यह लाभ पहुँचेगा कि उस समय में हम अपनी तैयारियां पूर्ण कर लेंगे और दुर्योधन सन्धि वार्ता में लगा होने के कारण अधिक न कर सकेगा । यह जानते हुए भी दुर्योधन समझौते को तैयार न होगा, हमारे शांति दूत के जाने से हमें काफी लाभ होगा ।”

महा मंत्री ने द्रुपद की सारी बातें सुनी और बोला—“महा राज ! आप विश्वास रख, मैं धृतराष्ट्र तथा उसके सहयोगियों को समझौता करने के लिए राजा मन्द करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दूँगा और यदि वे समझौते के लिए तैयार न भी हुए तो उन में दरार तो पड़ ही जायेगी ।”

द्रुपद राजा ने इस प्रकार अपने महा मंत्री को समझा बुझ कर हस्तिनापुर भेज दिया और स्वयं युद्ध की तैयारियों में लग गया । समझौते के लिए इस प्रकार दूत भेजना और इस समझौते वार्ता की आड़ में युद्ध की तैयारियां करना तथा शत्रु की तैयारियों को मन्द कर देने की कूट नीति ऐसी थी जिसका अनुसरण आज के युग में भी होता है । फिर भी चर्मराज युधिष्ठिर समझौते के लिए हार्दिक रूप में इच्छुक थे ।



श्री कृष्ण अर्जुन के सारथी

श्री कृष्ण अर्जुन के सारथी

दूसरी और दुर्योधन को पाण्डवों की तैयारी का समाचार मिल चुका था और उसे यह भी पता लग चुका था कि श्री कृष्ण उत्तरा के विवाह से निवृत्त होकर द्वारिका लौट आये हैं। इस लिये वह भी इस विचार से कि कहीं, पाण्डव उन से सहायता का वचन न लेले, श्री कृष्ण के द्वारिका पहुचने का समाचार सुनते ही द्वारिका की ओर चल पडा। सयोग की बात कि जिस दिन दुर्योधन द्वारिका पहुचा उसी दिन अर्जुन भी वहा पहुच गया। श्री कृष्ण के भवन में दोनो एक साथ ही प्रविष्ट हुए। द्वारपाल ने बताया कि श्री कृष्ण उस समय विश्राम कर रहे है। दोनो ही श्री कृष्ण के निकट सम्बन्धी होने के कारण उनके शयनागार में भी पहुच जाने का अधिकार रखते थे। इस लिए दुर्योधन तथा अर्जुन दोनो हा

दूसरी और दुर्योधन को पाण्डवों की तैयारी का समाचार मिल चुका था और उसे यह भी पता लग चुका था कि श्री कृष्ण उत्तरा के विवाह से निवृत्त होकर द्वारिका लौट आये हैं। इस लिये वह भी इस विचार से कि कहीं, पाण्डव उन से सहायता का वचन न लेले, श्री कृष्ण के द्वारिका पहुँचने का समाचार सुनते ही द्वारिका की ओर चल पड़ा। सयोग की बात कि जिस दिन दुर्योधन द्वारिका पहुँचा उसी दिन अर्जुन भी वहाँ पहुँच गया। श्री कृष्ण के भवन में दोनों एक साथ ही प्रविष्ट हुए। दारुपाल ने बताया कि श्री कृष्ण उस समय विश्राम कर रहे हैं। दोनों ही श्री कृष्ण के निकट सम्बन्धी होने के कारण उनके शयनागार में भी पहुँच जाने का अधिकार रखते थे। इस लिए दुर्योधन तथा अर्जुन दोनों हा

शयनागार में चले गए। आगे दुर्योधन था, पीछे अर्जुन। उस समय श्री कृष्ण सो रहे थे। दुर्योधन जाते ही उनके सिरहाने रखे एक ऊँचे आसन पर जा बैठा, परन्तु अर्जुन जो पीछे था, श्री कृष्ण के पैताने ही हाथ जोड़े खड़ा रहा।

कुछ देर बाद श्री कृष्ण की निद्रा भग हुई, तो सामने खड़े अर्जुन को देखा। उठ कर उसका स्वागत किया और कुशल पूछी। बाद में घूम कर आसन पर बैठे दुर्योधन को देखा तो उसका भी स्वागत किया कुशल समाचार पूछे। उसके बाद दोनों स उनके आने का कारण पूछा।

दुर्योधन शीघ्रता से पहले बोल उठा—“श्री कृष्ण! ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे तथा पाण्डवों के बीच जल्दी ही कोई महा युद्ध छिड़ जयेगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं आप से प्रार्थना करने आया हूँ कि आप मेरी सहायता करें।”

श्री कृष्ण बोले—“परन्तु मेरे लिए तो पाण्डव तथा कौरव दोनों ही स्नेही हैं।”

“यह ठीक है कि पाण्डव तथा कौरव दोनों पर ही आपका समान प्रेम है—दुर्योधन ने कहा—और हम दोनों को ही आप से सहायता प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु सहायता की याचना करने पहले मैं आया। पूर्वजों से यह रीति चली आई है कि जो पहले आये, उसी का काम पहले हो। और आज भी सभी सद्बुद्धि प्रतिष्ठित सज्जन इसी रीति पर अमल करते हैं। और आप सज्जनों में श्रेष्ठ हैं, अतः बड़ों की चलाई रीति के अनुसार आप को पहले मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए।”

श्री कृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा।

अर्जुन बोला—“दुर्योधन जिस उद्देश्य को लेकर यहां पधारे है, मैं भी उसी उद्देश्य से आया हूँ। यदि दुर्योधन ने शांति वार्ता स्वीकार नहीं की तो युद्ध होगा, उस में आप हमारी सहायता करें।

दुर्योधन ने कहा—“श्री कृष्ण! आप को पहले मेरी याचना

स्वीकार करनी होगी।”

यह सुन श्री कृष्ण दुर्योधन की ओर देख कर बोले—“राजन्! यह हो सकता है कि आप पहले आये हो। पर मेरी दृष्टि तो कुन्ती पुत्र अर्जुन पर ही पहले पड़ी। आप पहले पहुँचे जरूर, पर मैंने तो पहले अर्जुन को ही देखा।—वैसे मेरी दृष्टि में आप दोनों ही समान हैं। इस लिए कर्तव्य भाव से मैं आप दोनों की समान रूप से सहायता करूँगा। पूर्वजों की चलाई प्रथा यह है कि जो आयु में छोटा हो पहले उसे ही पुरस्कार देना चाहिए। अर्जुन आप से छोटा है, इस लिए मैं सब से पहले उमी से पूछता हूँ कि वह क्या चाहता है?”

और अर्जुन की ओर मुड़ कर वे बोले—“पार्थ! मुनो कौरव तथा पाण्डव मेरे लिए दोनों समान हैं। दोनों ही मेरे पास सहायता के लिए आये हैं। इस लिए मैंने निश्चय किया है कि दोनों की सहायता करूँ। एक ओर मेरे परिवार के वीर हैं, जो रण कौशल में मुझ से किसी प्रकार कम नहीं। जो बड़े साहसी और वीर हैं। उनकी अपनी एक सेना भी है और सभी यादव वीरों को एकत्रित करके उनकी एक बड़ी सेना बनाई जा सकती है। यह सब एक ओर है और दूसरी ओर मैं स्वयं हूँ। अकेला ही। और मेरी प्रतिज्ञा है कि पाण्डवों तथा कौरवों के बीच होने वाले किसी युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा। अर्थात् मैं निःशस्त्र हूँ। अब तुम इन दोनों में जिसे अपनी सहायता के लिए मांगना चाहो, माग सकते हो। तुम मुझ निःशस्त्र को चाहते हो, अथवा मेरे बन्धु वालों की सेना को?”

बिना किसी हिचकिचाहट के अर्जुन बोला—“आप शस्त्र ठाँवें या न उठावें, आप चाहे लड़े अथवा न लड़ें, मैं तो आप को चाहता हूँ।”

दुर्योधन के आनन्द की सीमा न रही उसने हर्षचित होकर कहा—“बस, मुझे आप अपने वंश के वीर तथा अपनी सेना दीजिए।”

श्री कृष्ण ने स्वीकृति देते हुए कहा—“अर्जुन ने मुझे मागा है, इस लिए मेरे वश के वीर तथा मेना आप की सहायता के लिए शेष रह गए। आप निश्चिन्त रहिए।”

दुर्योधन मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—“अर्जुन निरा मूर्ख निकला, वह बहुत बड़ा धोखा खा गया। निःशस्त्र कृष्ण को लेकर वह क्या कर सकेगा? लाखों वीरों से भरा भारी भरकम सेना सहज ही मेरे हाथ लग गई।

यह सोचता और पुलकित होता वह बलराम जी के पास गया। हर्षातिरेक में भूमते दुर्योधन को देख कर बलराम ने उस के आनन्द का कारण पूछा। उस ने श्री कृष्ण के पास जाने और पाण्डवों को निःशस्त्र श्री कृष्ण तथा कौरवों को विशाल सेना मिलने की बात सुनाई। ध्यान पूर्वक मारी बात सुनने के बाद बलराम ने पूछा—“आप इस बात से बड़े प्रसन्न हैं, यह खुशी की बात है। अब आप मुझ से क्या चाहते हैं?”

“आप तो श्री कृष्ण के वश के वीर ठहरे, और हैं मेरे पक्ष पाती। आप भीमसेन की टक्कर के योद्धा हैं, आप तो हमारी ओर रहेंगे ही।—“दुर्योधन ने कहा।

“मालूम होता है कि उत्तरा के विवाह के अवसर पर मैंने जो बात कही थी, उसकी सूचना आप को मिल गई। मैंने तो कई बार कृष्ण से कहा कि पाण्डव तथा कौरव दोनों हमारे बराबर के सम्बन्धी हैं, मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में भी बहुत कुछ कहा। पर कृष्ण तो मेरी सुनता ही नहीं। अच्छा होता कि आप लोग आपस में मिल कर रहते। पर आप लोग लड़ेंगे ही, यह दुख की बात है। हां, मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इस युद्ध में तटस्थ रहूंगा। क्यों कि जिधर कृष्ण न हो उधर मेरा रहना ठीक नहीं और मैं सम्पत्ति के लिए व्यर्थ का रक्तपात ठीक नहीं समझता। मैं जुए को भी धर्म के प्रतिकूल समझता हूँ और एक ही वंश के दो पक्षों का रण क्षेत्र में उतरना भी अच्छा नहीं समझता। इस कारण मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। मेरा तटस्थ रहना ही उचित है

—“बलराम ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा।”

दुर्योधन बोला—“आप तटस्थ रहने की बात कह कर मुझे निराश कर रहे हैं, जब कि आप किसी को निराश नहीं किया करते।”

“दुर्योधन तुम निराश क्यों होते हो। तुम तो उस वश के हो जिसे राजा लोग पूजते हैं। साहम से काम लो, तुम्हें कमी किस बात की है। तुम्हारे पास इतनी विशाल सेना है। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और भीष्म पितामह जैसे रण कुशल वीर हैं। जाओ त्रियोचित रीति से युद्ध करो।—“बलराम बोले।

“किन्तु आप मेरी सहायता न करे यह दुख की बात है।”

मेरी सहायता तो शांति वार्ता में ही मिल सकती है। मेरे विचार से युद्ध से कोई समस्या हल नहीं होती। और यदि मुझे युद्ध में जाना ही पड़े तो मैं कृष्ण के विरोध में नहीं जा सकता।

बलराम का उत्तर सुन कर दुर्योधन मौन रह गया। बलराम ने फिर उसे प्रोत्साहित किया।

हस्तिना पुर को लौटते समय दुर्योधन का दिल वल्लियो उछल रहा था। वह सोच रहा था अर्जुन खूब बृद्ध बना। निःशस्त्र श्री कृष्ण को माग बैठा। कितना सौभाग्य शाली हूँ मैं। द्वारिका की विशाल सेना अब मेरी है और बलराम जी का स्नेह मुझ पर ही है। फिर किस बात की कमी है। बेचारे निःशस्त्र श्री कृष्ण मेरे विरुद्ध क्या काम आयेगे? इसी प्रकार अपने मन में लड़्डू फोड़ता हुआ वह अपनी राजधानी जा पहुँचा।

×

×

×

×

दूसरी ओर—

दुर्योधन के चले जाने के उपरान्त श्री कृष्ण ने पूछा—“सखे अर्जुन! एक बात बताओ। तुम ने मेरी इतनी विशाल सेना की अपेक्षा मुझ निःशस्त्र को क्यों पसन्द किया?”

अर्जुन बोला—‘भगवन् ! मैं भी आप ही की भांति यश प्राप्त करना चाहता हूँ। आप त्रिखण्ड के स्वामी बने, क्योंकि आप मे-इतनी शक्ति है कि इन तमाम राजाओं को युद्ध में परास्त कर सकते हैं। आप ने अपने बल से जैरासिन्ध जैसे त्रिखण्ड पति को कुचल डाला। इधर मुझ में भी इतनी शक्ति है कि अकेला ही इन सभी को हरा दूँ। मेरी चिरकाल से यह इच्छा थी कि आप को सारथी बना कर अपने शौर्य से इन सभी राजाओं पर विजय प्राप्त करूँ। आज मेरी वह इच्छा पूर्ण हो रही है। अब मैं आप को साथ लेकर आपके समान यश प्राप्त कर सकूँगा।’

श्री कृष्ण के अधरों पर मुस्कान उभर आई। बोले—
“अच्छा, तो यह बात है, मुझ से ही होड़ करने के लिए, मुझे ही माँगा ? खैर यह तुम्हारे सद्भाव के अनुकूल ही है।”

इस के पश्चात् कुछ और बातें हुई और अन्त में श्री कृष्ण ने अर्जुन को बड़े ही प्रेम से विदा किया।



※ चौबीसवाँ परिच्छेद ※

मामा विपत्ति में

इस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया और पार्थ-सारथी की पदवी पाई।

मद्र देश के राजा शल्य नकुल तथा सहदेव की मा माद्री के भाई थे। उन्हें एक सन्देश वाहक के द्वारा समाचार मिला कि उन के भानजे पाण्डव उप्पलव्य नगर (विराट की राजधानी के निकट) में अपना खोया राज्य वापस लेने के लिए युद्ध की तैयारियां कर रहे हैं तो उन्होंने एक बड़ी भारी सेना एकत्रित की और उसे लेकर पाण्डवों की सहायता के लिए उस नगर की ओर चले पड़े, जहाँ पाण्डव युद्ध की तैयारियां कर रहे थे।

कहा जाता है कि शल्य की सेना इतनी बड़ी थी कि रास्ते में चलते हुए वे जहाँ कहीं भी पड़ाव डालते, उनकी सेना का पड़ाव एक योजन से कुछ अधिक (लगभग $\frac{1}{2}$ मील) तक लम्बा फैल जाता। इतनी विशाल सेना के यात्रा करने का समाचार दूर दूर तक फैल गया।

यह बात दुर्योधन तक भी पहुँची। वह सोचने लगा— इतनी विशाल सेना का पाण्डवों के पक्ष में चला जाना संकट का कारण बन सकता है। इस लिए किसी प्रकार शल्य को अपनी ओर मिला

लेना चाहिए। अपने मित्रों से विचार विमर्श करने के उपरान्त उस ने अपने कुशल कर्मचारियों को आदेश दिया कि जहाँ वही भी शल्य की सेना डेरे डाले, वही पहुँच कर उसे समस्त प्रकार की सुविधाएँ पहुँचाई जायें। किसी प्रकार का कष्ट सेना तथा राजा शल्य को न होने पाये। साथ ही रास्ते में जहाँ तहाँ विशाल मण्डप बनवाये गए। सारा रास्ता, जिस से सेना को गुजरना था, बहुत ही आकर्षक ढंग पर सजवा दिया गया। जहाँ भी पड़ाव पड़ता राजा शल्य और उसकी सेना का बहुत ही सुन्दर ढंग से सत्कार किया जाने लगा। राज्य के समस्त साधन शल्य तथा उनकी सेना को प्रसन्न करने में लगा दिए गए। खाने पीने की वस्तुओं का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया गया। प्रत्येक पड़ाव पर उनकी सेना तथा उन के मन बहलाव के लिए भी अच्छे कलाकारों को नियुक्त किया जाता। रहने, खाने पीने और मनोरंजन का इतना सुन्दर प्रबन्ध देख कर राजा शल्य मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। और जब इस सुप्रबन्ध को उन्होंने प्रत्येक पड़ाव पर पाया तो वे चकित रह गए। इतनी विशाल सेना के लिए इतना सुप्रबन्ध किया जाना वास्तव में बहुत कठिन था। मद्राज ने सोचा कि उनके भानजे युधिष्ठिर ने इस दशा में होते हुए भी इतना शानदार स्वागत करके दिखाया है कि वह उनका कितना आदर करता है।

एक बार एक पड़ाव पर उन्होंने आदर सत्कार में लगे कर्मचारियों को बुला कर कहा—“हमारी सेना और हमारी इतनी खातिर दारी करने वाले लोगों को हम जितनी भी प्रशंसा करें कम ही है। इस अभूत पूर्व सत्कार तथा अतिथ्य के लिए हम प्रबन्धकों के हृदय से आभारी हैं। हम इस सत्कार के प्रबन्धकों को अपनी ओर से उनकी कार्य कुशलता, निपुणता तथा परिश्रम के लिए पुरस्कृत करना चाहते हैं, आप लोग कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर से हमारी ओर से कहें कि वे इस के लिए बुरा न मानें और हमें अपनी सम्मति दे दें।”

कर्मचारी चाहते थे कि वे उसी समय मद्राज का भ्रम निवारण हेतु बता दें कि उनका सत्कार दुर्योधन की ओर से किया जा रहा है, पर वे उस समय चुप रहे क्योंकि उन्हें ऐसी कोई आज्ञा दुर्योधन

की ओर से नहीं मिली थी। अतः उस समय वे चुप रहे और यह बात दुर्योधन से जा कही। दुर्योधन गुप्त रूप से मद्राज की सेवा के साथ साथ चल रहा था, ताकि उचित अवसर पाकर वह मद्राज से अपनी सहायता का वचन ले सके। जब दुर्योधन ने उक्त बात सुनी तो उमकी बाछे खिल गई। समाचार देने वालों को उसने अच्छा पुरस्कार दिया।

× × × × × × ×

महाराज को उसके निजि मन्त्री ने आकर बताया—“महाराज हस्तिनापुर नरेश दुर्योधन आपके दर्शन करना चाहते हैं।” दुर्योधन के अनायास ही आ टपकने का समाचार सुनकर शल्य को बहुत आश्चर्य हुआ। फिर भी उन्होंने तुरन्त आदेश दिया—“उन्हे ससम्मान ले आओ।” ज्यों ही दुर्योधन को उन्होंने अपने सामने देखा उन्होंने परिवारिक सम्बन्धी होने के कारण उससे स्नेह प्रदर्शित करते हुए बैठाया। बोले—“दुर्योधन! अनायास ही तुम कैसे आ भ्रमके?”

“मुझे ज्ञात हुआ कि आप अपने सत्कार के प्रबन्ध से बहुत प्रसन्न हुए हैं! इसे अपना सौभाग्य समझकर आप की प्रसन्नता के लिए अपना आभार प्रकट करने के लिए ही मैं चला आया। तब यह है कि आप के सेना सहित उपालब्ध नगर की ओर जाने का समाचार मुझे अनायास ही मिला। वस जल्दी में जो कुछ हो सका किया। अहो भाग्य कि आप उस से सन्तुष्ट हैं। सुना है आप सत्कार के प्रबन्धको को पुरस्कृत करना चाहते हैं, यह हमारे लिए बहुत ही प्रसन्नता की बात है फिर भी आपकी प्रसन्नता ही हमारे लिए पर्याप्त है, इस सत्कार का इस से बड़ा और पुरस्कार क्या हो सकता है कि आप ने प्रशंसा कर दी।—“दुर्योधन ने अपनी बातों द्वारा अपने कार्य को जिस पर अभी रहस्य का आवरण पड़ा था, निरावरण कर दिया।

दुर्योधन की बात सुन कर शल्य आश्चर्य चकित रह गए जिस के विरुद्ध लड़ने के लिए वे पाण्डवों के पास इतनी विनाश

सेना लेकर जा रहे हैं। दुर्योधन ने यह जान कर भी इतनी सुन्दर सत्कार किया, यह कितना बड़ा एहसान कर दिया, दुर्योधन ने यह जान कर वे बड़े असमजस-मे पड़े। वे सोचने लगे कि यह जानते हुए भी कि उक्त सारी सेना उसी के विरुद्ध काम आयेगी यह सेना उसके नाश का कारण भी बन सकती है इस सेना के बल पर उस में राज गढ़िया छीनी जा सकती है दुर्योधन ने इतना शानदार स्वागत सत्कार किया इतनी उदारता का होना सचमुच एक बड़ी बात है। सोचते सोचते अनायास ही उन के हृदय में दुर्योधन के प्रति आदर तथा स्नेह की भावना जागृत हो गई

प्रसन्न होकर बोले—“राजन ! तुमने जो कुछ किया उस के भार से मैं दबा सा जाता हूँ। तुम्हारा यह ऋण मैं कैसे चुकाऊँ ?

दुर्योधन बोला—“महाराज ! यह एहसान की तो कोई बात नहीं यह तो मेरा कर्तव्य था। आप जैसे युधिष्ठिर के लिए वैसे मेरे लिए। मैंने तो कुल रीति अनुसार आप को मामा समझ कर ही यह सत्कार किया।

‘ फिर भी तुम्हें यह तो ज्ञात ही होगा कि हम अपनी सेना सहित पाण्डवों की सहायता के लिए जा रहे हैं। मद्र राज बोले ।’

“आप मेरे विरोध में भी जाते हो फिर भी आप का सत्कार करना तो मेरा कर्तव्य है ही।” दुर्योधन ने अपने मन की बात छिपाते हुए कहा।

“जो भी हो हम तुम्हारे, इस भार से कैसे मुक्त हो सकते हैं, यही मेरे सामने प्रश्न है।”

“आप वास्तव में मुझ से इतने ही प्रसन्न हैं तो कृपया आप अपनी सेना सहित मेरी सहायता करें।” —दुर्योधन ने उपयुक्त अवसर समझ कर मन की बात कही।

“बड़ी जटिल समस्या आ गई। विचारों में डूबे मद्रराज

बोले ।

दुर्योधन ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—“आप युद्ध प्रारम्भ होने पर मेरी ओर से अपनी सेना सहित लड़े, मैं बस यही प्रत्युपकार चाहता हूँ ।

सुन कर मद्र राज सन्न रह गए ।

शल्य को असमजस में पड़े देख कर दुर्योधन बोला—“आप के लिए जैसे पाण्डव वैसे ही कौरव । आप से हम दोनों का बराबर ही नाता है इसी लिए मैंने आप से प्रार्थना की है । यदि आप हम दोनों को सम्मान दृष्टि से देखते हैं और केवल कौरवों को इस लिए नहीं ठुकराते कि हम माद्री की सन्तान नहीं हैं, तो आप को हमारी ओर से लड़ने में क्या आपत्ति है ?

दुर्योधन के उपकार से मद्रराज अपने को कुछ दबा सा अनुभव कर रहे थे, उन्होंने विवश होकर कहा—“तुम ने अपनी उदारता से मुझे जीत लिया है । अच्छा ऐसा ही होगा ।”

शल्य ने दुर्योधन द्वारा किए गए आदर सत्कार का बोझ तले अपने को दबे हुए अनुभव करके ऐसा कहने को कह तो दिया, पर उनका मन अशांत हो गया । उन पर दुर्योधन की उस चाल का कुछ इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे अपने पुत्रों के समान प्यार करने योग्य भानजों—पाण्डवों—की सहायता को जाते समय अपनी निश्चय बदल कर दुर्योधन की सहायता का वचन दे दिया । पर कुछ देर तक वे मन ही मन ग्लानि अनुभव करते रहे । कई बार उन्हें अपने पर लज्जा आई । परन्तु वे अपने दिए वचन से लौट भी तो नहीं सकते थे ।

फिर वह सोचने लगे कि अब वह आगे जाये या पीछे लौटें । मन में एक विचार उठा—“कैसे जायेंगे पुत्रवत पाण्डवों के सामने ? किस मुह से कहेंगे कि उन्होंने आदर सत्कार के मूल्य पर अपने निर्णय तथा पाण्डवों के प्रति प्रेम को बेच डाला ? कैसे बतायें उन्हें कि दुर्योधन के द्वारा किए आदर के बदले में उन्होंने अपने

पाण्डवों के प्रति प्रेम को तिलाजलि देकर पक्ष परिवर्तन कर लिया ?”

फिर एक विचार मन में उठा—“दुर्योधन को वचन तो दे ही दिया परन्तु युधिष्ठिर में बिना मिले लौट जाना इस से भी अधिक भयकर भूल होगी।”

“राजन ! मैं तुम्हें वचन तो दे चुका, और उसे निभाऊंगा भी, परन्तु जाने से पहले युधिष्ठिर से भी मिल लेना आवश्यक समझता हूँ। अतः अभी मुझे विदा दो।”

दुर्योधन जानता था कि शल्य जैसे क्षत्रिय राजाओं का वचन झूठा नहीं हो सकता, इस लिए उसने उन की बात स्वीकार करते हुए कहा—“आप चाहते हैं तो अवश्य ही मिलिए। परन्तु ऐसा न हो कि प्रिय भानजों को देख कर वचन ही भूल जायें।”

दुर्योधन की इस बात से शल्य तिलमिला उठे। उन्हें क्रोध आया, पर अपने आवेश को रोकते हुए कहा “नहीं, भाई यह शल्य का वचन है। जो कह चुका वह असत्य सिद्ध नहीं होगा। तुम निश्चिन्त होकर अपने नगर लौट जाओ।”

दुर्योधन ने इस के बाद उनसे विदा ली और शल्य उपप्लव्य की ओर प्रस्थान कर गए।

× × × × × × ×

उपप्लव्य नगर बहुत ही आकर्षक ढंग पर सजा था। द्वार पर गहनाइया बज रही थी। मिथ्या गीत गा रही थी चारों ओर भिन्न भिन्न भाति की सुगन्ध बिखेरी जा रही थी और पाण्डवों की मेना, कर्मचारी, मित्र, सहयोगी, बन्धु बान्धव सभी शल्य के स्वागत में खड़े थे। ज्यों ही शल्य की सवारी नगर के द्वार पर पहुँची अम्र गस्त्रों में रंग बरगी। पुष्प मालाएँ आकाश की ओर फेंकी गईं जो वापस मद्र राज के ऊपर आकर गिरी। गानों तथा नफीरी की मधुर स्वर लहरी गूँज उठी बाजों के द्वारा स्वागत गान गाया गया सेना ने

सलामी दी। पाण्डवों ने चरण रज ली। मद्रराज ने सभी पाण्डवों को प्रेम पूर्वक छाती से लगा लिया। हर्षातिरेक और स्नेह के कारण मद्रराज की पलके भीग गईं। मामा को सामने देख कर नकुल और सहदेव के आनन्द की तो सीमा ही नहीं रही।

जब मद्रराज विश्राम कर के पाण्डवों से मिले तो सर्व प्रथम उन्होंने पूछा—“युधिष्ठिर ! १३ वर्ष कैसे बीते ?” इस के उत्तर में पाण्डवों ने १३ वर्ष तक उठाई विपताओं का वृत्तान्त कह सुनाया। सुन कर मद्रराज बोले—“मनुष्य को अपने ही कर्मों का फल कैसा कैसा भयकर भीगना पड़ता है यह तुम लोगों की बातों से ज्ञात हुआ। शास्त्रों की शिक्षाओं के प्रतिकूल कार्य करके, जुआ खेल कर, तुम लोगो को जो फल भोगना पड़ा, आशा है भावी सन्ताने इस से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी।”

इन बातों के पश्चात् भावी युद्ध की बातें चलीं। तब महाराज ने द्रवित होते हुए कहा—“धर्मराज ! मैं तुम्हे यह दुखद समाचार किस मुंह से सुनाऊँ। कि मैं कौरवों के पक्ष में रहने का वचन दुर्योधन को दे चुका हूँ।”

यह बात सुनते ही पाण्डवों के हृदय पर वज्रपात सा हुआ वे मन्न रह गए। बोले कुछ नहीं। एक बार सब के चेहरों पर छाई गम्भीरता को देख कर शल्य स्वयं दुःखित हुए और वह सारी आप बीती सुनाई जो यात्रा में गुजरी थी।

मद्रराज की बात सुन कर महाराज युधिष्ठिर मन ही मन सोचने लगे—“जो हुआ, वह हमारी ही भूल के कारण। हा शोक दुर्योधन इस बात से भी हम से बाजी मार गया।

अपने निकट के रिश्तेदार समझ कर इनकी ओर में हम लापरवाह रहे और इनकी कोई खबर न ली, इसी का यह परिणाम है।”

महाराज युधिष्ठिर को इस बात में बहुत बड़ा धक्का लगा था, परन्तु उन्होंने अपने मन की व्यथा को प्रकट नहीं किया। अपन

मन की भावनाओं को दबा कर बोले—“मामा जी ! आपने दुर्योधन के स्वागत सत्कार के कारण उमे जो वचन दिया है आप उसे पूर्ण करें। परन्तु मैं बस इतनी ही बात आप से पूछना चाहता हूँ कि आप रण कौशल में बहुत निपुण हैं, अवसर आने पर कर्ण आप को अपना सारथी बना कर अर्जुन का बध करने का प्रयत्न करेगा मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस समय आप अर्जुन की मृत्यु का कारण बनेंगे या अर्जुन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे ? मैं यह प्रश्न उठा कर आप को असमंजस में नहीं डालना चाहता था, पर पूछने को मन कर आया तो पूछा लिया।”

मद्राज बोले— “बेटा युधिष्ठिर ! मैं घोड़े में आकर दुर्योधन को वचन दे बैठा, इस लिए युद्ध तो उनकी ओर से ही करूँगा। पर एक बात बताए देता हूँ कि यदि कर्ण अर्जुन का बध करने की इच्छा से मुझे अपना सारथी बनायेगा तो मेरे कारण उस को तेज नष्ट हो जायेगा और अर्जुन के प्राणों की रक्षा हो जायेगी। चिन्ता न करो जुए के खेल में फँसकर तुम्हें ओर द्रौपदी को जो कष्ट झेलने पड़े अब उनका अन्त आ गया समझो। तुम्हारा कल्याण होगा। इस समय की भूल के लिए मुझे क्षमा करना।



✽ पचीसवाँ परिच्छेद ✽

सन्धि-वार्ता

पाचाल नरेश के महामंत्री जब हस्तिनापुर पहुँचे तो एक राज-दूत की भाँति उनका आदर सत्कार किया गया वे वहाँ जाकर अतिथि हो गए और ऐसे अवसर की खोज में रहे जब कि दरबार में भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण विदुर कल्प, आदि आदि सभी वयोवृद्ध विद्वान् राजनितिज्ञ तथा प्रभावशाली व्यक्ति उपस्थित हो । एक दिन जब उन्हें पता चला कि कौरव वंश के सभी प्रमुख व्यक्ति-मन्त्रियों में उपस्थित हैं, और हस्तिनापुर के राज्य के समस्त सहयोगी तथा सरक्षक दरबार में विराजमान हैं तो वे वहाँ पहुँचे। यथा विधि सभी को प्रणाम करके तथा कुशल समाचार कहने तथा पूछने के उपरान्त उन्होंने पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा —

“अनादि काल से जो धर्म तत्त्व, रीति तथा नीति प्रचलित है, उससे आप सभी परिचित हैं । आप लोगों के धर्म सम्बन्धी ज्ञान के विद्वान्, नीति सम्बन्धी धुरन्धर और विश्व के सुलझे हुए गुरुजन विद्यमान हैं । आप न्याय के रक्षक हैं और रीति रिवाजों के मानने वाले हैं । राजकुल की यह रीति रही है कि पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों का समान अधिकार होता है । यह राज्य सिंहासन जिस पर आज महाराज दुर्योधन निद्यमान है, कभी इसे पाण्डु नरेश सुशोभित करते थे । उन्होंने अपने बाहुबल तथा पराक्रम से हस्तिनापुर राज्य का

दूर दूर तक विकास किया और भारत खण्ड में इस खण्ड की इतनी सीमाएं बढ़ाई कि इस क्षेत्र में सभी इस राज्य से प्रभावित हुए। किसी की भी शक्ति नहीं हुई कि इस राज्य को चुनौती दे सकें। उन के पंच महाव्रती मुनि बाणा स्वीकार करने के उपरान्त पाण्डवों का अधिकार था, और पाण्डवों में भी ज्येष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर का कि वे इस राज की बागडोर को सम्भालें परन्तु पाण्डव उस समय बाल्यवस्था में थे और विवश होकर पाण्डु नरेश को राज्य सिंहासन धृतराष्ट्र को सौंपना पड़ा। लेकिन विल्कुल इसी प्रकार सिंहासन सौंपा गया, जैसे पाण्डवों का हाथ उन्होंने धृतराष्ट्र के हाथ में दे दिया था। एक अमानत थी जो धृतराष्ट्र को सौंपी गई। जब उस अमानत के वास्तविक अधिकारी व्यस्क हुए तो धृतराष्ट्र को चाहिए था कि वे उस सिंहासन को उन्हें सौंप देते, जिन कि वह सम्पत्ति थी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, कौरव पाण्डवों के अधिकार की चुनौती देने लगे और बुद्धिमान धृतराष्ट्र ने पूज्य भीष्म पितामह और महान आत्मा विदुर की सलाह से हस्तिनापुर राज्य को दो भागों में विभाजित कर के एक भाग्य दुर्योधन को और दूसरा पाण्डवों दे दिया। पाण्डवों के दिल पर तनिक भी मेल नहीं आया। उन्होंने उजड़े हुए खण्डव प्रस्थ का जीर्णोद्धार किया। किन्तु वे अभी अपने राज्य के कारोबार को सम्भाल ही पाये थे कि उन पर दूसरी आपत्ति आ पड़ी और हस्तिनापुर के पराक्रमी नरेश पाण्डु की मन्ताने बनकी खाक छानने के लिए भेज दी गई। इस शर्त पर कि १२ वर्ष के वनवास और एक वर्ष के ग्रास्तातवास के उपरान्त वे अपनी खोई हुई सम्पत्ति को वापिस लेने के अधिकारी होंगे। उन्होंने इसी विश्वास पर कि उक्त शर्त ममस्त मुलझे हुए तथा माने हुए वयोवृद्ध तथा नीतिवान लोगों के सामने रखी गई है, जो पूर्ण होगी, वह राजा दुर्योधन का एक वचन, वह था एक क्षत्रिय राजा का वचन। क्षत्रिय वीरों ने क्षत्रिय राजा के वचन पर विश्वास किया और ज्यों त्यों विभिन्न कष्ट उठा कर उन्होंने १३ वर्ष व्यतीत कर लिए। फिर वह अधिकारी हो गए कि शर्त व वचन के अनुसार अपना राज्य वापिस ले लें लेकिन ऐसा लगता है कि नीतिज्ञों तथा शास्त्रज्ञों के समक्ष दिया गया वचन पूर्ण नहीं होगा। यदि ऐसा है तो यह कहा का न्याय है कि धृतराष्ट्र को मन्ताने तो सम्पूर्ण राज की अधिकारी बने और पाण्डु नरेश की

सन्तान दर दर को ठोकरे खाती फिरेक्षत्रिय राजाओं का वचन यदि इस प्रकार तोड़ा गया तो यह कौरव वंश पर ही नहीं वरन समस्त वीरों के लिए कलक की बात होगी । यदि कौरव राज के दरबार में विराजमान धर्मात्माओं के रहते यह अन्याय हुआ तो इस कलक की उत्तर दयित्व उन पर भी होगा । पाण्डव सम्पूर्ण राज्य नहीं चाहते वे चाहते हैं वहीं आधा भाग जो स्वयं धृतराष्ट्र ने दिया था । यदि उन्होंने जुआ खेलने की भूल की थी तो उस भूल का इतना कठोर दण्ड किन १२ वर्ष तक राज्य बिहीन होकर मारे मारे फिरे, एक वर्ष तक नौकर च कर होकर उन्होंने विराट नरेश की सेवा की, बहुत ही काफी, है बल्कि अधिक है । इस समय कौरव कुल की प्रतिष्ठा का भवाल है। समस्त क्षत्रिय वीरों की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। पाण्डव राज्य पाने के लिए युद्ध नहीं चाहते क्योंकि युद्ध में जो भयकर रक्तपात होगा उसका मूल्य पाण्डु नरेश के राज्य के आधे भाग्य के मूल्य से सहस्र गुना अधिक होगा । महाराज युधिष्ठिर नहीं चाहते कि एक ही कुल की सन्ताने आपस में शत्रु बन कर रण क्षेत्र में उतरे । वे इस बात के विरुद्ध हैं कि भाइयों के परस्पर विवाद के लिए भरतखण्ड के करोड़ों योद्धा एक दूसरे के रक्त के प्यासे बन कर हिंसक पशुओं की भाँति एक दूसरे पर झपटें । यदि युद्ध हुआ तो इतना भयकर होगा कि इस महायुद्ध में पता नहीं कितने अनगिनत वीर काम आये । कितनी माताओं की गोद खाली हो और कितनी बहनों के सुहाग युद्ध की ज्वाला में भस्म हो जायें, कितने लाख बालक अनाथ बन जायें । इतने भयकर महायुद्ध को टालना अब आप के हाथ में है । महाराज युधिष्ठिर की हार्दिक कामना है कि इस विवाद को शांति वार्ता के द्वारा मुलभूत लिया जाये । इस लिए न्याय तथा वचन के अनुसार उन का राज्य उन्हें लौटा दिया जाये । मैं यही सन्देश लेकर आया हूँ कि महायुद्ध को टालने के लिए आप अपनी ओर से उनकी माँग स्वीकार करने में विलम्ब करे । यदि समझौते के द्वारा उन्हें उन का भाग लौटा दिया गया तो फिर इस कुल की सन्तानों में परस्पर सहयोग तथा स्नेह की धारा चल निकलेगी ।”

इतना कह कर दूत ने समस्त उपस्थित नीतिज्ञों की ओर दृष्टि उठाई । सभी के चेहरों पर आते उतार चढ़ाव को परखने के उपरान्त

द्रुपद राज के महामंत्री ने अन्त में भीष्म पितामह के मुख पर नजरें गड़ा दीं— भीष्म पितामह उनकी प्रश्न वाचक दृष्टि के उत्तर में बोले—

“आप के द्वारा यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि पाण्डव सकुशल हैं, वे आज शक्ति सम्पन्न हैं। कितने ही पराक्रमी राजा उन की सहायता को तत्पर हैं। कितनी ही विशाल सेनाएं उनकी ओर से युद्ध में उतरने के लिए तैयार हो रही हैं। इतनी शक्ति बटोर लेने उपरान्त भी पाण्डव युद्ध नहीं चाहते, वे समझौते के उत्सुक हैं। इस बात को जान कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। और इस बात को दृष्टि में रखते हुए मुझे यही न्यायोचित ज्ञेयता है कि उन्हें उनका राज्य वापिस दे दिया जाय तथा परम्पर में भी भाव की नींव डाली जाय। यही कल्याणकारी मार्ग है। मैं समझता हू कि अन्य लोग भी

अभी भीष्म पितामह की बात पूरा नहीं हो पाई थी कि कर्ण बीच में बोल उठा— उसे भीष्म पितामह की बात बड़ी अप्रिय लगी। बड़े क्रोध के साथ वह बोला— विद्वान सज्जन ! आप ने जो बात कही, उस में कोई नई बात नहीं है। कोई नया तर्क आप ने प्रस्तुत नहीं किया। प्रत्युत वही राम कहानी वाच रहे हैं जो पहले भी पाण्डवों की ओर से कही गई और आज कल कही ही जा रही है। युधिष्ठिर दुर्योधन को यह बातें देकर अपना राज्य वापिस लेना चाहते हैं कि उन की और मत्स्य राज तथा पांचालराज की बड़ी भारी सेनाएं हैं परन्तु उन्हें याद रखना चाहिए कि किसी प्रकार की धौंस के द्वारा वे अपना राज्य वापिस नहीं ले सकते। उन्होंने अपना राज्य जुए में हारा था। हारी हुई वस्तु को वापिस माँगने का आज तक किसी को अधिकार नहीं हुआ और न किसी ने ऐसा साहस ही किया। वे एक ओर शर्त शर्त गाते हैं और दूसरी ओर अपना अधिकार जमाते हैं। दोनों साथ साथ नहीं चल सकती। जहां तक शर्त का प्रश्न है, तेहरवें वर्ष के समाप्त होने से पूर्व ही अर्जुन पहचान लिया गया, इस लिए शर्त के अनुसार उन्हें पुनः १२ वर्ष के वनवाम और १ वर्ष के अज्ञात के वाम के लिए जाना चाहिए। उसके उपरान्त शर्त की बात डालें

और जहाँ तक अधिकार की बात है स्पष्ट है कि हारी हुई सम्पत्ति पर उन्हें कोई अधिकार नहीं है। आप उन्हें बता दीजिए कि कौरव किसी घाँस में नहीं आने वाले।”

कर्ण के इस प्रकार बात काट कर बीच ही में बोल उठने से भीष्म को बड़ा क्रोध आया। वे बोले — “राधा पुत्र ! तुम व्यर्थ की बातें करते हो। यदि हम युधिष्ठिर के दूत के कहे अनुसार सन्धि-न करें तो महायुद्ध छिड़ जायेगा और मैं जानता हूँ कि महायुद्ध हुआ तो उस में दुर्योधन आदि सब को पराजित हो कर मृत्यु का ग्रास बनना होगा। इस लिए भावावेश में ऐसी आग मत भड़काओ जो कौरवों को जला कर भस्म कर डाले। तुम यदि कौरव राज के हित चिन्तक हो तो डींगें हाकनी छोड़ कर समय की आवश्यकता और वास्तविकता को परखो। याद रखो कि युद्ध कभी भी लाभ दायक नहीं होता। मत्स्य राज्य पर आक्रमण की घटना याद करो और अपने को बुद्धिमान सिद्ध करो।

भीष्म पितामह की बात कर्ण को बड़ी कड़वी लगी। वह कुछ बड़बड़ाने लगा। दुर्योधन भी पेंचोताव खाने लगा। द्रोणाचार्य भी कुछ कहने लगे। इस प्रकार सभा में खलबली मच गई। यह देख कर धृतराष्ट्र बोले—

“पांचाल राज्य के महामंत्री ! मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि मेरे प्रिय भतीजे संकुशल हैं और कौरवों से सन्धि के इच्छुक हैं। ठीक है हमें शांति भग नहीं होने देनी चाहिए। मैं स्वयं भी युद्ध के विरुद्ध हूँ। आप के द्वारा प्राप्त सन्देश का उत्तर मैं अपने समस्त बुद्धिमान परामर्श दाताओं के साथ मन्त्रणा करने के उपरान्त मजबूत द्वारा भेज दूंगा। आप युधिष्ठिर से जा कर कहें कि शीघ्र ही हमारा राजदूत उनकी सेवा में उपस्थित हो कर सारी बातें करेगा। आप अनुभव हीन युवकों की बात पर न जायें। कौरव वंश के वृद्ध बुद्धिमान लोग अपनी ओर से युद्ध रोकने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।”

इसी बीच दुर्योधन बोल पड़ा — ‘विह्वल ! आप जाँकर यह

अवश्य कह दे कि घमण्ड मे आकर मेरे पौरुष को न ललकारे। उन्हें मुझ से अपने जीवन यापन हेतु कुछ याचना ही करनी है तो याचको की भाति आय परन्तु राज्य पर उन का कोई अधिकार नहीं। हम किसी की धौंस सहन करने वाले नहीं है। रण भूमि मे उतरेंगे तो हम उन्हें दिखा देंगे कि दुर्योधन की टक्कर लेना तुम जैसे लोगो के बस की बात नहीं है। दूसरो की सहायता पर राज्य जीतने का स्वप्न देखता छोड दे।”

द्रोणा बोले—‘दुर्योधन ! अपने वृद्धजनों के विचार का खूले दरबार में विरोध करते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। युद्ध की चुनौती देकर नाश को निमन्त्रित करना बुद्धि मानी नहीं है।’

कर्ण फिर भावावेश मे बोला—‘हम अभी बूढे नहीं हुए। हमारा रक्त अभी तक जवान है। हम अपनी मर्यादा पर आच आने देना नहीं चाहते। राज्य की भीख धौंस देकर माँगनेवालो को हम मुह तोड जवाब देंगे।’

बात पुन. विगडती देख विदुर जी बोले- “शांति पूर्वक जो विवाद हल हो जाता है वह झगडे से नहीं। यद्ध किसी भी समस्या का मानवीय हल नहीं होता। हम सब जिस धर्म के अनुयायी है, अहिंसा तथा शांति उसकी आधार शिलाए है। इस लिए हमे जा कुछ करना है वह ठण्डे दिमाग से सोच समझ कर। पाण्डवो के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं और मैं ममभता हू धृतराष्ट्र का उत्तर इस मन्वन्ध मे न्यायोचित तथा उपयुक्त ही है।”

धृतराष्ट्र को सहारा मिला और उन्होने पुनः अपनी बात दोहराई और राजदूत को विदा कर दिया गया।

धृतराष्ट्र ने विदुर तथा भीष्म जी को बुला कर मन्त्रणा की। उन दोनो ने ही पाण्डवो की प्रशंसा और दुर्योधन व कर्ण की नीति की निन्दा की और अपनी ओर मे सजय को समझौता वार्ता चनाने के लिए भेजने का समर्थन किया। तब धृतराष्ट्र ने सजय को बुलाया और बोले—

“मंजय ! वस्तुस्थिति क्या है तुम भनि भाति जानते हो।

और तुम्हें यह भी ज्ञात है कि पाण्डव बड़े पराक्रमी हैं अपने पिता के समान ही वे प्रतापी हैं। उन्होंने अपने बाहुबल से राज्य का जो विस्तार किया, वह भी मुझे ही सौंप दिया था। मैंने उन में दोष ढूँढने का प्रयत्न किया परन्तु कोई दोष न मिला। युधिष्ठिर तो धर्मराज है। उसकी बुद्धिमत्ता, न्यायप्रियता तथा धार्मिकता के आगे तो मेरा सिर भी झुक जाता है। युधिष्ठिर ने दुर्योधन की सारी कुटिलताओं को क्षमा किया। वान्यकाल से दुर्योधन ने उन्हें मिटाने के षडयंत्र रचे, फिर भी पाण्डव मुझे पाण्डु के स्थान पर मानने रहे। अब उन्होंने दुर्योधन की शर्त पूर्ण कर दी और वे अपने खोए राज्य का पुनः प्राप्त करने के अधिकारी हो गए। परन्तु दुर्योधन और कर्ण जीते जी उनके राज्य को लौटाना नहीं चाहते जब कि पाण्डवों के साथ एक बड़ी शक्ति है। श्री कुण्ड जैसे प्रकाण्ड विद्वान् राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ तथा योद्धा सहायक हैं। राजा विराट उनका भक्त हैं। पांचाल नरेश और उसकी समस्त शक्ति, सात्यकि व उसकी समस्त विशाल सेना, कितनी विशाल शक्ति है पाण्डवों की ओर। जब कि स्वयं पाण्डव ही एक महान् शक्ति हैं। अर्जुन अकेला ही दिग्विजय कर सकता है। उस अकेले ने ही मत्स्य राज्य पर कौरवों के आक्रमण के समय समस्त कौरव वीरों को मार भगाया था। जो कर्ण आज बढ़ बढ़कर बातें करता है वह स्वयं अर्जुन के हाथों मृह की खा चुका है। भीम में तो अभी बल है उसकी टक्कर का अब पृथ्वी पर एक ही वीर है, वह है बलराम। नकुल सहदेव आदि भी सुलक्ष्ण हुए योद्धा हैं। और युधिष्ठिर तो अपने पुण्य शुभ प्रकाते तथा शुद्ध विचारों के कारण इतनी महान् शक्ति है कि वे चाहे तो सारे कौरवों को भस्म कर डालें। मुझे युधिष्ठिर से भय लगता है। ऐसी दशा में कोई भी युद्ध का छिड़ना हमारे नाश का ही कारण बन सकता है अतः तुम महाराज युधिष्ठिर के पास जाओ और उन के सहयोगियों में भी मिलो और जिस प्रकार भी हो मन्धि की वार्ता चलाओ। प्रयत्न करना कि वे इधर से कुछ मिले या न मिले, पर मन्धि को तैयार हो जाए। यह भी मालूम करो कि मन्धि कम से कम किन शर्तों पर हो सकती है।

सजय ने उत्तर दिया— “राजन् ! आप का विचार बहुत ही

ठीक है आप यह कार्य मेरे ऊपर छोड़ रहे हैं तो विश्वास रखिये कि मैं अपना पूर्ण प्रयत्न करूंगा कि किसी प्रकार समझौते का गस्ता निकल आये।”

धृतराष्ट्र ने सारी बातें समझाकर सजय को उपप्लव्य नगर भेज दिया।

× × × × × × ×

उपप्लव्य नगर पहुँचते ही सजय का पाण्डवों की ओर से बहुत आदर हुआ। युधिष्ठिर ने सर्व प्रथम उस में हस्तिनापुर का समाचार पूछा। उसके पश्चात् सजय बोला—“राजन् बड़े सौभाग्य की बात है कि आज आप अपने सहयोगियों के साथ सकुशल हैं। राजा धृतराष्ट्र ने आपकी कुशलता पूछी है सत्य व्रत का पालन करने वाली राजकुमारी द्रौपदी तो सकुशल है न?”

“अर्हन्त भगवान की कृपा दृष्टि से हम सभी कुशल हैं। और सारे कौरव कुल की कुशलता की-कामना करते हैं।—युधिष्ठिर बोले इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने सजय से उपप्लव्य नगर के पधारने का कारण पूछा।

सजय बोला—“मुझे महाराज धृतराष्ट्र ने आपकी सेवा में एक सन्देश पहुँचाने के लिए भेजा है।”

कहिये उनका क्या सन्देश है?”

वे - उनका विचार है कि युद्ध किसी भी दशा में मानव समाज के कल्याण का साधन नहीं बन सकता। इस लिए चाहे जो हो आप युद्ध की कामना न करें।—सजय बोला महाराज धृतराष्ट्र का यह सन्देश हम शिरोधार्य करते हैं और साथ ही यह भी कह देते हैं कि हम स्वयं युद्ध करने के इच्छुक नहीं हैं। परन्तु अपने ऊपर हो रहे अन्याय का प्रतिकार भी चाहते हैं। यदि किसी प्रकार भी दुर्योधन मन्त्रि के लिए तैयार हो जाए तो हम युद्ध नहीं करेंगे। युद्ध हमारा उद्देश्य नहीं साधन हो सकता है।—युधिष्ठिर बोले।

संजय ने फिर कहा—“महाराज धनराष्ट्र स्वयं अपने पुत्रों को हठ में दुखी हैं। वास्तव में धनराष्ट्र के पुत्र निरर्थक हैं। वे न अपने पिता की बात पर ध्यान देते हैं और न वे भीष्म पितामह की ओर मुनते हैं। वे तो अपनी मूर्खता की धुन में ही मग्न हैं। फिर भी आप तो धर्मराज हैं, भद्वृद्धि है आप को उनकी मूर्खताओं में उत्तेजित नहीं होना चाहिए। क्योंकि यदि युद्ध छिड़ा तो एक ही वश की मन्ताने मानी जायेगी। आप युद्ध के द्वारा चहे पहाड़ों से लेकर सागर तक का राज्य भी जीत ले, पर तलवार तथा धनुष बाण जैसे अस्त्र शस्त्रों में वृद्धावस्था तथा मृत्यु पर विजय नहीं पा सकते। त्याग ही सुख की प्राप्ति का साधन है। इस लिए आप जैसे धर्म बुद्धि व्यक्ति को कभी भी युद्ध की बात नहीं करनी चाहिए। हठवादी दुर्योधन अपनी मूर्खता के कारण चाहे एक बार आप को राज्य देने से भी क्यों न इन्कार करदे, फिर भी आप युद्ध की बात न करें। धनराष्ट्र आप की बुद्धि पर विश्वास करते हैं। उन्हें आप पर पुत्र वन प्रेम है और आप के प्रति उन्हें दुर्योधन से अधिक विश्वास है। इस लिए वे चाहते हैं कि आप युद्ध का विचार त्याग कर धर्मानुकूल जीवन बिता कर संसार में यश प्राप्त करें। यदि दुर्भाग्यवश युद्ध छिड़ गया तो सब में अधिक दुःख धनराष्ट्र को होगा क्योंकि रक्त चाहे कौरवों का वहे चाहे कुन्ती नन्दनों का उनके लिए एक ही बात है। इस लिए मैं बार-बार कह रहा हूँ उसका तात्पर्य यह है कि आप राज्य में अधिक धर्म की चिन्ता करें”

संजय की बात सुन कर युधिष्ठिर बोले—“संजय ! सम्भव है आप की ही बात सच हो। और यह बात तो बिल्कुल सच है ही कि हमें राज्य से अधिक धर्म की चिन्ता होनी चाहिए। क्योंकि केवली प्रभु का भी यही कथन है कि धर्म ही मनुष्य का कल्याण करता है, यही एक मात्र सहारा है। धर्म से ही मनुष्य को वास्तविक सुख प्राप्त होता है। राज्य तथा धन सुख प्राप्ति के साधन नहीं। फिर भी हम यह समझ कर अन्याय को बढ़ते रहने या फूलने फलने के लिए नहीं छोड़ सकते। हम न्याय के रक्षक हैं। जब तक गृहस्थ धर्म में हैं तब तक अन्याय को रोकना तथा न्याय

के लिए लड़ना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। हा इस सम्बन्ध में यह अवश्य ही समझने है कि यदि दुर्योधन किसी भी शर्त पर हम से सन्धि करने को तयार हुआ तो हम सन्धि करना ही अच्छी समझेंगे। हम अपने पूरे राज्य को वापिस लेने की जिद नहीं करते। और अन्त में निर्णय श्री कृष्ण पर छोड़ते हैं वे दोनों ही पक्ष के हितचिन्तक हैं और धर्म के मर्म का भी समझते हैं।”

श्री कृष्ण उस समय वहाँ विराजमान थे। बोले “ठीक है जहाँ मैं पाण्डवों का हितचिन्तक हूँ वही कौरवों को भी मुखी देखना चाहता हूँ। परन्तु समस्या इतनी जटिल हो गई है और दुर्योधन उसे इतना जटिल बनाता जा रहा है, कि इसे सुलझाने के बारे में एक दम कुछ नहीं कहा जा सकता।”

“फिर भी आप किसी प्रकार इसे सुलझाने का तो प्रयत्न करें ही।”—सजय बोला।

“धृतराष्ट्र जाति चाहते हैं। हम सन्धिवांता के लिए पहले ही दूत भेज चुके हैं। और हमें ज्ञान हुआ है कि भीष्म जी तथा विदुर जी दोनों ही जाति व सन्धि के पक्ष में हैं। फिर तो समस्या सुलझ जानी चाहिए। श्री कृष्ण जी स्वयं ही एक बार प्रयत्न कर के क्यों न देख लें।”—युधिष्ठिर ने कहा।

श्री कृष्ण कुछ सोचने लगे। थोड़ा देर मभी चुप रहे अन्त में उस चुप्पी को भग करते हुए श्री कृष्ण ने कहा—“मेरा विचार यह है कि मुझे एक बार स्वयं ही हस्तिनापुर जाना होगा। पर दूसरी ओर मैं यह भी समझता हूँ कि भीष्म, विदुर तथा धृतराष्ट्र की इच्छा सन्धि के लिए हो सकती है, परन्तु दुर्योधन अपने हठवादी तथा मूर्ख परामर्श दाताओं की कृपा से सन्धि के लिए कभी तैयार हो सकता है इस में सन्देह है। फिर भी एक बार मैं उसे अवश्य ही समझाऊंगा। प्रयत्न करूंगा कि यह महायुद्ध छेड़ कर अपनी मृत्यु और अपने परिवार के नाश को निमन्त्रित न करें।”

सजय ने श्री कृष्ण की बात सुनी। उसने अनुभव किया कि श्री कृष्ण की बात में कौरवों के लिए एक धमकी भी छिपी है और उन्हें विश्वास है कि महायुद्ध में पराजय कौरवों की ही होगी। कुछ सोच कर सजय बोला—“आप हस्तिना पुर आकर यदि समझाने का प्रयत्न करेंगे तो सम्भव है आप के कहने व समझाने बुझाने से दुर्योधन मान जाय। परन्तु एक बात का ध्यान आप अवश्य ही रखें कि दुर्योधन के मूर्ख सलाहकार उसे भडकाते रहते हैं इस बात को आधार बना कर कि देखा, पाण्डवों की ओर से धमकी दी जा रही है। और दुर्योधन को अपनी शक्ति पर अभिमान है इस लिए आप किसी भी प्रकार दुर्योधन के सहयोगियों का उसे उत्तेजित करने का अवसर न दें।”

श्री कृष्ण सजय के परामर्श पर मुस्करा दिए।

युधिष्ठिर ने कहा—“श्री कृष्ण जी! आप जाकर जिस तरह भी हो सन्धि का उपाय खोजें यदि दुर्योधन हमें हमारा पूर्ण राज्य भी न दें तो हम केवल ५ गाँव तक ले कर भी सन्तुष्ट हो सकते हैं। आप चाहे तो यह न्यूनतम माग उस से स्वीकार करवा कर युद्ध टाल सकेंगे।”

श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर की उदारता की भूरि भूरि प्रशंसा की। अन्त में बोले युधिष्ठिर! इतनी शक्ति होने और इतनी विशाल सेनाओं का सहयोग प्राप्त कर चुकने के पश्चात् भी इतनी न्यूनतम शर्त पर सन्धि करने को तैयार होकर आप ने जो उदारता न्याय प्रियता, धर्म प्रियता और शांति प्रियता दर्शाई है, उसकी कदाचिन् आप के अतिरिक्त आज के युग में किसी से भी आशा नहीं की जा सकती। आप की ओर से इतनी छूट देने पर तो सन्धि हो जानी चाहिए। परन्तु यदि इस दशा में भी सन्धि न हुई तो फिर आप का रणभेरी बजा देना पूर्ण तथा न्यायोचित होगा।”

सजय को युधिष्ठिर की बात सुन कर बहुत ही सन्तोष हुआ और मन ही मन उस ने युधिष्ठिर की बहुत प्रशंसा की। मन ही मन वह युधिष्ठिर की उदारता के प्रति तनमस्तक हुआ और प्रत्यक्ष रूप में कहने लगा—“धन्य; धन्य राजन्! आप वास्तव में धर्म

राज है। आप जैसे उच्च विचारों और शुभ मनोवृत्ति आध्यात्म-वादी व्यक्ति की कभी पराजय नहीं हो सकती।”

आत्म प्रशंसा सुनने के बाद भी युधिष्ठिर गम्भीर हो रहे। उन्हो के चेहरे पर प्रसन्नता का एक भाव भी द्रवित न हुआ ठीक है महां पुरुष ने अपनी प्रशंसा सुनें कर प्रसन्न होते और न अपनी आलोचना से खिन्न हो। वे गम्भीरता पूर्वक बोले—“सर्जय ? आप के द्वारा प्राप्त घृतराष्ट्र के सन्देश से अपार प्रसन्नता हुई है आप उन से जाकर मेरी ओर से कहे कि हमे उन पर विश्वास है हम ने अपने स्वर्गवासी पिता जी के स्थान पर माना है। उन्हो की कृपा से हमे आधा राज्य मिला था और आज यदि वे चाहे और हृदय से प्रयत्न करे तो व्यर्थ का रक्त पात बच-सकता है। यदि दुर्योधन हमे जीवन यापन के लिए पांच ग्राम भी देना स्वीकार कर ले तो हम घृतराष्ट्र की सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वह कर लेंगे। घृतराष्ट्र हमारे लिए सदा आदरणीय रहे हैं और रहेंगे। उन्हो की कृपा से १२ वर्ष के बनवास व ४ वर्ष अज्ञातवास की शर्त पर हमे राज्य वापिसी का आश्वासन मिला था। यदि वह वचन वे पूर्ण करादे तो अहो भाग्य। हम रण भूमि में उनके पुत्रों के शत्रु रूप में आने की इच्छा नहीं रखते, परन्तु हमे ऐसा करने को विवश किया जा रहा है। श्री कृष्ण जी उनके पास पहुंचेंगे। वे दृढता पूर्वक अपने मनोबल को प्रयोग कर के सन्धि का सम्पन्न खुलवा दें। हम जीवन भर उनके आभारी रहेंगे।”

“आप भीष्म पितामह से जाकर कहे कि पाण्डवों को उनकी न्याय प्रियता पर पूर्ण विश्वास है। उन्हो ने हमारे दूत के साथ जो सौजन्यता दर्शाई है हम उस के लिए आभारी हैं। हम जानते हैं कि वे शांति के कितने बड़े समर्थक हैं। वे न्याय प्रिय हैं। वे यदि चाहे तो हम जीवन भर यही वनों में भटकते फिरने के लिए भी तैयार हैं परन्तु उनके रहते कौरव पक्ष की ओर से अपने वचन का उल्लंघन हो यह उन के लिए भी लज्जा की बात है। हमे चाहे किसी रूप में भी रहना पड़े और चाहे अन्न में दुर्योधन को हठ से विवश होकर शत्रु रूप में भी रण भूमि

मे आना पड़े। फिर भी भीष्म-हमारे लिए पूजनीय हैं। हम चाहते हैं कि-वे इस अवसर पर कौरवों तथा पाण्डवों-दोनों के हित के लिए कार्य करें।”

“दुर्योधन से-जल्द कर रहे कि हम उसके भाई है यदि-केवल राज्य के लिए हम भाई भाई आपस में लड़ें तो सारा ससार हम पर धूकेगा। हम उस वंश के लोग हैं जो राजकुलों में पूजनीय रहा है। दुर्योधन ने राज्य के दो भाग कराये, तो भी हमने प्रसन्नता पूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। उसने हमें जुए के लिए निमंत्रित किया, हम ने भाई की भाँति स्वीकार कर लिया। उसने हमें वनवास दिया, हम वनों में चले गए। उस ने ५ वर्ष के अज्ञात वास की इच्छा प्रकट की, हमने राजकुमार होते हुए विराट के दरबार में सेवा टहल करते हुए अज्ञात वास किया। एक बार जब गन्धर्वों ने उसे बन्दी बना लिया था तो हम ने भाई होने के नाते उसे उन से छुड़वाया। मत्स्य राज्य पर आक्रमण के समय अर्जुन चाहता तो उस का वध भी कर सकता था, पर भाई के नाते उस ने ऐसा नहीं किया। अथ समय आया है कि वह हमारे प्रति भ्रातृत्व का प्रदर्शन करे और हमें अपना भाई समझ कर हमारे साथ न्याय करे। राज्य चाहे कितना विनाश हो, वह आदमी की आत्मा को महान नहीं बनाता, मनुष्य सम्पत्ति अथवा उच्चासन के कारण उच्च श्रेणी प्राप्त नहीं कर सकता और धन धान्य सन्निधानन्द की प्राप्ति के लिए व्यर्थ है। मनुष्य की महानता उनके शुभ कर्मों में उस के चरित्र में निहित है। इस लिए वह उदारता का परिचय दे। मनुष्य को कभी अपनी शक्ति पर अहंकार नहीं होना चाहिए। अतः उसे हमारे साथ सन्धि कर के इस समस्या को सुलझा लेना चाहिए। न्याय ही राजा का आभूषण होता है। मित्र, सहयोगी, सेना, सम्पत्ति, बन्धु बान्धव कोई भी अन्त समय में आत्मा का साथ नहीं देता काम आता है तो अपना धर्म। मनुष्य योनी में आकर भी अपनी आत्मा के कल्याण के लिए धर्म का मार्ग न अपनाया तो मनुष्य जन्म व्यर्थ चला गया-समझो मृत्यु का क्या ठिकाना, कब आकर ढोल बजावे। इस लिए अहंकार को छोड़ कर उसे सन्धि के लिए तैयार हो जाना चाहिए और हमें अवसर देना चाहिए कि

भविष्य में भी किसी आड़े समय पर हम उसके काम आ सके। यदि वह नहीं चाहता कि हमारा छीना हुआ भाग पूरा का पूरा हमें वापिस मिले तो केवल पांच गांव ही हमें दे दे। हम उसी से मन्तृष्ट हो जायेंगे। दुर्योधन को मेरा यही सन्देश सुना देना। और अन्त में कहना कि वह अपनी उदारता का परिचय दे, मैं तो सन्धि के लिए भी तैयार हूँ और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध के लिए भी।”

संजय ने युधिष्ठिर का सन्देश सुन कर एक बार पुनः उनकी धर्म बुद्धि की प्रशंसा की और उनके सन्देश को अक्षरशः पहुँचाने का वचन देकर हस्तिना पर की ओर प्रस्थान कर दिया। परन्तु जाते समय अर्जुन से उनका भेंट हो गई। अर्जुन ने गोक कर कहा — “क्या आप सन्धि का सन्देश लेकर आये थे?”

“हैं।”

“तो क्या रहा।”

“आप की ओर से सन्धि की पूर्ण तथा कामना है।”

“क्या दुर्योधन भी तैयार है।”

“अभी तो नहीं।”

“तो फिर आप दुर्योधन में जाकर कहें कि मेरा गाण्डीव धनुष युद्ध के लिए लालायित हो रहा है। तरकश के बाण स्वयं उछल उछल कर पूछ रहे हैं “कब? कब?”—अर्थात् दुर्योधन को यमलोक पहुँचाने के लिए हमें कब प्रयोग करेंगे? श्री-कृष्ण मेरे सारथी होंगे तब हम दोनों मिल कर उसे धूल चटा कर ही रहे होंगे। ऐसा मालूम होता है कि दुर्योधन के नाश के दिन निकट आ रहे हैं।”



* छवीमवां परिच्छेद *

दुर्योधन का अहंकार

उधर सजय ने हरितनापुर में प्रस्थान किया। इधर धृतराष्ट्र उसकी वापसी की वेचैनी में प्रतीक्षा करने लगे। रात्रि को उन्हें नींद भी न आई। बिस्तर पर पड़े पड़े वे करवट बदलते रहे। जब किसी प्रकार भी उन की मानसिक विकलता शांत न हुई तो उन्होंने विदुर को बुलाया। बोले - "सजय तो शांति दूत बन कर गा है, पर मेरा मन बहुत विकल है। मैं सन्धि व शांति चाहता हूँ। तुम भी बताओ कि क्या होना चाहिए। दुर्योधन तथा कर्ण तो मन्धि की बात भी सुनना गवारा नहीं करते। क्या किया जाय - ?

विदुर जी ने धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहा - "राजन् ! नीति तो यही कहती है कि पाण्डवों को राज्य वापिस देना ही उचित है। यदि धर्म से घणा है तो कूट नीति और युक्ति का भी यही तर्कजो है क्यों कि स्पष्ट है, श्री कृष्ण चाहे निःशस्त्र हो कर भी पाण्डवों के साथ है, और मत्स्य तथा पांचाल की सेनाएं पाण्डवों की ओर से युद्ध में उतर रही हैं तो भी हमारा पाण्डवों पर विजय पाना असम्भव है। इस लिए आप किसी भी प्रकार दुर्योधन को समझाएं कि वह हठ न करे। सन्धि करले, यदि वह बड़ा राज्य ही चाहता है, तो अपने बाहुबल से अपने राज्य का विस्तार करे।"

इसी प्रकार विदुर जी गई रात तक धृतराष्ट्र को समझाने

रहे ।

दूसरे दिन सजय भी आ गए ।

दरबार लगा था, कौरव कुल के सभी विवेक शील एवं अविवेकी व्यक्ति उपस्थित थे । सजय ने आकर युधिष्ठिर तथा श्री कृष्ण से हुई चर्चा को सविस्तार कह सुनाया । और अन्त में दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहा—

“विशेषतया दुर्योधन को चाहिए कि अर्जुन की बात ध्यान पूर्वक सुनें ।”

बीच ही में दुर्योधन आवेश में आकर बोला—“क्या कहा है अर्जुन ने ?”—उस समय दुर्योधन का मुँह तमतमा रहा था ।

सजय बोले. —

“अर्जुन ने कहा है कि इस में कोई सन्देह नहीं कि मैं और श्री कृष्ण दोनों मिल कर दुर्योधन और उन के साथियों का नाश कर के ही रहेंगे। मेरा गाण्डीव धनुष युद्ध के लिए लालायित है । धनुष की डोरी आप ही आप टकार कर उठती है । तरकस के तीरे स्वयं उछल रहे हैं । वे तरकश में भाक कर पूछ लेते हैं कि हमें दुर्योधन को मारने के लिए कब प्रयोग करेंगे ? दुर्योधन का विनाश काल निकट आ गया है इसी लिए वह हमें युद्ध के लिए विवश कर रहा है ।”

मुनने ही दुर्योधन की आंखों में खून बरसने लगा । परन्तु भीष्म-जी-बोले—“दुर्योधन ! निम्नन्देह अर्जुन तथा श्री कृष्ण दोनों मिल कर युद्ध करें- तो उनके सामने देवता भी नहीं जीत सकते । जब वे दोनों एक साथ मिल कर तुम्हारे विरुद्ध लड़ने लग जायेंगे तो तुम्हारा पता भी न लगेगा ।”

वर्ण को बड़ा क्रोध आया । वह गरज कर बोला—“अब मैं उस अर्जुन नामक छोकरे की प्रशंसा मुनता हूँ तो मेरा रक्त खोबने-लगता है । जिसे आप देवताओं में भी अधिक समझ रहे

हैं, और उसके साथी श्री कृष्ण जिनकी प्रशंसा करते आप नहीं आघाते, वह बेचारे तो कल परसो ढोर चराया करते थे। वे क्या जाने लड़ने की सार। मेरे सामने उन दोनों में से एक भी नहीं ठहर सकता और मेरी बात की सच्चाई आप को रण भूमि में ज्ञात हो जायेगी। आप दुर्योधन को भय विह्वल करने की चेष्टा न करें।”

कर्ण की आत्म प्रशंसा का उत्तर उसे ही न देकर भीष्म जी धृतराष्ट्र से बोले—“राजन् ? सूत्र पृत्र कर्ण बार बार यही दम भर रहा है कि मैं पाण्डवों को रण भूमि में खत्म कर दूंगा। किन्तु मैं कहता हूँ कि पाण्डवों की शक्ति का सोलहवां भाग भी उसे मे नहीं है। तुम्हारा युव उसी की बातों पर युद्ध के लिए तैयार हो रहा है, और स्वयं अपने नाश का आयोजन कर रहा है। वरना उसमें कितनी शक्ति है यह तो मत्स्य देश पर किए आक्रमण के समय ही ज्ञात हो गया था। यदि उस में अर्जुन जैसे वीर को परास्त करने की शक्ति है तो मत्स्य देश की चढ़ाई में उसे क्या हो गया था ? अर्जुन के सामने से द्रुम दबा कर क्यों भागा था। इस काण्ठ से पहले भी तो एक बार गन्धर्वों के सामने कर्ण ने मुँह की खाई है - उस अवसर पर कर्ण दुर्योधन को शत्रुओं के चंगुल में फसा छोड़ कर ही भाग आया था परन्तु उन्हीं अपार शक्ति वान गन्धर्वों में अर्जुन ने ही दुर्योधन को मुक्त कर दिया था। जब दो बार कर्ण अर्जुन से मात खा चुका और दुर्योधन दो बार रण क्षेत्रों में पराजित हो चुका, फिर किस बल बूते पर कर्ण दुर्योधन की उकसाता है और दुर्योधन उसकी मूर्खता पूर्ण उत्तेजक बातों पर विश्वास कर रहा है ?”

धृतराष्ट्र को भीष्म जी की बात जम गई। बड़े सन्तप्त होकर दुर्योधन को समझाने लगे—“भीष्म जी जो कहते हैं वही तर्क संगत, युक्ति संगत, न्यायोचित और करने योग्य ज्ञान पड़ता है। हमें सन्धि कर ही लेनी चाहिए। इस से हम अपने राज्य को बचा लेंगे और व्यर्थ ही सकट मौल लेने से बच जायेंगे। परन्तु तुम्हें तो न जाने क्या होगया है कि मेरी सुनते ही नहीं। जिन में विवेक है और जिन्हें अनुभव है तुम उन्हीं की बात ठुकरा रहे हो।

मेरी मानो और पाण्डवों से सम्मान पूर्वक समझाता करलो।”

दुर्योधन ने कहा—“पिता जी ! आप तो व्यर्थ ही भय विह्वल हो रहे हैं मानो हम सब व मजोर हैं देखिये हमारे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है जब कि पाण्डवों के पास केवल ७ अक्षौहिणी सेना ही है। फिर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सामने पाण्डवों की ७ अक्षौहिणी सेना भला क्या कर सकती है। हमारी इतनी विशाल सेना और कर्ण आदि वीरों के बल से ही तो पाण्डव घबरा गए हैं और पहले आधा राज्य भागते थे, तो अब भय विह्वल होकर केवल पांच गांव ही मागने लगे। क्या, पांच गांव वाली माम से यह सिद्ध नहीं होता कि उन्हें अपनी पराजय का निश्चय हो गया है और इसी कारण सन्धि व शांति का ढोंग रच कर वे कुछ न कुछ ले मग्ने के चक्कर में हैं। इतने पर भी आपको हमारी विजय पर मन्देह हो तो आश्चर्य की बात है।”

धृतराष्ट्र ने पुन समझाने की चेष्टा की—“बेटा ! जब पांच गांव देकर ही युद्ध टल सकता है और हम एक भयंकर सकट में बच सकते हैं तो वाज आओ युद्ध में। पांच गांव देने में तुम्हें क्या आपत्ति है। तुम्हारे पास तो पूरा का पूरा राज्य रह ही रहा है। यह मौदा सर्वथा लाभप्रद है। अब हठ न करो। मान जाओ।”

धृतराष्ट्र का जब इस उपदेश का दुर्योधन पर उलटा ही प्रभाव पड़ा। वह चिढ़ गया और क्रुद्ध हो कर बोला—“मैं तो मूर्ख की नोक बराबर भी भूमि पाण्डवों को नहीं देना चाहता। आप की जा दृच्छा हो करे। पाण्डवों में शक्ति है तो रण भूमि में आ कर निर्णय करे।”

यह कहता हुआ दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और मभा भवन के

फुटनोट—आज कल जैसे विभिन्न दलों को मिला कर सेना में एक डिविजन बनता है, वैसे ही उन दिनों कई विभाग मिला कर एक अक्षौहिणी बनती थी। एक अक्षौहिणी में २१,८७० रथ और उमी हिसाब में हाथी, घोड़े, पैदल आदि की संख्या होती थी।

द्वार की ओर चल पड़ा। उस समय भीष्म जी बोले—“जब चीटी के पर निकल आते हैं तो समझो कि उसकी मृत्यु निकट आ गई। दुर्योधन के अहंकार की हद हो गई। विनाश काले विपरीत दुर्द्धि।”

कर्ण भभक उठा और सभा में खलबली मच गई। भिन्न भिन्न प्रकार की आवाजे उठी और सभा भग होगई।



* सताईसवां परिच्छेद *

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ कृष्ण शान्ति दूत बने ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

युधिष्ठिर विचार मग्न बैठे थे। अभी अभी विराट उनसे कुछ परामर्श लेकर उठे थे। कमरे में पूर्ण शांति थी और दूर से अस्त्र शस्त्रो तथा सैनिकों के परीक्षण की बूनिया आ रही थी। उसी समय श्री कृष्ण ने प्रवेश किया। विचार मग्न युधिष्ठिर की दृष्टि ज्यों ही श्री कृष्ण पर पड़ी, वे अभिवादन के लिए उठ खड़े हुए।

प्रणाम के उपरान्त युधिष्ठिर ने उन्हें ससत्कार आसन दिया। श्री कृष्ण बोले—“राजेन् ! कौरव पाण्डव दोनों के हित के लिए मैं शांति का दूत बन कर हस्तिनापुर जा रहा हूँ। आप कुछ और कहना चाहे तो मुझे बता दीजिए।”

युधिष्ठिर बोले—“आप हमारे लिए जो कष्ट उठा रहे हैं हम उस से कभी उद्धरण नहीं हो सकते। परन्तु कल से मैं आपकी हस्तिनापुर जाने के सम्बन्ध में ही सोचता रहा हूँ और अब मैं यह समझ रहा हूँ कि आपकी हस्तिनापुर यात्रा से समस्या सुलझेगी नहीं।”

धर्मराज युधिष्ठिर के मुह से अनायास ही ऐसी बात सुन कर श्री कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा—“आपके ऐसा अनुमान लगाने का क्या कारण हो सकता है ?”

“वासुदेव ! सजय को धृतराष्ट्र का ही प्रति रूप समझना चाहिए। उन से जो बातें हुईं उन्हीं के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच रहा हूँ—युधिष्ठिर कहने लगे—पहले तो सजय की मोठी र तथा धर्मनिकूल बातें सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी और मुझे ऐसा महसूस होने लगा था कि सन्धि के लिए उपयुक्त वातावरण बनने की सम्भावना है, पर अन्त में सजय के मुख से जो निकला उस से मुझे यह सन्देह हो रहा है कि धृतराष्ट्र चाहते हैं कि यदि दुर्योधन हमें कुछ भी न दे तो भी हम युद्ध न करे वल्कि शांति तथा धर्म के नाम पर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। धृतराष्ट्र ने हमारे साथ हुए काण्ड में जो भूमिका निभाई है उस से स्पष्ट है कि वे मनो बल के सम्बन्ध में बहुत ही कमजोर आदमी हैं। वे अपने बड़े दुर्योधन के मोह में न्याय को भी तिलाजलि दे सकते हैं। सजय ने कोई बात अपने मन की नहीं कही जो कहीं वह धृतराष्ट्र की बात थी। इस लिए मैं तो इस परिणाम पर पहुँच रहा हूँ कि दुर्योधन सन्धि के लिए तैयार नहीं है और न उस के तैयार होने की आशा ही है इस सम्बन्ध में धृतराष्ट्र भी निराश है।”

“क्या पाँच ग्राम की माग होने पर भी दुर्योधन नहीं मानें गा ?—श्री कृष्ण ने पूछा।

“हा, दुष्ट बुद्धि दुर्योधन इस न्यूनतम माग को भी स्वीकार नहीं करेगा, वल्कि सम्भव है कि इस न्यूनतम माग से उस का अहंकार और बढ जाये। इस लिए अब मैं आपका हस्तिना पुर जाना भी उचित नहीं समझता।”—युधिष्ठिर ने कहा।

“राजन् ! हमारा कर्तव्य है कि शांति तथा सन्धि के लिए अपने अन्तिम प्रयत्न कर ले ताकि कोई यह न कह सके कि हम युद्ध के जिम्मेदार हैं। यदि हमारे इस प्रयत्न से भी सन्धि वार्ता सफल नहीं होती तो फिर रण क्षेत्र में उतरना हमारे लिए न्यायोचित होगा।”—श्री कृष्ण बोले।

“एक शर्का मेरे मन अन्दर ही अन्दर कचोट रही है कि

प्राज कल दुर्योधन के सिर पर अहंकार मवार है। कर्ण आदि ने उस को उत्तेजित कर रखा है। वह अब आप को भी अपना शत्रु समझने लग रहा है। क्यों कि व्यक्ति गत रूप से आप हमारी ओर आंगण है। इसे लिए शत्रु के पास आप का अकेला हम प्रकट हो जाना ठीक नहीं है। कहीं अहंकार में अन्धे हो रहे दुर्योधन ने आप के साथ कुछ अनुचित बातें कर दीं या अपने दरबार को ही रण क्षेत्र समझ लिया तो फिर बहुत बुरा होगा।—युधिष्ठिर ने अपने मन की बात कही।

वात सुन कर श्री कृष्ण के अधरो पर मुस्कान खेल गई, बोले—“राजन् ! आप की चिन्ता व्यर्थ है। मैं दुष्ट बुद्धि दुर्योधन और उसके सहयोगियों तथा परामर्श दाताओं के स्वभाव से परिचित हूँ। शत्रु पक्ष ऐसे अवसर पर क्या क्या कर सकता है। यह मुझे ज्ञात है। मैं स्वयं सावधान रहूँगा। परन्तु मैं किसी के लिए यह कहने का अवसर नहीं देना चाहता कि जब कौरव व पाण्डवों के बीच युद्ध ठन रहा था तो कृष्ण ने जो उन दोनों के समान हितपी थे, जो दोनों के सम्बन्धी थे, उस समय अपने कर्तव्य को निभाने में कोई कसर उठा रखी। मैं आप की ओर से शान्ति व सन्धि का संदेश ले जा रहा हूँ। हर प्रकार से, प्रत्येक सम्भव उपाय प्रयोग कर के दुर्योधन को समझाऊँगा। और यदि उसने तथा उस के सहयोगियों ने कुछ षड्यन्त्र रचना चाहा या अपमान किया तो मैं उनकी सभा में ही उन्हें मौत के घाट उतार दूँगा। आप विश्वास रखिये कि उन आतताईयों के किसी जाल में भी फसने वाला नहीं है।”

“आप की इच्छा को मैं समझ रहा हूँ—आप अपनी ओर से कोई कसर नहीं चाहते। अपनी अन्तिम कोशिश करना चाहते हैं, परन्तु शत्रु की जीति को ध्यान में रख कर ही कुछ करना चाहिए। आप उन से सावधान रहें, यही मैं कहना चाहता था, पर लंगता है कि जो बात मैं आप से कहना चाहता था, वह आप पहले ही से जानते हैं।—फिर भी आप जा ही रहे हैं तो मैं हृदय से कामना करता हूँ कि आप को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हो। आप हम भाइयों

मे सन्धि करा दे तो यह काम उस सफलता से सहस्र गुना-अधिक मूल्यवान तथा-हितकारी होगा, जो आर की सहायता से रण क्षेत्र में मिलेगी ।”

उसी समय भीम वहा पहुंच गया । जब उसने सुना कि श्री कृष्ण शांति दूत बन कर हस्तिना पुर जा रहे हैं, तो अपने स्वभाव के अनुसार वह क्रुद्ध नहीं हुआ । उस ने कहा - “सम्पूर्ण राज्य महा युद्ध के द्वारा प्राप्त हो तो भी वह उस से अधिक कल्याणकारी नहीं हो सकता जो कि राज्य का कोई अंश भी सन्धि के द्वारा प्राप्त होने से । आप सन्धि करा दे तो अहोभाग्य ।”

अर्जुन को जब श्री कृष्ण के हस्तिना पुर जाने का समाचार मिला, तो वह भी उनके दर्शन करने वहा आ गए और श्री कृष्ण को अभिवादन कर के बोले - “मधुसूदन ! हमें युद्ध नहीं सन्धि चाहते है आप वहा जाकर जैसे भी हो सन्धि वार्ता को सफल बनाने का प्रयत्न कीजिए और विश्वास रखिए कि आप जो भी करा देंगे हमें स्वीकार होगा ।”

कुछ देर से द्रौपदी हमें खड़ी खड़ी यह सब बाने सुन रही थी, उसे यह बाने पसन्द न आई । उसके मन में तो प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी । जब अर्जुन ने भी सन्धि को ही सराहा तो उस से न रहा गया सामने आ गई और श्री कृष्ण से बोली - “मधुसूदन ! मेरे यह खुले हुए केश देख रहे हो ?”

श्री कृष्ण समझ गए कि वह क्या कहना चाहती है, तो भी उन्होंने द्रौपदी के प्रश्न का ही उत्तर दिया - “हां द्रौपदी आज से नहीं १३ वर्ष पूर्व जब तुम वनवास के लिए गई थी तब भी मैंने इन खुले हुए केशों को देखा था ।”

“बस-हस्तिना पुर जाने में-पूर्व-मेरे-इन बिखरे-वालों को तनिक ध्यान से देखो-। इन बिखरे-हुए-केशों-से मेरे अपमान की क्या छिपी हुई है । इन-को दृष्टि में-रखो-फिर-जो उचित ज्ञचे करो-। मधुसूदन ! आज भीम सेन और वनुधर्म की-धत्तजय मेरे

इन केशों की कहानी भूल सकते हैं। दुर्गामन के पापी हाथों में हुआ मेरा अपमान वे भुला सकते हैं और उन पापियों से मेरे अपमान का प्रतिशोध लेने की उन की प्रतिज्ञा कदाचित् उन्हें याद न रही हो, पर आज भी इन विखरे केशों से मुझे उस पापी के हाथों की गंध आती रहती है। अर्जुन तथा भीम भले ही युद्ध न करें, पर मेरे पिता, जो यद्यपि बूढ़े ही हैं, फिर भी मेरे पुत्रों को साथ लेकर युद्ध में कूद पड़ेंगे। यदि किसी कारण वश पिता जी भी युद्ध करने न आये तो न सही, सुभुद्रा का पुत्र अभिमन्यु तो है। उसी को मेना पति बना कर मेरे पाचों बेटे कौरवों में लड़ेंगे। परन्तु किसी न किसी भाति दुष्टों से मेरे अपमान का बदला अवश्य लेंगे। मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की जो आग धुआँ दे रही है, उसे धर्मराज की खातिर मैंने १३ वर्ष तक दबाये रक्खा भड़कने न दिया। परन्तु अब मुझे मे सह्य नहीं जाता। जिन के कारण मैंने घोर अपमान सहे, — जिन के कारण मैंने दासी बन कर एक वर्ष तक मेवा दहल की, आज जब मेरे अपमान का बदला लेने का प्रश्न आया तो वे सन्धि की बातें करने लगे। आज वे दुष्ट पापी उन के भाई हो गए जिन्होंने मुझे भरी सभा में नगा करने का प्रयत्न किया था, यह भाई भाई तो पुनः भाई भाई का राग अलापने लगे परन्तु जब मेरे ऊपर अन्याय हो रहा था, तब क्या था ? इस लिए मधुसूदन मेरी प्रतिज्ञा की लाज रखना। एक पतिव्रता के ऊपर हुए अन्यायों को न भूलना। क्या मैं जीवन भर इन केशों को यूँ ही विखरा रहने दूँगी ? — इतना कहते कहते द्रौपदी की आँखें डब डबा भाई। उसका गला रुंध गया।

द्रौपदी को इस प्रकार दुखी देख कर श्री कृष्ण बोले—“रोओ मत, बहन ! रोने का तो कोई कारण ही नहीं।— ज्ञानि स्थापना की जो मैं शर्त रखूँगा, उन्हें घृतराष्ट्र के बेटे मानेंगे नहीं, फलतः युद्ध हो कर ही रहेगा। रण स्थल में पड़ी कौरवों की लगे कुत्तों और मियागों का आहार बर्नगी। आतताईयों का रक्त भूमि पर गन्दे पानी की भाँति डुलता फिरेगा। उनका सर्व नाश हो जायगा। और पाण्डव पुनः राजमिहामन के स्वामी बनेंगी। तुम्हारे ऊपर हुए अत्याचार का बदला अवश्य लिया जायेगा। तुम इस बातें में निश्चिन्त

रही।”

इतना कह कर श्री कृष्ण ने पाण्डवों तथा द्रौपदी से विदा ली।

X

X

X

X

श्री कृष्ण के शांति दूत के रूप में आगमन की सूचना जब धृतराष्ट्र को मिली तो उन्होंने सारा नगर सजाने की आज्ञा दी। और विदुर जी से बोले—“वासुदेव के लिए हाथी, घोड़े रथ आदि उपहार भेंट आदि करने का प्रबन्ध करो। और श्री अनेक उपहार उन्हें भेंट करने का प्रबन्ध किया जाय ऐसी मेरी कामना है, वे प्रसन्न हो जायें, कुछ ऐसा करो।”

विदुर जी बोले—“राजन् ! आप का विचार ठीक नहीं। वे ऐसे व्यक्ति नहीं जो प्रलौभनों के वश में आ जायें अथवा शत्रु की भांति वे चक्कर में आ कर आपके पक्ष में आ जायें। वे तो राज दूत बन कर रह रहे हैं, उन्हें प्रसन्न करने का तो एक ही उपाय है कि वे जो सन्धि वार्ता चलाने आ रहे हैं आप उसे स्वीकार कर लें।”

धृतराष्ट्र को विदुर की बात ठीक लगी और उन्होंने उपहारों का प्रबन्ध करने का विचार त्याग दिया।

परन्तु जब दुर्योधन को श्री कृष्ण के आगमन का समाचार मिला उसने सोचा कि श्री कृष्ण का सन्धि वार्ता के लिए आगमन उसके लिए कुछ अच्छा सिद्ध नहीं होगा क्यों कि उनके आने से कौरवों के समस्त विवेकशील सरक्षक तथा सहयोगी श्री कृष्ण के अभाव में आकर सन्धि को तैयार हो जायेंगे। यह भी सम्भव है कि श्री कृष्ण के कारण कौरव वीरों में दो पक्ष बन जायें। एक सन्धि चाहने वाला और दूसरा युद्ध चाहने वाला। कौरव वीरों के दो भागों में विभाजित हो जाने से जो दया उत्पन्न होगी वह

युद्ध में पाण्डवों की विजय के लिए सहायक सिद्ध होगी। तब क्या किया जाय? दुर्योधन यही सोच रहा था कि कर्ण आगया। बोला—“राजन्! श्री कृष्ण तुम्हारे पक्ष में दरार डालने के लिए आ रहे हैं। वे बड़े कूट नीतिज्ञ हैं और आप इस प्रकार मुह लटकाए बैठे हैं?”

“क्या करू मित्र! श्री कृष्ण का यहां सन्धि वार्ता करने के लिए आगमन हमारी युद्ध की योजनाओं पर कही पानी न फेर दे। यही मैं सोच रहा हूँ”—दुर्योधन ने कहा।

“श्री कृष्ण तो अब शत्रुओं के पक्ष में है। उन्होंने पाण्डवों को सहायता देने का वचन दिया है। और हैं वे प्रमुख व्यक्ति जिन के विपक्ष में होने से आप को भयानक हानि उठानी पड़ेगी। एक शत्रु सेनानी आप के यहां आ रहा है आप श्री कृष्ण के आगमन को इस दृष्टि में लें।”—कर्ण ने कहा।

बात सुनते ही न जाने दुर्योधन के मन में क्या आई कि एक हर्ष की रेखा उसके मुख पर खिंच गई।

श्री कृष्ण का हस्तिना पुर में अभूत पूर्व स्वागत किया गया। वे हस्तिना पुर पहुच कर सब से पहले वृतराष्ट्र के भवन में गए। वहां उन्नत राजोक्ति सत्कार किया गया। उम के उपरान्त वे अन्य कौरव वीरों से मिले। और अन्त में दुर्योधन के भवन में गए। दुर्योधन ने श्री कृष्ण का शानदार स्वागत किया। कुछ बातचीत हुई और जब वे चलने लगे तो दुर्योधन ने उन्हें उचित आदर-सत्कार सहित भोजन का निमंत्रण दिया। परन्तु जब तक वे दुर्योधन से बात करते रहे उन्हें यह अनुभव होगया कि दुर्योधन सन्धि सम्बन्धी कोई बात नहीं करता, बल्कि सन्धि चर्चा को वह कानों पर टाल-झूटा है और अनेक बातें वह दिखावटी प्रशंसा की उनके लिए कर रहा है। इस लिए दुर्योधन की बातों से उन्हें किसी पड़पन्थ की बू आई और वे बोले—“राजन्! मैं अब राज हूँ बन कर आया हूँ। राज हूँ तो का यह नियम होता है कि जब

तक उनका कार्य सफल न हो जाय तब तक भोजन न करे। जिस उद्देश्य को लेकर मैं यहाँ आया हूँ वह पूरा हो जाय तब मुझे भोजन का निमन्त्रण दीजिए।”

दुर्योधन और उसके भाइयों ने बहुत हठ किया परन्तु वे न माने और तुरन्त विदुर जी के निवास स्थान की ओर चल पड़े। जहाँ जाकर उन्हें कुन्ती माता मिली। श्री कृष्ण को देखते ही माता कुन्ती को अपने पाँचों पुत्रों की याद आ गई। उन से न रहा गया और जी भर आया। आँखों से आसू उमड़ पड़े। श्री कृष्ण ने पाण्डवों की कुशलता का समाचार सुना कर और प्रत्येक ढग से धैर्य वधा कर कुन्ती को मोह्वना दी।

श्री कृष्ण ने विदुर जी के यहाँ ही भोजन किया और फिर उनसे सन्धि के सम्बन्ध में वार्ता की। विदुर जी तो सन्धि के पक्ष में थे ही, उन्होंने सन्धि के लिए दुर्योधन की इकोर का रहस्य बताते हुए कहा कि दुर्योधन मदाध हो गया है। उसके मित्रों ने उसे चढ़ा रखवा है। इस लिए सन्धि वार्ता की सफलता में सन्देह है। फिर भी यदि युद्ध हुआ तो विजय पाण्डवों की ही होगी।

कौरव दरबार लगा था। श्री कृष्ण जी पहुँचे, उन का आदर सत्कार करने के पश्चात् उन्हें उचित आसन दिया गया। श्री कृष्ण ने अपने आगमन का कारण बताया और धर्म तथा नीति सम्बन्धी बातें बता कर सन्धि करने के लिए जोर डाला। उन्होंने एक एक करके पाण्डवों पर किए गए दुर्योधन के अत्याचार गिनाए जिन्हें सुन कर दुर्योधन क्रुद्ध हो गया और आवेश में आकर बोला—“आप सन्धि की वार्ता करने नहीं मुझे अपमानित करने के लिए आये हैं। और मैं अपमान सहन करने का आदी नहीं हूँ। यदि आप मुझे आतताई और अन्यायी ही समझते हैं तो जाइये मुझे सन्धि की कोई बात स्वीकार नहीं। रण क्षेत्र से ही हमारा और पाण्डवों का फैसला होगा।”

श्री कृष्ण ने शांति पूर्वक कहा—“दुर्योधन, आप जानते हैं मैं आप दोनों का रिश्तेदार हूँ। यदि आप मे युद्ध हुआ तो मसार कहेगा कि पाण्डव तथा कौरव यदि युद्ध के मतवाले हो गए थे तो कृष्ण तो धर्म मार्ग को समझने थे, वे तो उन दानों में शांति करा सकते थे। उन्होंने उन दोनों को क्यों नहीं समझाया। इस लिये मैं फिर से कहता हूँ कि यदि आप आधा राज्य वापिस नहीं करना चाहते तो उन्हें पाँच गाव ही दे दो, वे पाँच भाई उसी से अपनी गुज़र कर लेगे।”

पाँच गांव की भी आप ने खूब कही। क्या उनका मुँह पर कोई ऋण है जो मैं अदा करता हूँ ?”— दुर्योधन बोला।

क्या यह सम्भव नहीं कि आप अपने राज्य के कोई से निकृष्ट पाँच गाव देकर सन्धि कर लें। —“श्री कृष्ण ने कहा।

“आप अपने हाथ की निकृष्ट सी उ गली काट कर किसी को दे सकते हैं ! नहीं। मेरे राज्य का प्रत्येक ग्राम, चाहे वह निकृष्ट हो हो, मेरे लिए उतना ही मूल्यवान है, जितनी कि मेरी राजधानी। और राज्य कभी भीख मागने में नहीं मिला करता। राज्य भिक्षा में नहीं दिए जाया करते। यदि पाण्डवों में शक्ति है तो वे रणभूमि में लडकर राज्य ले सकते हैं।” दुर्योधन ने आवेश में आकर कहा।

उस समय दुर्योधन की बातें सुनकर भीष्म पितामह, विदुर और धृतराष्ट्र निलमिला उठे। परन्तु कर्ण बहुत प्रसन्ने हो रहा था। श्री कृष्ण बोले—“राजन ! तुम शक्ति तथा सैन्य बल के मद में अहंकार के शिकार हो गए हो। पाच गाव देने पर भी यदि तुम्हें आपत्ति है तो फिर बताओ कि युद्ध को टालने के लिए पाण्डवों को कुछ देने के लिए भी राजामन्द हो सकते हो अथवा नहीं ?”

दुर्योधन आवेश में आकर बोला—“श्री कृष्ण इस समय आप मेरे दरबार में राजदूत के रूप में आये हैं। मेरे रिश्तेदार के रूप में नहीं। इस लिए मैं आप से यह बात स्पष्टतया कहने पर विवश हूँ कि पाण्डव पाच गाव की बात करते हैं, आप उनसे जाकर कहें

कि-मैं उन्हें सूई की नोक जितनी भूमि घेरती है, उतनी भूमि भी देने को तैयार नहीं। यदि आप को पाण्डवों के जीवनयापन की इतनी ही चिन्ता है तो आप अपने राज्य में से ही दो चार ग्राम क्यों नहीं दे देते।”

श्री कृष्ण इस अवसर पर दुर्योधन के अहंकार को सहन नहीं कर पाये। बोले—“दुर्योधन ! तुम्हें अपनी शक्ति का बड़ा घमण्ड है। पर, यह मत भूलो कि तुम्हारा वास्ता रण में उससे अर्जुन से, पड़ेगा जिसका मुकाबला तुम तो क्या देवता तक भी नहीं कर सकते। उसके गाण्डीव के पराक्रम को तुम मत्स्य-राज पर की चढ़ाई के अवसर पर देख चुके हो। स्मरण रखो कि तुम्हारी हठ, सारे परिवार के नाश का कारण बनेंगी। मैं तुम्हारे हितचिन्तक के नाने समझाता हूँ कि मान जाओ। वरना फिर पश्चात्ताप करोगे। गंधारी जैसी सत्यवती को निपूनी मत बनाओ।”

इस चेतावनी को सुन कर दुर्योधन के तन में आग सी लग गई और वह उबल पड़ा—“राजदूत ! मैंने भी पृथ्वी को पाण्डव विहीन करने की शपथ खा ली है। यदि पाण्डवों की ओर से देव राज इन्द्र भी युद्ध करने आया तो वह भी बच न जायेगा। उन भिन्न भगो पाण्डवों को जो करे” कह देना कि दुर्योधन खैरान वाटने के लिए नहीं राज्य के हित के लिए उत्पन्न हुआ है।”

इतना कह कर वह राज सभा से बाहर चला गया। उस के साथ कर्ण, दुःशामन आदि भी चले गए। सभा में गड़बड़ मच गई। भीष्म, धृतराष्ट्र तथा विदुर सन्न रह गए मभी विवेकशील व्यक्ति दुर्योधन के व्यवहार की आलोचना करने लगे।

इधर दुर्योधन ने अपने मित्रों के साथ मिल कर श्री कृष्ण को गिरफ्तार कर लेने का षडयन्त्र रचा। और राज सभा चारों ओर से घेर ली गई श्री कृष्ण पहले ही सावधान थे। उन्होंने उभी समय अपना विराट रूप प्रदर्शित किया अर्थात् छुपे हुए अश्व सम्भाल लिए चक्र प्रभु को विजेष्यता उन्होंने सम्भाला। उनका

मुख लाल अगारे की भाँति हो गया । उन के इस रूप को देख कर सैनिक घबरा गए और जब श्री कृष्ण द्वार से निकलने लगे, किसी का साहस न पड़ा कि उन्हें रोक सके । वे निकले हुए चले गए और सीधे विदुर जी के निवास स्थान पर गए । जहाँ कुन्ती ने उन में राज सभा में हुए वार्तालाप के परिणाम को पूछा और जब श्री कृष्ण ने बताया कि मन्धि वार्ता असफल रही तो वीर क्षत्राणि कुन्ती का रोम रोम जल उठा । उस ने श्री कृष्ण से कहा — "तौ मधु सूदन ! आप मेरे पाँचों सिंह समान पुत्रों से जा कर कहें दे कि वे युद्ध के लिए तैयार हो जाय । न्याय के लिए वे अपने प्राणों का भी मोह छोड़ कर युद्ध करें और विजयी हो कर आये । वे मेरी कोख को न लजाएँ और आततायियों को दिखला दें कि कुन्ती की मन्तान कायर नहीं है ।"



* अठाईसवां परिच्छेद *

कुन्ती को कर्ण का वचन

कुन्ती को जब ज्ञात हुआ कि शांति प्रयत्न असफल हो-गए है-और कुल नाशी युद्ध की आग भड़कने वाली है, तो वह व्याकुल हो-उठी। एक बार तो उसे भी क्रोध आया था कि दुर्योधन ने उस के बेटो को सूई की नोक बराबर भी भूमि देने से इकार कर दिया। परन्तु जब उस ने उस भयंकर युद्ध पर विचार किया जो छिड़ने वाला था, तो उसका रोम रोम सिहर उठा। वह सोचने लगी—“राज्य और सम्पत्ति का मोह भी कितना भयानक होता है कि उस के लिए एक ही कुल के परम प्रतापी वीर एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो गए हैं। कुल-वृद्ध भी नाश लीला को अपनी आंखों उभरते देख रहे हैं। तमाम भरत खण्ड के वीर समर-भूमि की ओर उमड़ रहे हैं। गंगा नन्दन भीष्म और नीतिज्ञ कुरुक्षेत्र में घघकने वाली है, जो कुल के तेजस्वी सपूतों को भस्म कर डालेगी।”

यह बात सोचते ही वह कोप उठी। जी चाहता था कि वह इसे रोकने के लिए अपने पाँचों पुत्रों को आदेश दे कि वे युद्ध से बाज आयें। पर वह अपने पुत्रों को कैसे कहे कि अपमान का कड़वा घूट पी कर वे रह जायें और युद्ध न होने दे? यदि वह ऐसा कहे भी-तो क्या उस के महाबली व स्वाभिमानी पुत्र मानने

को तैयार हो जायेंगे ? एक ओर क्षत्रियो का राष्ट्र धर्म है तो दूसरी ओर युद्ध की विभीषिका है । एक ओर दुर्योधन को हठ के कारण क्रोध है तो दूसरी ओर कुल के नष्ट हो जाने का भय । जब बश का ही नाश हो जायेगा तो फिर इस राज्य का क्या लाभ ? तवाही के परिणाम स्वरूप कही लाभ होता है ? कुन्ती सोच में पड़ गई—“हा देव ! यह भी कैसी दुविधा है ? इस से बचू तो कैसे ?”

माता कुन्ती के मन में ममता एवं वीरता के बीच खेचातानी हो रही थी । मन में एक हक सी उठती । वह अपने पुत्रों के भविष्य के सम्बन्ध में सोचने लगी—“भीष्म द्रोण और कर्ण जैसे अजेय महारथियों को मेरे पुत्र कैसे परास्त कर पायेंगे ? इन तीनों महावलियों का विचार करते ही मन सिहर उठता है । यह तीन ही दुर्योधन के पक्ष में ऐसे महारथी हैं जो पाण्डवों के प्राण हारी बन सकते हैं । हां, द्रोण अर्जुन को अपने पुत्र अश्वत्थामा में भी अधिक चाहते हैं । सम्भव है गणांगण में अर्जुन के प्रति उनका स्नेह अर्जुन को मारने से रोक दे । भीष्म के सम्बन्ध में भी यही बात है । वे भी युधिष्ठिर और अर्जुन आदि को चाहते हैं । सम्भव है उनके वाणों की चार स्नेह के कारण कृण्ठित हो जाये । पर कर्ण तो रण में पहुँच कर पाण्डवों के प्राण लेने से भी कभी न चूकेगा । वह दुर्योधन के मोह के कारण और अर्जुन द्वारा भरी मभा में अपमानित हो चुकने की वजह से, अर्जुन और उसके भाइयों पर बुरी तरह खार खाये बैठा है । पाण्डव उसे फूटी आखों नहीं भाते । साथ ही वह दानवीर है । उस में उसके सचित पुण्य कर्मों के कारण महान शक्ति है । वह अपनी दानवीरता के कारण अजेय है । इस लिए वह पाण्डवों के लिए प्राण हारी सिद्ध होगा । मेरा ज्येष्ठ पुत्र ही मेरे पुत्रों के प्राणों का प्यासा बना है, पर मेरे ही प्राण का तो फल है । यदि मैं उस के जन्म की बात को छिपा कर न रखती तो क्यों आज कर्ण अपने ही भाइयों का बैरी बनता ? ओह ! अब क्या हो ? क्या कर्ण अपने भाइयों का वध किए बिना न छोड़ेगा ?”

यह विचार मन में आते ही वह बहुत परेशान हुई । सोचने

लुगी-ऐसे उपाय को जिस से वह कर्ण के मन में पाण्डवों के प्रति कृपा जागृत कर सके। उस ने सोचा कि यदि कर्ण यह जान जाय कि जिन्हें वह शत्रु समझ बैठा है, वे उस के सगे भाई हैं तो अवश्य ही वह अपने मन से वैर भाव को निकाल देगा। पर यह ही तो कैसे? कौन बताये उसे यह रहस्य। तभी उस ने निश्चय किया कि वह अपनी भूल को सुधार कर पाण्डवों के प्राणों की रक्षा करेगी।

×

×

×

×

कर्ण ने देखा कि सामने माता कुन्ती खड़ी है। उसने उन का अभिनन्दन करते हुए कहा—“राधा पुत्र कर्ण आप को करबद्ध होकर प्रणाम करता है। कहिए माता जी आप ने कैसे कष्ट किया।”

कुन्ती के मन में ममता जाग गई। कृपा की खान कुन्ती की पलकें भीग गईं। उन का निचला होठ काप गया। बोली—“बेटा! अपने को राधा पुत्र कह कर मुझे लज्जित क्यों करते हो? मैं अपनी भूल को सुधारने आई हूँ।”

आश्चर्य चकित रह गया कर्ण। उसने कहा—“आज आप कैंसी बातें कर रही हो? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया।”

“बेटा! मैं तुम्हें अपने हृदय से लगा कर एक बार मातृत्व की बलवती इच्छा को पूर्ण करना चाहती हूँ। पर आज तक अपनी ही एक भूल के कारण अपनी कामना को पूर्ण न कर सकी। मैं अपने ही पुत्र को अपना न बता सकी। बेटा! मैं आज तुम से अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करने आयी हूँ।”—कुन्ती ने कहा।

“मैं अब भी नहीं समझा। कि आप.....”

“बेटा! तुम मेरे पुत्र हो। मैं तुम्हारी मां हूँ। एक लम्बे असें से जिस रहस्य पर परदा पड़ा रहा, मैं उसी को बताने आई हूँ।”—कुन्ती गदगद स्वर में बोली।

तो क्या मैं रोधापुत्र नदी हूँ ?” कर्ण ने आश्चर्य विमूह हो कर पूछा।

“नहीं बेटा, तुमने मेरी कौख से जन्म-लिया है। तुम पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता हो। उन-के-जिन-के प्राणों के तुम शत्रु बन गए हो। मैं ही तुम्हारी वह अभूषित माँ हूँ, जो तुम्हें-जन्म देने के पश्चात् भी तुम्हें कभी अपना पुत्र न कह सकी। क्योंकि महाराज पाण्डु के साथ विधिवत् विवाह होने से पूर्व ही तुमने जन्म लिया। मैंने तुम्हारे परम-प्रतापी पिता की निशानी के स्वरूप कुण्डल पहनाकर नदी में बहा दिया था। पर शोक कि हमारी योजना पूर्ण नहीं हुई और तुम्हारे पिता के बजाये तुम्हें रथवान ने पकड़ लिया और ससार ने तुम्हें उसी की सन्तान जाना।”—सारा रहस्य बताते हुए कुन्ती ने गदगद स्वर से कहा।

परन्तु कर्ण में कुन्ती की आशा के अनुसार उत्साह जागृत नहीं हुआ। उस ने कुछ सोच कर कहा—“तो तुम्हीं ही वह अन्यायी माँ जिसने मुझे जन्म देकर नदी की लहरों में फेंक दिया था। तुम ही हो वह पापिन जिसने अपने पाप को छुपाने के लिए मुझे मौत के मुह में फेंक दिया था। तुम ही वह हो जिस के कारण मैंने अर्जुन द्वारा अपमान के कड़वे घूट पिये। यदि यही है तो फिर अब क्यों मेरे पास अपने अन्याय का बखाने करने आई हो ?”

कर्ण के इन तीक्ष्ण शब्दों से कुन्ती का हृदय विध्वनित हुआ। उस ने कहा—“बेटा! मुझे क्षमा कर दो। हाँ मैं ही वह पापिन हूँ जिसने कि निर्दोष होते हुए भी लोक-निन्दा के डर से तुम्हें तुम्हारे पिता जी की आज्ञानुसार नदी में इस लिए बहा दिया था, ताकि वे तुम्हें नदी से निकाल कर पुत्रवत् तुम्हारा पालन-पोषण करें। तुम्हारे नाना जी उनके साथ मेरा विवाह नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन के प्रति भ्रम था कि वे पाण्डु रोग में पीड़ित हैं। परन्तु मैंने उन्हें अपना सिर-ताज मान लिया था। वास्तव में मैंने कोई पाप नहीं किया था।

“तो आज तक तुम ने अपने बेटे पर इस रहस्य को क्यों नहीं खोला ? जब भरी मभा में अर्जुन मेरा अपमान कर रहा था तब

तुम ने क्यों नहीं बताया कि मैं रथवान का पुत्र नहीं बल्कि पान्डु नरेश की सन्तान हूँ ? तुम ने लोक निन्दा के भय से मुझे सदा अपमानित होते देखा । तुम ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए मेरी प्रतिष्ठा की बलि दी । तुम कैसी माँ हो ? मैंने आप ही तुम्हारा मातृवत् आदर किया है । पर आज तुम से मुझे घृणा हो गई है । माँ के उच्चादर्श को तुम ने कलकित कर डाला है ।” कर्ण ने आवेश में आकर कहा । उस समय वास्तव में उस के हृदय में घृणा ठाठे मार रही थी ।

कुन्ती तिलमिला उठी । उस के नेत्रों से अश्रु आ रहे थे । वह घुटनों के बल बैठ गई और बड़ी करुणापूर्ण मुद्रा में बोली—“बेटा ! मैं जो भी हूँ तुम्हारे सामने हूँ । मैं तुम्हारी दशा को देखकर सदा मन ही मन अपने को धिक्कारती रही । परीक्षा के समय जब अर्जुन ने तुम्हारा अपमान किया था, तो मेरा हृदय चीत्कार कर उठा था । जब तुम दोनों में ठन गई थी तो मैं मूर्छित होकर गिर पड़ी थी । मैं तुम्हें सदा ही अपनी गोद में लेने के लिए तड़फती रही । मैं मन ही मन आंसू पीती रही । मैंने सारा जीवन तुम पर हुए अन्याय के प्रायश्चित्त स्वरूप हादिक दुःख, पीड़ा और शोक में व्यतीत किया है । सोचो तो उस माँ के मन में क्या गुजरती होगी, जिस का लाल अपने बाहुबल और आत्मबल से सारे ससार पर छा रहा हो, जिसकी दानवीरता के कारण देवता भी उसके आगे नतमस्तक हो, पर माँ उसे अपना पुत्र कहने का भी अधिकार न रखती हो । बल्कि वह एक परम प्रतापी महाराज की सन्तान होने के पश्चात् भी अपने भाइयों के द्वारा ही पग पग पर धिक्कारा जाता है । अपमानित किया जाता हो । यह भी सोचो कि उस समय मेरे हृदय में कितनी हूक उठती होगी जब मैं अपने सामने ही अपने पुत्रों को अज्ञानवश एक दूसरे का शत्रु, एक दूसरे के प्राणों का प्यासा देखती हूँ । बेटा ! यह सभी कुछ मुझे अपने पाप का दण्ड मिला है । तुम्हारी माँ, अब तुम्हें अपना प्यार समर्पित करने आई है । तुम से अपनी भूल की क्षमा याचना करने आई है । मेरे लाल ! भूक दो अब अपना क्रोध और मेरी भूल से हो रही अपनी भूल को सुधारने का प्रयत्न करो ।”

कर्ण के मन में भी कहना जागृत हो गई। पर एक और भी दुःख उसके मन में उठ खड़ा हुआ था, वह था यह कि परम पराक्रमी पाण्डु की सन्तान होने पर भी वह ससार में रथी की सन्तान कहलाया गया और राजाओं ने उसे नीच समझ कर सदा ही उस का अपमान किया। अपने माता पिता के कारण उसे सदा ही अपमान व निरादर के कड़वे घूँट पीने पड़े। उसने कहा—“मा ! तुम ने कोई पाप नहीं किया। मेरे साथ जो कुछ हुआ, कौन जाने वह मेरे ही कर्मों का फल हो। क्षमा की बात कह कर मुझे लज्जित क्यों करती है। मुझे तो आज अपने पर गर्व होना चाहिए कि मैं उस सन्नारी सती की कोख से जन्मा हूँ जिसकी रग-रग को कोर छ भी नहीं पाता। फिर भी मैं एक स्वाभिमानी व्यक्ति हूँ। मुझे खेद है तो इस बात का कि आज से पूर्व तुमने कभी मुझे सन्वाई में अवगत न होने दिया। यही बात रह-रह कर मेरे हृदय में शूल की भाँति चुभ रही है।”

“बेटा ! जैसे तैसे मैं अपने हृदय पर पापाण शिला रखते हुए सब कुछ सहती रही। मैं लोक निन्दा के भय में मौन रही। पर जब पानी फिर से ऊपर पहुँच चुका तो तुम्हें यह रहस्य बताने आई हूँ। मैं तुम्हें बताना चाहती हूँ कि तुम जिन्हें अपना शत्रु समझ रहे हो, जिनके प्राणों के तुम प्यासे हो, वह तुम्हारे ही भाई हैं।”—कुन्ती ने कहा।

उस समय कर्ण के हृदय में पाण्डवों के प्रति विद्वेष की भावना धूँध कर के ज्वाला की भाँति जल उठी। उसने आवेश में आकर कहा—‘तो मा मैं यह समझने पर विवश हूँ कि तुम मुझे इस रहस्य को बताने के लिए नहीं आयी कि तुम ममता और पुत्र स्नेह को रोक नहीं पाई। या तुम्हारे हृदय में अपने परित्यक्त पुत्र के प्रति सहानुभूति का ऐसा तूफान आया जिसे तुम्हारे हृदय पर छाया लोक निन्दा का भूत भी रोक न पाया। बल्कि तुम्हारे मन में पाण्डवों के प्रति भरे हुए असीम स्नेह ने जोर मारा है। तुम मेरे बल से भयभीत हो गई हो और जबकि सिर पर आ गया है तुम अपने प्रिय पुत्रों के प्रति मेरे हृदय में भ्रातृत्व उत्पन्न कर के उनकी रक्षा करना चाहती हो। अवश्य ही यह बात तुम्हारे पाण्डवों के

लिए घोर पक्षपात पूर्ण है। आज भी तुम्हारे हृदय में कर्ण के प्रति न ममता है न सहानुभूति बल्कि उसके आक्रोश से अपने प्रिय पुत्रों को बचाने की भावना है।”

बेटा ! पाण्डव तुम्हारे ही भ्राता है। तुम उन के ज्येष्ठ भ्राता हो। मैं यह कैसे सहन कर सकती हूँ कि तुम भाई भाई ही आपस में एक दूसरे का नाश करने के लिए लड़ो। मैं यह कैसे देख सकती हूँ कि मेरे प्रिय पुत्र ही आपस में शत्रुओं के रूप में रणागन में जाये। तुम चारों के शरीर में मेरा ही रक्त है। मुझे तुम से भी उतना ही प्रेम है जितना युधिष्ठिर से अथवा अर्जुन या भीमसेन से।—कुन्ती ने आर्त स्वर में कहा।

कर्ण ठहाका मार कर हम पड़ा। पर वह ठहाका बड़ा ही व्यग्र पूर्ण था। कहने लगा—“मा तम आज भी उन तीन पुत्रों के लिए उतना ही प्रेम रखती हो, जितना तुम ने उन के प्रति पहले से रखा है। आज भी तुम्हें मुझ से कोई प्रेम नहीं है। तुम्हें प्रेम है तो उन तीनों से और तुम्हें भय है कि कहीं मैं उन के प्राण न ले लूँ। मा ! तुम्हारी रगों में कितना पक्षपात है ? तुम ने मुझे जन्म दिया, फिर भी क्यों मेरे प्रति मत्तृत्व नहीं दर्शा पाती ? क्या रथवान की गोद में पलने के कारण मुझ से तुम्हें तनिक भी सहानुभूति नहीं ? नहीं, नहीं मा ! तुम ने मुझे कभी भी प्रेम पूर्ण दृष्टि से नहीं देखा। आज भी तुम्हारी आँखों पर युधिष्ठिर, अर्जुन और भीमसेन के मोह की पट्टी बनी है। अभी अभी तुम अपनी भूल का प्रायश्चित्त करने को तैयार नहीं हो।”

कुन्ती के नेत्रों से पुनः अश्रुधारा फूट पड़ी। उम ने रोकर कहा—“बेटा ! यह बात कह कर मेरे हृदय पर कुठारा घात न करो। मैं अपना हृदय चीर कर कैसे दिखाऊँ ? आज जब रण की तैयारियाँ हो रही हैं। मैं इस रहस्य को बताने केवल इसी लिये आई कि मुझे उन तीनों के प्रति अधिक प्रेम है। बल्कि आई हूँ इसलिए कि मैं तुम में से किसी को भी अपने किसी भ्राता का बंधन नहीं देख सकती। मैं नहीं चाहती कि अर्जुन जो अभी तक वास्ताविकता को न जानने के कारण तुम्हारा भ्रम वश अपमान

करता रहा. रण में तुम्हें मारने के लिए अपना अस्त्र प्रयोग करे अथवा तुम उसको मार डालो। मेरे लिए तुम सभी समान हो। तुम मेरे पुत्र ही नहीं. बल्कि मुझे तो माद्री की सन्तान भी अपनी ही सन्तान लगती है। मैं तुम छ' से समान ही स्नेह रखती हूँ।"

"नहीं, नहीं तुम नहीं जानती हो कि कर्ण को मार मकना अर्जुन के बस की बात नहीं। इस लिए तुम मेरे लिए भयभीत नहीं हो। यदि होती तो अवश्य ही पहले अपने लांडले अर्जुन से जाकर इस रहस्य को बताती। तुम मुझे बताने आई हो तो इस लिए कि तुम पाण्डवों के भविष्य के प्रति सशक्त हो।"—कर्ण ने कहा।

"बेटा कर्ण ! यदि ऐसा भी है तो मुझे तुम से तुम्हारे भाइयों के प्राणों की रक्षा, उन के लिए अभयदान लेने का अधिकार है। मैं तुम से विनती कर सकती हूँ कि तम दुष्ट दुर्योधन के लिए अपने भाइयों के प्राण न लो। तुम उसी महा पराक्रमी स्वर्गवामी पान्डु की सन्तान हो, जिसकी सन्तान को दुर्योधन ने राज्य च्युत करके दर दर की ठोकरे खाने को बाध्य किया। तुम उसी पान्डु की सन्तान हो जिस के उत्तराधिकारी अपना अधिकार मांग रहे हैं। तुम उन के भाई हो, और हो तुम न्याय प्रिय। तुम्हारा कर्तव्य है कि जिस स्थान पर तुम्हारे छोटे भाईयों का पसीना गिरे वहाँ तुम अपना रक्त बहाने को तैयार रहो। तुम्हारे लिए यह शोभा नहीं देता कि तुम यह जानकर भी पाण्डव तुम्हारे भाई हैं, दूमेरे के कारण उनके शत्रु के रूप में युद्ध में जाओ। मैं तुम भाईयों को एक ही शिक्कर में देखना चाहती हूँ।"—कुन्ती ने अपने मन की बात कह दी।

"मां ! तुम ने और तुम्हारे पुत्रों ने मेरे साथ जो भी व्यवहार किया हो, पर मैं तुम्हारे आदेश के आगे अवश्य ही मिर झुका देता। मैं तुम्हारे चरणों में मिर रख कर कहता कि बोलो मां, तुम क्या चाहती हो। पर अब बहुत देर हो चुकी है। तुम बहुत देर से जागो, मैं दुर्योधन के पक्ष में हूँ और उम्मी की ओर मे लड़ने का वचन दे चुका है। दुर्योधन ने मेरी उस समय सहायता की थी जब

मुझे अपमानित किया गया था। उसने बिना किसी प्रकार का सौदा किए ही मुझे अपने राज्य का एक भाग दे दिया था। उसने सदा मेरा आदर किया। तुम जिसे नदी में फेंक आई थी, उसे दुर्योधन ने कूड़े के ढेर से उठा कर सिंहासन पर बैठाया। मैं उसका उपकार कभी नहीं भूल सकता - मैं भ्रातृ प्रेम के कारण जिन के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। मैं क्षत्रिय हूँ और हूँ महा पराक्रमी राजा की सन्तान। मैं अपने वचन को नहीं तोड़ सकता। मुझे क्षत्रिय रीति को तोड़ने के लिए न कहो।”—कर्ण ने उत्तर देते हुए कहा।

“दुर्योधन की मित्रता का कारण तुम्हारे प्रति उसका स्नेह नहीं। वरन वह तुम्हें अर्जुन को मारने के लिये अस्त्र बनाना चाहता है। बेटा ! तुम्हें शत्रु को चाल समझना चाहिए।”—कुन्ती ने कहा।

“नहीं मा, मैं यह नहीं मान सकता। रण तो आज हो रहा है, पर मेरे प्रति स्नेह का प्रदर्शन उमने उम दिन किया था जब किमी को यह भी पता नहीं था कि कौरव और पाण्डव एक साथ न रह सकेंगे। अपने उन दिनों मेरा आदर किया था जिन दिनों मेरे भाई पाण्डव मुझे सूत पुत्र कहकर मुझ से घृणा किया करते थे। मैं डम अक्सेर पर अपने परम प्रिय का साथ नहीं छोड़ सकता मैं क्षत्रिय धर्म को कलंकित नहीं करूंगा।”—कर्ण ने जोर देकर कहा -

माता कुन्ती ने बहुत समझाया पर कर्ण ने साफ कह दिया कि वह जिसे वचन दे चुका उसी के साथ रहेगा। उसके निश्चय को कोई भी नहीं बदल सकता। विवश होकर कुन्ती ने कहा—“बेटा ! यदि तुम पाण्डवों के पक्ष में भी नहीं आ सकते तो यह वचन तो मुझे दे ही सकते हो कि पाण्डवों में से किमी का बंध भी तुम्हारे हाथी नहीं होगा।”

“हा, ऐसा वचन दे सकता था परन्तु।”

“परन्तु क्या ?”

परन्तु मैं अर्जुन का वध करने का निश्चय कर चुका हूँ। हा, तुम मेरी माँ हो, आज पहली बार तुम मुझ से कुछ मना रही हो। तुम्हें मैं निराश नहीं करूँगा। वचन देता हूँ कि अर्जुन के अतिरिक्त अन्य किसी अपने भाई को मैं न मारूँगा।”

“तो क्या अर्जुन के प्राणों को तुम न बखशोगे?”

“नहीं।”

“यदि मैं इस का दान मांगूँ तो.....?”

“तुम याचक बनकर नहीं माँ बनकर आई हो।”

“तुम माँ की आज्ञा का उल्लंघन करोगे?”

“क्षत्रिय धर्म को कलंकित करने वाला आदेश कोई भी हो, किसी का भी हो मैं नहीं मानूँगा।”

इस प्रकार कितनी ही बार घुमा फिगा कर कुन्ती ने चाहा कि कर्ण अर्जुन को भी न मारने का वचन दे दे पर कर्ण न माना।

कर्ण ने अन्त में कहा—“माँ मुझ क्षमा करना कि मैं पाण्डवों के विरुद्ध लड़ने और अर्जुन के प्राण लेने के अपने व्रत को तुम्हारी इच्छा के बाद भी नहीं तोड़ पा रहा। क्योंकि मैंने तुम्हारी कोख में जन्म लिया है। हम क्षत्रिय अपने धर्म को किसी दशा में नहीं छोड़ते। मुझे आशीर्वाद दो कि मैं धर्म पर अडिग रहूँ।”

कुन्ती ने कर्ण को अपने गले से लगा लिया। उस से कुछ न बोला गया, गला रुख गया और आँखों से आंसुओं की धारा बह चली। उस ने कुछ देर बाद सम्भल कर कहा—बेटा तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे यश में वृद्धि हो।”

कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देकर कुन्ती वापिस चली आई। कर्ण अपने जीवन और परिस्थितियों की विहम्बना पर सोचना रह गया।



✽ उन्नतीसवां परिच्छेद ✽

सेनापतियों की नियुक्ति

श्री कृष्ण निराश होकर उल्लव्य नगर लौट आये। सभी पाण्डवों के समक्ष उन्होंने हस्तिनापुर की चर्चा का हाल सुनाया। अन्त में वे बोले :—

“जो भी कह सके। सभी कुछ कहा। सत्य और हित के अनुकूल सारी बातें बताईं। किन्तु सब व्यर्थ हुआ। दुर्योधन ने न मेरी सुनी और न अपने वृद्ध जनो की ही बात मानी।”

“अब क्या किया जाये ?” युधिष्ठिर ने प्रश्न उठाया।

“अब बस दण्ड से ही काम चलेगा।”—श्री कृष्ण बोले।

“एक ही रास्ता है कि हम इस धूर्त को अपने बाहुबल से समझाए। लातों के भूत बातों से नहीं माना करते।”—भीमसेन ने आवेश में आकर कहा।

युधिष्ठिर भी बोले—“हा अब शांति की आशा नहीं रही। सेना सुसज्जित करो और रण भूमि में जा डटो।”

श्री कृष्ण ने कहा—“बस यही एकमात्र उपाय है। आप लोग अपनी सेनाएँ तैयार कीजिए।”

पाण्डवों की विशाल सेना को सात भागों में विभाजित किया

गया। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि चेकितान, भीम सेन, सात महारथी, इन सात सैन्य-दलों के नायक बने। अब प्रश्न उठा कि सेनापति किसे बनाया जाये? सभी की राय ली गई।

युधिष्ठिर ने सब से पहले सहदेव की राय मागी, बोले— सहदेव! इन सात महारथियों में से किसी एक सुयोग्य वीर को सेनापति बनाना होगा। हमारा सेनापति रण-कुशल हो। शत्रु-सैन्य को दग्ध करने वाला हो। किसी भी विपत्ति में साहस न त्यागे, जो व्यूह रचना में निपुण हो और भीष्म जैसे महान तेजस्वी का सामना कर सके। तुम बताओ कौन है इन सातों में शूरवीर, सुयोग्य महारथी?”

“८

सहदेव सब से छोटा था, इस लिए पहले उससे राय ली गई। क्योंकि बड़ों का आदर करने के कारण छोटे अपने बड़ों की राय का अनुमोदन कर दिया करते हैं, इससे उनकी अपनी राय का ठीक ठीक पता नहीं चलता और न उन में आत्मविश्वास ही संचार होता है। सहदेव ने कहा—“अज्ञातवास के-समय हम-ने जिन का आश्रय लिया था और जिनकी सहायता से हम यह सारा सैन्य-दल एकत्रित कर सके। जो अनुभवी और बद्ध हैं। जिनकी अनगिनत कृपाएँ हम पर रही हैं, उन्हीं राजा विराट को हमें सेनापति बनाना चाहिए। फिर नकुल से पूछा गया। उसने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा—“मुझे तो यही उचित लगता है कि पांचाल राज द्रुपद जो आयु में, बल में, बुद्धिमत्ता और अनुभव आदि में सब से बड़े हैं उन्हें सेनापति बनाया जाय। क्योंकि उन्होंने द्रोणाचार्य के साथ साथ अस्त्र विद्या ग्रहण की है। द्रोणाचार्य को परास्त करने की कामना उनके मन में बरसों से समायी हुई है। वे द्रौपदी के पिता भी हैं उनके मन पर द्रौपदी के अपमान में जो ठेस पहुंची है उससे उनकी रगों में कौरवों के प्रति क्रोध भर गया है। वे भीष्म और द्रोण का मुकाबला भी कर सकते हैं।”

इस के बाद अर्जुन से पूछा गया। वह बोला “जो जितेन्द्रिय हैं, द्रोण का वध ही जिन के जीवन का उद्देश्य है वीर धृष्टद्युम्न हमारे सेनापति बने तो ठीक होगा।

भीष्म से जब पूछा गया तो उस ने कहा—भैया अर्जुन की बात ठीक है, पर हमारे लिए द्रोणाचार्य से भी अधिक समस्या भीष्म जी की है हमें अपना सेनापति ऐसा बनाना चाहिए जो उन्हें मार सके। शिखण्डी का जन्म ही भीष्म जी के वध के लिए हुआ है। अतः शिखण्डी को ही सेनापति क्यों न बनाया जाय ?”

अन्न मे युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण से पूछा। वे बोले—“इन सब ने जिन जिन महारथियों के नाम लिए, सभी सुयोग्य हैं और सेनापति बनने योग्य हैं। पर अर्जुन की राय मुझे ठीक जंचती है। घृष्टद्युम्न को ही सेनापति बनाया जाये।

जिस वीर ने स्वयं द्रौपदी से अर्जुन का परिणग्रहण कराया था, जो राज्य सभा में हुए द्रौपदी के घोर अपमान और उस पर किए गए घोर अत्याचार की कल्पना मात्र से ही भडक उठता था, अपनी बहन के अपमान का कौरवों से बदला लेने की प्रतीक्षा में जिस ने तेरह वर्ष बड़ी बेचैनी से व्यतीत किए थे, जो महान रण योद्धा था, उसी पांचाल राजकुमार घृष्टद्युम्न को सेनापति बनाना सभी ने स्वीकार कर लिया और फिर उसका विधिवत अभिषेक कर दिया गया। उस समय वीरों की सिंह गर्जना, भेरियों के भेरी नाद, शखों की तुमुल ध्वनि, दुंदुभी के गर्जन आदि से आकाश गूँज उठा। अपने कोलाहल से पृथ्वी को कपाती और दिशाओं को गुजाती हुई पाण्डव सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में जा पहुंची।

दूसरी ओर कौरवों की ओर से युद्ध की घोषणा हो चुकने के बाद कौरव सेना को ग्यारह भागों में विभाजित किया गया। उस के बाद प्रश्न आया कि सेनापति कौन बने। दुर्योधन ने अपने सभी उद्दण्ड परामर्श दाताओं को अपने पास बुला कर विचार विमर्श किया। शकुनि ने कहा—“मेरे विचार से भीष्म पितामह को ही सेनापति रखा जाय। सेनापति होने के कारण उन्हें पाण्डवों के विरुद्ध डटकर युद्ध करना पड़ेगा। उनका सामना कर सकने वाला पाण्डवों में कोई भी नहीं। भीष्म जो पाण्डवों से स्नेह रखते हैं। वस पाण्डवों और भीष्म जी को टकरा देने का एक यही उपाय है।”

शकुनि की बात सभी ने स्वीकार कर ली और दुर्योधन पितामह के पास जाकर बोला—“पितामह ! आपकी कृपा ने सभी तैयारियाँ पूर्ण हो गई हैं । अब आप ही हमारे सरक्षक हैं । सभी महारथी चाहते हैं कि आप हमारी सेना के सेना नायक बने । आप के नायकत्व में हमारी विजय अवश्य होगी ।”

पितामह कहने लगे—“तुम ने युद्ध की घोषणा करते समय हम से कोई परामर्श नहीं लिया । फिर तुम्हारे मित्र कर्ण को हमारे ऊपर सन्देह है कि हम पाण्डवों के पक्षपाती हैं । ऐसी दशा में यही अच्छा है कि तुम कर्ण को ही अपना सेनापति बनाओ । मैं तुम्हारी ओर से लड़ूँगा अवश्य पर कर्ण जैसे उद्दण्ड और अभिमानी के रहते मैं सेनापतित्व स्वीकार नहीं कर सकता । मुझे सन्देह है कि मेरे सेनापति होने पर वह मेरी आज्ञाओं का पालन भी करेगा ।”

“पितामह ! आपके सहारे पर तो हम ने युद्ध ठाना है । आप ही ऐसी बात करेंगे तो कैसे काम चलेगा । आप कर्ण को भूल जाइये और सेनापतित्व स्वीकार कीजिए ।”—दुर्योधन ने विनती की ।

“तुम पहले कर्ण से बात करो । मैं जानता हूँ कि तुम मेरे परामर्श से अधिक कर्ण की बात मानते हो । उसके रहते मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता ।”—भीष्म पितामह ने दो टूक उत्तर दिया ।

दुर्योधन चुपचाप वहाँ से वापिस चला गया और कर्ण से सारी बात आकर कही । उसे क्रोध हो आया, बोला—“पितामह सदा ही मेरा अनादर करते रहते हैं । मैं भी व्रत लेता हूँ कि जब तक पितामह जीवित है तब तक मैं रण में भाग नहीं लूँगा और जब रण में उतरूँगा तो अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव का वध नहीं करूँगा ।”

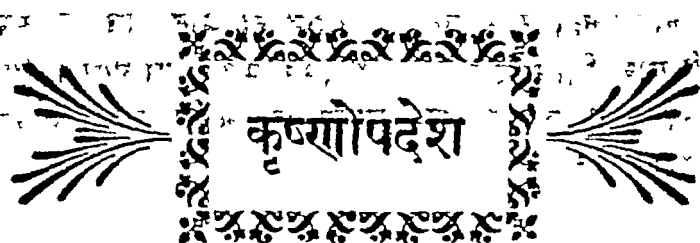
कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन बड़ा चिन्तित हुआ । पर तीर हाथ से छूट चुका था अब कर्ण का निश्चय बदलवाना सम्भव नहीं था । वह विचारा होकर पुनः पितामह के पास गया और कर्ण के व्रत की बात कह सुनाई । पितामह बोले—“बेटा ! उस अभिमानी

के व्रत से तुम चिन्तित क्यों होते हो। यदि वह मेरे रहते रण में भाग नहीं लेगा तो मैं सेनापतित्व स्वीकार करता हूँ। पर यह साफ बताए देता हूँ कि पाण्डु पुत्रों का वध करने की इच्छा से मैं आगे बढ़कर युद्ध न करूँगा। मैं जानबूझ कर उनका वध नहीं करूँगा। पर लड़ूँगा पूर्ण शक्ति से।”

बेचारे दुर्योधन के पास अब क्या चारा था? कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं था। उसने पितामह की बात मन से स्वीकार कर ली और त्रिधिवत् उनका अभिषेक कर दिया गया। पितामह के नायकत्व में कौरव सेना सागर की भाँति लहरें मारती हुई कुरुक्षेत्र की ओर प्रवाहित हुई।



* तीसवां परिच्छेद *



भारत के दुर्भाग्य ने अगड़ाई ली। शांति और समझौते की वार्ताएं असफल हो चुकी थी और अब दोनों ओर की सेनाएं रणस्थल में जा पहुंची थी। दोनों ओर से व्यूह रचना हो चुकी थी। कौरवों की छाती अभिमान के मारे फूल रही थी। उन्हें कुरुक्षेत्र में सजी खड़ी सेना को देख देख कर अपने पर गर्व हो रहा था और बाट देख रहे थे उस समय की जब कि दोनों सेनाओं की भिड़ंत होगी और वे अपनी विशाल सेना के बल पर पाण्डवों को परास्त कर के अपनी विजय पताका फहरा देंगे और "न रहेगा वास न वजेगी वासुरी" की लोकोक्ति अनुसार राज्य के लिये भगड़ने वालों को समाप्त कर सदैव के लिए निश्चित होकर राज्य करने का अवसर प्राप्त कर लेंगे। पर कौरवों का यह स्वप्न कोरी कल्पना पर आधारित है, अथवा इस में कोई सच्चाई भी है इस का पता तो युद्ध की समाप्ति पर चलेगा। हा ! दुर्योधन की आंखें चमक रही हैं। दुःशासन ने मुख पर उल्लास है, और अन्य भ्राताओं की भुजाएं फड़क रही हैं। इस समय कोई उनकी दशा देखे तो कदाचित्त उसे यह विश्वास करने देर न लगे कि कौरवों को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास है।

— परन्तु वह समय आयेगा या नहीं, जिसकी कल्पना उन्होंने की है, यह बात भविष्य के गर्भ में झुपी है। अभी तो कौरवों की

आत्म-परीक्षा का समय कुछ दूर है।

क्योंकि युद्ध आरम्भ होने से पूर्व, अभी एक बान और भी होनी है। वह है युद्ध के नियमों की रचना। ऐसे नियमों की जिन पर युद्ध की रीति-नीति आधारित होगी। उन दिनों की रीति के अनुसार दोनों ओर के सेना नायक मिले और सम्मेलन बृम्भकर सर्व सम्मति से कुछ नियम निश्चित किए। वे थे —

प्रतिदिन सूर्यास्त के उपरान्त युद्ध-बन्द हो जायेगा। युद्ध की समाप्ति के उपरान्त दोनों पक्ष के लोग आपस में मिलें। समीप बल वालों में ही टक्कर हो। अनुचित और अन्याय पूर्ण ढंग से कोई लड़ नहीं सकता।

सेना से दूर हट जाने वालों पर बाणों या अस्त्रों का प्रहार न हो। रथी, रथी से हाथी-सव्त्रार हाथी सव्त्रार से, घुड़-सवार घुड़ सवार से, और पैदल पैदल से, विमान-सवार विमान सवार से तथा विकट-गाड़ी विकट गाड़ी से ही लड़े। शत्रु पर निश्वास करके जो लड़ना बन्द कर दे उस पर या डर कर हार मानने या सिर झुकाने वाले पर शस्त्र का प्रयोग नहीं होना चाहिए। दो योद्धा आपस में युद्ध कर रहे हों तो, उनको सूचना दिए बिना, या सावधान किए बिना, तीसरे को उन पर या किसी एक पर शस्त्र नहीं चलानी चाहिए। नि शस्त्र, असावधान, पीठ दिखा कर भागने वाले या कवच से रहित को शस्त्र चला कर नहीं मारना चाहिए। शस्त्र पहुँचाने या ढोने वालों, अनुचरो, भेरी बजाने वालों और शख फूकने वालों पर भी हथियार नहीं चलाया जायेगा।

उपरोक्त नियमों को देख क्या कोई कह सकता है कि इन नियमों को मान कर लड़ने वाले कोई असम्य या अनुचित कार्य करने वाले लोग थे? इन नियमों को बनाते समय वृद्ध आचार्यों और धर्म राज युधिष्ठिर ने विशेष तौर पर अपने धर्म अपनी मर्यादा और अपने कर्तव्य को खण्डित न होने देने का प्रयत्न किया था। क्या आज के युग में कोई भी युद्ध इतनी मानवीय शर्तों को मान कर किया जाता है? वास्तव में यह नियम चीख चीख कर कह

रहे हैं कि चाहे युद्ध का कारण कुछ रहा हो और चाहे कोई भी अन्यायी या न्यायी हो पर दोनों ही पक्षों का नेतृत्व सुलझे हुए धर्म ध्यानी और कर्तव्य निष्ठ लोगों के हाथ में थे।

—तो युद्ध के नियमों को दोनों पक्षों के महारथियों ने प्रतिज्ञा पूर्वक स्वीकार किया।

दुर्योधन ने व्यूहरचना युक्त पाण्डवों की सेना को देख कर और द्रोणाचार्य के पास जाकर प्रणाम करते हुए कहा—“आप के बुद्धिमान शिष्य द्रुपद पुत्र धृष्ट द्युम्न द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डु पुत्रों की इस बड़ी भारी सेना को देखिये। इस सेना में बड़े बड़े धनुषी वाले तथा युद्ध में भीम और अर्जुन के समान शूरवीर, सात्यकि, और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्ट केतु और चेकितान तथा बलवान काशीराज, पुरुजित, कुन्ती भोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पाचो पुत्र यह सभी महारथी हैं।”

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की बात सुन कर गम्भीरता पूर्वक कहा—“सामने खड़ी सेना की शक्ति को मैं समझता हूँ। रण क्षेत्र में आकर यह मत देखो कि कौन बड़ा योद्धा है, बल्कि यह सोचो कि कौन किस की टक्कर का है। दुर्योधन ! ओखली में मिर देकर मूसलों से डरने की बात मत करो।”

दुर्योधन गरज उठा—“आचार्य जी ! आप के आशीर्वाद से हमारी ओर इतनी शक्ति है कि पाण्डव सारे ससार को ला कर भी विजयी नहीं हो सकते। मुझे तो गर्व है अपनी शक्ति पर। ओखली में सिर तो पाण्डवों ने दिया है। आप मुझे गलत न समझिए।”

उसो समय दुर्योधन के हृदय में हर्ष, उल्लास और विचित्र उत्साह भर देने के लिए वृद्ध परम प्रतापी भोष्म ने उच्च स्वर से सिंह गर्जना कर के शव वजाया। और उसी समय शख नगारे, टोल मृदंग तथा नरमिंगे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। बड़ा भयकर शब्द हुआ वह।

दूसरी ओर से भी इस भयंकर ध्वनि का उत्तर उतनी ही भयकरता से दिया गया। सफेद घोड़ी से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्री कृष्ण तथा अर्जुन ने भी अपने अपने अलौकिक शस्त्र बजाए। श्री कृष्ण के पांच जंघ्य, अर्जुन के देवदत्त, कर्मवीर भीमसेन के पौण्ड्र नामक शस्त्रों की ध्वनि ने सारे वातावरण को कम्पित कर दिया। और उन शस्त्र ध्वनिओं के साथ ही कुन्ती पुत्र धर्म राज युधिष्ठिर ने अनन्त विजय नामक, नकुल तथा सहदेव ने सुद्योष तथा मणि पुष्पक नामक शस्त्रों से भयकर ध्वनि की। इतनी भयंकर थी वह ध्वनि की एक बार दुःशासन तथा शकुनि आदि का हृदय कांप उठा। जैसे यह ध्वनि न होकर यमलोक से आ रही मृत्यु की ध्वनि हो। वज्रपात होने का सन्देश हो।

युद्ध आरम्भ होने वाला था, महानाश का बवडर उठने वाला था भारत के अनगिनत वीर पुरुषों के सिर पर मृत्यु मण्डराने वाली थी कि धनुर्धारी अर्जुन ने श्री कृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहा—
“तनिक इन सब योद्धाओं को जो दोनों ओर से रण स्थल में अपने अपने हाथ दिखाने आये हैं, देख तो लूँ। कृपा कर मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलिए। मैं उन के मुखों को देख कर जानना चाहता हूँ कि इस समय उन के हृदय में कैसे कैसे भाव उठ रहे हैं। क्या सेनाओं के सजने के बाद भी भयंकर युद्ध की अशका से दुर्योधन और उस के सहयोगियों के हठवादी हृदय पर कोई चोट नहीं पहुँची?”

श्री कृष्ण तो उस समय द्वारिका नरेश न होकर सारथी मात्र थे, अर्जुन की आज्ञा पाकर उन्होंने ने रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खड़ा कर दिया। और बोले—“पार्थ! युद्ध के लिए जुटे हुए इन कौरवों को देखो। यह सब तुम्हारे शौर्य को देखने और पराजित होने के लिए खड़े हैं। इन्हें अपनी विशाल सेना पर गर्व है; पर इन में से कितने ही सद्बुद्धि वृद्ध हैं जो मन ही मन युद्ध के परिणाम के प्रति सन्दिग्ध हैं। उन्हें तुम्हारे धनुष का जोहर मालूम हैं। वे तुम्हारे भ्राताओं और तुम्हारे अन्य सहयोगियों के असीस बल से परिचित हैं। और स्वयं समझते हैं कि सिंह के सामने असह्य भेड़ों की भीड़ भी कुछ नहीं कर पाती।”

श्री-कृष्ण ने अर्जुन को उत्साहित करने के लिए ही उक्त शब्द कहे थे । अर्जुन ने श्री-कृष्ण की बात तो सुनी पर उस की दृष्टि थी कौरवों की सेना की ओर । जिस-मे उस के गुरु, आदरणीय वृद्ध, परिवार के अन्य सदस्य, तथा कितने ही रिश्तेदार मौजूद थे । अर्जुन ने दोनों सेनाओं पर दृष्टि पात किया । इस की जिघर दृष्टि गई लघर ही स्वजन दिखाई-दिए । सेनाओं में स्थित, ताऊ चाचों को, दादों परदादों, गुरुओं को, मामाओं को, भाईयो को, पुत्रों को, मित्रों को, ससुरो और सुहृदों को भी देखा उस ने देखा कि दोनों ओर उस-का पूरा परिवार कौरव कुल ही खड़ा है । महाराज शान्तनु के वंशज, दोनों ओर एक दूसरे के शत्रु रूप में, एक दूसरे का काल बनने के लिए खड़े हैं । उस ने अनुभव किया कि करोड़ों वीर रण वाकुरे अपने प्राणों का मोह त्याग कर हाथों में शस्त्र-अस्त्र लिए भयंकर संग्राम करने खड़े हैं । अर्जुन के मन में उसी समय एक भाव उत्पन्न हुआ, वह था करुणा का भाव । भरत खण्ड के चुने हुए योद्धा इस युद्ध में आगए हैं । अभी ही कुछ देरी में युद्ध आरम्भ हो जायेगा और रक्त की नदिया वह जायेंगी सारी पृथ्वी का गौरव रक्त रजित हो जाये गा । यह वीर, जिनके भाल पर तेज विद्यमान है, यह विद्वान जिनकी संसार को आवश्यकता है ताकि मुझ जैसे कितने ही अन्य अर्जुन उत्पन्न हो सकें यह क्षत्रिय कुल गौरव, यह नरेश और यह सौम्य मूर्तिर्या, सभी तो इस रण भूमि में एक दूसरे के लिए रथमदूत का काम करेंगे और न जाने इस युद्ध के कारण इस धरती पर कौन जीवित रहे, कौन न रहे ?

अर्जुन का मन काप उठा, यह सोच कर कि रण भूमि में उसके गुरु और भीष्म पितामह तक उपस्थित हैं; क्या मुझे अपने गुरुदेव पर ही बाण उठाना होगा ? मैं तो सदा भीष्म पितामह के चरणों को पूजता रहा हूँ, क्या उन पूजनीय भीष्म जी को मुझे ही अपने शस्त्रों से मार डालना होगा ? —ओह क्या इन गुरुओं और वृद्ध जनों को उनकी कृपाओं का यही बदला दे सकता हूँ ? नहीं नहीं यह पूर्णतया कृतघ्नता है । मैं जिनकी गोद में पला हूँ, जिनके प्रताप से मैं धनुर्वारी हुआ हूँ, जिनकी कृपा में मुझे विद्या

दाँन मिला है, मैं उन के प्राण भला कैसे हर सकता हूँ ? चीर होकर कुतघ्न कैसे हो सकता हूँ ।

उसी समय उसके मन में यह बात भी आई कि यदि मैं अपने पूजनीय लोगों से भी युद्ध करने से बच जाऊँ तो भी मुझे व्यर्थ का रक्तपात तो करना ही होगा । यह जो असंख्य वीर पुरुष खड़े हैं, जो जीवन यापन करने के लिए सेना में भरती हुए हैं, जो अपने स्वजनो का पेट भरने के लिए दुर्योधन की सेना में सम्मिलित हो गए हैं, इन वैचारों ने मेरा क्या विगाड़ा है । मेरे बाणों से हा, कितनी ही बहनो का सुहाग लुट जायेगा, कितने बालक अनाथ हो जायेंगे, कितनी ही माताओं की गोद खाली हो जायेगी । मेरे द्वारा कितने ही निरपराधी बालको, बहनो और माताओं की आशाएँ, कल्पनाएँ और सुखद स्वप्न धूल धूसरित हो जायेंगे । इन के जीवन की ज्योतियाँ बुझ जायेगी और मेरे कारण रण भूमि में रक्त और घरो में आसुओं की धाराएँ फूट पड़ेंगी । मैं भी पृथ्वी के वीर रहित कर दिए जाने का दोषी हो जाऊँगा । यह सोचकर अर्जुन का शरीर शिथिल हो गया । उस का मन शोक सन्तप्त हो गया ।

अर्जुन की यह दशा देखकर श्री कृष्ण समझ गए कि पार्थ युद्ध के प्रति उदासीन हो रहा है । पृष्ठ बैठे—पार्थ ! क्या सोच रहे हो ?”

अर्जुन ने श्री कृष्ण का प्रश्न सुना पर बोला कुछ नहीं । उस के मस्तिष्क में जिन भाषित धर्म की शिक्षाएँ जागृत हो गईं । वह सोचने लगा कि हिंसा तो भयंकर पाप है । ऋषभ देव जी ने तो फरमाया है कि किसी प्राणी को दुःख देना या उसका वध करना महापाप है । भगवान ने तो कहा है —

समे जीवैपिणो जीवा न मृत्यु कश्चिदहिते ।
इतिज्ञात्वा बुधा. सर्वे न कुर्युज्जिवि हिंसनम् ॥

(श्री मद् गौ० गी० ४६)

सम्पूर्ण प्राणी जीना चाहते हैं । मरना कोई भी नहीं चाहता, इसलिए किसी भी बुद्धिमान को जीव हिंसा नहीं करनी चाहिए । जिन भाषित धर्म की शिक्षाओं का ध्यान आना था कि

भगवान के उपदेश एक के बाद एक उसके मन में उठने लगे। उसे ध्यान आया—

निस्पृहः साधको नित्यं जागृति प्राणिनोऽखिलान् ।
आत्मवत्सर्वं मालोच्य नहि वैरायते क्वचित् ॥

निस्पृह साधक संसार में सब प्राणियों को आत्मवत् समझ कर किसी भी प्राणी के साथ कभी भी वैर नहीं करता ।

यह धर्म शिक्षा स्मरण होते ही अर्जुन को ऐसा लगा मानो उससे कोई बड़ा पाप हुआ हो। उसका मन उसे धिक्कारने लगा।— घनुप बाण की पकड़ ढीली हो गई और खड़ा न रह सका बैठ गया। श्री कृष्ण ने यह दशा देखी तो उन के मन में एक विचित्र आशका उठी। उन्होंने फिर वही प्रश्न उठाया ‘पार्थ ! तुम क्या सोच रहे हो ? तुम तो रण भूमि में आकर सदा शत्रुओं पर विजयी की भाँति टूट पड़ने के आदी थे। तुम्हारे घनुप की टकार से ही शत्रुओं के दिल दहल जाते हैं। पर आज जब कि कौरव सेनाओं का सामना हुआ और तुम ने इतनी विशाल सेना को देखा तो तुम्हारे चेहरे का रंग क्यों उड़ गया ? गाण्डीव तुम्हारे हाथों से क्यों छूट गया और रण भूमि में आकर कायरों की भाँति कैसे बैठ गए ?’

अर्जुन ने कहा—“मैं कायर नहीं। श्री कृष्ण जी मैं पथभ्रष्ट हो गया था, इस रण भूमि में आकर मेरी आँखें खुल गईं।”

अर्जुन के उत्तर से श्री कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा—“पथ भ्रष्ट कैसे ? आँखें खुलने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?”

“स्वामिन् ! आप देख रहे हैं कि सामने शत्रु रूप में शस्त्र लिए कौन कौन खड़े हैं ?” अर्जुन ने कहा “कौरव और उनकी सेना ”

“इन में मेरे आदरणीय व पूजनीय गुरुदेव तथा पितामह भी हैं,”

“हां, हैं तो हुआ क्या ?”

“और यह भी आप देख ही रहे हैं कि भरत खण्ड के कितने ही वीर रण वाकुरे, जिन्होंने हमें कभी कोई हानि जान बूझ कर अपनी इच्छा से नहीं पहुँचाई, हमारे विरोधी बनकर रण में उतरे हैं ?”

“पूरी बात तो बताओ। देखने को तो मैं सब कुछ देख रहा हूँ।”

“तो महाराज ! आप ही बताइये कि क्या इन आदरणीय जनो और निरापराधो का रक्त भला क्यों बहाऊ ? मैं जिस धर्म का अनुयायी हूँ उस ने तो मुझे आज्ञा दी है कि मैं किसी निर्दोष प्राणी का वध न करूँ। फिर मैं यह रक्तपात करके अपने लिए नरक क्यों मोल लूँ ?—नहीं मुझ से यह पाप न हो सकेगा ?”

अर्जुन का उत्तर सुनकर श्री कृष्ण को कुछ हसी आई उन्होंने गम्भीरता पूर्वक कहा—“पार्थ ! ऐसे समय भी तुम्हें धर्म शिक्षा का ध्यान आया, अहोभाग्य ! तुम प्रशंसा के पात्र हो। तुम धन्य हो। पर जिन भाषित धर्म की आड़ लेकर अपनी कायरता को मत छिपाओ।”

“कायरता—कैसी कायरता ? मैं ससार की किसी भी शक्ति के सामने घुटने नहीं टेक सकता। पर वीरता का तो यह अर्थ नहीं कि अपने बाहुबल को पापयुक्त कर्मों में लगाता फिरूँ।”—अर्जुन ने उत्तर दिया।

“पार्थ ! तुम ने जिन भाषित धर्म का तो उल्लेख किया पर पता भी है कि भगवान ने कहा क्या है ?”

“हां, मुझे ज्ञात है कि उन्होंने जीव वध को पाप बताया है। मनुष्य को अहिंसक होने का उपदेश दिया है। हिंसा को भयकर पाप कहा है।” अर्जुन ने उत्तर दिया।

“पार्थ ! तभी तो कहा है कि अधूरा ज्ञान व्यक्ति को ले डूबता है।

‘नीम हकीम खतरे मे जान’

‘तुम ने तीर्थङ्कारों की शिक्षा तो याद रखी पर उसका मर्म नहीं समझे ?’

श्री कृष्ण की बात से अर्जुन तिलमिला उठा। कहने लगा—
‘क्या मैं कहीं भ्राति का शिकार हो गया हूँ ?’

‘हा, ऐसा ही है।’

‘कैसे ?’

‘अर्जुन ! तुम भूलते हो। भगवान ने अहिंसा के सम्बन्ध में जो उपदेश दिया है वह इस प्रकार है :—

‘सव्वे जीवा वि इच्छति, जोविउ न मरिज्जिउ ।

तम्हा पाणिबह धोर, निग्गथा वज्जयति ण ॥

अर्थात्—सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इस लिए निर्ग्रन्थ मुनि महाभयावह प्राणिबध का सर्वथा त्याग करते हैं।

इसका अर्थ स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ (जैन) मुनि ही भगवान की इस आज्ञा का कि किसी जीव का वध न करो। पालन करते हैं। गृहस्थों से यह आज्ञा नहीं की जा सकती। ग्रंथों में साफ़ साफ़ माना गया है कि :—

समयेया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे ।

पाणाइवाय विरई, जावज्जीय वाय दुक्कर ॥

जीवन पर्यन्त ससार के सभी प्राणियों पर, फिर भले ही वह शत्रु हो अथवा मित्र, समभाव रखना तथा सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना बड़ा ही दुष्कर है।

ता सव्व जीव हिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहि ॥

इसी लिए आत्मारथी महापुरुषो ने (ही) सर्वथा हिंसा का परित्याग किया है।

सो; अर्जुन ! तुम जो कि एक सद्गृहस्थी हो उन नियमो का पालन नही कर सकते जो महाव्रती मुनिगण के लिए बताए गए हैं। तुम्हे गृहस्थ मे रहना है तो भगवान के कथनानुसार केवल स्थूल हिंसा से ही बच सकते हो।”

श्री कृष्ण के उपदेश को सुनकर अर्जुन ने कहा—“पर आखो देखे, पाप को करना तो भूल है। जब कि मैं जानता हू कि मैं जो कुछ करने जा रहा हू उससे भयकर हिंसा होनी है तो फिर जानबूझ कर पाप के गड्ढे मे क्यों गिरूँ ?”

श्री कृष्ण बोले—“पार्थ ! अभी तक तुम्हारे मस्तिष्क पर भ्रान्ति का परदा पड़ा है। भगवान के द्वारा बताये गए श्रावक धर्म के नियमो का स्मरण करो। यदि तुम जानबूझ कर हिंसा करना पाप समझते हो तो फिर मुनिव्रत धारण क्यों नही करते ?—अर्जुन हिंसा चार प्रकार की होती है।

- (१) सकल्पी हिंसा—अर्थात् निरापराधी को जानबूझ कर मारना सताना।
- (२) आरम्भी हिंसा—खाने पीने आदि में जो जीव हत्या होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं।
- (३) उद्योगी हिंसा—देश की उन्नति के लिए कृषि करने, उद्योग धन्धो आदि मे जो हिंसा होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं।
- (४) विरोधी हिंसा—देश, सतीत्व, मान, मर्यादा, निपराधी की रक्षा, न्याय, धर्म आदि की रक्षा करने के लिए आक्रमणकारी को अपराध करने से रोकने मे जो हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

इन चार प्रकार की हिंसाओं में से गृहस्थी से सकल्पी हिंसा का ही त्याग हो सकता है। तीर्थङ्करों ने श्रावक को उपदेश दिया है कि वह किसी निरापराधी जीव को जानबूझ कर, बध करने के उद्देश्य मात्र से ही न मारे। और शेष तीन प्रकार की हिंसाएँ मर्यादा बाध कर करने पर गृहस्थी विवश है। आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा और विरोधी हिंसा की मर्यादा के भीतर रह कर करते रहने वाले गृहस्थी के गृहस्थ नियम सुरक्षित रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति पागल हो जाये। तो उसे काबू में रखने और कोई अनुचित कार्य करने से रोके रखने के लिए उसे बाधकर रखना तथा अन्य कड़े नियन्त्रणों की आवश्यकता होती है। तो क्या कोई यह कह सकता है कि पागल को इस लिए नियंत्रण में न रखो कि तुम्हारे कठोर व्यवहारों से हिंसा होगी। नहीं? ऐसा तो करना ही होगा और करना पड़ता है स्वयं पागल के हित के लिए। राम और रावण का युद्ध ही लो। क्या राम ने रावण के विरुद्ध खड्ग उठाकर कोई ऐसा पाप किया था जो किसी गृहस्थी के लिए अनुपयुक्त है। नहीं? उस समय रावण के विरुद्ध युद्ध करना आवश्यक था। रावण के अन्याय के विरुद्ध राम चन्द्र का युद्ध विरोधी हिंसा थी। इसी प्रकार तुम्हारा युद्ध विरोधी हिंसा होगी। इस लिए तुम्हें भ्राति नहीं होना चाहिए। उठो और जिस उत्साह के साथ रण स्थल में आये थे उसी उत्साह पूर्वक शत्रुओं का मान मर्दन करो।”

श्री कृष्ण की युक्ति पूर्वक बात का अर्जुन पर काफी प्रभाव पड़ा। पर अभी वह शका रहित न हुआ था। कहने लगे—“महाभाग! आप की यह बात मान लू तो भी मैं सोचता हूँ कि राम और रावण का युद्ध तो दो विरोधी नरेशों का युद्ध था। जिनमें रक्त का कोई सम्बन्ध नहीं था। परन्तु मैं जिनके विरुद्ध लड़ने आया हूँ वे तो मेरे अपने हैं। स्वजनो के विरुद्ध लड़ना भला कैसे उचित हो सकता है!”

और हे केशव! मैं रण क्षेत्र में स्वजनो का बध करने में अपना कल्याण नहीं देखता। मैं न तो ऐसी विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा वैभव को ही, जिसके लिए मुझे अपने प्रिय वन्धुओं

और माननीय वृद्धजनो पर तलवार उठानी पड़े। हमे नहीं चाहिए ऐसा राज्य जिसके लिए मेरा अपना परिवार ही नष्ट हो जाय। ऐसे राज्य मे भला क्या लाभ? हमे जिनके लिए राज्य भोग और सुखादि अभीष्ट हैं वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध मे खड़े हैं। गुरुजन, ताऊ चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर नाती, तथा और भी सम्बन्धी लोग हैं। मधु सूदन! चाहे यह सब लोग मुझे मिल कर मौत के घाट उतार दें परन्तु मैं तीनों लोकों के राज्य के लिए भी इन सब को मारना नहीं चाहता। फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या? जनार्दन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर भला हमे क्या प्रसन्नता होगी। इन आतताइयों को मार कर भी हमे पाप ही लगेगा। और अपने परिवार को मारकर भला हम कैसे यश प्राप्त कर सकते हैं।”

रण भूमि मे शोक से उद्विग्न मन वाला अर्जुन इस प्रकार कह कर धनुष बाण एक ओर रख कर नीचा सिर कर के बैठ गया। श्री कृष्ण समझ गए कि जब तक अर्जुन शंका रहित नहीं होगा, तब तक रण के लिए उद्यत नहीं हो सकता। उसे परिवार का मोह सता रहा है। वह मोह जाल मे फस कर विजय को भावी पराजितों के चरणों मे सौंप देना चाहता है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि अर्जुन को ऐसा पाठ पढाया जाय कि वह परिवार के मोह को त्याग कर के उत्साह पूर्वक गाण्डीव उठा ले। इस लिए श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा—“जिन भाषित धर्म की दुहाई तो तुम देते हो पर इतना भूल गए कि मोह असंख्य प्रकार दुष्कर्मों तथा पापों को जन्म देता है। मोह ही जग वैतरणी से पार नहीं उतरने देता। तुम क्षत्रिय हो। तुम्हें इस प्रकार की बातें शोभा नहीं देतीं। अर्जुन यह सामने जितने जीव खड़े हैं उन्हें किसी न किसी दिन मरना अवश्य है। जिस प्रकार पतझड़ आने पर पत्ते स्वयमेव ही टूट कर भूमि पर गिर पड़ते हैं, इसी प्रकार का सन्देश मिलने पर जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अतएव जिन्हे तुम आज मृत्यु से वचाना चाहते हो, वह किसी न किसी दिन अवश्य मृत्यु को प्राप्त होंगे और तुम उनकी कोई सहायता न कर सकोगे। आत्मा तो नित्य है। किसी की मृत्यु

से घबराकर यदि तुम अपने कर्तव्य से गिर जाते हो तो वह भी एक महा पाप हो जाता है। तुम यहा न्याय प्रतीक हो कर अन्याय की रोक थाम के लिए आए हो और तुम्हारा सामना करने आये लोग चाहे वह तुम्हारे कोई भी हो, इस समय अन्याय और अधर्म के पक्ष पाती है। धर्म कहता है कि तुम अन्याय को सहन न करो। अन्याय को सहन कर लेना भी अन्यायियों को सहयोग देने के समान ही है। क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह अपने देश, न्याय, धर्म, मान मर्यादा आदि की रक्षा के लिए अन्यायी का सामना करे और या तो वीर गति को प्राप्त हो अथवा विजय पताका फहरा कर न्याय का बोल बाला करे। यदि आज तुम ने अन्यायियों को अपने परिवार के कारण अन्याय करते रहने को छोड़ दिया तो सोचो कि यह मोह, यह पक्षपात, अन्याय की बृद्धि में सहयोगी नहीं होगा? क्या तुम भी उसी पाप के भागीदार नहीं होगे जो आज कौरव कर रहे हैं?”

अर्जुन ने कहा—“आप की बात ठीक भी हो तो भी मैं कैशेरण भूमि में अपने बाणों से भोष्म पितामह और गुरुदेव द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूंगा?”

“पार्थ! तुम भूलते हो,—श्री कृष्ण बोले—जो लोग यह जानते हुए भी कि तुम उनके अपने हो। उन के साथ तुम उचित व्यवहार करते हो। तुम ने कभी शिष्टाचार अथवा धर्म के प्रतिकूल कार्य नहीं किया, यह जानते हुए भी तुम्हारे गुरुदेव तथा पितामह तुम्हारे विरुद्ध अन्यायी के पक्षपाती होकर आये है, तो स्वजन के प्रति चलने वाले शिष्टाचार तथा कर्तव्य को तो उन्हो न ही भग कर दिया। इन लोगों का यहा तुम्हारे विरुद्ध आना इनकी अग्रभ प्रकृति का द्योतक है। अब तुम्हे उन के विरुद्ध धनुष उठाने से कोई आपत्ति होनी ही नहीं चाहिए। यदि पितामह और गुरुदेव तुम्हारे विरुद्ध शस्त्र प्रयोग कर सकते हैं तो फिर तुम्हे शस्त्र प्रयोग करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। जैसी किसी की प्रकृति होती है उस के सामने वैसी ही प्रकृति आ जाती है।

“हे गिरधारी! मैं उसी पाप को करने को क्यों तैयार हो

जाऊ जो उन्हो ने किया है ? अर्जुन ने कहा—पाप यदि बड़ो द्वारा किया जाता हो तो भी वह धर्म तो नहीं हो जाता ।”

‘ठीक है, परन्तु क्षत्रिय देश धर्म की रक्षा करता हुआ लड़ता है। क्षत्रियो के लिए धर्म युक्त युद्ध से बढ़ कर तो दूसरा कोई कल्याण कारी कर्तव्य नहीं है। यदि तुम इस अवसर पर कायरता और मोह के पचड़े में फस जाओ तो विश्वास रखो कि आने वाली सन्तानें तुम पर थूकेगी। और स्वधर्म को छोड़कर अनकीर्ति प्राप्त करोगे,”—श्री कृष्ण बोले।

अर्जुन ने पुनः प्रश्न किया—“तो क्या अधर्म से ही कीर्ति मिलती है।”

“नहीं, कदापि नहीं,—श्री कृष्ण ने शका समझान करके हुए कहा—तुम जिसे अधर्म समझ बैठे हो वह अधर्म तो है ही नहीं, वरन तुम्हारा कर्तव्य है जिस से तुम विमुक्त होना चाहते हो। धर्म क्या है पहले उसे समझो। धर्म तो आत्मा के स्वभाव को कहते हैं। कर्तव्य का दूसरा नाम धर्म है।

माणिणिहिज्जवीरिय

अपनी वीरता को मत छुपाओ अन्याय करना तो पाप है किन्तु अन्याय सहन करना दूसरों पर अन्याय होता हो तो उसे चुपचाप देखते रहना दोनों परिस्थितियों में बलवीर्य अतराये कर्म का बधन होता है अतः शक्ति हो तो अन्याय का प्रतिकार करो यदि शक्ति न हो तो अन्यत्र प्रस्थान करो किन्तु खड़े खड़े अन्याय का अवलोकन मत करो तथा शनैः शनैः शक्ति प्राप्त कर अन्याय को नष्ट करने का पूर्णतः सफल प्रयत्न करो। यदि तुम ने इस समय गाण्डीव न सम्भाला तो नीच दुःशासन जैसे का दाव चल जायेगा और संसार में आततड्यो की वन आयेगी। फिर तो न्याय पर अन्याय की विजय के लिए रास्ता खुल जाएगा। यह युद्ध जो तुम करने वाले हो, केवल तुम्हारे अपने हित में ही नहीं है वरन इसका प्रभाव सारे संसार पर पड़ने वाला है। और तुम जो बार बार स्वजन की बात उठाते हो तो अपने शत्रुओं को उठा

कर देखो कि वे क्या कहते हैं। कहा है कि. —

नाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा
तुमपि ते सिं नाल ताणाए वा सरणाए वा

स्वजन सम्बन्धी लोग पाप के फल भोगने के समय तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, न तुम्हें शरण दे सकते हैं, तुम भी उन के आण एव शरण के लिए समर्थ नहीं हो।

“जब तुम्हारी आत्मा पर कोई आपत्ति आयेगी तो तुम्हारी रक्षा न तुम्हारे गुरुदेव कर सकते हैं और नांही पितामह, कौरवों की तो बात ही क्या है? न तुम्हारे पाप में भाग बटा सकते हैं। तुम्हारी अपनी आत्मा स्वतन्त्र है, तुम्हारे बन्धु तथा अन्य स्वजन तो तुम्हारी मोह वृत्ति से ही तुम्हारे हैं, वरना प्रत्येक अपने अपने कर्मों का फल भोगता है। मोह को छोड़ कर तुम्हें अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिए।”

“हे गोविन्द ! आप यह तो बताइये कि यदि मैं इस रण में भाग न लूँ तो मेरी आत्मा पर क्या प्रभाव होगा? मैं पुण्य कमाऊँगा या पाप?”—अर्जुन ने पूछा।

“हे पार्थ ! जो अपने कर्तव्य से पीछे हट जाता है उस का कभी कल्याण नहीं होता। तुम्हारी आत्मा पर तुम्हारे भावों और कार्यों का अवश्य ही प्रभाव पडना है। ‘जो कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा, अर्थात् जो कर्म में शूर होता है वह धर्म में भी शूर होता है। तुम रण स्थल से चले जाओगे तो मोह के कारण और महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा को अधूरा छोड़ कर। इस लिए तुम स्वयं सोच लो कि इस कर्तव्य विमुखता और विश्वास घात का तुम पर क्या प्रभाव होने वाला है।’—श्री कृष्ण ने उत्तर दिया।

कृष्ण के उत्तर को सुन कर अर्जुन सोच में पड़ गया। कुछ देर विचार करने के उपरान्त वह फिर बोला—“परन्तु एक परिवार ही केवल एक राज्य के लिए लड़े या रक्त पात करे यह कहाँ तक उचित है?”

“केवल राज्य की ही बात होती तो मैं तुम्हें कभी युद्ध के

लिए प्रेरित नहीं करता।—श्री कृष्ण कहने लगे—परन्तु यह तो प्रश्न है न्याय तथा अन्याय का। इस युद्ध में यह निश्चय होना है कि न्याय की विजय होती है अथवा अन्याय की। तुम्हें न्याय का सिर नीचा कराना है तो तुम युद्ध से भाग सकते हो।

“फिर भी मुझे बार बार अपने स्वजनो का ध्यान आता है”
—अर्जुन ने कहा।

“अर्जुन ! तुम उनके शरीर का आदर करते हो या आत्मा का ?”

.....”

“शास्त्र कहता है:—

जह नाम असी कोसा, अन्नो कोसो असीवि खलु अन्नो ।
इह मे अपनो जीवो अन्नो देहुति मन्निज्जा ॥

जैसे म्यान से तलवार और तलवार से म्यान भिन्न होती है, इसी प्रकार मेरा यह जीव शरीर से भिन्न और शरीर जीव से भिन्न है। ऐसा सोचकर शरीरक ममत्व दूर करे।

धीरे णवि मरियव्व, काउरिसेणवि अवस्स मरियव्व
तम्हा अवस्स मरणे, वरं खु धीरत्तणं मरिउ ॥

वीर पुरुष को भी मरना पड़ता है और कायर पुरुष के लिए भी मरना आवश्यक है। जब अवश्य ही मरना है तब धीर की प्रशस्त मौत से मरना ही श्रेष्ठ है।

इस लिए हे पार्थ ! शकाए छोड़ कर वीरगति या विजय इन दोनों में एक प्राप्त करने को तैयार होजा। उठ ! तेरे बाण से कोई आत्मा समाप्त होने वाली नहीं। शरीर नश्वर है, वह मिटना ही है। तुम उसकी चिन्ता क्यों करते हो। मेरा विश्वास है कि विजय तुम्हारी ही होगी।”

श्री कृष्ण के इतना समझाने पर भी जब अर्जुन को रण का उत्साह नहीं हुआ तब श्री कृष्ण ने गरज कर कहा—“पार्थ ! यदि रण भूमि में जा कर कौरवों की भारी सेना को देख कर तुम अपने साहस को जीवित नहीं रख सकते थे तो फिर हमें जो केवल तुम लोगों के कारण ही बैठे विठाए युद्ध में चले आए हैं क्यों मूर्ख बनाना

था ? तुम दोनों पक्ष वाले तो आपस में स्वजन होने की बात लेकर आज एक दूसरे के हुए जाते हो, पर हम लोगो को बीच में डाल कर क्यों व्यर्थ ही दुर्योधन का विरोधी बनवाया, क्यों व्यर्थ ही दुर्योधन को हमारा शत्रु बनवाया ? हम ने आखिर-तुम्हारा क्या बिगाडा था ?

नही, नही, हे गोविन्द ! ऐसी कोई बात नही, आप गलत समझे मेरा मतलब.....”

अर्जुन की बात को बीच में ही काट कर श्री कृष्ण बोल उठे—“नही पार्थ ! बात बनाने का प्रयत्न न करो ! मैं अब तुम्हारी वास्तविकता को समझा । तुम उतने वीर नहीं हो जितना मैं समझता हू । तुम कौरवों की सेना देख कर घबरा गए हो और स्वजन का बहाना बना कर युद्ध टालना चाहते हो । वरना यदि स्वजन का ही सवाल था तो राजकुमार उत्तर को साथ लेकर तुम अपने स्वजनो के साथ क्यों लडे थे । तुम्हे उस समय कौरव अपने भाई क्यों नहीं लगे ? क्यों न तुम ने यह कह कर उत्तर के साथ युद्ध में जाने से इंकार कर दिया था कि गौए चुरा कर ले जाने वाले मेरे भाई हैं, मैं उन के विरुद्ध बाण न उठाऊंगा । और यदि यह तुम्हारे स्वजन ही थे तो क्यों न तुम ने उनकी दासता स्वीकार कर के राज्य के झगडे को समाप्त कर लिया ? क्यों हम सभी को युद्ध में घसीट लाये ?”

“महाराज ! आप मेरी बात का गलत अर्थ न निकालिए मेरे सामने तो सवाल है रक्त पात से बचने का ।”—अर्जुन ने कहा ।

“तो क्या तुम कह सकते हो कि तुम ने कभी भी रक्त पात नहीं किया ?—श्री कृष्ण ने उवलते हुए प्रश्न किया । तुम ने कितने ही युद्ध लडे । क्या उन में वीर सैनिकों का वध नहीं हुआ तुम्हारा सारा जीवन युद्धों से भरा पडा है । तुम्हारे अपने हाथों से कितने ही योद्धा धाराशायी हुए हैं । तुम्हारे बाणों से कितनों की ही हत्याएं हुई हैं । यदि वास्तव में तुम विरोधी हिंसा तक से बचना चाहते थे तो उस समय जब तुम पुन युद्ध में उतरा करते थे, तुम्हारा ध्यान इस ओर क्यों नहीं गया ? नही, नही, मैं समझ गया कि तुम अभी तक अपने को नपुंसक की दशा

मे रखने को उत्सुक हो। हाँ, मुझे याद आया कि तुम एक वर्ष तक विराट नरेश के रनिवास मे स्त्रियो को नाच गाना सिखा चुके हो। अब तुम्हारे हाथो मे गाण्डीव उठाने की क्षमता कहा, - तुम्हे तो चूडिथा चाहिए। - तुम द्रौपदी के खुले हुए केशो को भूल गए। तुम दुःशासन द्वारा भरी सभा मे द्रौपदी को वस्त्र हीन करने के नोचता पूर्ण प्रयास को भूल गए। तुम्हे भीम को विष देकर मार डालने का षडयन्त्र याद नही रहा। और तुम्हे यह भी याद नही रहा कि तुम्हारे इन स्वजनो ने ही तुम्हें, और तुम्हारी माता व भाईयो को लाख के महल में जला डालने का षडयन्त्र रचा था। तुम्हें यह भी याद नही रहा कि इसी तुम्हारे अन्यायी भाई दुर्योधन ने जिसका तुम्हें मोह सता रहा है, महाराज युधिष्ठिर को फसा कर जुए मे हराया था और तुम्हे बन बन भटकने को निकाल बाहर किया था। तुम कदाचित्त यह भी भूल गए कि जब मैं तुम्हारा दूत बन कर गया था, इन्ही तुम्हारे स्वजनों ने मुझे मार डालने की योजना बनाई थी। तुम कदाचित्त यह भी भूल गए हो कि तुम्हारे बाहुबल के आसरे पर सती द्रौपदी ने दुष्टो से बदला लेने की प्रतीज्ञा की थी। हा, - तुम्हे यह सारी वाते क्यों याद रहने वाली है तुम तो रण क्षेत्र से भाग जाने के लिए उपयुक्त बहाने खोज रहे हो। पार्थ ! यदि यह बात नही तो बताओ कि जो वाते तुम्हे डम समय सूझ रही है, रण भूमि मे आने से पहले तुम्हे क्यों न सूझी। जहा तक तुम्हारे गुरुदेव तथा भीष्म जी से युद्ध का प्रश्न है, यदि इनकी दृष्टि मे भी तुम्हारा इतना ही मान होता जितना होना चाहिए था: तो फिर बताओ वे दुष्ट दुर्योधन के साथ क्यों जाते ? नही, नही ! तुम कायरता दिखा रहे हो। तुम पाण्डु नरेश के नाम को कलकित कर रहे हो तुम कुन्ती माता की कोख को बट्टा लगा रहे हो।"

श्री कृष्ण के शब्दो के प्रभाव से क्रुद्ध सिंह की नाई अर्जुन अगडाई लेकर उठा। उसने गाण्डीव सम्भाला और कड़क कर बोला--"श्री कृष्ण जी ! आप मुझे कायर कहकर क्रुद्ध न कीजिए। मुझे अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। कौरव चाहे कितनी ही विशाल सेना क्यों न ले आयें, मैं अपने गाण्डीव के द्वारा उन्हें रक्त

चटा दूंगा। मैं उनके समस्त अन्यायो का बदला लेने की क्षमता रखता हूँ। मैं द्रोपदी के आसुओ की लाज रखूंगा। मैं दुष्टों की सेना में विद्युत की भाँति टूटूंगा। मैं जिघर से निकलूंगा, गाजर मूलियों की भाँति उनके वीरो का सफाया करता हुआ निकल जाऊंगा। मैं अपने को कायर कहलाने के लिए कदापि तैयार नहीं हूँ। पर हा, इतना अवश्य कहूंगा कि इस ससार से मुझे घृणा होती जाती है। इस युद्ध के समाप्त होने पर मैं तीर्थङ्कारों द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करके प्रायश्चित्त करूँगा और अपनी आत्मा के कल्याण के लिए तपस्या करूँगा।”

अर्जुन ने पुनः गाण्डीव सम्भाल लिया। यह देखकर श्री कृष्ण ने उल्लासातिरेक में पाँच जन्य की ध्वनि की और उनकी ध्वनि का अनुसरण करते हुए पाण्डवों की सेना के सभी मुख्य सेना नायकों ने शख ध्वनि की। जिस से सारा वातावरण गूँज उठा।

अभी अभी जिस वीर ने राज्य के प्रति विरक्ति प्रगट करके स्वजनो पर बाण न चलाने की बात सोची थी, उसकी धमनियी में गरम गरम लोहू ठाँँ मारने लगा और वह एक विजयी सिंह की भाँति छाँती ताने गर्व से दोनों ओर की सेना पर दृष्टि डालने लगा। अबकी बार उसने चारों ओर देखकर अपने मन ही मन में कहा—
“विजय हमारी होगी। अन्यायियों का पक्ष दुर्बल है।”

दूसरी ओर से शख ध्वनियों के उत्तर में तीव्र शख ध्वनियाँ की गईं। भीष्म पितामह ने कौरवों की सेना को उत्साहित करने के लिए कहा—वीरो! तुम सब क्षत्रिय कुलों की सन्तान हो। क्षत्रियों का कर्त्तव्य है रण स्थल में जाकर अपनी वीरता दिखाना। विजय पाना अथवा वीर गति को प्राप्त होना। तुम ने यदि वीर गति पाई तो स्वर्ग के द्वार तुम्हारे लिए खुल जायेंगे और विजय पाई तो घरा पर ही स्वर्ग के सुख तुम्हें प्राप्त होंगे। इस लिए पूरी शक्ति से मुकाबला करना। स्मरण रखो तुम यशस्वी क्षत्रिय हो। रण भूमि तुम्हारे जौहर के प्रदर्शन का मैदान है। साहस तुम्हारा अनन्य सहयोगी है।”



* इक्कीसवां परिच्छेद *

आशीर्वाद प्राप्ति

यह महाभारत की कथाओं में एक महत्वपूर्ण घटना है। जो हमें यह समझने पर विवश कर देती है कि महाभारत युग में भारतवासियों का चरित्र कितना उच्च था। क्या इस घटना की पुनरावृत्ति आज के युग में सम्भव है?

कदाचित् आप का उत्तर होगा कि—“नहीं।”

हा वास्तव में महाभारत की इस घटना की पुनरावृत्ति फिर कभी नहीं हुई।—और न कदाचित् होगी ही।

—तो जिस घटना का हम उल्लेख करने जा रहे हैं वह उस समरभूमि में घटी जिस में कौरवों और पाण्डवों की सेनाएं ससार को प्रमुख विश्व युद्ध लड़ने को आमने सामने तैयार खड़ी थी। भयंकर संहारक अस्त्र दोनों दलों के पास थे और पृथ्वी पर उन दिनों विद्यमान समस्त योद्धा और शूरवीर किसी न किसी ओर अपना स्थान ग्रहण किए हुए थे। उन दिनों वर्तमान युग की भांति घोखे का युद्ध नहीं होता था, उन दिनों बल तथा बुद्धि, बाहुबल तथा आत्मबल दोनों का मुकाबला होता था। विज्ञान का अपना एक स्थान था, कितने ही वैज्ञानिक अस्त्र महाभारत में प्रयोग हुए थे।

अर्जुन आवेश में आकर युद्ध के लिए तैयार हो गया था और श्री कृष्ण महाभारत में इसे अपनी पहली विजय समझ कर प्रफुल्लित थे, वास्तव में मानना ही पड़ेगा कि उस समय जब कि महाभारत का मुख्य योद्धा, अर्जुन ही उदासीन था और उस युद्ध को 'पाप' समझ बैठा था, श्री कृष्ण न होते तो कदाचित्त सेनाएं सजी ही रह जाती, अथवा युद्ध का परिणाम ही दूसरा होता । जो भी हो, श्री कृष्ण का उस समय का उपदेश काम कर गया । अब जब कि अर्जुन युद्ध के लिए तैयार था । अनायोस ही युधिष्ठिर ने कदच उतार दिया, शस्त्र रथ में रक्खे और हाथ जोड़ कर तेजी से पूर्व की ओर, जहां शत्रु सेना खड़ी थी, पैदल ही चल पड़े । महाराज युधिष्ठिर के इस प्रकार अनायास ही शत्रु सेना की ओर बिना अस्त्र गस्त्र के रण वाणों के बिना पैदल चल देने पर पाण्डुओं की सेना में खलवनी मच गई । सभी हत प्रभ होकर उस विचित्र बात को देखने लगे ।

महाराज युधिष्ठिर को इस प्रकार जाते देख कर अर्जुन भी रथ से कूद पड़े और उन के साथ ही भीम, नकुल और सहदेव भी रथ से नीचे आ गए । श्री कृष्ण तथा अन्य प्रमुख नरेश भी अपनी अपनी सवारियों से नीचे उतर आये और यह सारे लोग महाराज युधिष्ठिर के पीछे पीछे चल पड़े । किसी की समझ में ही न आता था कि यह हो क्या रहा है ।

अर्जुन ते पूछा—“महाराज ! आप का क्या विचार है । आप अचानक रण वाणा उतार कर नि शस्त्र हो शत्रु सेना की ओर क्यों जा रहे हैं ?”

“.....” महाराज युधिष्ठिर कुछ न बोले । वे चलते रहे ।

भीमसेन से न रहा गया, पूछ बैठा—“राजन् ! शत्रु पक्ष की सेना कदच धारण किए, गस्त्रों से लैस युद्ध के लिए तैयार खड़ी है और आप इस प्रकार हाथ जोड़े डवर जा रहे हैं । आखिर आपके दिल में क्या आ गई ? कही आप.”

नकुल बीच ही में बोल उठा—‘महाराज ! आप हमारे बड़े भाई हैं, आप की आज्ञा से ही हम गण भूमि में आये हैं आपके ही आदेश पर इतनी विशाल सेना संगठित की गई है। आप हमें छोड़ कर बिना बताए शत्रुओं की ओर इस प्रकार क्यों जा रहे हैं ?’

सहदेव भी चुप न रह सका—“राजन् ! क्षमा कीजिये। हमें यह तो बताने जाईये कि आखिर आप ने निश्चय क्या किया है ?”

भीमसेन फिर बोला—“आप शत्रुओं की ओर अपने भाईओं को बिना कुछ बताये चले जाये यह अच्छी बात नहीं है।”

तभी श्री कृष्ण के अधरो पर मुस्कान खेल गई। क्यों कि उन्होंने देख लिया कि महाराज युधिष्ठिर के पग किस ओर उठ रहे हैं उन्होंने चारों को सम्बोधित करते हुए कहा—आप ध्वरायें नहीं। मुझसे पूछें कि महाराज कहां जा रहे हैं ?

चारों पाण्डवों के नेत्रों में प्रश्नवाचक चिन्ह झूल गया। श्री कृष्ण बोले—“महाराज युधिष्ठिर धर्मराज है ना। वे गुरुदेव द्रोणाचार्य कृपाचार्य तथा भीष्म पितामह आदि से आज्ञा लिए बिना युद्ध आरम्भ नहीं करेंगे। उन्हीं से आज्ञा लेने जा रहे हैं आप लोग सन्तुष्ट रहें। आप यह भी विश्वास रखें कि जो अपने गुरुओं तथा वृद्धजनों की आज्ञा तथा अनुमति से, उनका अभिवादन करने के उपरान्त युद्ध करता है उसकी विजय असंदिग्ध हो जाती है शास्त्र यही कहते हैं।”

इधर श्री कृष्ण तो उन को सपभा रहे थे उधर महाराज युधिष्ठिर को इस दशा में देख कर कौरवों की सेना में बड़ा कोलाहल होने लगा। कुछ लोग दग रह कर चुप चाप खड़े रह गए। दुर्योधन के कुछ सैनिकों ने महाराज युधिष्ठिर को इस प्रकार आते देख कर आपस में कहनायें आरम्भ कर दिया—“ओ हो ! यही कुलकुलङ्क युधिष्ठिर है। देखो, अब इसे कौरवों की शक्ति का

पता चला । भय के मारे कैसे अपने भाईयो सहित भीगी बिन्ली बना हुआ भीष्म पितामह की शरण में आ रहा है ।”

कोई बोला - “अरे ! जिसकी पीठ पर अर्जुन भीम, नकुल, सहदेव, श्री कृष्ण आदि रण बाकुरे हो उसे इतना भय ! बिना लड़ ही पीठ दिखाना आरम्भ कर दिया ”

एक बोल उठा—“तुम लोग अपनी अपनी हांक रहे हो, तनिक देखो तो सही क्या होता है भई, यह ठहरे राजनीतिज्ञ, इन का क्या पता किस समय क्या पैतरा बदले । वह देखो महाराज युधिष्ठिर भीष्म जी के पास जा रहे हैं । देखना है क्या कहते हैं ।”

संक्षेप में यह कि जितने मुह उतनी ही बातें पर कौरवों के सैनिक युधिष्ठिर की इस दशा से बहुत प्रसन्न थे । और बिना लड़े ही पान्डवों की पराजय की कल्पना कर रहे थे ।

महाराज युधिष्ठिर शत्रुओं की सेना के बीच में होकर भीष्म जी के पास पहुँचे और उनके चरण स्पर्श करके कहने लगे—“अजेय पितामह ! मैं आपको शत शत प्रणाम करता हूँ । मुझे खेद है कि आज हमें आपके विरुद्ध युद्ध करने आना पड़ा । हा, शोक कि आप जैसे कृपालु पितामह के विरोध में हमें आना पड़ रहा है । पर जो कुछ होना है वह ता होगा ही । आप से प्रार्थना है कि हमें युद्ध की आज्ञा दे और साथ ही अपना बहुमूल्य शुभ आशीर्वाद भी ।”

भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर के हृदय की विशालता देखकर प्रसन्न हो गए । गदगद कण्ठ से कहा - ‘युधिष्ठिर ! यदि तुम इस प्रकार मेरे पास न आते तो मुझे आश्चर्य होता । परन्तु अब तुम ने अपने गुणों के अनुरूप, पर ससार के लिए विचित्र जा दृष्टांत प्रस्तुत किया है, इस से मुझे अपने कुल पर गर्व होता है । आज मुझे यह अनुभव हो रहा है कि तुम मुझ से भी अधिक महान हो । तुम जैसे उच्चादर्श के पालन कर्त्ता को युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकता । विजय तुम्हारी ही होगी ।”

युधिष्ठिर को इस आशीर्वाद से कितनी प्रसन्नता हुई होगी

यह सहज मे ही अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने अपने उत्साह को प्रगट करते हुए प्रश्न किया—“यदि आप मुझ से वास्तव मे प्रसन्न हैं और हृदय से मेरी विजय की आशा व कामना करते है तो आप मेरे विरोध मे क्यों है ? यद्यपि मैं आप से यह प्रार्थना करने कदापि नहीं आया कि आप पक्ष बदल ले तो भी, अपनी घृष्टता की क्षमा चाहता हुआ आप से अपनी शका के समाधान के लिए पूछता हूँ ”

युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर उन्होंने गम्भीरता पूर्वक दिया। कुछ क्षण तक मौन रहे और बोले—“धर्म राज ! तुम अपनी धर्म बुद्धि से कभी कभी मुझे परेश नी मे डाल देते हो यह प्रश्न तुम ने मुझ से ऐसे समय किया जब मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपने को स्वय ही दोषी मान बैठूँ जब कभी मनुष्य को यह विश्वास हो जाता है कि उसका निर्णय अथवा निश्चय गलत है तो वह पूर्ण उत्साह तथा आत्म विश्वास के साथ उस पर अमल कर ही नहीं पाता। फिर भी जब तुम ने पूछा ही है तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि कभी कभी मनुष्य को जीवन में कुछ कड़वी बातें भी करनी होती है, ऐसे कार्य भी करने पड जाते है, जिन्हे करते हुए मनुष्य को स्वय लज्जा आती है। जब पूज्य पिता जी ने अपना दूसरा विवाह, रचाया था तो मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी नई मा की सन्नानो, और उनके वशजो का साथ दूंगा। दूसरे यह पुरुष अर्थ का दास है, अर्थ किसी का भी दास नहीं, यही सत्य है और इसी अर्थ मे ही कौरवो ने मुझे बाध रक्खा है। इसी से मैं तुम से नपुसको जैसी बातें कर रहा हूँ।”

युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरण पकड लिए और करुण शैली से बोले - “पूज्य पितामह ! आप ने अपने लिए यह शब्द प्रयोग करके मुझे क्यों पाप मे धकेल दिया मेरा तात्पर्य आप को लज्जित करना नहीं था। आप चाहे जिस ओर रहे हमारे लिए आदरणीय है। मैं तो आप से केवल युद्ध की आज्ञा लेने आया था।”

पितामह की आंखो मे स्नेह तथा दया के भाव उमड आये। उन्होंने स्नेहपूर्ण शब्दो मे कहा—“राजन ! तुम्हारी जितनी प्रशंसा

की जाये कम ही है। तुम आज्ञा चाहते हो, उससे जो स्वयं तुम्हारे विरुद्ध सेना लेकर आया है। रण भेरी मेरी ओर से बजे तो तुम्हारे लिए आज्ञा ही है। इस अवसर पर तुम जो चाहे वरदान मागो। कदाचित् तुम्हें कोई वरदान देकर ही मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो सकती है। कदाचित् वही मेरा प्रायश्चित्त भी हो हा, वस मेरे सिवाय तुम कोई भी वर माग सकते हो।”

“आप से अब भला मैं क्या मागूँ। मुझे जिस बहुमूल्य वस्तु की आवश्यकता हो सकती थी वही मेरे लिए निषिद्ध हो गई।”—युधिष्ठिर बोले।

“नहीं, मुझे सन्तुष्ट करने के लिए ही सही कुछ न कुछ अवश्य मागो”—भीष्म पितामह ने हठ करते हुए कहा।

‘आप हमारे दादा हैं, जिन्हें आप जैसे दादा मिले हो, उस सन्तान को क्यों न अपने पुरखों पर गर्व होगा—युधिष्ठिर कहने लगे।—आप ने अपनी ओर से जो प्रस्ताव किया है उसके बोझ से मेरी गरदन झुकी जा रही है आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मैं कहता हूँ। आप अजेय हैं, और आप हैं विपक्ष में फिर जब आप को कोई जीत ही नहीं सकता, तो फिर हमारी विजय कैसे होगी, हम कैसे जीत सकेंगे? आप का आशीर्वाद कैसे पूर्ण होगा? वस इतना बता दीजिए।”

भीष्म बोले कुन्ती नन्दन ! दुखती रंगे पकड़ते हो !—तीर निगाने पर मारते हो .. ठीक है सग्राम भूमि में जो मुझे ऐसा कोई दिखाई नहीं पड़ता अन्य पुरुष तो क्या स्वयं इन्द्र में भी ऐसी शक्ति नहीं है इस के अतिरिक्त मेरी मृत्यु का भी कोई निश्चित समय नहीं है। इस लिए किसी दूसरे समय तुम मुझ से मिलना।”

भीष्म पितामह की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के पश्चात् युधिष्ठिर उन्हें प्रणाम कर के आचार्य द्रोण की ओर चले। उन्हें प्रणाम कर के बोले—“गुरुदेव ! सर्व प्रथम मैं आप से क्षमा याचना करता हूँ क्योंकि आप के विरुद्ध मैं युद्ध करने आया

ह। तदुपरान्त मैं हार्दिक खेद के साथ निवेदन करता हूँ कि मुझे विवश होकर आप से युद्ध करने आना पड़ा है। परन्तु धर्म नीति के अनुसार मैं बिना आपकी आज्ञा के आप से नहीं लड़ सकता, अतएव कृपया आज्ञा दीजिए कि मैं आप के विरुद्ध युद्ध करूँ। जिस से कि मैं अपने गुरुदेव से लड़ने के पाप से बच जाऊँ। आप यह भी बताने की कृपा करें कि मैं शत्रुओं को किस प्रकार जीत सकूँगा।”

ओह ! कितना गम्भीर प्रश्न था यह। प्रश्न कर्ता के साहस को देखिये और अब आचार्य द्रोण के उत्तर को सुनिए। कहते हैं—‘राजन् ! तुम्हारे इस व्यवहार ने कुछ हद तक मुझे युद्ध से पूर्व ही जीत लिया। तुम ने यहाँ पधार कर अपने चरित्र में चार चाद लगा लिए। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे तुम जैसे शिष्य पर गर्व है। और तुम जैसे स्थिर स्वभाव वाले व्यक्ति की विजयकामना किए बिना नहीं रह सकता। तुम युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा, बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है ? इस स्थिति में अपनी ओर से युद्ध करने के सिवा तुम्हारी जो भी इच्छा हो कहो। मैं क्यों इधर हूँ इसका उत्तर यह है कि अर्थ किसी का गुलाम नहीं होता, परन्तु मनुष्य ही अर्थ का दास होता है। और इस अर्थ से कौरवों ने मुझे बाध लिया है। मैं इस स्थिति में युद्ध तो कौरवों की ही ओर से करूँगा और किसी की रियायत भी नहीं कर सकता, फिर भी विजय तुम्हारी ही चाहता हूँ।”

गुरुदेव का उत्तर सुन कर युधिष्ठिर ने कोई वादविवाद नहीं किया। न खिन्न ही हुए, न किसी प्रकार का आवेश ही आया, न उलझन में ही पड़े। सुशिष्य की भाँति नम्र स्वभाव से कहा—“गुरुदेव ! आप कौरवों की ओर से युद्ध करें, किन्तु आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो वस इतना ही दें कि विजय मेरी ही चाहे और मुझे समय समय पर उचित परामर्श देते रहे।”

द्रोणाचार्य को युधिष्ठिर के इन शब्दों से अपार प्रमन्नता हुई, उन्होंने अपनी मनोदशा को छपाते हुए कहा, मनोदशा इस

लिए छुपाई कि जी चाहता था युधिष्ठिर को छाती से लगा लें, पर रण स्थल में उन्होंने इसे उस समय उचित न समझा। “तुम्हारे परामर्शदाता तो श्री कृष्ण जैसे विज्ञान राज नीतिज्ञ हैं। उन के रहते मेरे परामर्श की तुम्हें आवश्यकता नहीं है। श्री कृष्ण जैसे चतुर राज नीतिज्ञ जिधर हैं उधर ही विजय है। और जहाँ विजय है वही श्री कृष्ण है। तुम निश्चित रहो। कुन्तो नन्दन ! अब तुम जाओ और युद्ध करो हा, यदि और कुछ पूछना चाहो तो पूछ सकते हो।”

युधिष्ठिर ने साहस पूर्वक कहा—“विद्वान् आचार्य जी ! आप को प्रणाम कर के मैं यही पूछना चाहता हूँ कि आप को अपने रास्ते से हटाने का क्या उपाय है ?”

युधिष्ठिर ने कैसा चुभता हुआ प्रश्न किया था, कितना कटु और कितना मार्मिक, क्या उसे सुन कर कोई व्यक्ति उद्विग्न हुए बिना रह सकता था ? हाँ, द्रोणाचार्य के मुख पर इस प्रश्न के उपरान्त भी कोई चिन्ता, रोष तथा आवेश के चिह्न नहीं दिखाई दिए। उन्होंने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया—“राजन् ! संग्राम में रथ पर आरूढ़ होकर जब मैं क्रोध में भर कर बाण वर्षा करूँगा, उस समय मुझे मार सके, ऐसा तो कोई शत्रु दिखाई नहीं देता।”

“तो फिर ?”

“हा, जब मैं शस्त्र छोड़ कर अचेत सा खड़ा रहूँ उस समय कोई योद्धा मुझे मार सकता है, यह सत्य है। एक और सच्ची बात तुम्हें बताता हूँ कि जब किसी विश्वास पात्र व्यक्ति के मुख से मुझे अत्यन्त अप्रिय बात सुनाई देती है तो मैं संग्राम भूमि में अस्त्र त्याग देता हूँ।”

द्रोणाचार्य ने इतने से ही अपनी मृत्यु का उपाय बता डाला था। पर इस प्रकार से जैसे उन्होंने कोई साधारण बात कही हो युधिष्ठिर ने बारम्बार उन्हें प्रणाम किया और फिर आगे कृपाचार्य के पास गये। उन्हें प्रणाम कर के वही बात जो उन्होंने से भीष्म

तथा द्रोणाचार्य से कही थी। अर्थात् युद्ध की आज्ञा मागी और आशीर्वाद चाहा।

उत्तर में कृपाचार्य ने प्रसन्न होकर कहा—राजन् ! तुम्हारे सम्बन्ध में जो सुना था, तुम्हें वैसा ही पाया। शत्रु सेना में खड़े अपने सम्मानित वृद्धजनो से तुम्हारा रण भूमि में भी वही व्यवहार रहेगा जो साधारणतया रहता है, ऐसी तो केवल तुम से ही आशा की जा सकती है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। युद्ध की आज्ञा देता हूँ और प्रसन्न होकर तुम्हें कोई भी बात पूछ लेने या इच्छा प्रगट करने का चर देता हूँ।”

युधिष्ठिर बोले—“गुरुदेव ! आप प्रति दिन प्रातःकाल उठ कर मेरी विजय की कामना किया करे वस मुझे यही चाहिए।”

“इसका तो तुम विश्वास रखो।—कृपाचार्य बोले—“और कुछ मागना चाहो तो माग सकते हो वस मुझे अपने पक्ष के लिए मत मागना क्योंकि मे दुर्योधन को वचन दे चुका हूँ।”

‘यदि आप मुझ पर इतने प्रसन्न हैं। तो कृपया अपने परास्त होने का उपाय बता दीजिए।’ युधिष्ठिर ने पूछा।

कृपाचार्य बोले—“धर्मराज ! मैं तुम्हारी विजय की कामना किया करूँगा, इतना ही तुम्हारी विजय के लिए पर्याप्त है। तुम मेरी चिन्ता न करो। विश्वास रखो कि तुम्हारी विजय के रास्ते में आने वाली रुकावटें किसी न किसी प्रकार दूर हो जावेगी। अन्त में विजय पताका तुम्हारे ही हाथ में होगी।”

कृपाचार्य की बातों से सन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया और महाराज शल्य के पास गए। उन्हें प्रणाम करके कहा—“राजन् ! आप मेरे मामा लगते हैं। आप से बिना आज्ञा लिए मैं आप के विरुद्ध भला कैसे लड़ सकता हूँ। अतएव आप आज्ञा दें ताकि मैं इस पाप से बच जाऊँ।”

शल्य बोले—“राजन् ! जब मैं स्वयं ही तुम्हारे विरुद्ध

मैदान में आ गया तो तुम्हें युद्ध से भला कैसे रोक सकता हूँ। जाओ प्रसन्नता पूर्वक युद्ध करो। हा, तुम ने जो इस समय इस दशा में मेरे सामने आकर अपनी महानता दर्शाई है उस से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। चाहे जैसे भी हो मैं हूँ दुर्योधन के साथ ईमानदारी से उसकी ओर से लड़ूँगा। पर तुम मेरे भानजे हो, और हो ऐसे कि मुझे तुम्हारा मामा कहलाते अपने पर गर्व होगा, अतः तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम जो चाहो मांग सकते हो, हा मुझे अपनी सहायता के लिए मत मागना। वोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?”

“मामा जी ! मैं सैन्य सग्रह के समय भी आप से एक बार प्रार्थना कर चुका हूँ। वस वही प्रार्थना है, वही मेरा वर है। कर्ण से युद्ध होते समय आप उसके तेज का नाश करते रहे। आप अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप ऐसा कर सकते हैं। “युधिष्ठिर ने अपना मनवाञ्छित वर मागते हुए कहा।

शल्य बोले—“अपने वचन के अनुसार मैं तुम्हारा यह मनोकामना पूर्ण करूँगा। जाओ निश्चिन्त रहो।”

इस प्रकार अपने गुरुओं तथा आदरणीय वृद्धों तथा सम्माननीय वज्रुर्गों से आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त करके महाराज युधिष्ठिर अपने भाईयो सहित उस विनाल बाहिनी के बाहर आ गए। इस प्रकार उन्होंने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही अपने शिष्टाचार द्वारा कौरवों की सेना के वृद्ध अनुभवी तथा अजेय सेनानियों को सहज में ही जीत लिया। मन जीत लिया तो तन जीतने में क्या रक्खा है। वह भी जीत ही लिया जायेगा। इस दृश्य को देख कर कौरवों की सेना के उन सैनिकों की कल्पनाएँ धूलि में मिल गई जो युधिष्ठिर के इस प्रकार शत्रु सेना नायकों के पास जाने में उनकी पराजय समझ रहे थे। जिस ने उन की वार्ता सुनी, वही युधिष्ठिर का प्रशंसक बन गया। दोनों ओर असह्य सैनिक जीवन की आशा छोड़ें प्रथम विश्व युद्ध के लिए सजे हुए खड़े थे। रण की भेरी बज चुकी थी पर युधिष्ठिर अपनी बुद्धि तथा धर्म नीति द्वारा महानतम शिष्टाचार के सहारे युद्ध में अपनी विजय का प्रथम परिच्छेद पूर्ण कर रहे थे।

इसी बीच श्री कृष्ण दानवीर कर्ण के पास गए। नम्र भाव से बोले— 'मैंने सुना है भीष्म जी मे द्वेष होने के कारण तुम युद्ध नहीं करोगे। यदि ऐसा है तो जब तक भीष्म जी नहीं मारे जाते तुम पाण्डवों की ओर आ जाओ। जब भीष्म जी न रहे मे और तुम्हें दुर्योधन की ही सहायता करना उचित जान पड़े तो पाण्डवों का साथ छोड़ कर कौरवों की ओर आ जाना। उस दशा मे हमे कोई आपत्ति न होगी।'

कर्ण इस प्रस्ताव को सुन कर चकित रह गए। बोले— 'केशव ! क्या पाण्डव इतनी छूट देने के लिए तैयार हो सकते है ? और क्या कोई व्यक्ति दो ओर भी लड़ सकता है ?'

'हां, अवश्य ! दुर्योधन और युधिष्ठिर मे बड़ा अन्तर है। युधिष्ठिर आप को, थोड़े समय के लिए ही सही मित्र बनाने मे बड़े प्रसन्न होंगे। रही दो ओर से लड़ने की बात सो इस के लिए तुम्हें कौन रोक सकता है ?' श्री कृष्ण ने उत्तर दिया।

श्री कृष्ण का उत्तर सुन कर कर्ण ने अपने दृढ़ निश्चय को दोहराते हुए कहा 'मैं युधिष्ठिर की इस नीति का आदर करता हूँ परन्तु मैं दुर्योधन का अप्रिय किसी दशा मे नहीं कर सकता। आप मुझे प्राण पण से दुर्योधन का हितैषी समझे।'

उत्तर सुन कर श्री कृष्ण निरुत्तर हो गए।

महाराज युधिष्ठिर के वापिस आते ही पाण्डवों की सेना में रण के बाजे बज लगे।

महाराज युधिष्ठिर ने सेनाओं के बीच मे खड़े होकर उच्च स्वर मे कहा— 'शत्रुओं की सेना मे सम्मिलित जो वीर हमारा साथ देना चाहे, अपनी सहायता के लिए मैं उसका इस समय भी हार्दिक स्वागत करने को तैयार हूँ। जो वीर शत्रु की ओर ही रहना चाहे वह शत्रु सेना मे होते हुए भी हमारा मित्र ही है।'

युधिष्ठिर की इस घोषणा से कौरवों के सैनिकों पर महाराज युधिष्ठिर का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा। युयुत्सु ने जब घोषणा सुनी, वह बहुत प्रसन्न हुआ। उस से न रहा गया, पाण्डवों की ओर देख कर उस ने धर्मराज से कहा—“महाराज ! यदि आप मेरी सेवा स्वीकार करें तो मैं इस महायुद्ध में आप की ओर से अपने आताओं से लड़ूंगा।”

यह एक ऐसा प्रभाव था जिसे सुन कर साधारण व्यक्ति कभी विश्वास न करता कि युयुत्सु की प्रार्थना सत्य हृदय से की गई है। वह उसे सन्देह की दृष्टि से देखता। परन्तु विशाल हृदय धारी धर्मराज युधिष्ठिर के मुखमण्डल पर हर्ष की रेखा उभर आई उन्होंने अपनी दोनों भुजाएं आगे बढ़ा कर उल्लास पूर्वक कहा—“युयुत्सु ! आओ ! आओ तुम्हारा स्वागत करता हू। हम सब मिल कर तुम्हारे पथ भ्रष्ट भाईयों से युद्ध करेंगे, तुम हमारी ओर से सग्राम करो। मालूम होता है कि धृतराष्ट्र की सन्तान में तुम ही एक सद्बुद्धि न्याय प्रिय तथा धर्म बुद्धि वीर हो, तुम ही से उनका वश चलेगा।”

युयुत्सु इस प्रकार के उत्साह वर्षक स्वागत से प्रसन्न होकर कौरवों का साथ छोड़ कर पाण्डवों की ओर चला आया महाराज युधिष्ठिर ने उसे छाती से लगा लिया और अपनी ओर से कवच दिया, अस्त्र शस्त्र देकर उस को उचित स्थान पर नियुक्त कर दिया।

परन्तु दुर्योधन का हृदय जल उठा। मारे क्रोध के उस की आंखें लाल हो गईं। वह आक्रोश में न जाने क्या क्या बड़बड़ाने लगा।

सभी अपने अपने रथों पर आरूढ़ हुए। सैंकड़ों दुन्दुभियों का घोष होने लगा तथा यौद्धा अनेक प्रकार से सिंह नाद करने लगे।



* वत्तीसवां परिच्छेद *

युद्ध होने लगा

दोनों ओर के योद्धा अस्त्र-शस्त्रों से लैस थे, सेना नायक अपनी अपनी सेनाओं को अन्तिम आवश्यक आदेश तथा उपदेश दे चुके। दोनों ओर के सेनापतियों ने अपनी अपनी सेनाओं को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास दिलाया, स्वर्ग के सुख भोगने का लोभ दर्शाया और क्षत्रियोचित वीरता दिखलाने के लिए आह्वान किया।

इस के पश्चात् दुर्योधन जो अपनी विशाल सेना के बल पर भूमि में चूर था भीष्म जी के पास जाकर कहने लगा—“पितामह ! अब देरी काहे की है। आक्रमण कीजिए।”

भीष्म जी बोले—“दुर्योधन ! तुम चाहते हो इस लिए मैं युद्ध तो आरम्भ किए देता हूँ पर मुझे ऐसा लगता है कि विजयश्री पाण्डवों को ही प्राप्त होगी।”

“पितामह ! आप सेना नायक होकर ऐसी बात कहते हैं ? पाण्डवों के मोह में युद्ध के आरम्भ होते समय ऐसी बात मुह से निकालिए। इस समय पाण्डवों को परास्त करना हमारा कर्तव्य है। वे हमारे शत्रु हैं और हमारी अपार शक्ति के सामने उन के लिए टिकना भी असम्भव है।” दुर्योधन ने कहा।

पितामह ने उत्तर दिया—“बेटा ! शत्रु की शक्ति को कम आरुने वाले कभी विजयी नहीं हुआ करते।”

“आप सेना को आगे तो बढ़ाईये । हाथ कागन को आरसी क्या । अभी ही पता चल जाता है ।”—दुर्योधन ने कहा ।

भीष्म पितामह के नेतृत्व में दुर्योधन, अपने भाईयो और सैनिकों सहित आगे बढ़ा । दुन्दुभिया का विपुल नाद हुआ । तो दूसरी ओर से पाण्डवों की सेना भी भीमसेन के नेतृत्व में रण भेरी बजाती हुई आगे बढ़ी । पाण्डवों में उत्साह था, कुछ कर गुजरने की अकांक्षा थी ।

फिर दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा । द्रुपद युद्ध तथा “साकल युद्ध” दोनों ही होने लगे । सांकल युद्ध से अभिप्राय उस युद्ध से है जो हजारों सैनिकों के एक साथ दूसरे पक्ष के हजारों सैनिकों पर टूट पड़ने से होता है । दोनों ओर से ऐसा भीषण शब्द हो रहा था कि सुनकर रोगटे खड़े हो जाते थे । उस समय महाबाहु भीमसेन साँड़ की भाँति गरज रहा था । उसकी गर्जना से कौरव सेना का हृदय दहल जाता था । जैसे सिंह की दहाड़ सुन कर जंगल के कुछ जानवरों का मलमूत्र निकल पड़ता है, इसी प्रकार की गर्जना से कौरव सेना के कुछ सैनिकों का मूत्र ही निकल गया और भीमसेन की भयानक चिंघाड़ को सुनकर कभी हाथी घोड़ा तर्क काप उठते । भीमसेन विकट रूप धारण करके वज्र की भाँति कौरव सेना पर टूट पड़ा । जिसमें कौरवों की सेना में खलबली मच गई । दुर्योधन ने जब यह देखा तो अपनी सेना का साहस बढ़ाने के लिए अपने भाईयो को सकेत किया और भीमसेन पर मेघ वर्षा की भाँति वाण वर्षा होने लगी । यहाँ तक कि वाणों की वर्षा में भीमसेन उमो प्रकार छुप गया जैसे मेघ खण्डों में रवि छुप जाता है । उस समय दुर्योधन, दुर्मुख, दुःसह, शल्य, दुःशासन, दुर्मर्षण, चित्रसेन, विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज और सोमदत्त का आत्मज भूरि श्रवा, यह सभी अपने बड़े बड़े धनुषों पर तेज वाण चढ़ाकर विपक्ष सपों के समान वाण चला रहे थे । और दूसरी ओर से सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न अपने वाणों से कौरवों की वाण वर्षा का उसी वीरता से उत्तर दे रहे थे । उस समय प्रत्यन्चाओं की भीषण टकार आकाश में तड़पती

तडित का सा भयकर शब्द कर रही थी। दोनों ओर के सैनिक एक दूसरे को अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर पछाड़ने का असफल प्रयत्न कर रहे थे।

उधर शान्तनु नन्दन भीष्म अपना काल डण्ड समान धनुष लेकर अर्जुन की ओर झपटे। उस समय श्री कृष्ण ने भीष्म पितामह के रथ की ओर अर्जुन का रथ हाकते हुए अर्जुन को सम्बोधित करके कहा—“पार्थ ! देखो पितामह सबसे पहले तुम पर ही बल प्रदर्शन करना चाहते हैं। इस समय दादा और पौत्र नहीं, दो शत्रु सेनाओं के मुख्य योद्धाओं का संग्राम होना है। लो अपना रण कौशल अब दिखाओ।”

वीर अर्जुन ने सम्भल कर अपना गाण्डीव उठाया और ज्यों ही भीष्म की ओर से उनके धनुष की पहली टकार हुई तेजस्वी अर्जुन ने अपने जगत विख्यात गाण्डीव की हृदय भेदी टकार की और भीष्म जो पर टूट पड़े। वे दोनों कुरुवीर एक दूसरे का वीरता से उत्तर देने लगे। भीष्म ने अर्जुन को वीध डाला। उनके बाण ठीक निशाने पर जाते, वीर अर्जुन प्रहार से बचने का प्रयत्न करते और अपने बाण से भीष्म जो भी अपने बचाव की चिन्ता में डाल देते। परन्तु न तो भीष्म और न अर्जुन ही संग्राम में एक दूसरे को विचलित कर सके।

दूसरी ओर का हाल भी देखिये सात्यकि ने कृतवर्मा पर आक्रमण कर दिया है वे दो सिंह आपस में जूझ रहे हैं। उन्हें किसी की चिन्ता नहीं, रण भूमि में क्या हो रहा है। भीषण और रोमाचकारी युद्ध में वे एक दूसरे को परास्त करने के लिए पूरी शक्ति लगा रहे हैं।

और उधर महान धनुर्वर कोसल राज वृहद्वल से छोटा, सभी योद्धाओं में कम आयुका, एक प्रकार से बालक, चंचल बाल योद्धा अभिमन्यु भिड़ा हुआ है। उन दोनों के भीषण युद्ध में एक बार कौसल राज का दाव चल गया तो उसने अभिमन्यु के रथ की ध्वजा को काट गिराया और उस के सारथी को भी मार गिराया। फिर क्या था अभिमन्यु सिंह की भाँति विफर उठा। उस ने क्रुद्ध होकर

अपने धनुष से एक के पश्चात् एक विद्युत् गति से बाण छोड़ने आरम्भ किए और अपने नौ बाणों से ही बृहद्वल को वीध दिया तथा दो तीखे बाण छोड़ कर उसकी ध्वजा धाराशायी कर दी और सारथी व चक्ररक्षक को मार गिराया। कोसल राज को भी क्रोध आ गया और वह भी तुरन्त क्रुद्ध हो कर अभिमन्यु पर टूट पड़ा।

कुछ दूरि पर ही भीमसेन से दुर्योधन भिड रहा था। दोनों ही वीर रणाङ्गण मे एक दूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। उन दोनों वीरों के भीषण युद्ध को देख कर सभी को विस्मय हो रहा था। उसी समय दुःशासन महाबली नकुल से सशाम रत था और दुर्मुख ने सहदेव पर आक्रमण कर रक्खा था। दुर्मुख अपने बाणों के प्रहार से सहदेव को प्रहार करने का होश ही नहीं लेने देता था। बहुत देरि तक यही गति रही। अन्त मे सहदेव को जोश आया और एक बार दुर्मुख के प्रहार को काट कर एक ऐसा तीखा बाण मारा कि दुर्मुख का सारथी तडप कर गिर पड़ा। दुर्मुख सहदेव से बदला लेने के विचार से अधिक तीव्रता से लड़ने लगा।

स्वयं महाराज युधिष्ठिर शल्य के सामने आये। मामा भानजे का युद्ध दर्शनीय था। मद्रराज शल्य व युधिष्ठिर कितनी ही देरि तक एक दूसरे को प्रहारो को काटते रहे। परन्तु एक बार अनुभवी शल्य ने अपने तीक्ष्ण बाण से महाराज युधिष्ठिर के धनुष ही टुकडे टुकडे कर डाले। धर्मराज ने तुरन्त ही दूसरा धनुष लेकर मद्रराज को बाणों से आच्छादित कर दिया। इस गति को देख कर एक बार तो शल्य के रोगटे खडे हो गए। यह विचित्र बल देख कर उन्हो ने समझ लिया कि धर्मराज को यूंही परास्त नहीं किया जा सकता। फिर दो योद्धा आपस मे बराबर की टक्कर वाले पहलवानों की भांति भिड गए।

आईये, द्रोणाचार्य के युद्ध पर भी एक दृष्टि डाले। धृष्ट द्युमन द्रोणाचार्य के सामने अडा हुआ है। कितनी ही देरि तक आचार्य द्रोण तथा वीर धृष्ट द्युमन के मध्य बाणों की बोछार हेंती रही। आचार्य जी के सवे हुए अनुभवी हाथों से कितने ही बाण वरसे पर एक भी धृष्ट द्युमन का कुछ न बिगाड़ पाया। इस पर धृष्ट

द्युमन ने कहा—“गुरुदेव ! कोई चमत्कार तो दिखाईये ।”

इस चुनौती को आचार्य द्रोण ने अपना परिहास समझ कर कुपित हो ऐसा बाण मारा कि धृष्ट द्युमन के धनुष के तीन टुकड़े हो गए । ज्यों ही धृष्ट द्युमन ने शीघ्रता से दूसरा धनुष सम्भाला द्रोणचार्य ने ऐसा काल दण्ड समान बड़ा भीषण बाण मारा कि वह धृष्ट द्युमन के शरीर में जा घुसा परन्तु योद्धा धृष्ट द्युमन को तो जैसे कुछ हुआ ही नहीं, यदि कुछ हुआ तो इतना कि उसकी रंगो बहते रक्त में तूफान सा आ गया और उसने विद्युत् गति से तडातड़ बाण वर्षा आरम्भ कर दी अपने चौदह बाणों से द्रोणचार्य को वीध डाला । इस पर द्रोणाचार्य को भी क्रोध आना स्वाभाविक था, उन्होंने भी बिफर कर तुमुल युद्ध आरम्भ कर दिया । पर वीर धृष्ट द्युमन तनिक सा भी विचलित न हुआ । वह उसी प्रकार वीरता से लड़ता रहा ।

वीर शङ्ख भी दूसरी ओर युद्ध रत है । उस ने सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा पर धावा किया । भूरिश्रवा भी कुछ कम न था, उस ने शख के धावे का उत्तर तीक्ष्म बाणों से दिया । क्रुद्ध होकर शख ने भूरिश्रवा को ललकार कर कहा—“खड़ा रह ! तुझे अभी बताता हूँ । शख तेरी मृत्यु बन कर आया है ।”

उधर भूरिश्रवा ने भी चेतावनी दी—“मैं मृत्यु से टकराना हसी खेल समझता हूँ । शंख का काम ही ध्वनि करना, चीखना है, शख बेचारा करता क्या है । कहीं स्वयं अपनी ही मृत्यु का सन्देश तो नहीं ले आया ?”

इतनी बात पर शख का खून खोलने लगा । तिल मिलाकर उस ने बड़ा भयकर युद्ध आरम्भ कर दिया और एक अवसर पाकर उसकी भूजा धायल कर दी । तब भूरिश्रवा प्रति शोध की भावना से श्रोत प्रोत हो गया, उस ने शख के गले तथा कंधे के बीच की हड्डी को लक्ष्य बना कर बाण वर्षा की । और शख धायल हो गया । पर दोनों ही उन्मत्त योद्धाओं में भयकर युद्ध होता रहा ।

अन्य योद्धाओं की भांति राजा बाल्हीक भी अपना धनुष ले कर युद्ध में उतर पड़ा । चेदिराज धृष्ट वेतु उस के सामने आ डटा ।

फिर क्या था ? दोनो वीर भयकर गर्जना करते हुए एक दूसरे से युद्ध करने लगे । सिंह समान गर्जना करते हुए चेदिराज धृष्टकेतु ने नौ बाण छोड़ कर राजा बाल्हीक को वीध डाला । इस पर बाल्हीक से न रहा गया । क्रुद्ध रणोन्मत्त हाथी की तरह बुरी तरह धृष्टकेतु पर पिल पडा और दोनो मे भीषण संग्राम होने लगा ।

राक्षसराज अलम्बुष के साथ क्रूरकर्मा घटोत्कच भिड गया था । दोनो एक दूसरे की टक्कर के दिखाई देते थे । कुछ देर दोनो एक दूसरे को अपने अपने हाथ दिखाते रहे । फिर जब इस प्रकार हाथ दिखाने का कोई परिणाम न दिखाई दिया तो घटोत्कच ने घड़ घड़ बाण वर्षा आरम्भ की, जिस से अलम्बुष को अवकाश ही न मिला और वह उन बाणो से छिद गया । पर भला अलम्बुष यह कैसे सहन कर सकता था कि शत्रु उसको छेद कर बिना कुछ घाव खाये रह जाये । उसने भी कुपित होकर तीव्र बाण वर्षा आरम्भ की । और झुकी नोक वाले बाण विघेषतया चलाए जिस से घटोत्कच के शरीर मे कई स्थानो पर रक्त चूने लगा ।

उधर शिखण्डी ने जो था तो नपुंसक, परन्तु वीरता मे दूसरे वीरो से कम न था, द्रोण पुत्र अश्वस्थामा पर आक्रमण कर दिया । अश्वस्थामा तो उसे नपुंसक जान कर अपने बाये हाथ से मार्ग गिराने का दम भरता था, पर जब सामना हुआ तो भ्रम टूट गया और कुछ ही देर के युद्ध से यह बात खुल गई कि शिखण्डी की टक्कर भेलता वच्चो का खेल नहीं है । परन्तु अश्वस्थामा सोचने लगा कि यदि नपुंसक भी उसे परास्त करदे तो फिर वह मुह दिखाने योग्य भी न रहेगा, इस लिए अश्वस्थामा क्रुद्ध होकर अपने पूर्ण रण कौशल को दिखलाने लगा और उस ने देखते ही देखते अपने तीरो से वीध कर शिखण्डी को अधीर कर दिया । इस से शिखण्डी की भुजाओ का बल भी अगडाई लेकर जाग उठा और उसने भी बड़ी तीखी चोटें करनी आरम्भ कर दी । इस प्रकार यह दोनो वीर संग्राम भूमि मे भिन्न भिन्न बाणो का प्रयोग कर भीषण युद्ध करते रहे ।

सेनानायक विराट महावीर भगदत्त के मुकाबले पर थे उन

दोनों के मध्य भी घोर युद्ध हो रहा था। जिस प्रकार मेघ पर्वत पर जल बरसाता है, इसी प्रकार विराट ने भगदत्त पर बाण वर्षा की परन्तु भगदत्त ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया, उस ने उस ने भी अपने बाणों से विराट को ऐसे ही ठक दिया जैसे मेघ सूर्य को आच्छादित कर देते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से ही डट कर युद्ध होता रहा।

आचार्य कृप (कृपाचार्य) ने केकयराज वृहत्क्षत्र पर आक्रमण किया। वृहत्क्षत्र भी ताल ठोक कर मुकाबले पर आगया। और दोनों एक दूसरे से जूझने लगे। कृपाचार्य ने इतने बाण चलाये कि एक बार तो केकयराज बाणों की छाव में खो से गए। तब केकयराज ने अपना शौर्य दर्शाया और उन्होंने कृपाचार्य को बाण वर्षा में विलीन कर दिया। दोनों योद्धा एक दूसरे का मान मर्दन करने के लिए जीवन का मोह त्याग कर बड़े वेग से युद्ध करने लगे और कुछ ही देर में दोनों ने एक दूसरे के सारथी तथा अश्वों को मार डाला। तब विवश होकर दोनों, रथहीन ही, आमने सामने के युद्ध के लिए खडग लेकर आ गए। दोनों में बड़ा ही कठोर तथा भीषण युद्ध होने लगा।

राजा द्रुपद ने जयद्रथ को घेर रक्खा था। दोनों वीरों में भीषण युद्ध हो रहा था। जयद्रथ के तीन बाण द्रुपद को घायल करने में सफल हो गए तब तिल मिला कर द्रुपद ने ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाये कि जयद्रथ भी विध गया। और फिर दोनों एक दूसरे से बदला लेने के लिए युद्ध करने लगे। विकर्ण ने सुतसोम पर आक्रमण कर दिया। दोनों में युद्ध ठन गया। तब विकर्ण बोला—
“मुनसोम ! क्या तुम्हारी मृत्यु मेरे ही हाथों होनी है ? पहले दिन ही मरने का इरादा है ?”

सुतसोम ने गरज कर उत्तर दिया— “मुझे मार डालने की क्षमता तुम जैसे आतताईयों में नहीं है। हा, यदि तुम्हें मृत्यु इतनी ही प्रिय है तो लो मैं तुम्हारा काल बन कर सामने आगया।”
फिर क्या था, दोनों एक दूसरे पर पिल पड़े। अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर एक दूसरे को मार डालने के लिए तुल गए। कोई कम ही तो दाव भी चले। अस्त्र शस्त्र सारे जो उनके पास

ये प्रयोग किए जाने लगे। पर दोनों में से किसी एक ने भी पीछे पैर न हटाया।

महारथी चेकितान सुशर्मा पर चढ़ आया। परन्तु सुशर्मा ने भीषण वाण वर्षा द्वारा उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। तब क्रुद्ध होकर चेकितान ने अपने वाणों की वर्षा से सुशर्मा को ढाक दिया। और सुशर्मा ने उसके वाणों को तोड़ कर उस पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। दोनों एक दूसरे को पराजित करने के विचार से जी तोड़ कर लड़ने लगे। शकुनि ने पराक्रमी प्रतिविन्ध्य को घेर लिया। परन्तु युधिष्ठिर पुत्र प्रतिविन्ध्य ने अपने कौशल से शकुनि के घेरे को छिन्न भिन्न कर डाला। सुशर्मा ने काम्बोज महारथी पर दावा किया। सुदक्षिण ने उसे अपने पैरों से धींच डाला। भीष्म युद्ध से डिगा नहीं। भरकर शत्रु करने को विदीर्ण सा कर

चेदिराज ने उलूक पर घावा बोला और बाणों की सावन भादो जैसी भड़की लगा कर उसे पीड़ित करने लगा। इस के जवाब में उलूक ने भी अपनी वीरता दर्शाई। गरज कर बोला—“उलूक का सामना करना लोहे के चने चवाना है, तनिक होश सम्भल कर लड़ो।”

चेदिराज ने सिंह गर्जना करते हुए कहा—“उलूक ! यह दिन है दिन। अभी रात्रि का अधिकार नहीं हुआ। तुम्हें रात्रि में ही चहकना शोभा देता है।”

“वस सम्भल लो कि तुम्हारे सिर पर उल्लू ही बोल गया।”

“ऐसी बात है तो आ जाओ।”

खडगों की कट कट व खट खट की ध्वनि, धनुषों की टकारों, अश्वों तथा हाथियों की चिंघाड़े सब मिल कर इतना शोर बन गई थी कि दूर से कोई नहीं समझ सकता था कि क्या हो रहा है। वीर आक्स में इस तरह से लड़ रहे थे कि उन्हें अपने अतिरिक्त अन्य किसी का पता ही नहीं था। दूसरी ओर विकट गाड़ियों, तथा वायुयानों के द्वारा एक दूसरे की सेना को भस्म कर डालने की चेष्टाएं हो रही थीं। शतवृत्ती (तोपे) लगी हुई विकट गाड़ियां शत्रुओं के वायुयानों को गिरा रही थी। गज सवार से गज सवार, अश्व सवार से अश्व सवार, पैदल से पैदल सैनिक लड़ रहे थे। इस प्रकार दोनों सेनाओं का बड़ा दुर्घर्ष तथा घमासान युद्ध हो रहा था। इस प्रथम महायुद्ध को देखने के लिए देवता भी दौड़ आये थे और ऐसा विचित्र भयंकर तथा अभूत पूर्व युद्ध देख कर रोमांचित हो रहे थे। सग्राम भूमि में लाखों पदाति मर्यादा छोड़ कर सघर्ष कर रहे थे। वहां कोई अपना पराया न देखता था कोई एक दूसरे को पहचानता तक न था। शत्रु चाहे भाई ही क्यों न हो, पर उस के प्राण हरने की ही कोशिश की जा रही थी। पिता पुत्र की ओर और पृत्र पिता की ओर न देखता था। इसी प्रकार भाई भाई की, भानजा मामा की, मामा भानजे की और मित्र मित्र तक की परवाह न करता था। ऐसा जान पड़ता था मानो वे पूर्व जन्म से ही एक दूसरे के शत्रु रहे होंगे जिन्हें आज दिल के बलबले निकालने का अवसर मिला है।

जब युद्ध यौवन पर आया और मर्यादा हीन तथा अत्यन्त भयानक होगया तो भीष्म के सामने पड़ते ही पाण्डवों की सेना थर्रा उठी। महाराज युधिष्ठिर ने गरज कर कहा—“हम क्षत्रिय हैं। न्याय के लिए लड़ रहे हैं। एक बार अवश्य ही मरना है। तो फिर मृत्यु से क्यों घबराना। हमें क्या तो प्राण देकर वीर गति को प्राप्त होना या विजय प्राप्त करनी है। वीरो आगे बढ़ो। विजय हमारी ही होगी। आज रण भूमि में दिखा दो कि पाण्डव और उन के सहयोगी किसी आतताई के आगे घुटने टेकना नहीं जानते। वह देखी विजय श्री वरमाला लिए तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ी है”

युधिष्ठिर की इस उत्साह वर्धक घोषणा से पाण्डवों की सेना का आत्म बल बढ़ गया और उन्होंने वीर्य से भीष्म जी के नेतृत्व में लड़ने वाले योद्धाओं का सामना करना आरम्भ कर दिया। और इस महायुद्ध के प्रथम दारुण दिवस ही अनेको रणबाकुरे वीरो का भीषण सहार हो गया, अनेक बहनों का सुहाग कौरवों की हठ की वेदी पर बलि चढ़ गया। अनेक शिशु अनाथ हो गए। अनेक माताएं निपूती हो गईं। फिर भी पाण्डवों की सेना के पैर न उसड़ें पाण्डव बिना इस बात की चिन्ता किए कि कितने उन के सैनिक मौत के घाट उतर गए घमासान युद्ध कर रहे थे तब दुर्योधन की प्रेरणा से दुर्मुख कृतवर्मा, कृपाचार्य, ब्रिविशति पितामह भीष्म के पास चले गए। और इन पांच वीर अतिरथियों से सुरक्षित होकर वे पाण्डवों की सेना में घुसने लगे। यह देख कर क्रोधानुर अभिमन्यु अपने रथ पर चढ़ा हुआ इन पांचों से रक्षित अपने परम आदरणीय दादा भीष्म जी के सामने आ डटा। और आते ही अपने एक ही पैने बाण से उन के रथ पर फहराती ताड़ के चिन्ह वाली ध्वजा काट कर गिरा दी और फिर इन सभी के साथ युद्ध छेड़ दिया।

ओह ! कितना रोमांचकारी दृश्य था वह। एक ओर अजेय भीष्म पितामह और उन के रक्षक पांच छोटे हुए सिद्ध हस्त अनुभवी वीर, और दूसरी ओर एक सोलह वर्षीय कुमार। वच्चा सा वीर विजली की तरह छोड़ो योद्धाओं पर टूट पड़ा। वह जानता था कि कितने से टक्कर ले रहा है, पर उसे किसी प्रकार की चिन्ता न

थी। वह अपनी पूरी शक्ति लगा कर प्रहार कर रहा था। और थोड़ी सी ही देर में कृतवर्मा को एक बाण से, शल्य को पांच बाणों से, और पितामह को नौ बाणों से बीध दिया। जिस समय भीष्म पितामह के शरीर में आकर अभिमन्यु के तीर चुभे। कृपाचार्य को और शल्य को बड़ा क्रोध आया। शल्य ने कहा—‘देखते ही पितामह ! यह कितना नटखट है, दम्भ में अन्धा हो गया है। हम बालक समझ कर युद्ध कर रहे हैं तो यह सिर पर ही चढ़ा आता है मालूम होता है चीटो अपने पख निकाल रही है।’

परन्तु भीष्म पितामह को अभिमन्यु के बाणों से कदाचित्त कोई पोड़ा न हुई थी, उन्होंने मुस्करा कर कहा—‘‘तुम बालक की शरारत पर क्रुद्ध हो गए ?—अरे ! मेरे हृदय से पूछो, मुझे कितनी प्रसन्नता हा रही है। आज मेरा नन्हा पौत्र हम छ योद्धाओं का इस वीरता से सामना कर रहा है, है ससार में किसी और कुल के पास ऐसा बाल वीर रण वाकुरा ? मैं चाहता हूँ अभिमन्यु का साहस इसी प्रकार बढ़े, यह अद्वितीय बलवान हो। चिरजीवि हो।’’

दुर्मुख बोला—‘पितामह ! आप युद्ध करने आये हैं बालको का साहस बढ़ाने नहीं। देखिये इस संपोलिए का मुह न कुचला गया तो यह अनर्थ कर देगा। हम सब को मार गिरायेगा।’’

गम्भीरता पूर्वक भीष्म बोले—‘‘दुर्मुख ! विश्वास रखो मेरे रण भूमि में कभी किसी की रियायत नहीं किया करता। पर किसी वीर की शक्ति का गलत मूल्यांकन भी नहीं करता। मैं और तुम सभी तो अभिमन्यु के विरुद्ध पूर्ण शक्ति से लड़ रहे हैं, पर क्या करे इस वीर में अलौकिक शक्ति है।’’

उसी समय अभिमन्यु ने एक बाण भीष्म पितामह के चरणों में गिराकर दूसरा झुकी नोक वाला इस युक्ति से मारा कि दुर्मुख के सारथी का सिर घड़ से अलग करता हुआ निकल गया। कृपाचार्य ने कुपित होकर अपने विशाल धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढ़ाया, पर अभी धनुष की डोरी खींच ही रहे थे कि अभिमन्यु ने एक ऐसा बाण मारा कि कृप के धनुष को दो टूक करता हुआ उनके पैरों में गिर गया। सहसा भीष्म पितामह हस पड़े और फिर

तुरन्त ही गम्भीर होकर आवेश में आये और कई प्रकार के बाण चलाने आरम्भ कर दिए। पर रणागण में नृत्य सा करते हुए वीर अभिमन्यु ने सभी मुख्य वीरों पर वार किए और सभी के पैने बाणों से अपनी रक्षा की। कई वार तो स्वयं भीष्म जी तथा कृपाचार्य को अपने पर लज्जा आने लगी।

वीर अभिमन्यु का ऐसा हस्तलाघव देखकर देवता लोग भी दातों तले उगली दवा कर रह गए। वे आखे फाड़ फाड़ कर इस अद्भुत युद्ध को देख रहे थे और उनकी सहानुभूति स्वयंमेव ही अभिमन्यु के प्रति हो गई थी। स्वयं भीष्म जी अनुभव कर रहे थे कि वीर अभिमन्यु अपने धनुर्धारी पिता अर्जुन से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

इतने में कृपाचार्य, शल्य तथा कृतवर्मा ने एक साथ मिलकर अभिमन्यु पर तीरों की अवाध गति से भयकर वर्षा की। जिससे अभिमन्यु का शरीर कई जगह छिप गया परन्तु वह वीर भैनाक पर्वक के समान रण भूमि में तनिक भी विचलित नहीं हुआ तथा कौरव वीरों से घिर होने पर भी उस वीर ने उन पाँचों अति रथियों पर बाणों की झड़ी लगा दी और उनके असंख्य बाणों से अपनी रक्षा करते हुए उसने भीष्म जी पर बाण मारते हुए भीषण सिंह नाद किया। जिसे सुनकर शल्य के रथ के अश्व विचलित हो गए और भीष्म जी के अश्व काप उठे।

यह देख भीष्म पितामह चिन्तित हो गए और वीर अभिमन्यु को परास्त करने की इच्छा से उन्होंने उस समय कितने ही अद्भुत और भयानक दिव्यास्त्र सम्भाले और एक के पश्चात् एक को प्रयोग करने लगे। कभी अग्नि की लपटें निकलती तो कभी सर्वत्र धुएँ का बादल छा जाता और कभी पानी सा बिखरने लगता। यह उनका बड़ा ही भयानक प्रहार था। परन्तु फिर भी वीर अभिमन्यु के मुख पर चिन्ता अथवा भय का भी चिह्न सग्राम भूमि से दूर ले गया। श्वेत कुमार ने छः बाण चढ़ाकर महारथियों की ध्वजाएँ तोड़ डाली और फिर उनके घोड़ों व सारथियों को भी वीध डाला। फिर नम्वर आया उन महारथियों का। एक भीषण सिंह नाद करके श्वेत कुमार ने उन पर आक्रमण किया। तडातड बाण बरसा के

उन्हें भी घायल कर दिया और फिर तेजी से शल्य की ओर बढ़ा। इसे देखकर कौरवों की सेना में बड़ा कोलाहल मच गया। तब श्वेत को इस प्रकार बढ़ते देख दुर्योधन सेनापति भीष्म जी को आगे करके सारी सेना सहित श्वेत के रथ के सामने आ गया और मृत्यु के मुह में पड़े शल्य को भययुक्त किया और तब क्या हुआ, बस वर्णन से बाहर की बात है। बड़ा ही भयकर युद्ध होने लगा तथा भीष्म पितामह, अभिमन्यु, भीमसेन, सात्यकि, केकय राज कुमार, वृष्ट दृष्ट, द्रुपद और भेदि तथा मत्स्य देश के राजाओं पर बाणों की भयकर वर्षा होने लगी। चारों ओर से 'मारो मारो' की ध्वनि आने लगी। धनुष की टकारों, चीत्कारों, चिंघाड़ों आदि की ध्वनि से भीषण वातावरण उपस्थित हो गया।

तब लाखों क्षत्रिय वीर राजकुमार श्वेत की रक्षा में लग गए। उन्होंने भीष्म जी के रथ को चारों ओर से घेर लिया। बड़ा ही घनघोर युद्ध होने लगा। भीष्म जी का मुख मण्डल लाल अगारे की नाई हो गया और उन्होंने मारकाट मचाकर अनेक रथ सूने कर डाले। उस समय उनका पराक्रम बड़ा ही अद्भुत था। इधर राजकुमार श्वेत ने भी हजारों रथियों को गाजर मूली की भाँति काट डाला। और अपने पैने बाणों से हजारों के सिर काट दिए। इस भयकर युद्ध को देखकर और श्वेत द्वारा मारकाट के वीभत्स दृश्य से घबराकर सजय अपना रथ छोड़कर रण भूमि से चले गए और उन्होंने सारा वृतांत धृतराष्ट्र से जा सुनाया। इस भीषण करा-करी और मारकाट में भीष्म पितामह ही निश्चल मेरु पर्वत समान खड़े थे। वे अपने दुस्त्यज प्राणों का मोह त्याग कर निर्भीक भाव से पाण्डवों की सेना का सहारा कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि श्वेत कुमार बड़ी तीव्रता व मुस्तैदी से कौरव सेना का सफाया कर रहा था, तो वे स्वयं ही उस के सामने आ पहुँचे। परन्तु श्वेत कुमार ने अपने बाणों की वर्षा से एक बार तो भीष्म जी को पूर्ण-तया ढक लिया। इस के उत्तर में भीष्म जी ने भी भीषण बाण वर्षा की। उस समय यदि भीष्म जी ने रक्षा न की होती तो श्वेत कुमार कौरवों की सारी सेना को नष्ट कर देता और यदि श्वेत न होता तो ऐसा लगता था मानो भीष्म जी एक दिन में ही सारी सेना

को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते। जब पाण्डवों ने देखा कि श्वेत ने भीष्म जी का मुह फेर दिया है तो वे बड़े प्रसन्न हुए।

परन्तु दुर्योधन चिन्तित हो गया। अत्यन्त क्रोध में भर कर अनेकों राजाओं सहित सारी सेना ले कर वह पाण्डवों पर टूट पड़ा और अपने वीरों को ललकारा—“क्या हो गया है तुम्हें गौरव गाली क्षत्रिय वीरों। पाण्डवों को गाजर मूलियों की भाँति सफाया करदो। यह तुम्हारे सामने है ही क्या !”

दुर्योधन की इस ललकार में प्रेरित होकर कौरव वीर पाण्डवों पर भूखे सिंहों की भाँति टूट पड़े। उस की प्रेरणा से कृपाचार्य, दुर्मुख, कृतवर्मा और शल्य आदि भीष्म जी की रक्षा करने लगे। परन्तु क्रुपित श्वेत कुमार ने भयकर युद्ध किया, उस के साथ अन्य पाण्डव पक्षीय वीर भी जी जान तोड़ कर युद्ध कर रहे थे। इस भयानक युद्ध में देखते ही देखते हजारों वीर सो गए। असंख्य रथों के घुरें उड़ गए। हजारों की संख्या में हाथी और घोड़े ढेर हो कर गिर पड़े। श्वेत कुमार ने दुर्योधन की सेना की घृज्जिया उड़ा दी और उसे तितर बितर कर के भीष्म जी पर ही वार कर दिया। इस से दोनों में घमासान युद्ध होने लगा।

राजकुमार श्वेत ने फिर भीष्म जी के रथ की ध्वजा काट कर गिरा दी। भीष्म जी ने क्रुपित हो श्वेत के रथ के घोड़ों और सारथी को मार गिराया। तब श्वेत ने अपना शक्ति नामक अस्त्र भीष्म जी पर चलाया परन्तु भीष्म जी ने अपने बाणों से उस का अस्त्र बीच ही में रोक दिया।

इस पर तश्च ने भारी गदा उठा कर जोरों से धुमाई और भीष्म जी के रथ पर जोरों से दे मारी। देखते ही देखते भीष्म जी ने रथ से कूद कर अपने प्राणों की रक्षा की श्वेत की गदा के प्रहार से भीष्म जी का रथ चकनाचूर हो गया। भीष्म जी क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गए और एक दिव्य बाण खींच कर श्वेत को जोरों से मारा। उस बाण के लगते ही विराट कुमार धाराशायी हो गया, उस के बाण पसरे उड़ गए। यह देख दुःशासम ने बाजे बजवा दिए और हर्ष के मारे नाच उठा। परन्तु भीष्म जी का हाथ रुका नहीं उन्होंने ने श्वेत की मृत्यु के बाद पाण्डवों की सेना

में प्रलय मचा दी ।

पहले रोज की लड़ाई में पाण्डव सेना बहुत तग आ गई । धर्मराज युधिष्ठिर के मन में भय छा गया । दुर्योधन आनन्द के मारे झूम रहा था ।

सूर्य की यात्रा पूर्ण हुई । पश्चिम के सूर्य के अन्तिम चरण लाल बादलों के रूप में प्रगट हुए और युद्ध बन्द होने के बाजे बज गए । दोनों सेनाएं अपने अपने डेरों में चली गईं । पाण्डव धर्मराज के साथ श्री कृष्ण के डेरे में गए और युद्ध की चिन्ता जनक स्थिति से पार उतरने का उपाय सोचने लगे ।

श्री कृष्ण ने धैर्य बन्धाते हुए कहा—“आप व्यर्थ ही चिन्ता करते हैं, आप पांचों के रहते, पांचाल तथा मत्स्य देश की विशाल सेना के होते हुए आप की पराजय हो जाये, यह असम्भव है । आप विश्वास रखिये कि विजय आप की ही होगी । युद्ध में तो ऐसा होता ही है कि कभी शत्रु आगे बढ़ता है, कभी पीछे हटता है । आप चिन्तित न हों ।”

“परन्तु भीष्म जी के रहते हमारी विजय कैसे हो ? वे तो प्रकेले ही हमारी समस्त सेना का मुकाबला कर रहे हैं ।”—धर्मराज ने कहा !

श्री कृष्ण ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—“भीष्म जी भी सदा नहीं रहेंगे । आप लोग यह क्यों भूलते हैं कि शिखण्डी भीष्म जी को मारने के लिए ही पैदा हुआ है ।”

बात चीत के उपरान्त दूसरे दिन के युद्ध की योजना बनी ।



✽ तैत्तिरीय परिच्छेद ✽

दूसरा दिन

पहले दिन जो पाण्डव सेना की दुर्गति हुई थी, उससे सबक लेकर पाण्डव सेना के नायक धृष्ट द्युमन ने दूसरे दिन बड़ी संतर्कता से व्यूह रचना की और सैनिकों का साहस बढ़ाया ।

युद्ध आरम्भ होते ही कौरव सेना ने भीष्म पितामह के सेना पतित्व में पुनः पाण्डव सेना पर आक्रमण किया । भीष्म युद्ध होने लगा । एक बार के भयकर आक्रमण से पाण्डवों की सेना तितर बितर हो गई । बड़ा हाहाकार मच गया । असह्य वीर मौत के घाट उतारें जाने लगे ।

यह देख अर्जुन ने श्री कृष्ण को अपना रथ भीष्म जी की ओर ले चलने की आज्ञा दी । अर्जुन का रथ ज्यों ही भीष्म जी के रथ के सामने पहुँचा, दुर्योधन की आज्ञा से कौरव सेना के प्रमुख वीरों ने भीष्म जी की रक्षा के लिए उन के रथ को चारों ओर से घेर लिया । भीष्म जी ने अर्जुन के ऊपर भयकर बाण वर्षा की । परन्तु अर्जुन को तनिक भी चिन्ता न हुई । उस ने बड़े वेग से आक्रमण किया और कुछ ही देर में भीष्म जी के चारों ओर की रक्षा पंक्ति को तोड़ता हुआ भीष्म जी के सम्मुख पहुँच गया । यह देख कर दुर्योधन का भीष्म जी पर से एक वारगी विश्वास उठ गया । भय विह्वल होकर वह बोला—“प्रतीत होता है कि आपके और द्रोणाचार्य के जीते जी अर्जुन सारी कौरव सेना को मौत के

घाट उतार देगा। महारथी कर्ण ने, जो मुझ से स्नेह रखता है, आप ही के कारण हथियार न उठाने का प्रण कर रखेगा है। जान पड़ता है उस की अनुपस्थिति में मुझे निराशा का ही सामना करना होगा। आप की शक्ति कहा गई। कोई उपाय बताइये, कुछ कीजिए। किसी भांति अर्जुन को मौत के घाट उतारिये।”

इन कटु वचनों से भीष्म को बड़ा क्रोध आया और जोश में आकर उन्होंने अर्जुन पर भयकर आक्रमण कर दिया। उस समय भीष्म तथा अर्जुन में ऐसा भयकर युद्ध हुआ कि आकाश में स्वयं देवता उसे देखने के लिए एकत्रित हो गए।

दोनों वीरों में तुमुल युद्ध हो रहा था। सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र चल रहे थे। दोनों के रथ इस प्रकार आपस में युद्ध रत थे कि केवल ध्वजा को पहचान कहा ही जाना जा सकता था कि कौन कहा है। भीष्म जी के कुछ क्षण श्री कृष्ण के लगे और उन के श्याम वदन से रक्त वह निकला। इस से अर्जुन कुपित हो गया और भीष्म जी पर बुरी तरह दूट गया।

डगर द्रोणाचार्य से धृष्ट द्युमन लड़ रहा था। दोनों में भयकर संग्राम हो रहा था। द्रोणाचार्य के वारों से धृष्ट द्युमन तनिक न घबराया तब झूझला कर द्रोणाचार्य ने उस के सारथी को मार डाला। इस से धृष्ट द्युमन को बहुत क्रोध आया और भारी गदा लेकर द्रोणाचार्य के रथ पर दूट पड़ा। परन्तु द्रोण ने अपने बाणों के प्रहार से धृष्ट द्युमन का गदा का वार ही न ठीक बैठने दिया। तब धृष्ट द्युमन ने तलवार सम्भाली और द्रोण पर झपटा। द्रोण ने इतने बाण मारे कि धृष्ट द्युमन के शरीर में अनेक घाव लगे और वह चलने योग्य भी न रहा। यह देख भीमसेन उसी समय वहाँ पहुँचा और धृष्ट द्युमन को अपने रथ में बिठा लिया और तुरन्त बड़े वेग से द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के कारण द्रोणाचार्य थोड़ी देर के लिये अपने स्थान पर रुक गए। भीम अपने रथ को लेकर रण भूमि से बाहर चलने लगा। दुर्योधन ने उसे देख लिया। तो कर्लिंग देश की सेना को उस ने भीमसेन पर आक्रमण का आदेश दिया। जब कर्लिंग सेना ने आक्रमण किया तो भीमसेन ने उस के उत्तर में ऐसा आक्रमण किया कि थोड़ी ही

देर में कर्लिंग सेना में हाहाकार मच गया और सैनिक यह कहने लगे कि कहीं यमराज ही तो भीम सेन के रूप में नहीं आगए। एक बार सेना में निराशा छा जाने से सारी सेना भाग खड़ी हुई। यह देख भीष्म जी अर्जुन के मुकाबले से हट कर भीम सेन की ओर बढ़े। सात्यकि, अभिमन्यु आदि पाण्डव वीर उस समय भीमसेन की रक्षा को दौड़ पड़े और भयकर युद्ध हाने लगा। जिस के कारण कौरव सेना का साहस टूट गया और सैनिक पश्चिम की दिशा में देखने लगे और सूर्य के अस्त होने की कामना करने लगे।

निर्दय सूर्य अस्त हुआ। सन्ध्या हुई। तो भीष्म द्रोणाचार्य से बोले—“आचार्य ! अब युद्ध रोकना ही होगा। आज हमारी सेना का साहस टूट गया है।”

युद्ध बन्द होगया और अर्जुन आदि पाण्डव वीर विजय के बाजे बजाते हुए अपने डेरो में चले गए। कल पाण्डव सेना में जो आतंक छाया था वह आज कौरव सेना में छा गया।



* चौतीसवां परिच्छेद *

तीसरा दिन

युद्ध का समय होने पर भीष्म जी ने अपनी सेना की गरुड के आकार में व्यूह रचना की और उसके अगले सिरे का बचाव दुर्योधन के जिम्मे किया। कल हुई क्षति को ध्यान में रखकर आज की व्यूह रचना सतर्कता से की गई थी। शत्रु सेना की व्यूह रचना देखकर धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना की व्यूह रचना अर्ध चन्द्र के आकार पर की। एक सिर पर अर्जुन तथा दूसरे पर भीमसेन रक्षा के लिए खड़े हो गए।

व्यूह रचना के उपरान्त युद्ध आरम्भ होने का वाजा बजा और फिर दोनों सेनाएँ एक दूसरे पर आक्रमण करने लगीं। आज दोनों ओर की सैनिक टुकड़ियाँ इस प्रकार एक दूसरे से गुथ गईं और उनमें इस प्रकार भीषण संग्राम होने लगा कि रथों, घोड़ों और हाथियों के तेज चलने के कारण इतनी धूल उड़ी कि गर्द के मारे आकाश में दीप्तिमान सूर्य भी न दिखाई देता था। अर्जुन ने शत्रु सेना पर भयंकर आक्रमण किया फिर भी वह शत्रु सेना का घेरा न तोड़ सका। दूसरी ओर से कौरवों ने भी एक साथ मिलकर अर्जुन पर आक्रमण किया। टिड्डी दल की भाँति अपनी ओर आती कौरव सेनाओं का देखकर अर्जुन ने बड़े वेग से बाण बरसाये और चारों ओर बाण बरसा कर अपने चारों ओर बाणों ही बाणों का एक घेरा सा बाँध दिया जिससे कौरव सेनाओं के द्वारा चलाए गए

भीषण शस्त्र अस्त्रों का प्रहार बीच ही में कट गया।

उधर दूसरी ओर शकुनि को भारी सेना सहित पाण्डवों की ओर बढ़ते देखकर अभिमन्यु और सात्यकि उसके मुकाबले पर जा डटे। शकुनि ने बड़ी रण कुशलता दिखाई और सात्यकि का रथ तहस नहस कर दिया तब सात्यकि बड़े जोश में आ गया और अभिमन्यु के रथ पर चढ़कर शकुनि की सेना पर भयकर आक्रमण करके उसकी सेना को नष्ट कर डाला।

युधिष्ठिर जिस सेना का संचालन कर रहे थे उस पर भीष्म और द्रोणाचार्य एक साथ टूट पड़े। यह देख नकुल तथा सहदेव दोनों युधिष्ठिर की सहायता के लिये दौड़ पड़े और बाणों का भयकर प्रहार कर दिया। भीम तथा घटोत्कच ने एक साथ दुर्योधन पर आक्रमण किया। घटोत्कच के रण कौशल के सामने भीमसेन की चतुराई तथा रण कौशल भी फीके पड़ गए। भीमसेन के एक बाण से दुर्योधन घबका खाकर बेहोश हो गया। यह देख सारथी ने सोचा कि यदि कहीं कौरव सेना को दुर्योधन के मूर्च्छित होने का पता चल गया तो सेना में खलबली मच जायेगी, इस लिए वह शीघ्र ही दुर्योधन के रथ को रण क्षेत्र से दूर ले गया। परन्तु जब कौरव सेना ने दुर्योधन का रथ न पाया तो सेना समझी कि दुर्योधन रण से भाग गया, इस लिए सारी सेना में हाहाकार मच गया और सेना तितर-बितर हो गई।

भय विह्वल होकर रण से भागते कौरव सैनिकों का भीमसेन ने पीछा किया और उन्हें बाण मार कर बहुत ही परेशान किया।

भागती सेना को भीष्म तथा द्रोणाचार्य ने बड़ी कठिनाई से रोका और उसे एकत्रित करके पुनः व्यवस्था रचना की। इतने में दुर्योधन की मूर्छा भंग हो गई और उसने पुनः रण स्थल पर आकर परिस्थिति को सम्भालने में सहयोग दिया। जब जरा शांति हुई और सेना व्यवस्थित हो गई तो दुर्योधन पितामह भीष्म के पास गया और इन्हें जली कटी सुनाने लगा। बोला—

“आप और आचार्य जी करते क्या हैं आप लोग अपनी सेना को भी व्यवस्थित नहीं रख पाते। जब भयकर आक्रमण होता है

तो आप की सेना की व्यवस्था भग हो जाती है और आप से कुछ करते नहीं बनता ? आप के अन्दर इतनी शक्ति है कि आप चाहें तो पाण्डवों को एक दिन में भगा सकते हैं, परन्तु आप से कुछ होता ही नहीं। इस का मतलब है कि आप पाण्डवों से स्नेह रखते हैं और वह स्नेह ही आपको हृदय से लड़ने नहीं देता। यदि यही बात थी तो आप ने पहले ही क्यों न कह दिया कि मैं पाण्डवों से नहीं लड़ सकता। एक तो आप के कारण कर्ण युद्ध में नहीं उतर रहा। दूसरे आप और द्रोणाचार्य, जब कि चाहें तो पाण्डवों को मार भगा सकते हैं पाण्डव हमारी सेना को मारे डाल रहे हैं। आप को जी लगा कर युद्ध करना चाहिए।”

दुर्योधन की बात सुनकर भीष्म जी को बड़ा क्रोध आया और वे बोले—“मैंने अपनी बात छिपाई ही कहा है ? मैंने तो पहले ही कहा था कि तुम पाण्डवों से नहीं जीत सकते। पर तुम नें मेरी सुनी भी हो। मैं बूढ़ा हो गया हूँ फिर भी तुम्हारी ओर से जी जान तोड़कर लड़ रहा हूँ। पर पाण्डवों की शक्ति के सामने कुछ बन नहीं पा रहा। इसमें मेरे पाण्डवों के प्रतिस्नेह को बिल्कुल दखल नहीं।”

इतना कहकर भीष्म ने पुनः युद्ध आरम्भ कर दिया।

इधर दिन के पहले भाग में कौरव सेना तितर बितर हो जाने से पाण्डवों में हर्ष छाया था। सारी सेना आनन्दित थी। पाण्डवों का विचार था कि आज भीष्म पुनः कौरव सेना को एकत्रित करके भयंकर रूप में न लड़ पायेंगे। परन्तु जब भीष्म जी ने कौरव सेना व्यवस्थित करके पुनः आक्रमण किया और क्रोध में आकर भयंकर रूप में लड़े तो पाण्डवों को अपने भ्रम का ध्यान आया। जो वीर भीष्म जी के सामने आया, वही ढेर हो गया। भीष्म जी जिधर से निकलते मारकाट करते चले जाते। पाण्डव सेना की व्यवस्था भग हो गई और श्री कृष्ण, अर्जुन तथा शिखण्डी भी अपने प्रयत्नों के बावजूद सेना में अनुशासन तथा व्यवस्था न रख सके।

यह देख श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा —“पार्थ ! अब तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया। तुम ने शपथ ली थी न कि भीष्म द्रोण आदि गुरु जनों, मित्रों और सम्बन्धियों का सहार करूँगा। अब

समय आ गया है कि अपनी शपथ को पूरा कर दिखानो। हमारी सेना इस समय भय विचलित हो रही है। उन के पाँव उखड़ रहे हैं। यही समय है कि भीष्म पर जोर का आक्रमण कर के अपनी सेना का साहस बधाओ और उसे नष्ट होने से बचाओ।”

अर्जुन ने यह सब देखा और श्री कृष्ण की बात सुन कर बोला—“माधव ! आप रथ को भीष्म जी की ओर कर लीजिये।”

अर्जुन को अपनी ओर आता देख भीष्म जी ने भयकर वेग से बाण वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु अर्जुन ने अपने बाणों के द्वारा ही उन बाणों से अपनी रक्षा की और अन्त में तीन बाण ऐसे मारे कि भीष्म जी का धनुष टूट गया। उन्होंने ज्यों ही दूसरा धनुष लेकर उसकी डोरी चढ़ानी चाही कि अर्जुन ने पुनः दो बाणों से उन के हाथ के धनुष को तोड़ डाला। तब भीष्म जी ने शीघ्रता से तीसरा धनुष लेकर अर्जुन पर तडातड़ तीन बाण चलाये परन्तु अर्जुन ने उन्हें बीच ही में काट दिया। फिर भीष्म जी की ओर से बाणों की वर्षा होने लगी। अर्जुन अपनी रक्षा तो करता रहा, परन्तु उसकी ओर से कोई आक्रमण कारी बाण न छूटने के कारण श्री कृष्ण को सन्देह हुआ कि अर्जुन के हृदय में भीष्म जी के प्रति जो असीम श्रद्धा है, उसी के वशी भूत हो कर वह अपनी पूरी शक्ति से नहीं लड़ पा रहा। उधर भीष्म जी के कई ऐसे तीखे बाण आये जो श्री कृष्ण को चोट पहुँचा गए। यह देख श्री कृष्ण ने इस प्रकार रथ को घुमा फिरा कर हाका कि भीष्म जी का कोई भी तीर अर्जुन अथवा उन्हें न लगे। कितनी ही देर तक यह चलता रहा पर अर्जुन अपने बाणों का प्रयोग आत्म रक्षा में ही कर पाया। यह देख क्रुद्ध होकर श्री कृष्ण सुदर्शन चक्र लेकर रथ से कूद पड़े और शीघ्रता से भीष्म जी की ओर दौड़े ! भीष्म ने जब श्री कृष्ण को आक्रमण करने आते देखा, वे तनिक भी विचलित न हुए। परन्तु जब अर्जुन ने उन्हें देखा तो वह रथ से कूद पड़ा और दौड़ कर उन्हें रोक लिया। कहा—“मधुसूदन ! आह अपनी प्रतीज्ञा क्यों भग्न करते है आप अस्त्र क्यों उठाते है ?”

श्री कृष्ण ने कहा—“हटो अर्जुन ! तुम युद्ध में अपने बड़ों का आदर करते हुए लड़ नहीं पा रहे तो क्या मैं भी पाण्डव सेना को

अर्जुन ने विनीत भाव से कहा—“मधुसूदन ! मुझे क्षमा कीजिए, मैं अपनी सुस्ती पर बहुत लज्जित हूँ। आप रथ पर चलिए, व आपको कोई शिकायत नहीं रहेगी।

अर्जुन के बार बार आश्वासन देने पर श्री कृष्ण लौटकर रथ पर आ बैठे और सतर्कता से रथ हाकने लगे। अर्जुन पूरे वेग से युद्ध करने लगा। उसने ऐसा आक्रमण किया कि कौरवों की सेना तितर बितर हो गई। सूर्यास्त होते होते कौरव सेना थक कर चूर हो चुकी थी और अर्जुन ने कुछ ही देर में हजारों शूरवीरों को मार गिराया था।



* पैतीसवां परिच्छेद *

चौथा दिन

पौ फटी और भीष्म ने कौरव सेना का पुनः व्यूह रचा । द्रोण, दुर्योधन आदि भी उन्हें घेरकर खड़े हो गए । जब सेना की व्यवस्था ठीक हो गई तो भीष्म जी ने सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया । उधर अर्जुन कपि की ध्वजा वाले रथ से भीष्म जी की समस्त गतिविधियों को देख रहा था, उसने भी अपनी सेना को ठीक किया और आगे बढ़ा । युद्ध आरम्भ हो गया ।

अश्वस्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, शल-पुत्र आदि पांच वीरो ने अभिमन्यु को एक साथ घेर लिया और भीषण वार करने लगे । परन्तु अर्जुन पुत्र बालक वीर अभिमन्यु तनिक भी विचलित न हुआ और आक्रमण का वीरता पूर्ण दृढ़ता के साथ मुकाबला करने लगा । मानो एक सिंह शावक हाथियों के झुण्ड का मुकाबला कर रहा हो । अर्जुन ने जब यह देखा तो उसे बड़ा क्रोध आया और तुरन्त ही अभिमन्यु की रक्षा के लिए पहुंच गया । अर्जुन के पहुंचते ही युद्ध में गम्भीरता आ गई । इतने में घृष्ट द्युम्न भी भारी सेना लिए वहां आ पहुंचा ।

शल का पुत्र मारा गया, यह सूचना पाते ही शल और शल्य उम स्थान पर जा पहुंचे और घृष्ट द्युम्न पर वाणों की वर्षा करने लगे और उन्होंने उसका धनुष काट डाला । यह देखकर अभिमन्यु घृष्ट द्युम्न की सहायता के लिए पहुंच गया और उसने जाते ही शल्य पर तीक्ष्ण वाणों की वर्षा कर दी । फिर क्या था शल्य भी

उबल पड़ा। वह बड़े ही भयंकर रूप में युद्ध करने लगा, इस से अभिमन्यु को क्रोध आ गया और उसने जो तीक्ष्ण बाण वर्षा करके भयानक युद्ध छेड़ा तो शल्य के प्राणों पर आ बनी। यह देख कौरव वीरों को चिन्ता हुई। दुर्योधन और उसके भाई शल्य की रक्षा के लिए आये और शल्य को चारों ओर से घेर कर पाण्डव वीरों से लड़ने लगे। तभी भीमसेन आ निकला और उसने भीषण संग्राम आरम्भ कर दिया। दुर्योधन को भीमसेन पर बड़ा क्रोध आया और उसने हाथियों की भारी सेना लेकर उन्मत्त गज समान भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन उसी समय एक लोहे की भारी गदा लेकर रथ से कूद पड़ा और भीमसेन की गदाओं की मार से हाथी बिगड़ खड़े हुए और आपस में ही लड़ने लगे। वह दृश्य बड़ा ही बीभत्स हो गया। हाथियों की यह दयनीय दशा देखकर पाण्डवों ने उन पर बाण वर्षा कर दी जिससे हाथी और भी भयभीत हो गए।

और लोग हाथियों की इस दशा को देखकर ही काप जाते, परन्तु भीमसेन गदा लिए हुए उन हाथियों के बीच ही युद्ध कर रहा था। अनेक हाथी भीमसेन के हाथों मारे गए और पहाड़ों की भांति रण भूमि में गिर पड़े। बचे खुचे हाथी अपने प्राण लेकर भागने लगे और इस प्रकार कौरवों की सेना का ही नाश करने लगे।

अपनी इस दुर्गति का कारण भीमसेन को समझ कर दुर्योधन ने अपनी सेना को ललकार कर आदेश दिया कि सभी मिलकर एक साथ भीमसेन पर आक्रमण कर दो। सेना ने आज्ञा का पालन किया, परन्तु भीमसेन मेरु पर्वत के समान डटा खड़ा रहा। सेना उसका कुछ न बिगाड़ सकी, उल्टे कितने ही कौरव वीर भीमसेन के हाथों मारे गए।

इधर दुर्योधन ने कुछ बाण ऐसे मारे कि भीमसेन के ऊपर आ लगे। इस से भीमसेन कुपित हुआ और दुर्योधन तथा उसके भाईयों पर आक्रमण करने हेतु पुनः रथ पर आ चढ़ा और आक्रमण कर दिया। फिर इतना भयंकर युद्ध किया कि दुर्योधन के आठ भाई मारे गए।

उधर घटोत्कच ने जब देखा कि कौरव वीर डकट्ट होकर

भीमसेन को घेर लेना चाहते हैं, उत, मे भीष्म जी भी है, तो वह क्रुद्ध होकर अपने दिव्यास्त्र जलाता हुआ उनके सामने जा-अड़ी। भीष्म जी ने कितना ही भयकर युद्ध किया पर वे घटोत्कच से छुटकारा न पा सके। बल्कि भीष्म जी के साथ साथ रहने-वाले कुछ कौरव भ्राता मारे गए।

सारे दिन कौरव वीर-पिटते ही रहे और भीमसेन तथा घटोत्कच दोनों ही प्रमुख पाण्डव वीर थे जिन्होंने कौरवों को-होश न लेने दिया।

जब सूर्यास्त हुआ, तो दुर्योधन ने सुख की सांस ली। -थका साँदा-अपनी सेना लेकर अपने कैंप की ओर चला गया। रात्रि को वह अकेले ही भीष्म पितामह के पास चला गया और बड़ी नम्रता के साथ उन से जाकर कहा—“पितामह ! यह तो सारा ससार जानता है कि आप, द्रोण, कृप, अश्वस्थामा, कृत वर्मा, भूरिश्रवा, विकर्ण, भगदत्त आदि साहसी वीर मृत्यु से भी नहीं डरते। इस में भी कोई सन्देह नहीं कि आप लोगो की शक्ति और पराक्रम के सम्मुख पाण्डवों की सेना भी कुछ नहीं है। आप में से एक-एक के विरुद्ध पाँचों पाण्डव भी इकट्ठे होकर जुट जाए, फिर भी-जीत उनकी नहीं हो सकेंगी। इतना होने पर भी क्या कारण है कि कुन्ती पुत्र प्रतिदिन हमें हराते ही जाते हैं। जरूर इसमें कोई रहस्य है, क्या है ? कृपया उसे मुझे बताइये।”

भीष्म जी ने शांत भाव से कहा—“बेटा दुर्योधन ! मैंने तुम्हें कई बार समझाया, पर तुम ने मेरी एक न मानी। मैं फिर कहता हूँ पाण्डवों से सन्धि कर लो। पाण्डवों के मुकाबले पर एक बार यदि-देवतागण भी आ जाए तो भी वे परास्त नहीं हो सकते। क्योंकि वे अपनी शुभ-प्रकृति और धर्म नीति के कारण अजेय हैं। वे न्याय की ओर हैं और तुम्हारा पक्ष अन्याय का है। श्री कृष्ण वासुदेव उनके साथ हैं। धर्मराज युधिष्ठिर के शुभ कर्मों का फल उन्हें अवश्य ही मिलेगा। तुम सन्धि करके थोड़ा सा उनका राज्य लौटा दो तो वे तुम्हारे भाई-हो रहेगे, तुम फिर भी राजा ही रहोगे और सर्वनाश से बच जाओगे। एक कुल के लोग होकर क्यों लड़ते हो। धर्मराज तथा श्री कृष्ण के मुकाबले हम जीत ही नहीं सकते। उनकी रक्षा उनका धर्म कर रहा है। वस यही रहस्य है।”

उस दिन दुर्योधन को त्रोध नही आया। शांत होकर अपने शिविर में चला गया। पलंग पर लेटा हुआ बड़ी देर तक अपने विचारों में डूबा रहा। उसे नीद नहीं आई।

* छत्तीसवां परिच्छेद *

पांचवां दिन

अगले दिन प्रातः होने पर ही फिर दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए सज्जित हो गईं। भीष्म जी ने आज और भी अच्छी तरह अपनी सेना की व्यूह रचना की। इधर युधिष्ठिर ने पाण्डव सेना की कुशलता पूर्वक व्यूह रचना की। सदा की भांति आज पुनः भीम सेन को आगे रखा गया। शिखंडी, धृष्टद्युम्न और सात्यकि भीमसेन के पीछे सेना लेकर खड़े हुए। सब से पिछली पंक्ति में युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव थे।

शंख ध्वनि के साथ लड़ाई हुई। भीष्म ने धनुष उठा कर पहली टकार की और बाण वर्षा कर के पाण्डव सेना का नाकों दम कर दिया। सेना में हाहाकार मच गया यह देख कर धनजय ने कई बाण भीष्म जी पर मारे और उन्हें बहुत तंग कर डाला। आज भी अपनी सेना को भीम तथा अर्जुन के बाणों के हत प्रभ होते देख दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को बहुत बुरा भला कहा। रुष्ट होकर द्रोण बोले—

“तुम पाण्डवों के पराक्रम से परिचित ही नहीं हो और व्यर्थ ही मे वक भ्रक किया करते हो। मैं अपनी ओर से युद्ध में कोई कसर नहीं रखता तुम निश्चय जानो।”

यह कह कर द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना पर टूट पड़े। यह देख सात्यकि ने भी शक्ति पूर्वक उस आक्रमण का जवाब दिया।

भयानक युद्ध छिड़ गया। सात्यकि भला द्रोणाचार्य के सामने कब तक टिकता। सात्यकि की बुरी गत होते देख भीमसेन उस की सहायता को दौड़ आया और द्रोणाचार्य पर आते ही भयकर बाण वर्षा आरम्भ कर दी।

इस पर युद्ध और जोर पकड़ गया। द्रोण, भीष्म और शन्य तीनों भीमसेन के मुकाबले पर आगए। यह देख शिखंडी ने भीष्म तथा द्रोण दोनों पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी शिखंडी के मैदान में आते ही भीष्म रण भूमि छोड़ कर चले गए। क्योंकि उनका कहना था कि शिखण्डी जन्म से ही पुरुष न होकर स्त्री है इस लिए उसके साथ लडना क्षात्र-धर्म के विरुद्ध है।

जब भीष्म भी मैदान छोड़ गए तो द्रोणाचार्य ने शिखंडी पर आक्रमण कर दिया। महारथी होते हुए भी शिखंडी द्रोणाचार्य के सामने अधिक देर न टिक सका।

दोपहर तक भीषण सकुल युद्ध होता रहा। दोनों ओर के सैनिक आपस में गुत्थम-गुत्था होकर लड़ने लगे। दोनों ओर से असंख्य वीर इस युद्ध की बलि चढ़ गए।

तीसरे पहर दुर्योधन ने सात्यकि के विरुद्ध एक भारी सेना भेज दी। पर सात्यकि ने उस सेना का सर्वनाश कर दिया और भूरिश्रवा को खोज कर जा कर उस से भिड़ गया। परन्तु भूरिश्रवा भी कोई कम वीर न था। वह भी डटा रहा और अन्त में सात्यकि के सभी साथी थक कर अलग हो गए। अकेला सात्यकि डटा रहा। यह देख कर सात्यकि के दसों पुत्र भूरिश्रवा पर टूट पड़े।

परन्तु भूरिश्रवा तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उन की एक साथ की गई बाण वर्षा से वह अपनी रक्षा करता रहा और अन्त में अपने बाणों से उन सभी के धनुष तोड़ डाले और अचानक ही एक ऐसा भयकर अस्त्र प्रहार किया कि दसो कुमार मारे गए। वे दसों भूमि पर ऐसे गिरे जैसे वज्र गिरने पर पेड़ धाराशायी हो जाते हैं। अपने दसो पुत्रों को इस प्रकार मृत देख सात्यकि मारे शोक व क्रोध के आपे से बाहर हो गया और भूरिश्रवा पर टूट पड़ा, दोनों के रथ आपस में टकराकर चूर हो गए। तब दोनों ढाल तलवार लेकर भूमि पर लड़ने लगे। इतने में भीमसेन तेजी से रथ लेकर आया और सात्यकि को बलपूर्वक रथ में बैठाकर रण भूमि

से बाहर ले गया। भूरिश्रवा तलवार का घनी था, उसके सामने खडग युद्ध में किसी का टिक पाना दुर्लभ ही था, भीमसेन को यह बात ज्ञात थी, इसीलिए वह सात्यकि को रणक्षेत्र से बाहर ले गया।

सन्ध्या होते होते अर्जुन ने हजारों कौरव सैनिकों का जीवन समाप्त कर दिया, जितने वीर दुर्योधन ने अर्जुन से लड़ने भेजे वे वेचारे सभी बेबस होकर मरे जैसे आग में कीड़े। यह देखकर पाण्डव सेना ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया और जोर का जय जयकार कर उठे। उधर सूरज डूब गया और भीष्म ने युद्ध वन्द कर देने की आज्ञा दे दी।



* सैंतीसवां परिच्छेद *

छटा दिन

महाभारत के युग मे सैन्य व्यूहो के नाम पशु अथवा पक्षी के नाम पर होते थे । आप जानते ही होंगे कि व्यायाम के जो आसन प्रचलित है उनके नाम भी पशु पक्षियों के नाम पर ही होते हैं, जैसे मत्स्यासन, गरुडासन आदि । ऐसा प्रतीत होता है कि आसनो के उक्त नाम भी उसी युग की यादगार हैं । हा सैन्य शक्ति की व्यूह रचना आजकल उस युग के समान नहीं होती, युग बदल गया है और विज्ञान के नवीन चमत्कारो के साथ साथ युद्ध प्रणाली और सैन्य व्यवस्था मे भी बहुत परिवर्तन आ गया है ।

उन दिनों किसी व्यूह विशेष की रचना करते हुए यह ध्यान रखा जाता था कि सेना का फैलाव कैसा हो ? विभिन्न सेना विभागो का विभाजन किस प्रकार-हों ? किस स्थान पर कौनसा भाग किस के नेतृत्व मे रक्खा जाये ? कौन कौन से सेना-नायक किन-किन मुख्य स्थानो पर सैन्य संचालन को ? किस की सहायता के लिए अवसर आने पर कौन जा सकता है ? इत्यादि । इन सब बातों को खूब सोच दिचार कर और शत्रु सेना के योद्धाओ तथा उनके आक्रमण आदि का विचार करके आक्रमण तथा बचाव दोनों प्रकार की कार्रवाइयो की कुशल व्यवस्था करना ही व्यूह रचना कहलाती थी । जिस व्यूह का आकार गरुड के आकार का होता वह गरुड व्यूह कहलाता और जो मगरमच्छ के आकार का होता उसे मकर-व्यूह कहते थे । युद्ध के संचालक जिस दिन जो उद्देश्य

लेकर युद्ध करते. उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक प्रवन्ध करते और पहले ही योजना बनाकर व्यूह रचना करते थे ।

—तो उस दिन ज्यो ही रात्रि का घूघट उठा और सूर्य की रूपहली किरणों का मुखड़ा दिखलाई दिया, दुर्योधन अपने शिविर से निकल कर भीष्म जी के शिविर की ओर बढ़ा । उसके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ स्पष्ट थी, वह कुछ सोच रहा था और उसके भारी नेत्रों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता था कि वह रात्रि को सो नहीं पाया है । विचारों में डूबा हुआ वह चला जा रहा था, कभी उसके चेहरे पर शोक एवं दुःख के भाव झलक आते तो कभी क्रोध तथा आवेश उसके वदन पर प्रतीत होता । विभिन्न भावनाओं के ज्वार भाटे में डूबता उछलता दुर्योधन भीष्म जी के पास पहुँचा । पितामह दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर अपनी सैन्य पोशाक पहन गये थे । ज्यो ही मुह लटकाएँ दुर्योधन को अपने सामने पाया बोले—“आज प्रातः ही दुःखित मुद्रा लिए आ रहे हो क्या बात है ?”

“दादा जी ! आप मुझ से ऐसा प्रश्न कर रहे हैं, मानो आपको कुछ पता ही नहीं है । आप मेरे मन की व्यथा को जानते हुए भी ऐसा युद्ध कर रहे हैं । इतना कटु परिहाम न कीजिए ।”—दुःखित होते हुए दुर्योधन ने कहा ।

भीष्म जी ने दुर्योधन की बात सुनी तो वे स्वयं आश्चर्यचकित रह गए । आश्चर्य चकित इस लिए कि गत दिनों हुई कौरवों की हार से दुर्योधन का मन इतना कथित हो जायेगा, धीरज बिल्कुल छोड़ देगा, वह इसकी उन्हे आशा ही न थी । फिर उनके विचार से विगत ५ दिनों में ऐसी तो कोई बात नहीं हुई थी जिससे यह प्रगट होता है कि पाण्डव विजय के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं और कौरव बिल्कुल ही डूब रहे हैं । अतः वे बोले—“वेटा ! अभी तो युद्ध होते पाँच ही दिन हुए हैं । इन पाँच दिनों में तुम्हें कोई ऐसी तो क्षति नहीं पहुँची जिसके कारण तुम इतने दुःखित हो । हाँ, हमारे जो वीर मारे गए, उनका शोक किया जा सकता है । परन्तु इतने भयंकर और महा युद्ध में वीरों की वलि न हो, यह तो असम्भव है । हमें तो न जाने कितने महान योद्धाओं का विछोह भी सहन करना होगा । इस युद्ध में विजय यही तो नहीं मिलने वाली । फिर तुम जैसा साहसी अभी से दिल तोड़ बैठे, धीरज खो देगा तो

फिर कैसे काम चलेगा ।”

दुर्योधन ने दीर्घ विश्वास छोड़ा और बोला — “पिता यह, मुझे अपने प्यारे वीरो के विछोह का इतना गम नहीं जितना शोक इस बात का है कि, जबकि आप के पास इतनी विनाश एव भयानक सेना है, और उसकी व्यूह रचना भी बड़ी सावधानी से की जाती है, फिर भी पाण्डव महारथी उसे तोड़कर हमारे वीरो को मार डालते हैं । हमारे दुर्गम मकर व्यूह तक को उन्होंने तोड़ डाला और जबकि व्यूह में मेरा ऐसा सुरक्षित स्थान होता है कि शत्रु का वहां तक पहुंचना असम्भव होना चाहिए, फिर भी भीमसेन ने अपने मृत्यु दण्ड के समान प्रचण्ड वाणों से मुझे तक घायल कर डाला । दादा जी ! कल तो भीमसेन की रोष पूर्ण मूर्ति को देखकर मेरा कलेजा काप गया । पाण्डव जब जयघोष करते युद्ध से लौटते हैं उस समय मेरे मन पर क्या बीतती है, बस कुछ न पूछिये । हमारे पास उन से सेना अधिक, आप जैसे महारथी हमारे पास, और फिर भी राज्य विहीन पाण्डव हमारे सामने से अकड़ते व फुफकारते तथा विजय घोष करते निकलें, यह मुझ से नहीं देखा जाता । मैं तो आप की कृपा से पाण्डवों का काम तमाम करने के स्वप्न देखा करता था ।”

दुर्योधन की बात भीष्म पितामह ने धीरज से सुनी और वे मुस्करा दिए । जैसे उनके मन में यह भाव जमा हो कि—“मूर्ख ! बस इतनी सी बात पर घबरा गए ।” — किन्तु भीष्म जी ने कदाचित् अपने भावों को छुपाते हुए कहा—“दुर्योधन ! मैं तो अधिक से अधिक प्रयत्न करके पाण्डवों में घुसता हूं और जो सामने पड़ जाता है उसे ही यमलोक पहुंचाने में अपने प्राणों तक की बाजी लगा देता हूं । भविष्य में भी मैं अपने प्राणों का मोह त्याग कर पाण्डवों को परास्त करने के लिए जी जान तोड़कर लड़ूंगा । तुम विश्वास रखो कि मैं तुम्हारी ओर हूं तो शत्रु की ओर से देवता भी क्यों न आ जाये, उन्हें भी मारने में न चूकूंगा । परन्तु जब शत्रु की शक्ति पर मैं पार नहीं पा सकूं तो मैं क्या करूं ?”

“दादा जी ! आप कुछ ऐसा कीजिए कि मेरे हृदय पर रक्खा यह भारी बोझ किसी प्रकार हटे । मैं बड़ा चिन्तित हूँ ।”— दुर्योधन बोला ।

राजन् ! दुःख त्याग कर साहस से काम लो । जाओ अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दो । मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकता हूँ । इस से अधिक और क्या कर सकता हूँ ।”

भीष्म जी की बात सुनकर दुर्योधन को कुछ सान्त्वना मिली । क्योंकि उसके मन में यही खटका रहता था कि कहीं भीष्म पितामह पाण्डवों के आगे ढीले न पड़ जाय, और जब वह भीष्म जी से यह सुनता कि वे पूर्ण शक्ति से युद्ध कर रहे हैं तो उसे बहुत प्रसन्नता होती और यह आशा हो जाती कि फिर तो उसकी विजय निश्चित है ।

X

X

X

X

सेना को तैयार करने के लिए बिगुल बजा दिया गया । कुछ ही देर बाद सैनिकों के भुण्ड के भुण्ड अपने अपने शिवरो से निकल कर मैदान में आ गए । उस दिन भीष्म जी स्वयं सेना के आगे गए और उचित हिदायते करके स्वयं व्यूह रचना में लग गए । उन्होंने भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से लैस कौरव सेना को मण्डल व्यूह की विधि से खड़ा किया । उस में प्रधान प्रधान वीर गजरोही, अश्वरोही, पदाति और रथियों को बहुत ही सोच समझ कर उपयुक्त स्थानों पर खड़ा किया । और स्वयं ने ऐसा स्थान लिया कि देखने से प्रगट होता, मानो सारी कौरव सेना भीष्म जी की रक्षा के लिए हो और भीष्म जी अकेले समस्त सेना की रक्षा के लिए तैनात हो । उस दिन व्यूह के सभी जोड़ों और प्रथकन् पक्ति में विकट गाड़ियो, तोप व गोला बारूद से भरी जहाज रूपी गाड़ियो को खड़ा किया । पश्चिम की ओर को इस दुर्भेद्य व्यूह का मुख रखा गया ।

दूसरी ओर युधिष्ठिर ने जब भीष्म जी द्वारा रचित मण्डल व्यूह की व्यवस्था देखकर अपनी सेना को वज्रव्यूह के रूप में खड़ा किया और उसके द्वार पर भयंकर विकट गाड़िया लगा दी । पाण्डव वीरों ने मुख्य मुख्य स्थानों पर अपने अपने रथ रखे और जब सारी व्यवस्था हो चुकी तो महाराज युधिष्ठिर ने अपने समस्त वीरों को पुकार कहा—“वीरों ! पांच दिन से आप सभी का पराक्रम शुभ के सीने पर वज्राघातों का काम कर रहा है । हम मरणा में कम हैं, पर साहस, उत्साह, बल और शौर्य हमारे पास

शभुओ से सहस्र गुना अधिक है। हमारे साथ वासुदेव श्री कृष्ण जैसे महान् योद्धा और सर्व शक्तिमान कुशल कूट नीतिज्ञ है उनका प्रताप और आप वीरो का साहस हमारी विजय की गारंटी है। इस लिए आज पुन दिखा दो कि न्याय तथा धर्म के सामने दैत्यो की शक्ति नहीं ठहर सकती।”

धर्मराज के आह्वान को सुनकर मदोन्मत्त वीरो ने सिंह गर्जना की। प्रमुख वीरो ने उत्साह पूर्वक गख ध्वनि की और पदाति वीर धर्मराज युधिष्ठिर के जयनाद करने लगे। कौरव वीरो ने भी उत्तर में भयकर सिंह नाद किए और युद्ध के लिए उतावले होकर पाण्डवों के व्यूह को तोड़ने के लिए आगे बढ़े।

भीष्म जी की गख ध्वनि सुनकर सर्वप्रथम विकट गाड़ियो द्वारा गोले बरसाये जाने लगे। कौरवो की ओर से हो रही गोलो की वर्षा से भयानक ध्वनि होने लगी। जिसे सुन कर सेना के हाथी और घोड़े विचलित हो गए और हाथियो की चिंघाड तथा घोडो की हिनहिनाट ने भीषण वातावरण बना दिया, कान पड़ी आवाज भी उस शोर में सुनाई न देती। पाण्डवो की ओर से भी विकट गाड़ियों ने आग उगलनी आरम्भ कर दी। और जब कौरवो की विकट गाड़ियो से सैनिको की ओर मुह करके गोले बरसाये जाने लगे तब पाण्डवो की ओर से कुछ ऐसे गोले दागे गए जिन के फटते ही चारो ओर धुआं फैल गया। कौरव सेना सारी की सारी धुए के बादलो में घिर गई और कौरवो के विकट गाड़ियो पर तैनात सैनिको को कुछ देर के लिए यह भी पता न चला कि पाण्डव वीर क्या कर रहे हैं और वे हैं किधर। उनके गोलो की वर्षा रुक गई।

उचित अवसर देख पाण्डव वीर कौरवो के व्यूह को तोड़ने के लिए तीव्र गति से आगे बढ़े और ज्योंही धुए के बादल साफ हुए तो द्रोणाचार्य सामने राजा विराट, अश्वस्थामा के आगे शिखण्डी, दुर्योधन के सम्मुख धृष्टद्युम्न और शल्य के सामने उनके भानजे नकुल तथा सहदेव युद्ध के लिए आ डटे दिखाई दिए। अवन्ति नरेश विन्द और अनुन्दि ने दुरापना को और भीम सेन ने कृतवर्मा तथा कर्ण विकर्ण आदि को घेर लिया। अर्जुन ने शेष समस्त राजाओ को और उसके पुत्र अभिमन्यु ने दुर्योधन के दूसरे

माईयों को घेर कर युद्ध आरम्भ कर दिया। घटोत्कच ने परम ज्योतिष नरेश भगदत्त पर आक्रमण कर दिया। अलम्बुष रणोन्मत्त सात्यकि और उसकी सेना के साथ युद्ध रत होने पर विवश हुआ। वृष्ट केतु भूरिश्रमा पर टूट पड़ा और धर्मराज युधिष्ठिर श्रुतायु ने, वेकितान कृपाचार्य से और अन्य सब भीष्म जी से युद्ध करने लगे।

अर्जुन को अनेक राजाओं से पाला पड़ा। वे विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर अर्जुन को घेर रहे थे। अर्जुन के बाणों के उत्तर में समस्त कौरव पक्षी राजा चारों ओर बाण वर्षा करने लगे और जब अर्जुन का वेग उन से दूर न हुआ तो वे विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। उस समय अर्जुन बुरी तरह घिरा हुआ था। परन्तु श्री कृष्ण इस प्रकार से रथ को हांक रहे थे कि रथ का इधर उधर घूमना ही शत्रुओं के तीरों के लिए अर्जुन की ढाल बना हुआ था। चारों ओर से घिरे अर्जुन को देखकर देवताओं को भी आश्चर्य हो रहा था और गन्धर्व जिनकी अर्जुन से सहानुभूति थी, वे तो विस्मित होकर युद्ध को देख रहे थे। अर्जुन को एक बार बड़ा क्रोध आया और उसने आव देखा न ताव एचास्त्र का वार किया जिससे शत्रुओं के सभी बाण व्यर्थ हो गए, फिर क्या था अर्जुन के सामने जो भी आया वह घायल हुए बिना न रहा। यहां तक कि हाथी घोड़े आदि भी बुरी तरह घायल होने लगे। अर्जुन ने एक बाण ऐसा मारा कि आग की लपटें सी निकली और हाथी घबराकर गरजने लगे। यहां तक कि सारथियों के हज़ार सम्भालने पर भी घोड़े बेकाबू हो गए। तब शत्रु राजाओं ने अपने का असफल जानकर भागकर भीष्म जी की शरण ली। जैसे डूबता हुआ व्यक्ति तिनके का सहारा लेने के लिए हाथ पाव मारता है, ठीक उसी प्रकार अपनी ताव अर्जुन के रण कौशल और दिव्यास्त्रों रूपी सागर में डूबते देख शत्रु राजाओं ने भीष्म जी रूपी महान जहाज़ की शरण में भाग कर जाने का प्रयत्न किया। शरणागत राजाओं की रक्षा करने और अर्जुन के प्रचण्ड आक्रमणों से कौरव सैनिकों तथा योद्धाओं को बचाने के लिए भीष्म जी ने दूसरे विरोधी को छोड़ कर अर्जुन की ओर अपना रथ हकवाया और बड़ी फुर्ती से आकर अर्जुन से युद्ध करने लगे।

इधर द्रोणाचार्य ने बाण मारकर मत्स्यराज विराट को घायल

कर दिया। परन्तु शरीर से रक्त की धारा फूट निकलने के उपरान्त भी विराट युद्ध भूमि में डटे रहे। उन्होंने द्रोणाचार्य पर कुपित होकर ऐसे तीक्ष्ण दिव्य बाण मारे कि वे तिलमिला उठे और आत्म रक्षा करना उनके लिए एक समस्या बन गई। उस समय विराट ने चेतावनी देते हुए कहा।—“आचार्य जी! यहाँ आपकी विद्वता के प्रति श्रद्धा हमारे आँडे नहीं आ सकती। आपके कौशल को दुर्योधन के अन्याय का ग्रहण लग गया है।”

द्रोणाचार्य इन शब्दों से चिढ़ गए और उन्होंने कुछ ऐसे बाण प्रयोग किए, जिनको रोक सकने में विराट सफल न हो सके और देखते ही देखते बाणों से विराट के रथ की ध्वजा गिर गई। जो अभी तक हवा में बड़ी शान से लहरा रही थी, अब धूल में रुलने लगी। और फिर विराट का सारथि घायल होकर लुढ़क गया। अश्व भी घायल हो गए। तब विवश होकर विराट अपने पुत्र शख कुमार के रथ पर जा चढ़े और पिता पुत्र दोनों द्रोणाचार्य के ऊपर वार करने लगे। दोनों ओर से बाणों की झड़ी लगी थी। एक वार तो बाणों की एक ऐसी रेखा सी बन गई जो कहीं टूटती ही प्रतीत नहीं होती थी। शख कुमार ने कुछ देर बाद ऐसे बाण चलाए जो कि द्रोणाचार्य के धनुष पर चढ़ते बाणों को छूटने से पहले ही गिरा देते। तब द्रोणाचार्य पर यह स्पष्ट हो गया कि जब तक शख है, उनका एक भी वार विराट का कुछ न बिगाड़ सकेगा। इस लिए उन्होंने अपना एक विशेष बाण निकाला और विद्युत् गति से उसे धनुष पर चढ़ाकर मारा। बाण एक विषैले सर्प की भाँति शख की ओर बढ़ा उसकी नोक से चिनगानिया सी छूट रही थी और एक विशेष प्रकार की गंध आ रही थी। इस विचित्र बाण को देखकर विराट काप उठे और जब वह बाण आकर शख कुमार की छाती पर लगा, तो क्रोध के मारे विराट पागल से हो गए, उन्होंने क्षण भर में ही अनेकों बाण द्रोणाचार्य पर मारे जिनसे वे घायल हो गए। पर ज्यों ही शख कुमार लोह लुहान हुआ चीखता हुआ रथ से पृथ्वी पर गिरा तो विराट का रोम रोम सिहर उठा। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र के शव को विह्वल होकर वे रथ से कूद पड़े और पुत्र के शरीर को उठाकर रथ में रख रण भूमि से बाहर चल पड़े।

उधर विकट गाड़िया आपस में टकरा रही थी इधर विसरे नरेश के युद्ध भूमि से जाते ही द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना पर टूट पड़े और अनेक स्थानों पर से पाण्डव सेना की पक्तियाँ उन्हींने भग कर दी। इस प्रकार पाण्डवों की विशाल वाहिनी अकेले द्रोणाचार्य के ही कारण सैंकड़ों हज़ारों भागों में विभक्त हो गई।

शिखण्डी अश्वस्थामा के सामने डटा हुआ था। दोनों ही बड़े वीर थे, एक दूसरे की टक्कर के भी थे। कितनी ही देर तक जब दोनों ओर से वार होते रहे और फिर भी कोई न गिरा, या किसी को कोई क्षति भी नहीं पहुँची तो शिखण्डी ने ललकार कर कहा—
“वड़े वीर बनते थे। अपने शौर्य का कुछ चमत्कार भी दिखाओगे या यूँही।”

अश्वस्थामा गरज कर बोला— “चमत्कार देखकर ठहर नहीं सकोगे।”

इतना सुन कुपित होकर शिखण्डी ने एक ऐसा बाण मारा कि अश्वस्थामा की भृकुटी के बीच में चोट लगी। रक्त वह निकला। इस बात से अश्वस्थामा को बड़ा क्रोध आया और उसने कुछ दिव्यास्त्र प्रयोग करके शिखण्डी के रथ की ध्वजा तोड़ डाली, और फिर सारथी तथा घोड़ों को भी मार गिराया। तब शिखण्डी ढाल तलवार लेकर मैदान में आ डटा। परन्तु अश्वस्थामा तो रथ पर सवार था उसने अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए तीक्ष्ण बाणों के द्वारा महावली शिखण्डी को अपने रथ की ओर बढ़ने से रोक दिया और फिर कुछ ऐसे बाण प्रयोग किए जिनसे उसके खड़ेग और दान को तोड़ डाला। बाणों की भाँति बड़े वेग से झपटते शिखण्डी के हाथों के शस्त्र नष्ट हो जाने के कारण अब उसके पास एक ही चारा था कि वह पुनः रथ पर सवार होकर युद्ध करे। वरना अश्वस्थामा को बाण वर्षा से वह स्वयं भी डेर हो सकता था। शिखण्डी ने ऐसा ही किया और वह दौड़ कर सात्यकि के रथ पर चढ़ गया।

वीरवर सात्यकि राक्षस वशी अलम्बुष के सामने डटा हुआ था। सात्यकि के सहस्रों बाणों की मार से अलम्बुष घायल हो गया। जिन कारण वह क्रोध के मारे जलने लगा और एक बार अर्ध चन्द्राकार बाण मारकर उसने सात्यकि का धनुष ही तोड़ डाला और

कर दिया तक कि सात्यकि दूसरा धनुष उठाए, अलम्बुष ने अनेक भीम मार कर उसे भी घायल कर दिया। उस अवसर पर, जब कि सात्यकि के शरीर से अनेक स्थानों पर रक्त धारा वह रही थी, उसका बड़ा ही विचित्र पराक्रम देखने को मिला। तीखे तीखे बाणों की चोट खाने पर भी सात्यकि के मुख पर घबराहट का कोई चिह्न न था, इसके विपरीत उसने शीघ्र ही एक दूसरा धनुष सम्भाला। अलम्बुष ने उस समय राक्षसी माया प्रयोग करके तीक्ष्ण तथा अतिसहारक बाणों की झड़ी लगा दी थी परन्तु बाणों से चोट पर चोट खाते हुए भी सात्यकि ने अर्जुन से मिला ऐन्द्रास्त्र चढाया और अपनी सशुद्ध शक्ति से उसे मारा। फिर क्या था अस्त्र के प्रभाव से समस्त राक्षसी माया भस्म हो गई। और तत्काल ही बाणों की वर्षा इतने वेग से की कि अलम्बुष का साहस टूट गया और उसे ऐसा हुआ कि कुछ देर इसी प्रकार महा पराक्रमी सात्यकि बाण बरसाता रहा तो वह मारा जायेगा। यह सोचकर उसने रण भूमि से भाग जाने में ही अपना कल्याण समझा और देखते ही देखते सात्यकि का सामना करना छोड़कर बड़े वेग से रण भूमि से भाग खड़ा हुआ। अलम्बुष के हटते ही सात्यकि ने दुर्योधन के भाईयों पर आक्रमण किया और एक अस्त्र प्रयोग करके उनके धनुष तोड़ डाले, वेचारे कौरव भ्राता कुछ भी न कर पाये और रण भूमि से भाग जाना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा।

विकट गाड़िया एक दूसरे पर गोले बरसा रही थी, बड़ी भयंकर आवाज हो रही थी कि दिल दहल जाता था और इधर द्रुपद के पुत्र महावली धृष्ट द्युम्न ने अपने तीक्ष्ण बाणों से दुर्योधन को ढक दिया था। बाणों की छाया में रहकर भी दुर्योधन भयभीत न हुआ और किसी प्रकार रथ को इधर उधर घुमा फिराकर कुछ ऐसा अवसर प्राप्त कर लिया कि वह स्वयं भी बाण चला सके। तडातड़ ९० बाण क्षण भर में ही मारे जिनसे धृष्ट द्युम्न का कवच कई स्थानों पर कट गया फिर क्या था धृष्ट द्युम्न ने कुपित होकर दुर्योधन के सारथि और घोड़ों तक को मार डाला। कदाचित् फिर दुर्योधन के मरने का ही नम्वर आता, परन्तु वह दौड़कर शकुनि के रथ पर जा चढ़ा और इस प्रकार धृष्ट द्युम्न के हाथों से बच नकला।

दुर्योधन को परास्त करके धृष्ट द्युम्न कौरव सेना के दूसरे वीरों पर टूट पड़ा और बड़ी फुर्ती से सहार करने लगा। उसी समय महारथी कृतवर्मा का दाव लगा और उसने भीमसेन को बाणों से आच्छादित कर डाला। भीमसेन कृतवर्मा के इस वेग पून प्रहार को देखकर हसा और मुस्कराते हुए ही उसने अपने बाणों की भंडी लगा दी। देखते ही देखते कृतवर्मा के सारथि और घोड़ों को धाराशायी कर दिया और कृतवर्मा स्वयं भी बुरी तरह घायल हुआ। बचने का और कोई उपाय न देख वह दौड़कर धृतराष्ट्र के साले वृषक के रथ पर चढ़ गया और भीमसेन के सामने जो भी पड़ा वही बाणों से घायल होकर या तो मर गया अथवा भाग खड़ा हुआ।

दूसरी ओर अवन्ति नरेश विन्द और अनुविन्द इरावान से टक्कर ले रहे थे। उनमें बड़ा ही रोमाचकारी युद्ध छिड़ा हुआ था। दोनों ओर से तीक्ष्ण बाण चल रहे थे। परन्तु अकेला इरावान दोनों भ्राताओं को होश न लेने दे रहा था। एक बार दोनों भ्राताओं ने इरावान के ऊपर भीषण प्रहार किया। क्रुपित होकर इरावान ने दिव्य बाणों का प्रयोग किया और अनुविन्द के सारथि तथा उसके रथ के चारों घोड़ों को मार गिराया। अनुविन्द तब अपने भाई विन्द के रथ पर चढ़ गया और उसी रथ पर से दोनों भाई बाण वर्षा करने लगे। क्रोध इरावान ने देखते ही देखते उनके सारथि को मार गिराया। बाणों की भीषण वर्षा के मारे रथ के घोड़े चाँक कर रथ को इधर-उधर लेकर भागने लगे और बेचारे अनुविन्द व विन्द को अपने रथ घोड़ों को काबू में करने की एक समस्या उत्पन्न हो गई। परन्तु ऐसी जटिल समस्या में फसे विन्द तथा अनुविन्द को इरावान ने छोड़कर और दूसरे कौरव सैनिकों से भिड़ गया।

अब आप अपनी दृष्टि उधर भी उठाईये, जिधर भीम पुत्र पटोत्कच भगदत्त के साथ भयंकर युद्ध कर रहा है। दोनों ओर से बाणों की वर्षा हो रही है और तेजी से उधर से उधर भागने व घूमने लगे के कारण धूल के बादल में उठ रहे हैं। वह देखिये यौन्वय घटोत्कच ने एक बार विद्युत् गति में बाणों की भंडी लगा दी और भगदत्त उन बाणों की छाया में चिन्तुन हुए पड़ा है।

दिया और कुछ अन्य राजाओं के साथ उसे चारों ओर से घेर लिम्व तथा बाण वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन ने एक क्षण में ही ऊपड़ी धनुष तोड़ डाले और उसके बाणों की मार से उनके कवच तार करने हो गए। कुछ ही देर में उनके तडपते शव धूल में लुढ़कने अपना अपने साथियों के मारे जाने पर सुशर्मा दूसरे राजाओं तथा सैनी को को लेकर पार्थ से युद्ध करने लगा। अर्जुन पर चारों ओर से देख राजाओं के आक्रमण को देखकर शिखण्डी सहायता के इस समय पड़ा और विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर वह राजाओं रहा था और अच्युतदशज्या दुर्योधन भी आकर अर्जुन से पिबोर सूर्यास्त के नाम पर युद्धवन्दी की बाटण ग्रहण पांचाल राजकुमार धृष्ट द्युम्न और महारथी सात्यकि शक्ति तथा तोमार आदि की वर्षा करके कौरवों पर मृत्यु मण्डराने लगे। कौरव सेना में हाहाकार मच गया। उधर शिखण्डी अनेक योद्धाओं को मार कर अर्जुन के निकट गया। अर्जुन ने कितने ही वीरों को मार गिराया था कितने ही रणागण से विदा ले रहे थे। वे दोनों ही फिर भीम जी के सामने जा डटे।

उसी समय सूर्य देव अस्ताचल के शिखर पर पहुँच कर प्रभाहीन हो रहे थे और ज्योति समाप्त होकर अन्धकार का आगमन होने लगा था। युद्धवन्दी का विगुल वज्र उठा, विगुल सुनकर पाण्डव वीरों ने भयकर सिंह नाद किया और महाराज युधिष्ठिर के नेतृत्व में अपने शिवरो के लिए प्रस्थान कर दिया। भीष्म जी की आज्ञा से कौरव सेना भी अपनी छावनी में चली गई। घायल हुए व्यक्तियों ने अपनी अपनी छावनियों में पहुँच कर औषधियों का सेवन किया और फिर दोनों पक्ष के लोग भोजन आदि से निवृत्त होकर आपस में मिलकर एक दूसरे की वीरता की प्रशंसा करने लगे।



* अठत्तीसवां परिच्छेद *

सातवां दिन

रात्रि भर दोनों पक्ष के वीरों ने विश्राम किया और पी फटते ही दोनों ओर चहल पहल आरम्भ हो गई। रण की पोशाकें पहन ली गईं और विगुल बजते ही पाण्डव पक्ष की सेना छावनी से निकल कर तैयार हो गई। दूसरी ओर कौरव सेना भी अपने अपने डेरो को छोड़कर बाहर आ गई और सूर्य की किरणों का स्वर्णिम स्वयं सफेदी में बदलते ही दोनों ओर की सेनाएं युद्ध भूमि की ओर चल पड़ी। उस समय महासागर की गम्भीर गर्जना की भांति महान कोलाहल होने लगा। चारों ओर विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र चमक रहे थे।

दुर्योधन, चित्रसेन, विविशति, भीष्म और द्रोणाचार्य ने अपनी समस्त सेना को एकत्रित करके सागर समान व्यूह का निर्माण किया। सागर व्यूह की तरंग मालाएं हाथों, घोड़े आदि बाहन थे। समस्त सेना के आगे भीष्म जी थे उनके साथ मालवा, दक्षिण भारत तथा उज्जैन के योद्धा थे। इनके पीछे कुलिन्द, पारद, क्षुद्रक तथा द्रोणाचार्य थे। द्रोण के पीछे मगध और कलिंग आदि देशों के योद्धा थे जिनका नेतृत्व राजा भगदत्त के हाथ में था। इनके बाद राजा बृहद्रथ था जिसके साथ मेकल तथा कुरुविन्द आदि देशों के योद्धा थे। बृहद्रथ के पीछे था भिर्गर्त राज सुशर्मा, और उसके पीछे प्रवस्थाया और सबसे पीछे दुर्योधन अपने भाईयों सहित था। चारों ओर अग रक्षक की भांति सैनिक थे। और सैनिकों तथा

योद्धाओं के महासागर में तूफ़ान सा आया प्रतीत होता था। हजारों पदाति, गजरोहो और अश्वरोही वीरों के हाथों में खड्ग, भाले, गदाए और धनुष बाण चमक रहे थे।

कौरवों के सागर समान व्यूह की रचना को देखकर धृष्ट-द्युम्न ने ३ पाण्डवों की सेना को श्रृं गाठक व्यूह के रूप में व्यवस्थित किया। उस व्यूह की रचना होने पर वह बहुत ही भयानक प्रतीत होने लगा। और कौरवों के व्यूह को तोड़ डालने में समर्थ दिखाई देता था, उसके दोनों अङ्गों के स्थान पर भीमसेन तथा सात्यकि स्थित थे उनके साथ कई हजार रथ, घोड़ों और हाथियों पर सवार व पदाति सेना थी। उन दोनों के मध्य में अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। इनके पीछे दूसरे राजागण थे, जो अपनी विशाल सेनाओं के साथ व्यूह को पूर्णतः भेद कर रहे थे। उन सबके पीछे अभिमन्यु, महारथी बिराट, द्रौपदी के पुत्र और घटोत्कच आदि थे। इस प्रकार व्यूह रचना समाप्त करके युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों का आह्वान किया—“वीर योद्धाओं! तुम्हारे रण कौशल से बड़े बड़े दिग्गज धनुर्धारी, अनुभवी और जगत विख्यात शूरवीर भी थर्रा रहे हैं। तुम्हारी वीरता के सामने शत्रुओं की विशाल सेना का नाको दम है। आज फिर उन्हीं से टक्कर है जो पिछले दिनों में परास्त होते चले आये हैं। बड़ों और अपना जौहर दिखा कर बता दो कि न्याय का सिर कभी नीचा नहीं होता।”

उधर दुर्योधन अपने वीरों को ललकार रहा था—“रण वांकुरों! शत्रुओं की सेना हम से बहुत कम है। हमारे पास भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे अनुभवी महान सेनानायक हैं, देवता भी जिनका लोहा मानते हैं। विजय हमारी ही होगी। और विजय के साथ साथ यश कीर्ति और ऐश्वर्य के द्वार तुम्हारे लिए खुल जायेंगे। बड़ों और शत्रुओं को दिखा दो कि कौरवों के पास विजयी शूरवीरों की कमी नहीं, हम सारे जगत से टक्कर ले सकते हैं।”

रणभेरी वज्र उठी। शखनाद होने लगे। ललकारने और ताल ठोकने और जोर जोर से पुकारने की आवाजें आने लगी। दोनों ओर से चुनौतियाँ दी जाने लगी और इस तुमुल नाद से दशों दिशाओं गूँज उठी। सेनाएँ बढ़ी और कौरव तथा पाण्डवों के पक्ष

के वीर भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रों को लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े। तलवारों से तलवारें टकराने लगी, धनुषों की टकारें विजली टूटने की ध्वनि की भांति सुनाई देने लगी। भाले भालों से टकरा गए। गज सवार गजसवारों पर, अश्वारोही अश्व सवारों पर, पदाति पदातियों पर और रथ सवार रथ सवारों पर टूट पड़े। रथों की घर घराहट से दिशाएं गूजने लगी। वीर क्षत्राणियों के सपूत वीरांगनाओं का सुहाग लूटने लगे और कितनी ही जवानियों वाणों से निकलती लपटों में ध्वस्त होने लगे। रात्रि भर जो भाईयों की भांति रहे अब वे एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक बन गए।

सामने से भीष्म जी अपने धनुष की टकार करते, योद्धाओं की मौत की नींद सुलाते पाण्डव सेना की ओर बढ़े। यह देख पृष्ठ द्युम्न, आदि महारथी भी भैंस नाद करते हुए भीष्म जी से टक्कर लेने दोड़े। जो हाथ प्रणाम के लिए उठा करते थे, वे वाणों के द्वारा भीष्म जी के प्राण हरने के लिए बड़े वेग से चलने लगे। फिर तो दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध छिड़ गया।

भीष्म जी का मुख मण्डल क्रोध तथा तेज के मारे तप रहा था और जैसे पूर्ण यौवन पर आये तपते सूर्य की ओर देख सकना कठिन हो जाता है उसी प्रकार भीष्म जी की ओर देख सकना कठिन हो रहा था। भीष्म जी के वाणों के प्रहार से सोमक, सृज्जय, पांचाल राजाओं को मार गिराने लगे, पर वे भी प्राणों का मोह त्याग कर भीष्म जी पर टूट पड़े। उन के अग रक्षक, सहयोगी और साथी योद्धा भी भीष्म जी पर प्रहार करने लगे। परन्तु भीष्म जी के वाणों की मार से कितने ही अश्वारोहियों के सिर कट कट कर धरा पर लुढ़कने लगे, कितने ही पहाड़ों के समान उन्नत हाथी धाराशायी हो गए। कितने ही रथ योद्धा हीन होकर रह गए। उस समय यदि कोई था जो निर्भय होकर भीष्म जी के सामने टिका हुआ तो वह था भीमसेन जी पूरे वेग से भीष्म जी से टक्कर ले रहा था, वह उन के प्रहार को रोकता और स्वयं प्रहार भी कर रहा था।

भीमसेन के प्रहारों से अन्त में भीष्म जी भी तंग आ गए यह देख दुर्योधन अपने भाईयों सहित उन की रक्षा के लिए आगया।

उसी समय भीमसेन ने एक ऐसा तीक्ष्ण बाण मारा कि भीष्म जी का सारथी पृथ्वी पर लुढ़क गया और बाणों को वर्षा से तग आकर घोड़े भीष्म जी के रथ को नेकर रणभूमि में इधर उधर भागने लगे। घोड़े बिगड़ गए थे, इस लिए भीष्म जी को युद्ध जारी रखना असम्भव हो गया। और इस से पहले कि वे अपने घोड़ों को नियंत्रित करे घोड़े रथ लेकर भाग गए। तब तो भीमसेन चारों ओर मार करता हुआ घूमने लगा, जो भी सामने आया उसे ही मार गिराया। अनायास ही धृतराष्ट्र पुत्र सुनाय भीमसेन के सामने आ गया और वह तत्काल ही मारा भी गया, तब तो धृतराष्ट्र के सात बेटे अर्मप से भर गए और आपे से बाहर होकर वे भीमसेन पर टूट पड़े। और एक रण कुशल धृतराष्ट्र पुत्र ने अपनी रण कुशलता से भीमसेन की एक भुजा को घायल कर दिया। परन्तु मदोन्मत्त गज समान युद्ध रत भीमसेन के रण कौशल में कोई कमी न आई। उस ने बाणों की वर्षा जारी रखी और उस घायल करने वाले कौरव का सिर एक ही बाण से उड़ा दिया, दूसरे की छाती तोड़ दी, तीसरे का मस्तक धूल की तरह उड़ा दिया, चौथे को कई बाणों से लुढ़का दिया और अन्त में उन सभी को मार डाला।

आठ भ्राताओं को मृत देख कर अन्य कौरव भ्राताओं का हृदय कांप उठा। वे सोचने लगे कि भीमसेन ने भरी सभा में कौरवों को मार डालने की जो प्रतिज्ञा की थी, आज वह उसे पूर्ण कर देगा। यह सोच कर वे अपने प्राण लेकर भाग पड़े। भाईयों के मरने से दुर्योधन भी शोक त्रिह्वल हो गया, उस ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि—“भीमसेन को चारों ओर से घेर लो और मार डालो।”

सैनिक तो पहले से ही यमराज का रूप धारण किए हुए भीमसेन के भय से काँप रहे थे, इस लिए आज्ञा पाते ही कुछ के तो प्राण सूख गए, किसी के हाथों से शस्त्र ही छूट गए और कुछ रण भूमि से भागने लगे। यह स्थिति देख कर दुर्योधन को विदुर जी की बातें याद आ गईं। वह सोचने लगा—‘वास्तव में विदुर जी बड़े बुद्धिमान और दूरदर्शी हैं, उन्होंने ठीक ही कहा था कि भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूर्ण करेगा, इस लिए उस के कोप से बचने का एक मात्र उपाय यह है कि रण का संकट मोल न लो।—पर अब

क्या हो ? अब तो मृत्यु सिर पर मण्डरा रही है ।”

दौड़ा दौड़ा दुर्योधन भीष्म जी के पास गया और बड़े दुख के साथ फूट फूट कर रोने लगा दुर्योधन की यह दशा देख कर भीष्म जी भी बड़े दुखित हुए । उन्होंने पूछा—“बेटा ! अश्रुपात का क्या कारण । रणभू म मे होकर तुम्हारी आखो मे आसू ? ?”

“पितामह ! भीमसेन ने मेरे आठ भ्राताओं का वध कर डाला और अब वह हमारे अन्य शूरवीरो का सहार कर रहा है । हा शोक मेरे परिवार का नाश हो रहा है और आप तो जैसे मध्यस्थ से हो गए है आप कुछ करते ही नहीं । मैं मिट रहा हू । और आप हमारी उपेक्षा कर रहे है । मेरे भाई मरते रहे और आप की यह उपेक्षा नीति चलती रहे तो मेरी आखो मे आँसू न आयेगे क्या ?” दुर्योधन ने दुखित होकर कहा ।

वात कटु थी, पर उस के शोक विह्वल होने के कारण भीष्म जी का गला भर आया । बोले—“बेटा ! मैंने, द्रोणाचार्य और विदुर जी ने तुम से बहुत कहा, गान्धारी ने तुम्हे कितना ही समझाया पर तुम ने हमारी एक न सुनी । हम ने चाहा कि तुम हमे युद्ध मे न डालो, पर तुम हठ पर अड गए । अब उसी का यह परिणाम है कि तुम्हारे नेत्रो मे आँसू हैं । यह हमारी उपेक्षा के कारण नहीं, तुम्हारे प्रारब्ध के कारण हैं । अब तो तुम्हे परलोक मे ही सुख पाने की इच्छा से युद्ध करना चाहिए । हम जहा तक हो गा, तुम्हारे लिए लड़ेंगे ।”

फिर भीष्म जी दुर्योधन को सन्तोष वन्धाते हुए भीषण युद्ध करने लगे यह देख युधिष्ठिर की आज्ञा से उनकी सारी सेना क्रोध मे भरकर भीष्म जी के ऊपर टूट पड़ी । धृष्ट द्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, समस्त सोमक योद्धाओं के साथ राजा द्रौपद और विराट, केकय कुमार धृष्टकेतु और कुन्ती भोज सभी ने भीष्म जी पर आक्रमण किया । अर्जुन, द्रौपदी के पुत्र और चेकितान आदि दुर्योधन के भेजे राजाओं से युद्ध करने लगे । तथा अभिमन्यु, घटोत्कच और भीम सेन ने युद्ध से अपने प्राण बचाने की चेष्टा करते कौरवों पर घावा किया । इस प्रकार पाण्डव और उन की सेना तीन भागों मे विभक्त हो कर कौरवों का संहार करने लगी और कौरव पाण्डवों के

संहार के लिए जी जान तोड़ कर लड़ने लगे ।

द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर सोमक और सृज्जयो पर आक्रमण किया और उन्हें यमलोक भेजने पर उतारू हो गए । उस समय सृज्जयो में हाहाकार मच गया । दूसरी ओर महाबली भीमसेन कौरवों पर मृत्यु देव की भाँति टूट रहा था । दोनों ओर के सैनिक एक दूसरे को मारने लगे । रक्त की नदी बह निकली । उस घोर संग्राम में कितने ही सुन्दर वीरवर धूल में लुढ़कने लगे । बड़े बड़े योद्धाओं के शरीर धोड़ो तथा हाथियों के पैरों से रौंदे जा रहे थे । भीष्म जी घोर संग्राम कर रहे थे उनके बाणों से कितने ही घोड़े और हाथी पृथ्वी पर लुढ़क रहे थे । उधर नकुल और सहदेव कौरवों के अश्वारोहियों और उनके घोड़ों को बुरी तरह मार रहे थे भीमसेन अपनी गदा लेकर कौरवों के हाथियों पर टूट पड़ा था, भेरु समान हाथी क्षण भर में गदाओं की मार से पृथ्वी पर ढह जाते थे । अर्जुन ने कितने ही राजाओं का सिर घड़ से अलग कर डाला था, जो सिर किसी के सामने नहीं झुकते थे अर्जुन के कारण घोड़ों की ठोकड़ों में पड़े थे । उस समय का युद्ध सागर में आते जवारभाटे की भाँति चल रहा था जब भीष्म द्रोण, कृप और अश्वत्थामा एक साथ मिल कर क्रुद्ध हो युद्ध करते तो पाण्डवों की सेना का संहार होने लगता और जब अर्जुन, भीम, विराट, अभिमन्यु आदि कुपित होकर टूटते तो कौरव सेना का संहार होने लगता । इस प्रकार दोनों ओर की सेना का रक्त मिट्टी में मिल रहा था । फिर भी वेचारे दुर्योधन को बड़ी चिन्ता थी ।

भास्कर का रथ अपने निश्चित पथ पर अग्रसर हो रहा था । वृष काफी तेज हो गई थी । और युद्ध की गरमी भी बढ़ती जा रही थी । वीरों का विनाश करने वाला भीषण युद्ध अधिकाधिक भीषण रूप धारण करता जाता था कि शकुनि ने पाण्डवों पर धावा किया । आक्रमणकर्त्ताओं में कृत दर्मा भी एक बड़ी सेना सहित था । जब पाण्डवों का व्यूह तोड़ कर शकुनितथा गांधार देश के अन्यान्य वीर अन्दर घस गए और पाण्डव वीरों का संहार करने लगे तो इरावान से न रहा गया । इरावान अर्जुन का पुत्र था । उसने अपने साथी वीरों को ललकार कर कहा — “वीरों! देखते क्या हो इन दुष्टों को चारों ओर से घेर कर मार डालो । देखो, कोई बच कर

न जाने पाये"। इराव न की ललकार सुन कर मैनिको ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया और भीषण युद्ध करने लगे। जब कौरव पक्षी योद्धा पाण्डव पक्षी वीरो के द्वारा मारे जाने लगे तो सुवल के पुत्रों से न रहा गया और वे दौड़ कर उनकी सहायता के लिए पहुंच गये। उन्हो ने जाते ही इरावान को चारो ओर से घेर लिया अकेला इरावान उन सभी का डटकर मुकाबला करने लगा, फिर क्या था कुपित तो दूर सुवल पुत्र इरावान पर टूट पड़े और आगे पीछे, और दायें बायें से इरावान पर बाणो की वर्षा होने लगी। परन्तु वह फिर भी किंचित मात्र न घबराया। उसके शरीर पर अनेक जगह घाव आ गए। लाल लाल लहू की धाराएं वह निकली, किन्तु वह उसी प्रकार युद्ध कर रहा था, जैसे कि स्वस्थ अवस्था में करता था। बल्कि इस से उस को क्रोध चढ़ गया और उसने अपने तीखे बाणो से सभी को वीध डाला घायल हो कर वे मुर्छित हो गए। तब उसने चमकती तलवार हाथ में सम्भाली और सुवल पुत्रों की हत्या करने के उद्देश्य से आगे बढ़ा। परन्तु जब तक वह उनके पास पहुंचता, उनकी मुर्छा भग हो गई। और क्रोध में भर कर इरावान पर टूट पड़े। साथ ही उसे वन्दी बनाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु ज्यों ही वे निकट आये, इरावान ने तलवार के ऐसे हाथ दिखाये कि उनकी भुजाएं कट गई और वे भुजाहीन हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उन में से केवल वृषभ नामक राजकुमार ही जीवित बचा।

इरावान का यह पराक्रम देख घबराया हुआ दुर्योधन विद्याधर (राश्रस) अलम्बुष के पास गया और बोला—“महाबली अर्जुन का पुत्र इरावान हमारी सेना का सहार कर रहा है, उसने सुवल पुत्रों को मार डाला है और यदि उसका वेग न रुका तो न जाने वह क्या कर गुजरे। तुम जानते ही हो कि भीमसेन ने तुम्हारे साथी विद्याधर वकासुर का वध किया था, उसका बदला लेने का उचित अवसर है। तुम तो बड़े बलवान और मायावी हो, चाहो तो इरावान का सहज ही मैं वध कर सकते हो। कुछ ऐसा करो कि इरावान धाराशायी हो जाये, ताकि सुवल पुत्रों के वध का बदला मिल जाये और हमारी सेना का सहार रुक जाये।”

विनय भाव से की गई प्रार्थना को स्वीकार करके अलम्बुष

सिंह के समान गर्जना करता हुआ इरावान के पास गया और वड़ी ही भयायक दहाड़ के साथ चेतावनी दी — इरावान ! ठहर अभी तुझे यम लोक पहुँचाता हूँ । ” इतना कह कर वह भयानक विद्याधर इरावान पर टूट पड़ा । किन्तु इरावान साहस पूर्वक उसका मुकाबला करने लगा । जब इरावान इस प्रकार बस में न आया तो अलम्बुष ने मायावी बाण मारे परन्तु इरावान उनके बस में भी न आया । उसने भी ऐसे बाण मारे जिस से विद्याधर की मायाकी काट हो जाती । इसी प्रकार बहुत देर तक युद्ध होता रहा । एक बार अलम्बुष ने मोहिनी अस्त्र मारा जिस से इरावान मूर्च्छित हो सकता था, पर इरावान के पास भी अर्जुन के दिए हुए अस्त्र थे उसने मोहिनी अस्त्र का खण्डन कर डाला तब विद्याधर एक भीषण अस्त्र छोड़कर दौड़ा । इरावान ने उस माया को काट डाला और अलम्बुष के पीछे दौड़ा । अलम्बुष के पास एक आकाशगामी वायुदान था, वह उस में सवार होकर अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ आकाश की ओर उड़ चला । इरावान ने उस का पीछा जारी रक्खा । और अपने माया अस्त्रों से अन्तरिक्ष में उड़ते अलम्बुष मोहित करके बाणों द्वारा उसे वीधता जाता । परन्तु विद्याधर के पास कुछ ऐसी वृष्टियाँ थी जिनके स्पर्श मात्र से रक्त वहना बन्द हो जाता था और घाव अच्छे होने लगते थे । वह अपने अस्त्रों का प्रयोग कर के इरावान का परेशान करता और उसके आक्रमणों से अपनी रक्षा करता हुआ अन्तरिक्ष में जला जा रहा था । विद्याधर ने अपनी विद्याओं का बार बार प्रयोग किया, पर इरावान भी कोई कम न था । उसने अर्जुन के साथी गाँधर्वों और विद्याधरों से बहुत कुछ सीख रखा था अतः प्रत्येक विद्या का वह काट जानता था ।

किन्तु एक बार विद्याधर अलम्बुष ने एक ऐसा माया मयी माण मारा कि उसके छूटते ही इरावान क्री आखों के सामने अघकार छा गया और बहुत प्रयत्न करने पर भी वह आगे न देख सका । तब अवसर पाकर अलम्बुष ने एक ऐसा बाण मारा कि इरावाण की खोपड़ी को काटता हुआ निकल गया । खोपड़ी कट कर भूमि पर गिर गई और फिर इरावान का शरीर भी अन्तरिक्ष से नीचे गिर गया । इरावान का शरीर रण भूमि में आकर गिरा और उसे देख कर कौरव सैनिक उल्लास के मारे उछल पड़े । जय नाद होने

लगे, शखनादो से सारा रण स्थल गूज उठा ।

इरावान मारा गया, यह देखकर भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने बड़ी भीषण गर्जना की । उसकी आवाज से सारा रण स्थल गूज उठा । इस भयानक गर्जना को सुनकर कुछ कौरव सैनिकों को काठ मार गया और वे भय के मारे डर कर काँपने लगे । उनके अगों से पसीना छूटने लगा । सभी सैनिकों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई । घटोत्कच क्रोध के मारे प्रलयकालीन यमराज की भाँति हो गया, उसकी आकृति बहुत ही भयानक बन गई । उसके साथ विद्याधरो की एक विशाल सेना थी, जो भयानक अस्त्र शस्त्र लेकर चल रहे थे । स्वयं घटोत्कच के हाथ में एक जलता हुआ त्रिशूल था । वह बार बार गर्जना करता चल रहा था—“वीरो ! दुष्ट कौरवों का सहार कर डालो । देखो, तुम्हारे भय से शत्रु हवा के वेग के कारण कापते पीपल पतों की भाँति थर-थर कम्पित हो रहे हैं ।”

घटोत्कच का ऐसा सिंह नाद सुन कर और अपने सैनिकों मुखों पर हवाईयो उड़ता देख, दुर्योधन गजारोही सैनिकों की भारी भीड़ को लेकर घटोत्कच के मुकाबले के लिए चला । जब घटोत्कच की दृष्टि एक भारी सेना सहित आते देख दुर्योधन पर पड़ी तो वह कुपित होकर गजारोही सेना की ओर बढ़ा और जाते ही रोमाचकारी आक्रमण कर दिया । दुर्योधन अपने प्राणों का मोह त्याग कर बड़ी फुर्ती से विद्याधरो से लड़ने लगा । उसने कुपित होकर कितने ही विद्याधरो को मार डाला । यह देख घटोत्कच क्रोध के मारे जलने लगा और लपक कर दुर्योधन के पास पहुँच गया । जाते ही गरज कर बोला—“अरे नीच ! जिन्हें तुम ने दीर्घ काल तक वनोभे भटकाया और अपनी नीचता से दारुण दुःख दिए, उन्हीं माता पिता के ऋण से उन्मृण होने के लिए आज तुम्हें मौन के घाट उतार दूंगा ।”

इतनी चेतावनी देकर त्रिशूल छोड़ घटोत्कच ने अपने हाथ में एक विशाल धनुष सम्भाला और भीषण बाण वर्षा कर के दुर्योधन को बाणों के आवरण से ढक दिया । तब अपने प्राणों पर सकट देख दुर्योधन पूरी शक्ति बटोर कर उस पर आक्रमण करने लगा । उसने तीक्ष्ण बाणों से घटोत्कच घायल हो गया और कोई चारा न देख उसने एक महाशक्ति अस्त्र को दुर्योधन पर फेंका, वह शक्ति पर्वत की भी विदीर्ण कर सकती । ज्यों ही शक्ति का प्रहार हुआ, बंगाल

के राजा ने दुर्योधन के प्राणों की रक्षा के लिए तुरन्त ही अपने हाथी हकवा दिए और दुर्योधन का रथ हाथियों की ओट में आ गया। जिस से शक्ति का प्रहार हाथियों पर ही हुआ और वे धाराशायी हो गए।

हाथियों के चिंघाड़ मारकर धाराशायी होते ही दुर्योधन की साथी सेना में बड़ा कोलाहल मचा। हाथी तब भयभीत होकर बिगड़ उठे और पीछे की ओर भागने लगे। सैनिक सिर पर पर रख कर भागे। यह दशा देख दुर्योधन को बड़ा धक्का लगा, पर वह क्षमियोचित धर्म अनुसार वही स्थिर भाव से खड़ा रहा और कालाग्नि समान बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु रण कौशल में प्रवीण घटोत्कच ने सभी वार काट दिए और एक ऐसा भैरव नाद किया कि बचे खुचे कौरव सैनिक भी थर्रा उठे। यह देख कर भीष्म पितामह ने अन्य महारथियों को दुर्योधन की सहायता के लिए तत्काल ही भेज दिया। द्रोणा, सोमदत्त, बाहीक जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरि श्रवा, गल्य, उज्जैन के राजकुमार, वृहद्वल, अश्वस्थामा विकर्ण, चित्रसेन, विदिशार्ति और उनके पीछे चलने वाले कई सहस्र रथी, दुर्योधन की सहायता के लिए पहुंच गए। इतनी विशाल सेना के आने पर भी मैनाक पर्वत के समान स्थिर भाव से घटोत्कच खड़ा रहा। उसके साथ उसके सगी साथी विद्या-घर थे। फिर तो दोनों पक्षों में भीषण संग्राम होने लगा।

* उन्तालीसवां परिच्छेद *

आठवां दिन

सभी जानते हैं कि रण क्षेत्र में उतरने पर किसी को कुशलता अनिवार्य नहीं है। वल्कि रण में उतरने वाले अपने सिर पर कफन बाध कर जाते हैं। ऐसा समझा जाता है। और क्षत्रिय वीर के रण में काम आने पर वीरगति को प्राप्त हुआ माना जाता है। महा-भारत में तो भरत खण्ड के सभी शूरवीर किसी न किसी ओर से लड़ रहे थे। एक ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी तो दूसरी ओर सात। परन्तु सात अक्षौहिणी सेना वाले पाण्डवों की स्वयं की शक्ति इतनी अधिक थी कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना वाले कौरव भी उनका सामना करते समय अपनी विजय के प्रति आश्वस्त थे, ऐसा नहीं माना जा सकता। इतनी भयानक टक्कर में कोई वीर काम आ जाये तो न आश्चर्य की ही बात हो सकती है और न रण वीरों को वीरगति को प्राप्त हुए वीर पर अश्रुपात करना ही शोभा देता है। फिर भी मोह ही तो ससार चक्र और आवागमन के चक्र को चलाते रहने का कारण है, गृहस्थ व्यक्ति में मोह न हो तो गृहस्थ ही क्यों रहे, उसे तो विरक्त हो जाना चाहिए। इस लिए अर्जुन को धर्म का मर्म ज्ञात होने और आत्मा के विभिन्न जन्म धारण करते रहने का रहस्य मालूम होने पर भी और रण में काम आये वीर पर ग्राम बहाना व्यर्थ समझते हुए भी, डरावान की मृत्यु का गमाचार सुन कर बहुत दुःख हुआ, कुछ देर के लिए वह मन्न सा रह गया। उस के हृदय पर बड़ा आघात लगा। उस का मन चोत्तार कर उठा। श्री कृष्ण से कहने लगा—मधु सूदन ! मैंने

पहले ही कहा था कि इस युद्ध से हमे कोई लाभ नहीं होने वाला। सुना आप ने मेरा लाडला बेटा इरावान ससार से चला गया।”

कृष्ण बोले—पार्थ ! बेटे की मृत्यु पर इतना दुःख क्यों प्रगट करते हो। उसे तो एक न एक दिन जाना ही था। ससार मे अमर कौन है ? इरावान वीरगति को प्राप्त हुआ है। यह दुख की तो बात नहीं। कई कौरव भी तो तुम्हारे हाथों मारे गए।”

श्री कृष्ण कौरवों की बात कह कर अर्जुन को सान्त्वना देना चाहते थे। पर अर्जुन के मन पर गहरा घाव हुआ था। कहने लगा—“गोविन्द ! कौरव भी मारे गए और इधर कुछ हमारे वीर काम आये। यह सब कुकर्म धन के लिए ही तो हो रहा है। धिक्कार है ऐसी सम्पत्ति को जिसके लिए इस प्रकार बन्धु-बान्धवों का विनाश हो। भला यहा एकत्रित हुए अपने भाईयो और अपने पुत्रों का वध करके या कराके हमे क्या मिलेगा ?”

अर्जुन के शब्दों मे युद्ध के प्रति उदासीनता थी। ऐसी बात देख कर श्री कृष्ण को शका हुई कि कही अर्जुन पुनः युद्ध मे हाथ न खींच ले। बोले—“पार्थ ! यह जो कुछ हो रहा है पापी दुर्योधन शकुनि और कर्ण के कुमन्त्र से ही तो। उन के षडयन्त्र से हो रहा है विध्वंस रोकना उदासीनता से तो सम्भव नहीं। क्या द्रौपदी के अपमान की बात भूल गए। तुम्ही ने तो प्रतिज्ञा की थी कि उस सती के साथ अन्याय करने वालों को तुम अपने गाण्डीव से दण्ड दोगे ? वीर पुरुष मोह वश युद्ध से पैर पीछे नहीं हटाया करते।”

अर्जुन बहुत देर तक इरावान को याद कर के दुःख प्रगट करता रहा और अन्त मे जब श्री कृष्ण ने कहा—‘धनजय ! इरावान से तुम्हे कितना प्रेम है, तुम्हारे हृदय पर उनकी हत्या से कितनी चोट पहुंची है, इसका पता कल युद्ध में चलेगा। तुम्हारे गाण्डीव से छोटे बाण कल को इरावान के हत्यारों के लिए यमदूत बन जाने चाहिएं। वीरों से स्नेह प्रगट करने का यही सर्वोत्तम उपाय है।”

अर्जुन के रक्त मे क्रोध तथा उत्साह संचार हुआ और उसकी मुठियां बंध गईं। मुख मण्डल दृढ़ हो गया और आंखों मे अश्रुणाई दौड़ गई। आवेश मे आकर कहा—“गोविन्द ! कल को मैं इरावान के हत्यारों पर विजली बन कर टूट पड़ुंगा। विश्वास रखिये। मैं अपने बेटे की हत्या का बदला अवश्य लूंगा।”

श्री कृष्ण मन ही मन मुस्कराये । उन्होंने अर्जुन के जोश को और हवा दी ।

इधर अर्जुन को श्री कृष्ण प्रोत्साहित कर रहे थे उधर दुर्योधन भीष्म पितामह के पास अपना रोना रो रहा था । वह कह रहा था—
“पितामह ! पाण्डवों को जैसे श्री कृष्ण का सहारा है, वैसे ही आप का आश्रय लेकर हमने पाण्डवों से युद्ध ठाना है । मेरे साथ ग्यारह अक्षौहिणी सेना है । आप जैसे कुशल सेनापति है । ससार के सर्व श्रेष्ठ योद्धा मेरे पक्ष में हैं । फिर भी पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना ही हमारा नाक में दम किए हुए है । कुछ तो भीम पुत्र घटोत्कच के मुकाबले पर मेरी जो पराजय हुई उसे देख कर मैं आत्म ग्लानि के मारे मरा जा रहा हूँ । पितामह ! जो कुछ हो रहा है उसे देखते हुए मैं विक्षुब्ध हो उठा हूँ । आप कल को कुछ ऐसा कीजिए कि उस चंचल कुमार घटोत्कच से मैं अपना बदला ले सकूँ । यदि वह जीवित रहा तो न जाने हमें कितनी क्षाति उठानी पड़े । मेरे भाईयों का वध हो जाना, इतनी शक्ति के होते हुए, मेरे लिए डूब मरने की बात है । पितामह ! आप कदाचित् न समझ पाये कि उस समय मेरे दिल पर क्या वीत रही है । ” पितामह ! गम्भीरता पूर्वक सारी बातें सुनते रहे और दुर्योधन ने जब अपनी बात समाप्त कर ली तो बोले—“बेटा ! पाण्डव स्वयं इतने बलवान हैं । कि तुम्हारे पास दो तीन अक्षौहिणी सेना और भी होती तो भी सहज में हम जीत न पाते । उनके सामने हम सब उधर पा रहे हैं यही बहुत है । ”

पितामह की बातें सुन कर दुर्योधन जल उठा । आवेश में आकर बोला—“पितामह ! आप की बातों से मुझे पाण्डवों की प्रशंसा की गन्ध आ रही है । आप इस तरह की बातें करते हैं मानो मैं कुछ भी नहीं हूँ । आप के मन में ऐसा ही था तो आपने युद्ध आरम्भ होने से पहले ही क्यों नहीं कह दिया, मैं युद्ध ही न छेड़ता । अब जब कि हम रणागण में आ डटे आप ऐसी बातें कह कर मुझे हतोत्साह कर रहे हैं । ”

“आवेश में आकर कुछ नहीं हो सकता—पितामह दान्ति पूर्वक बोले—तुम्हें सत्य कटु नहीं लगना चाहिये । शत्रु की शक्ति को एक कम आकना भारी भूल होगी । मेरे कहने का तो अर्थ यह

है कि तुम्हें अपनी क्षति की चिन्ता न करके उत्साह पूर्वक युद्ध करना चाहिए। यदि घटोत्कच से तुम पराजित हो भी गए तो ऐसी क्या बात है कि तुम आत्म ग्लानि के मारे खिन्न हो।”

“पितामह ! मेरे मन को तो शांति तभी मिलेगी, जब कल को उस धूर्त का सिर काट लूंगा। आप मेरी सहायता कीजिए।” दुर्योधन ने कहा।

“बेटा ! घटोत्कच को जाकर तुम ललकारो यह तुम्हें शोभा नहीं देता—भीष्म पितामह ने कहा—तुम राजा हो। तुम्हें युधिष्ठिर भीम, अर्जुन और नकुल सहदेव से युद्ध करना ही उचित है। घटोत्कच जैसों के लिए मैं, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, भूरिश्रवा और दुःशासन आदि हैं। और कोई नहीं तो राजा भगदत्त ही उस से युद्ध करने जाये।”

दुर्योधन को यह सुन कर बड़ा सन्तोष मिला। वह बोला—
“आप की ऐसी ही राय है तो फिर भगदत्त को ही घटोत्कच को ललकारना चाहिए। मेरे विचार से घटोत्कच उन के सामने नहीं ठहर सकता।”

“हा ! मेरी भी यही राय है।”

बस बात निश्चित हो गई और दुर्योधन अपने शिविर में लौट आया।

× × × ×

रणागण में दोनों ओर की सेनाएं जा खड़ी हुईं। दोनों ओर के सेनापतियों ने अपनी अपनी सेनाओं की व्यूह रचना की और अन्तिम, आवश्यक हिदायतें देकर रण की तैयारी के विगुल वजाये। तमाम रणक्षेत्र शत्रु ध्वनिया और सिंहनादों से गूँज उठा।

सेनापति की आज्ञा पाकर शूर भगदत्त सिंहनाद करता हुआ बड़े वेग से शत्रुओं की ओर चला। उसे अपने ओर आते देख पाण्डवों के महारथी भीमसेन, अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदी के पुत्र सहदेव, चेदिराज, वसुदान, और दशरथराज क्रोध में भर कर उसके सामने जा डटे। भगदत्त ने भी सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर इन महारथियों पर धावा बोल दिया। तदनन्तर पाण्डवों का भगदत्त में भीषण संग्राम छिड़ गया। दोनों ओर से रण-कौशल के विचित्र

विचित्र पराक्रम प्रदर्शित किए जाने लगे। वाणों की वर्षा से सावन-भादो में लगी मेघ वर्षा का दृश्य उपस्थित हो गया। शूर भगदत्त ने पहले भीमसेन को अपने वाणों का लक्ष्य बनाया। परन्तु भीमसेन अपने ऊपर हो रही वाण वर्षा से तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने बार बार सिंहनाद किए, जिन्हें सुनकर भगदत्त के लडाकू हाथी के परो की रक्षा करने वालों सेना के वीरों का हृदय कांप उठता। भीमसेन कुपित होकर पहले उन्हीं पर टूट पड़ा। एक ओर भगदत्त के वाणों से अपनी रक्षा करना दूसरी ओर हाथी के रक्षकों को मारना, यह क्रम उसने इस प्रकार बाँधा कि देखते ही देखते सौ से अधिक गज रक्षक यमलोक सिंघार गए और भीमसेन का बाल भी बीका न हुआ।

यह देख भगदत्त कुपित हो गया। उसने अपने हाथी को भीमसेन के रथ की ओर बढ़ाया। निकट था कि भगदत्त का खूनी हाथी भीमसेन के रथ को अपनी सूण्ड से तोड़ देता, पाण्डव वीरों ने भट से उसे चारों ओर से घेर लिया। और गजराज व भगदत्त पर वाण वर्षा आरम्भ कर दी। चारों ओर से घिरे होने पर भी वह किंचित मात्र भी भयभीत न हुआ। अर्मष पूर्वक अपने हाथी को पुनः आगे की ओर चलाया।

भगदत्त के अङ्कुश और पैर के अग्रूठे का सकेत पाकर गजराज उस समय प्रयत्न कालीन अग्नि के समान भयानक हो उठा और सामने पड़ने वाले रथों व पदाति सैनिकों को रोदना आरम्भ कर दिया। पाण्डव वीरों के वाणों को परवाह किए बिना हिसक मदीमन्त हाथी छोटे हाथियों को सवारों सहित घोड़ों को उन पर आरूढ़ सैनिकों सहित और पदाति सैनिकों को उसके शस्त्र-अस्त्रों सहित कुचलता व रोदता चला जा रहा था। एक दिन गजराज के इस भीषण प्रहार से कोलाहल मच गया। कहीं हाथियों के चीत्कार कहीं घोड़ों के आर्तनाद और कहीं सैनिकों की हाहाकार सुनाई देती थी चारों ओर प्रलय का मादृश्य प्रस्तुत हो गया। पाण्डवों की सेना में आतंक छा गया था। यह देख घटोत्कच ने न रहा गया। उसने उस खूनी हाथी का वध करने के लिए कुपित होकर एक चमचमाता हुआ त्रिशूल चनाया। भगदत्त ने घटोत्कच के हाथ के त्रिशूल को देख कर समझ लिया कि उस की मान सा कर

गजराज मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इस लिये उसने तुरन्त ही एक अर्ध चन्द्राकार बाण चला कर घटोत्कच के त्रिशूल को काट डाला। और शिखा के सामन प्रज्ज्वलित एक शक्ति घटोत्कच के ऊपर फैकी।

अभी वह शक्ति आकाश में ही थी कि घटोत्कच ने उछल कर उसे पकड़ लिया और दोनो घुटनो के बीच में दबा कर तोड़ डाला। यह अद्भुत बात थी। भगदत्त आखें फाड़ फाड़ कर इस अद्भुत घटना को देखता रह गया। आकाश में देख रहे देवता, गन्धर्व, और विद्याधरो को भी घटोत्कच के विचित्र पराक्रम पर आश्चर्य हुआ पाण्डवो ने इस विचित्र व आश्चर्य जनक पराक्रम को देख कर बड़ा ही हर्ष प्रगट किया और घटोत्कच की जय जय कार करने लगे। पाण्डव-सेना में पुन स्फूर्ति आ गई और भीषण संग्राम छिड़ गया।

भगदत्त पहले तो आश्चर्य से देखता रहा, परन्तु जब उस ने घटोत्कच के जय कार और पाण्डव वीरो के सिंह नाद सुने तो उससे सहा नहीं गया। खीन्न हो कर उसने पाण्डव महारथियों पर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। वह कभी भीमसेन को अपने बाणों का लक्ष्य बताता, तो कभी अभिमन्यु को, और कभी केकय राजकुमारो को भीमसेन को उस के एक बाण ने घायल कर दिया, अभिमन्यु पर तीन बाण लगे। केकय राजकुमारो को पांच बाणों से उस ने वीध दिया। एक प्राण से क्षुत्रदेव की दाहिनी भुजा काट डाली। पांच बाणों से द्रौपदी के पांचो पुत्रो को घायल किया। यह देख कर भीमसेन आग बबूला हो कर भगदत्त पर टूट पड़ा। परन्तु क्रुपित शूर भगदत्त ने उसके घोड़ो को मार गिराया, सारथि भी काम आया। और अन्त में भीमसेन को अपनी रक्षा करनी मुश्किल हो गई।

परन्तु भीमसेन शत्रु के बाणों को खाकर जात होने वाला नहीं था। तुरन्त गदा लेकर रथ में कूद पड़ा और भगदत्त के हाथी को ओर कुँव होकर बढ़ा। भीमसेन के कन्धे पर रखी गदा और उसकी लाल लाल आँखें देखकर कौरव सैनिक में कुहराम मच गया। मानो यमराज ही उनके सामने आ रहे हो।

दूसरी ओर हवा से बाते करते हुए घोड़ों को श्री कृष्ण ने उस ओर बढ़ाया। अर्जुन के गाण्डीव की टकार ने सभी का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। अर्जुन को कौरव सैनिकों की ओर बढ़ते देखकर कौरव-महारथियों में खलवली मच गई। और तुरन्त भीष्म, कृप, सुशर्मा आदि अर्जुन के वेग को रोकने के लिये आ गए। भगदत्त भी वीर अर्जुन की ओर बढ़ा। राजा अम्बष्ठ ने अभिमन्यु को ललकारा, कृतवर्मा और बाल्हीक ने सात्यकि को घेर लिया। अन्य ओर अर्जुन से भिड़ गए और भीमसेन ने जब धृतराष्ट्र के पुत्रों को अर्जुन की ओर बढ़ते देखा तो भगदत्त का पीछा छोड़कर वह उन्हीं की ओर बढ़ गया। अपने एक रथ को पास बुलाकर रथारूढ़ हुआ और बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने भीमसेन को चारों ओर से घेर लिया और अपने अपने रण कौशल का परिचय देने लगे। पर भीमसेन के वारों को रोक पाने की क्षमता किसी में नहीं थी। देखते ही देखते कई कौरव लुढ़क गए। अपने कई भाईयों को इस प्रकार मारे जाते देखकर अन्य कौरव भयभीत हो गए और उस यमराज रूपी भीमसेन से अपने प्राण बचाने के लिए भाग खड़े हुए। भीमसेन ने एक भयंकर अट्टहास किया। आश्चर्यजनक बात यह थी कि जिस समय भीमसेन धृतराष्ट्र पुत्रों को यमलोक पहुंचा रहा था, उस समय द्रोणाचार्य कौरवों की रक्षा के लिए उस पर बाण वर्षा कर रहे थे। किन्तु भीमसेन एक ओर द्रोणाचार्य के बाणों को निष्फल कर रहा था, दूसरी ओर कौरवों को मार रहा था। अन्त में कौरवों को भागते देखकर भीमसेन ने द्रोणाचार्य को लक्ष्य करके कहा—“आचार्य ! इन कायरों की रक्षा कर रहे थे आप, पीठ दिखाकर भाग जाना जिनका स्वभाव है।” द्रोणाचार्य मन ही मन लज्जित हुए।

दूसरी ओर भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्य ने अर्जुन को ललकारा और वे दोनों महाबली उसका रास्ता रोक कर खड़े हो गए। अति रथी अर्जुन ने पहले पितामह के चरणों की वन्दना बाणों द्वारा की और एक बार सिंह गर्जना करके तीनों पर टूट पड़ा। बाण-बुद्ध आरम्भ हो गया। और उसके बाद विचित्र विचित्र अस्त्रों के प्रहार होने लगे। परन्तु अति रथी अर्जुन ने सभी अस्त्रों को अपने अस्त्रों ने व्यर्थ कर दिया और शत्रुओं ने अपनी रक्षा

करते करते ही कौरव महाबलियों के अग्ररक्षको में से कितने ही प्रमुख वीरो को यमलोक पहुँचा दिया ।

अभिमन्यु ने राजा अम्बष्ठ के रथ के घोड़ो को मार डाला उसके सारथि को यमलोक पहुँचा दिया । क्रुध होकर राजा अपने हाथ में तलवार लेकर अभिमन्यु की ओर चला परन्तु बाणों की मार से तंग होकर राजा को कृत वर्मा के रथ में शरण लेनी पड़ी । तब कही उसके प्राण बचे ।

धृष्ट द्युम्न आदि अन्य वीर दूसरे कौरव वीरो से भिड़े थे । पदाति पदाति सैनिकों से; अश्वारोही अश्वारोहियों से, गजारोही गजारोहियों से और रथी रथियों से लड़ रहे थे । गदाओं के वार हो रहे थे । कही तलवारे लटक रही थी । कही भाले चल रहे थे । रुधिर की धारा बह रही थी । वीरो, घोड़ो और हाथियों के शवों से रास्ते रुक गए थे । कही चीत्कार सूनाई देते तो कहीं सिंह नाद । मरने पर अश्रुपात करने वाला कोई नहीं होता था और भागते पर वार करने वाला न होता । कोई अपने पराये की चिन्ता नहीं करता । सभी शत्रु रूप में आये वीर को मार डालने के लिए प्रयत्नशील होते ।

कौरवों की सेना में सर्वत्र भय छा गया था । अर्जुन ने भीष्म तक के मुकाबले पर हार नहीं मानी थी । वह वहादुरी से लड़ता रहा था । कौरवों के कितने ही प्रमुख वीर मारे जा चुके थे । इस लिए बार बार पश्चिम दिशा की ओर देखते थे । इतने में ही सूर्य अस्त हो गया और थके हुए कौरव सैनिकों की इच्छा पर भीष्म जी ने युद्ध बन्द करने के लिए शखनाद किया । तलवारे रुक गईं । भाले हाथों में रह गए और धनुषों की डोरियाँ उतार दी गईं । दोनों सेनाएँ अपने अपने शिविर में चली गईं ।

* चालीसवां परिच्छेद *

नौवां दिन

आठवें दिन का युद्ध समाप्त करके दुर्योधन ने अपने दैनिक धर्मों से निवृत्त होकर दुःशासन, शकुनि और कर्ण को अपने शिविर में बुलाया। वह चिन्तित था। उदास भी। सभी उसकी चिन्ता का रहस्य समझते थे। फिर भी साहस बढ़ाना अपना कर्तव्य समझ कर शकुनि ने कहा—“युद्ध की दशा देखकर चिन्तित होने से क्या लाभ? हमें विश्वास है कि रण में विजय हमारी ही होगी। परन्तु दोपक गुल होने के समय एक बार बड़े जोरो से भडकता है, मृत्यु के पजे में आया प्राणी पूरी शक्ति से छटपटाता है, वस यही दशा हो रही है पाण्डवों की। वरना हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सामने उनकी शक्ति ही क्या है। तुम व्यर्थ ही चिन्तित हो रहे हो।”

“तभी मेरी चिन्ता व्यर्थ नहीं है। आठ दिन के युद्ध का विश्लेषण करो तो यही परिणाम निकलेगा कि इन दिनों में ही हमें बहुत क्षति हुई है। स्वयं मेरे अपने भ्राताओं की भी बलि हुई है। शूर भगदत्त आज घटोत्कच को मारने में असफल रहे। भीष्म, कृतवर्मा आदि मिलकर, भी अर्जुन को न रोक पाये, बल्कि उल्टे उसने हमारे ही योद्धाओं को मार गिराया। ऐसी दशा में मैं चिन्तित नहीं होता क्या खुशी मनाऊँ?”—दुर्योधन ने कहा।

दुःशासन कहने लगा—“पाण्डव युद्ध आरम्भ होने से पूर्व तो कुछ भयभीत भी थे, पर अब तो उनका हौसना ही बढ़ गया है। प्रकट अर्जुन पितामह और द्रोणाचार्य को मर्देड़ देता है।”

दुर्योधन ने उसका समर्थन करते हुए कहा—‘आश्चर्य की बात तो यह है कि पितामह और द्रोणाचार्य भी मिलकर एक अर्जुन का वध नहीं कर पाते।’

कर्ण ने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—‘दुर्योधन ! तुम्हें अच्छी लगे या बुरी मुझे तो ऐसा लगता है कि पितामह दिल से लड़ ही नहीं रहे। वरना कहा पितामह और कहाँ अर्जुन। वह तो पितामह के एक प्रहार का शिकार है। मेरा विचार तो यह कि पितामह पहले से ही पाण्डवों से स्नेह रखते हैं। वे हैं तो तुम्हारे पक्ष में पर दिल उनका पाण्डवों के पक्ष में है। तब तुम्हारी विजय हो तो कैसे ?’

‘लेकिन, पितामह के लड़ने के तरीके से तो ऐसा नहीं लगता।’—शकुनि ने शका प्रकट की।

कर्ण दृढतापूर्वक बोला—‘मामा जी ! आप भी कौसी वच्ची जैसी बातें करते हैं। भला भीष्म अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध करें और पाण्डव जीवित बच जायें ? वे तो महाबली हैं। महान तेजस्वी और बाल ब्रह्मचारी हैं। उनकी शक्ति का डका तो सारे समार में बज रहा है। पर यदि वे हथियार रख दे तो मैं ही पाण्डवों के लिए काफी हूँ। अकेला ही उन दुष्टों को यमलोक न पहुँचा दूँ तो तब कहना।’

दुर्योधन के मन में आशा का संचार हुआ, उसे कुछ हिम्मत बन्धी। पर पश्चात्ताप सा करता हुआ बोला—‘कर्ण ! तुम्हारे ही शौर्य के बल पर तो मेने युद्ध ठाना है। मुझे विश्वास है कि अन्त समय में तुम ही काम आओगे। पर पितामह के रहते तुम रण में उतरोगे नहीं और पितामह ऐसे पीछा छोड़ेंगे नहीं। कर तो क्या ?’

शकुनि बोला—‘यही बात है तो तुम पितामह से साफ साफ क्यों नहीं कहते ?’

‘हां, हां आप को पितामह से साफ साफ बात करनी चाहिए। कर्ण ने शीघ्रता से कहा—उन से कह दो ना कि वे लड़ते हैं तो मन लगा कर लड़ें, वरना यदि उन्हें पाण्डवों से स्नेह है और अपने स्नेह के कारण वे लड़ नहीं पाते तो अस्त्र रख दें। क्यों व्यर्थ मैं हमारे

वीरो को मरवा रहे हैं। यह युद्ध है युद्ध, लज्जा की तो मारे जाओगे।”

कर्ण की बात दुर्योधन की समझ में आ गई और वह आवेश में आकर पितामह के शिविर की ओर चला।

×

×

×

×

पितामह दूसरे दिन के युद्ध की योजना पर विचार कर रहे थे तभी दुर्योधन पहुँचा। पितामह ने उसे आव भगत से बैठाते हुए कहा—“कैसे आना हुआ ? क्या कोई विशेष बात है ?”

अपना रोष प्रगट करते हुए दुर्योधन ने कहा—“पितामह ! रोज रोज की पराजय और अपने भ्राताओं व वीरों की हत्या से मैं तग आ गया हूँ। आप को न जाने क्या हो गया है। आप हैं तो हमारी ओर। चढ़ जा वेटा सूली पर भला करेंगे भगवान कह कर आप ने हमें सूली पर टांग दिया और स्वयं पाण्डवों के स्नेह में दुबले हुए जा रहे हैं। कुन्ती नन्दनों से इतना ही मोह है तो लोक दिखावे के लिए हमारी ओर से लड़ने की ही क्या आवश्यकता है ?”

आवेश में कहे गए दुर्योधन के वचन पितामह को तीरो की भाँति चुभे। पर शांत भाव से बोले—वेटा ! बड़े आवेश में हो। क्रोध में यह भी ज्ञान नहीं रहा कि कह क्या रहे हो ? तभी तो भगवान ने कहा है कि क्रोध अनर्थों का मूल है।”

“पितामह ! आप मेरी बातों को टालने की चेष्टा न करें—दुर्योधन ने जली कटी मुनाते हुए कहा—मैं जो कह रहा हूँ सच है। यह बात न होती तो क्या पाण्डव आप के होते हुए ठहर सकते थे ? आज तक तो उन का पता भी न चलता। उस दिन घटोत्कच से मैं पराजित हुआ पर आप पर उसका कोई प्रभाव ही न हुआ आज अर्जुन को ही आप नहीं रोक पाये। इस बात पर विश्वास करने के लिए भला कौन तैयार हो सकता है कि अर्जुन को रोकना आप के वस की बात नहीं। आप तो अकेले ही सारे पाण्डवों को काफ़ी हैं। मैंने आप पर गर्व किया और आप के कारण ही मेरा प्रिय वीर कर्ण युद्ध से अलग है। वह अकेला ही पाण्डवों को मार सकता है। मैंने आप को अपनी सेना का सेनापति बनाया तो इस लिए नहीं कि आप पाण्डवों के मोह में मुझ परास्त कराते रहे। अब मैं

सन्तोष करू तो कैसे ?''

दुर्योधन के वाग्वाणो से पितामह बहुत ही व्यथित हुए, किन्तु उन्होंने कोई कड़वी बात नहीं कही। क्योंकि वे तो इस सिद्धान्त को मानने वाले थे कि —

त्रिकाल मिटे वचन ते सुख उपजे चहुं ओर ।

वसीकरण एक मत्र है, तज दे वचन कठोर ॥

वे बहुत देर तक दीर्घश्वास लेते रहे। उसके बाद अपने को नियन्त्रित करते हुए उन्होंने कहा—“बेटा ! अपने वाग्वाणो से मेरे मन को क्यों वेधते हो ? मैं तो अपनी पूरी शक्ति लगा कर युद्ध कर रहा हूँ और तुम्हारा हित करना चाहता हूँ। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करने के लिए मैं अपने प्राण तक होमने को तयार हूँ। पर पाण्डव मिट्टी के ढेले तो नहीं। वे भी तो शूरवीर हैं। याद करो उन के पराक्रम केदृष्टांतों को। गन्धर्व जब तुम्हें पकड़े लिए जा रहे थे और कर्ण आदि सभी पीठ दिखा कर भाग गए थे, यही अर्जुन था जिस ने अकेले ही गधर्वों से तुम्हें मुक्त कराया था। विराट नगर की चढ़ाई के समय अकेले अर्जुन ने ही तो हम सब को परास्त कर दिया था। और अपनी वीरता की डींग हाँकने वाले कर्ण आदि के वस्त्र उतार कर उसने उत्तरा को भेंट स्वरूप दिए थे। यह भी तो पाण्डवों की वीरता का ही प्रमाण है। भला जिसके रक्षक त्रिखंड पति वासुदेव श्री कृष्ण हो, जो कि अर्जुन के मारथी है, उसे रण में परास्त करना खिलवाड़ नहीं है। मैं कितना ही चाहूँ उसे परास्त करना मेरे लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर भी तुम विश्वास रखो कि मैं हर सम्भव उपाय अपना कर तुम्हें विजयी बनाने की चेष्टा करूँगा। सिवाय शिखण्डी के मैं सब पाण्डवों और उन के सहयोगियों से टक्कर लूँगा। शिखण्डी को मैं स्त्री मानता हूँ उस पर शस्त्र नहीं चलाऊँगा यदि तुम्हें मेरे युद्ध संचालन से कोई शिकायत हो तो सेनापतित्व तुम सम्भाल लो और शिखण्डी के अतिरिक्त अन्य किसीके भी मुकाबले पर मुझे डटा दिया करो मे अन्त समय तक लड़ता रहूँगा। तुम निश्चिन्त रहो। मैं कल और भी भोपण संग्राम करके तुम्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूँगा। पर इतना अवश्य ही ध्यान रखना कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अब वह शक्ति मुझ में नहीं है जो जवानी में थी और यह भी कि तुम्हारे वाग्वाण

अर्जुन के गान्डीव से छूटे बाणों से अधिक घातक है।”

दुर्योधन पितामह को उत्तेजित ही करना चाहता था। जब उस ने देखा कि वे दूसरे दिन भीषण युद्ध करने का वचन दे चुके तो वह कुछ शांत हो गया और बोला—“पितामह ! आप को मेरी बातें कटु लगी होगी पर जब मैं पाण्डवों की तनिक सी भी विजय देखता हूँ तो मेरी छाती पर सांप लोट जाता है। आप यदि भीषण संग्राम करेंगे तो कल ही पाण्डवों के छक्के छूट जायेंगे।”

पितामह ने उसे सन्तुष्ट करने के लिए अपने वचन को दोहराया और अन्त में बोले—“बेटा ! अपने पक्ष वाले लोगों पर विश्वास रखो। अब समय अधिक हो गया। जाओ निश्चित होकर विश्राम करो।”

×

×

×

×

नवें दिन पितामह ने सर्वतो भद्र व्यूह की रचना की। कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैब्य, शकुनि, जयद्रथ सुदक्षिण और धृतराष्ट्र के पुत्र पितामह के साथ अग्रिम पंक्ति में खड़े हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त व्यूह की दाहिनी ओर नियुक्त किए गए। अश्वस्थामा, सोमदत्त और अवन्ति राजकुमार अपनी विशाल सेनाओं सहित बायी ओर खड़े हुए। भिर्गत्तराज के वीरों और उसकी सेना से रक्षित दुर्योधन व्यूह के बीच में था। महारथी अलम्बुष और श्रुतायु सारी व्यूह वद्ध सेना के पीछे थे। इस प्रकार सेनापति की आज्ञानुसार सभी ने अपने अपने स्थान ग्रहण किए और कौरव सेना युद्ध के लिए तैयार हो गई।

दूसरी ओर पाण्डवों की सेना भी व्यूह में खड़ी हुई। युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव व्यूह के मुहाने पर थे। तथा धृष्टद्युम्न विराट, सात्यकि, शिखण्डी, अर्जुन, घटोत्कच, चेकितान, कुन्ती भोज, अभिमन्यु, द्रुपद, युधामन्यु और केकय राजकुमार—यह सभी वीर कौरवों के मुकाबले पर अपना व्यूह बनाकर खड़े हुए। सेनापति ने इन सब के स्थान निश्चित कर दिए थे। जब पाण्डवों की सेना का व्यूह तैयार हो गया तो युद्ध के लिए तैयार होने की सूचना के रूप में शंखनाद किए गए। पाण्डवों के शंखनादों को सुनकर कौरवों का रण का बाजा बजने लगा और भीष्म पितामह

के नेतृत्व में कौरव-वीर आक्रमण हेतु आगे बढ़े ।

दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया । दोनों ओर के वीर एक-दूसरे की ओर दौड़कर युद्ध करने लगे । उस समय दोनों ओर के वीरों के आगे बढ़ने, धनुषों की टकारों और हाथियों व घोड़ों के शोर की ध्वनि से पृथ्वी डगमगाने लगी । चमचमाते अस्त्र निकल आये । गदाएँ टकराने लगीं । हाथियों की चिंघाड़ों का शोर मच गया । तभी दूर से जंगल में से गीदड़ों की आवाजें दिन में गीदड़ों की आवाजें कुछ विचित्र सी लग रही थीं- कुत्तों ने एक साथ मिलकर आर्त्तनाद किया । आकाश में उल्काएँ पृथ्वी की ओर गिरने लगीं । इन कुशुभ लक्षणों से दोनों सेनाओं के हाथियों और घोड़ों की आवाजें बढ़ गईं और सिंहनाद, गदाओं के टकराने से निकलने वाले धनुषों की टकारें बड़ी ही भयानक प्रतीत होने लगीं ।

अभिमन्यु कौरव सेना के बीच में बहुत चाहा कि उसे मार्ग न मिले पर वह और वह सैन्य समूह में घुसते हुए अपने वाणों से सैनिकों के प्राण हरने लगा । अपने वाणों से हाथियों का सिर और कितने ही घोड़ों का शरीर डाला । जयद्रथ, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य जैसे रथियों को चक्कर देता हुआ वह बड़ी ही चतुरता और सफलतापूर्वक रणारण में चक्कर लगा रहा था । अपने प्रताप से शत्रुओं को सन्तुष्ट करते देख कर राजाओं को ऐसा प्रतीत होता था मानो रण में दो अर्जुन उतर आये हैं । अपने पैने वाणों से उस ने कितने ही अश्वारोहियों, किन्ने ही गजारोहियों और कितने ही रथों व पदादि यमलोक पहुँचा दिए और कुछ ही देर में उस के सामने आई हुई कौरव सेना के पैर उखड़ गए ।

कौरव सैनिक अभिमन्यु से आतंकित होकर घोर आर्त्तनाद करने लगे, जिसे सुन कर दुर्योधन ने अलम्बुष से कहा—“महाबाहो ! अभिमन्यु अपने पिता के समान ही पराक्रम दिखा रहा है इस समय तुम ही एक ऐसे वीर हो जो उस मूर्ख का सर कुचल सको । क्योंकि तुम सभी विद्याओं में पारंगत हो । ओत्र जाओ और उसे यमलोक

जैन
४४२
सोने पर अभिमन्यु
और इस पर अस्त्र
कर बड़े अस्त्र
बहुतेरा
पात

पहुँचा दो । 'हम सब भीष्म पितामह शीघ्र ही सात्यकि के समीप को घेरते हैं ।' कि उसे घायल कर पृथ्वी

दुर्योधन की आज्ञा पाकर अलम्बुष सात्यकि की ध्वजा काट घोर गर्जना करता हुआ अभिमन्यु की ओर भी आच्छादित कर सुन कर पाण्डवों की सेना में खलबली मच गई । कर द्रोणाचार्य अपने को सम्भाल ही न पाये । अपनी गर्जना से पाण्डवों को मन्यु के साथ वाली सेना को कापते देख अलम्बुष पहले उसे डाला । पड़ा । उस के भीषण आक्रमण को पाण्डव सेना सहन न कर सकी पर सैनिक तितर बितर हो गए । पर ज्यों ही वह द्रौपदी पुत्रों के सामने पहुँचा, उसे जवरदस्त सग्राम का सामना करना पड़ा । पाँचों द्रौपदी पुत्र उस पर टूट पड़े और उन के बाणों से उसका कबच कट गया । वह घायल हो गया और उसे एक बार ऐसा बाण लगा कि वह अचेत हो गया । पर कुछ ही देर में चेतना लौट आई और अमर्षपूर्वक उसने उन पाँचों पर भीषण आक्रमण कर दिया । अब की बार आक्रमण का मुकाबला द्रौपदी पुत्र न कर पाये । उन के छोड़े और सारथी मारे गए । निकट था कि वे भी मारे जाते, कि तत्काल अभिमन्यु वहाँ पहुँच गया ! फिर तो दोनों ही एक दूसरे के लिए प्रलयान्ति की भाँति हो गए । भयकर टक्कर हुई ।

अभिमन्यु के मारे बाणों ने उस के नाको दम कर दिया । उसके मर्मस्थलो पर बाण घुस गए । जिस के उत्तर में उस राक्षस ने भी भयकर बाण वर्षा की । जब इस से भा कुछ न हुआ तो उस ने माया अस्त्र प्रयोग किए । एक ऐसा अस्त्र चलाया कि चारों ओर अधकार ही अधकार फैल गया । पाण्डव सैनिकों को न तो अभिमन्यु ही दिखाई देता था और न अपने अथवा शत्रु पक्ष के सैनिक ही सुझाई देते थे । उस भीषण अधकार को देख कर अभिमन्यु ने भास्कर नामक अस्त्र का प्रयोग किया । जिस के छूटते ही अधकार विदीर्ण हो गया । चारों ओर उजाला ही उजाला फैल गया । तब क्रुपित होकर अलम्बुष ने एक ऐसा अस्त्र चलाया कि सैनिकों को चारों ओर ऊपर से पहाड़ टूटते दिखाई दिए, तभी अभिमन्यु ने एक ऐसा अस्त्र चलाया कि हवा का तूफान सा चलने लगा और आखों के आगे से लुप्त हो गए । अलम्बुष ने अभिमन्यु के अस्त्र के जवाब में एक ऐसा अस्त्र प्रयोग किया कि चारों ओर अगारे से बरसने

के नेतृत्व में कौरव-वीर आक्रमणभास्त्र से वरफ गिरानी आरम्भ करदी दोनों ओर से युद्ध शुरू हो गया। तब घबरा दूसरे की ओर दौड़कर स्थल से छोड़ कर भाग पड़ा। अभिमन्यु वीरो के आगे बढ़ने लगा, पर उस ने पीछे घूम कर भी न देखा। ओर की ध्वनि से घबरा पड़ा। अलम्बुष के भागने से कौरव सेना में भय छा आये। इस लिए वह अभिमन्यु के प्रहार को क्या सहन करती। गया। संनिक भागने लगे। चारों ओर—“भागो-भागो।” का दिन होने लगा।

अपनी सेना को भागते देख कर भीष्म जी अपने साथी महारथियों सहित बालक अभिमन्यु से जा भिड़े। परन्तु वीर बालक ने भीष्म जी का वीरोचित स्वागत किया और हस कर बोला—“आईये दादा जी। आप का रण कौशल सर्व विख्यात है। मैं भी तो आप के पराक्रम को देखूँ।”—और उस ने उस पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी कुछ ही देर में अपने पिता व मामा सदृश पराक्रम दिखा दिया। भीष्म जी ने उस के पराक्रम का समुचित उत्तर तो दिया। पर अभिमन्यु का वे कुछ न विगाड़ सके। तभी अर्जुन अपने पुत्र की रक्षा के लिए कौरवों का सहारा करता हुआ उधर आ निकला। भीष्म जी की रक्षा के लिए कौरव महारथी जुट गए और अर्जुन की सहायता के लिए पाण्डव पक्षीय महारथी आ गए।

कृपाचार्य ने अर्जुन पर बाण वर्षा की, जब कि अर्जुन भीष्म जी के बाणों को बीच ही में तोड़ रहा था और कृपाचार्य के बाणों से भी अपनी रक्षा कर रहा था। सात्यकि तुरन्त ही कृपाचार्य पर टूट पड़ा। और अपने कई बाणों से उस ने कृपाचार्य को घायल कर दिया। ज्यों ही घायल होकर कृपाचार्य रथ के पिछले भाग की ओर झुके सात्यकि अश्वस्थामा से जा भिड़ गया। पर अश्वस्थामा ने अपनी चतुरता से उस के धनुष के दो टुकड़े कर दिये। परन्तु सात्यकि ने तुरन्त ही दूसरा धनुष सम्भाला और साठ बाण अश्वस्थामा पर चलाये। जिन्होंने उसकी छाती और भुजाओं पर चोट की। इस से घायल होकर अश्वस्थामा को मूर्छा आ गई और अपनी ध्वजा के डण्डे का सहारा लेकर अपने रथ के पिछले भाग में बँठ गया।

जब अश्वस्थामा सचेत हुआ, शीघ्र ही सात्यकि के समीप पहुँचा और जाते ही नाराच छोड़ा। जो कि उसे घायल कर पृथ्वी में जा धुसा। एक दूसरे बाण से उस ने सात्यकि की ध्वजा काट डाली। पर सात्यकि ने बाण वर्षा करके उसे भी आच्छादित कर दिया। अश्वस्थामा को बाणों से आच्छादित देख कर द्रोणाचार्य पुत्र रक्षा के लिये दौड़ पड़े और अपने पैने बाणों से सात्यकि को भी घायल डाला। उस ने भी बीस बाणों से आचार्य को भी घायल डाला। उसी समय परम प्रतापी वीर अर्जुन ने क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। तीन ही बाणों से उसने आचार्य को घायल कर दिया और बड़े वेग से बाण वर्षा कर के उन्हें ढक दिया। इस से आचार्य की क्रोधाग्नि एक दम भड़क उठी और उन्होंने ऐसी तीव्र गति से बाण चलाए कि एक बार तो अर्जुन भी बाणों के परदे में छुप गया।

दुर्योधन ने तभी सुशर्मा को द्रोणाचार्य की सहायता के लिए भेजा। अपने पिता को अर्जुन के मुकाबले पर जाते देखकर सुशर्मा के पुत्र को भुजाए भी फड़क उठी और उसने शखनाद करके अपने पिता का अनुकरण किया। भिगर्त राज ने और उसके पुत्र ने जाते ही अपने लोह-बाणों का भयकर प्रहार किया, परन्तु वीर अर्जुन ने उन दोनों के बाणों को अपने बाणों से व्यर्थ बना दिया और अपनी ओर से इस प्रकार की बाण वर्षा की कि भिगर्त राज व उसका पुत्र आये थे प्रहार करने, स्वयं उन्हें आत्म रक्षा की चिन्ता पड़ गई। यह देखकर पाण्डव पक्षीय सैनिक ठहाका मारकर हसने लगे। भिगर्त राज के रक्त ने उबाल खाया और वह प्राणों का मोह त्याग कर अर्जुन पर बाण वर्षा करने लगा। परन्तु वीर अर्जुन ने उस अवसर पर ऐसे रण कौशल का परिचय दिया कि देखने वाले, चाहे वे पाण्डव पक्षीय थे अथवा कौरव पक्षीय, उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। आकाश में युद्ध देख रहे देवता भी अर्जुन का हस्तालाघव देखकर “धन्य धन्य कहने लगे। भिगर्त राज और उसके पुत्र ने आवेश में आकर पुनः एक भयकर आक्रमण किया, जिनसे कुपित होकर अर्जुन ने कौरव सेना के अग्र भाग में खड़े भिगर्त वीरों पर वायव्यास्य छोड़ा। जिससे आकाश में खलबली मच गई और ऐसा प्रचण्ड पवन प्रगट हुआ कि कौरव वीरों को अपने रथों पर जमे

रहना दूभर हो गया। पताकाओं की ध्वजियाँ उड़ने लगीं। सैनिक हाथियों पर से नीचे लुढ़क गए और किसी का तरकश उड़ गया तो किसी का मुकुट। कोई रथ ही भूमि पर लुढ़कने लगा। यह दशा देखकर द्रोणाचार्य ने शैलास्त्र छोड़ा। जिससे वायु रुक गई और सब दिशाएँ स्वच्छ हो गईं। परन्तु पाण्डु पुत्र अर्जुन के सामने टिके रहने का साहस भिगर्त राज व उसके पुत्र में न रहा। उनसे भागते ही बना।

उधर सूर्य अपनी मजिल के अर्ध भाग को पूरा करके सर पर पहुँच गया। मध्याह्न हो गया। दुर्योधन और उसके पक्ष के वीरो ने गगानन्दन भीष्म जी को पुकारा।—“पितामह ! अर्जुन के प्राणहारी वाणों से रक्षा करो वरना कौरव सेना उसके पैने वाणों से नष्ट हो जायेगी।”

पितामह ने अपने तीक्ष्ण वाण सम्भाले और टूट पड़े पाण्डव-सेना पर। जैसे दावानल सूखे वन को नष्ट करता है, उसी प्रकार गगानन्दन के वाण पाण्डव-सेना का सहार करने लगे। सैकड़ों सैनिक मौत के घाट उतर गए। तब धृष्ट द्युम्न, शिखण्डी, विराट और द्रुपद भीष्म जी के सामने आये और वाण वर्षा करने लगे। परन्तु पितामह ने धृष्ट द्युम्न, विराट और द्रुपद आदि सभी महारथियों को घायल कर दिया। वाण खाकर उनका पौरुष भयकर रूप से प्रगट हुआ और शिखण्डी जिस पर कि पितामह ने वाण नहीं चलाए थे, कुपित होकर उन पर टूट पड़ा। साथ दे रहे थे अन्य द्रुपद व विराट आदि महारथी। पितामह भी घायल हो गए। परन्तु वे अपने वाणों से शिखण्डी के अतिरिक्त अन्य सभी को पीड़ित करते रहे। उस समय भीमसेन, सात्यकि आदि भी मुकावले पर आगए। यह देख कौरव महारथी भी जा भिड़े। फिर तो बड़ा ही घमासान युद्ध होने लगा। पदाति से पदाति, गजारोही से गजारोही ही और रथी से रथी भिड़ गया था। भालो, तलवारों, कटारों, गदाओं और धनुषों से वार हो रहे थे। रक्त की धाराएँ वह निकली थीं। वीरों के शवों पर रथ दौड़ रहे थे। गदाओं के टकराने से विजली टूटने सा शब्द होता था।

दूसरी ओर अर्जुन के मुकावले पर भिगर्त राज के महारथी

आ डटे थे। द्रोणाचार्य तो अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध कर ही रहे थे। परन्तु भिगर्त राज के महारथियों के एक साथ टूट पडने से युद्ध में और गरमी आ गयी। अर्जुन ने उस समय कुछ दिव्यास्त्र प्रयोग किए जिनके सामने रुक सकना भिगर्त महारथियों के बस की बात नहीं थी। यदि उनकी रक्षा के लिये द्रोणाचार्य न होते तो कदाचित् वे सभी यमलोक सिंघार जाते। पर आचार्य की कृपा से कुछ की जान बच गई और वे रण छोड़कर भाग निकले। कितने योद्धा तो अपने हाथियों, घोड़ों और रथों पर से कूद कर भाग गए और हाथी, घोड़े और रथ इधर उधर भागने लगे। कौरव-सैनिकों में चिल्लायो मच गई। यह देखकर दुर्योधन तत्काल भीष्म जी के पास पहुँचा और घबरा कर बोला—“पितामह ! अर्जुन हमारी सेना को डस रहा है। महारथी भाग रहे हैं।”

पितामह तुरन्त उस ओर चले। दुर्योधन ने अपनी सेना को उनके पीछे लगा दिया। परन्तु सात्यकि, द्रुपद, विराट आदि भी अर्जुन की रक्षा में लग गए। गंगा नन्दन ने अपने बाणों से पाण्डवों की सेना को अच्छादित करना आरम्भ कर दिया। सात्यकि कृतवर्मा से भिड़ गया और अपने कुछ ही बाणों से उसे वीध डाला फिर कौरव सेना के बीच जाकर युद्ध करने लगा। राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य को घेर लिया और स्वयं उन्हें तथा उनके सारथि को बुरी तरह घायल कर दिया। भीमसेन बाल्हीक को घेरा हुआ था। उसने कुछ ही देर में उनको वीध डाला और विजय की सूचना के रूप में बड़ा ही उत्साहपूर्ण सिंह नाद किया। चित्रसेन ने यद्यपि अभिमन्यु को घायल कर दिया तथापि वह रण में डटा रहा और उन्हें चित्रसेन को उसने घायल कर दिया और नौ बाणों से उसके चारों घोड़ों को मार गिराया।

आचार्य द्रोण, द्रुपद के बाणों से हार्दिक रूप से भी घायल हुए थे, अतः उनका क्रोध उबल पड़ा और वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध करने लगे। द्रुपद का सारथि और उसके घोड़े उन की कोपाग्नि में भस्म हो गये। और अत्यन्त व्याथित होकर द्रुपद को रण भूमि छोड़नी पड़ी। दूसरी ओर भीमसेन ने राजा बाल्हीक के घोड़ों और सारथि को मारकर उसके रथ को भी नष्ट कर डाला। इस लिये वे तुरन्त ही लक्ष्मण के रथ पर चढ़ गए। सात्यकि

ने कृतवर्मा को बड़ा परेशान किया और जब वह पीड़ित होकर निष्क्रिय सा हो गया तो सात्यकि सीधा पितामह भीष्म के सामने जा डटा। दोनों ओर से बाण वर्षा होने लगी। पर कुछ देर तक दोनों ही डटे रहे। किसी को कुछ हानि न पहुँची तब परेशान होकर पितामह ने एक शक्ति अस्त्र चलाया। लोहे की वह शक्ति बड़ी भयंकर थी। सात्यकि उसकी भीषणता समझता था, उसने बड़ी हा चतुराई से पैतरा बदला और शक्ति का वार खाली गया वह भूमि में जा घुसी। सात्यकि ने तुरन्त ही अपनी ओर से एक शक्ति-अस्त्र प्रयोग किया परन्तु पितामह ने उसे अपने पंने बाणों से बीच ही में काट डाला और सात्यकि की छाती को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया। पाण्डव पक्षीय महारथी तब सात्यकि की रक्षा के लिए पहुँच गए। और उन्होंने पितामह का रथ चारों ओर से घेर लिया। वस, फिर क्या था, बड़ा ही घमासान युद्ध होने लगा।

राजा दुर्योधन ने तब दुःशासन को बुला कर कहा—“देख रहे हो दुःशासन! पितामह घिर गए हैं। वे सकट में हैं। जल्दी दौड़ो उनकी सहायता करो।”

आदेश मिलना था कि दुःशासन अपनी विशाल वाहिनी से भीष्म जी को घेर कर खड़ा होगया। शकुनि एक लाख सुशिक्षित घुड़ सवारों को लेकर नकुल और सहदेव की सेना के सामने आ डटा था और दुर्योधन ने दस हजार सैनिक युधिष्ठिर की सेना के मोर्चे पर भेज दिए। परन्तु पराक्रमी पाण्डवों ने रक्त की होली खेलनी आरम्भ कर दी। कौरव-सैनिकों के सिर कट कट कर भूमि में ऐसे गिर रहे थे मानो वृक्षों से पके फल गिर रहे हो। घोड़ों के शवों का ढेर लग गया था और चारों ओर रक्त व मांस के मारे की सी हो गई थी। रेत लाल कीचड़ में परिवर्तित हो गया था।

अपनी सेना को पराजित देख कर दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ उसने मद्रराज से कहा—“राजन्! वह देखिये नकुल और सहदेव हमारी विशाल सेना को नष्ट किए डाल रहे हैं। आप चाहें तो यह सेना नष्ट होने से बच सकती है। आप शीघ्र ही उस की रक्षा करें।”

मद्रराज शल्य रथ सवार सेना लेकर युधिष्ठिर के मुकाबले

पर जा डटे। उत्रकी सारी सेना एक साथ युधिष्ठिर पर टूट पड़ी। परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने बाणों के प्रबल वेग ने शल्य की सेना को रोक दिया और उनकी छाती पर दस बाण मारे यदि मजबूत कवच न होता तो शल्य यमलोक सिधार गए होते। पर वे वच गए और दानो और से भीषण युद्ध होने लगा नकुल और सहदेव भी उन के मुकाबले पर आगए।

अब दिन अपने अन्तिम अध्याय में प्रवेश करने लगा। और गगानन्दन भीष्म जी ने बड़े वेग से पाण्डवों पर आक्रमण किया। ताकि वे अपने वचनानुसार पाण्डवों की सेना को नष्ट करके दुर्योधन को सन्तुष्ट कर सके। उन्हो ने वारह बाण भीम पर, नौ सात्यकि पर, तीन नकुल पर, सात सहदेव पर और वारह युधिष्ठिर पर बरसाये। और बड़ा ही भयकर सिंहनाद किया। पाण्डव वीर बड़े ही पीड़ित हुए और कुपित होकर उन्होने पितामह पर बाण वर्षा करदी। नकुल ने वारह, सात्यकि ने तीन, धृष्टद्युम्न ने सत्तर, भीमसेन ने सात और युधिष्ठिर ने वारह बाणों से पितामह को घायल कर दिया। पितामह को सकट में मे आया देख द्रोणाचार्य ने इन वीरों को अपने बाणों का निशाना बनाया। और सात्यकि व भीमसेन को पांच पांच बाण लगे। तभी उन के तीन तीन बाण द्रोणाचार्य को चोट पहुंचाने में सफल हो गए।

इस क्रवाद पाण्डवों के महारथियों ने पुनः चारों ओर से पितामह को घेर लिया। परन्तु गगानन्दन ने उस समय बड़े ही अद्भुत पगाक्रम में काम लिया। उनकी प्रत्यक्षा की विजली की कड़क के समान टड्कार मृन कर सब प्राणी काप उठे। वे बाणों का तूफान लाने हुए पाण्डव सेना को विध्वंस करने लगे। सहस्रों सैनिक यम लोक सिधार गए। उन के बाण जिसे लगते, उसी के कवच को चीन्ने हुए शरीर में प्रवेश कर जाते और एक चीत्कार निकलती, और सैनिक के प्राण पखेरू उड़ जाते। सैकड़ों रथ, हाथी और घोड़े मनुष्यहीन हो गए। उन के अमोघ बाणों की वर्षा से पाण्डव सेना में हतहानि मच गया और उस समय तो सर्वत्र घबराहट फैल गई जब चेष्टि, काशी, और कुरु देश के चौदह हजार महारथी जो रण में प्राण देने की तैयार रहते थे, परन्तु पीछे पग रखना उन के स्वभाव के ही प्रतिकूल था, भीष्म जी के बाणों से अपने रथ, घोड़ों और

हाथियो सहित नष्ट हो गए।

पाण्डवों की सेना इस भीषण सहार से आर्तनाद करती हुई भागने लगी। यह देख कर श्री कृष्ण ने अपना रथ रोक कर कहा—“कुन्ती नन्दन ! तुम जिसकी प्रतिकक्षा में थे, वह अब सयय आ गया है। इस समय तुम यदि माह ग्रस्त नहीं तो भीष्म जी पर भीष्म वार करो। तुम ने विराट नगर में सजय के सामने कहा था ना कि मैं भीष्म द्रोणादि कौरव महारथियो को उन क अनुयायियो सहित मार डालूंगा, लो अब अपना वह कथन पूर्ण कर दिखाओ। तुम क्षात्र धर्म का पालन कर के अब युद्ध में अपना अपूर्व कौशल दिखाओ। वरना तुम्हारी सेना परास्त हो जायेगी।

श्री कृष्ण की बात सुन कर अर्जुन ने कहा—“मधु सूदन ! जैसी आपकी आज्ञा। अच्छा आप मेरे रथ को पितामह की ओर ले चलिए। मैं अजेय भीष्म जी को अभी ही पृथ्वी पर गिरा दूंगा !”

अर्जुन ने यह शब्द कहे तो पर उसके शब्दों में उत्साह नहीं था उसने वेमन से कहा था। जैसे विवश होकर कह रहा है। सफेद घोड़ों वाले रथ को श्री कृष्ण ने भीष्म जी की ओर हाक दिया। अर्जुन को उस ओर जाते देख युधिष्ठिर की विशाल वाहिनी पुनः लौट आई। पर ज्यों ही अर्जुन सामने पहुंचा, भीष्म जी ने वाणों की तीव्र गति से वर्षा की और अर्जुन को सारथि तथा घोड़ों सहित वाणों से ढक दिया। इतने वाण चलाये कि अर्जुन रथ सहित इसी प्रकार छुप गया, जैसे बादलों में भास्कर छुप जाता है। परन्तु श्री कृष्ण तनिक भी नहीं घबराये वे वाण वर्षा में ही अपने रथ को हांकते रहे। और अर्जुन को डाटते हुए बोले—“क्या कर रहे हो पार्थ ?”

अर्जुन ने अपना दिव्य धनुष उठा कर पैंने वाण चला कर भीष्म जी का धनुष काट कर गिरा दिया तब उन्होंने तत्काल दूसरा धनुष उठाया, पर अर्जुन ने उसे भी काट डाला। इस कौशल को देख कर भीष्म जी कहने लगे—“वाह महा वाह, अर्जुन ! शाबाश कुन्ती नन्दन शाबाश !”—और दूसरा धनुष सम्भाल कर अर्जुन पर वाणों की। झड़ो लगादी पर उस समय श्री कृष्ण ने कुछ

इस प्रकार घुमा फिरा कर घोड़े हाँके, कि भीष्म जी के बाण व्यर्थ हो गए, वास्तव में श्री कृष्ण ने उस समय घोड़े हाकने की अद्भुत कला का प्रदर्शन किया।

परन्तु अर्जुन की ओर से वैसा ही रण कौशल न दिखाया जाता देख श्री कृष्ण क्षुब्ध हो गए। भीष्म जी इधर अर्जुन को पीड़ित कर रहे थे तो दूसरी ओर युधिष्ठिर की विशाल वाहिनी के महारथियों को मार रहे थे। अर्जुन की गति में कोई ऐसी बात नहीं थी कि श्रीकृष्ण को सन्तोष हो सकता। पितामह प्रलय सी मचाते जा रहे थे और अर्जुन मन्द गति से बाण चला रहा था। श्री कृष्ण से यह न देखा गया। बार बार अर्जुन को ललकारा—“क्या कर रहे हो धनजय ? तुम्हारा यह रण-कौशल क्या हुआ ?”—पर अर्जुन को गरमी न आयी वह उसी प्रकार लड़ता रहा। तब रोष पूर्वक कृष्ण बोले—“पार्थ ! भीष्म जी को रोको। तुम्हें क्या होगया है ?”

अर्जुन की ओर से फिर भी ऐसा कुछ नहीं हुआ, जिस से भीष्म जी की गति रुक सकती। तब आवेश में आकर श्री कृष्ण घोड़ों की रास छोड़ कर रथ से कूद पड़े और सिंह के समान गरजते हुए चाबुक होकर भीष्म जी की ओर दौड़े। उनके पैरों की धमक से मानो पृथ्वी फटने सी लगी उनकी आखें क्रोध के मारे लाल हो रही थी। उस समय कौरव सेना में कोलाहाल मच गया—“अरे कृष्ण आये, कृष्ण आये। बचाओ भीष्म जी को।”—की आवाज उठने लगी।

श्री कृष्ण रेशमी पिताम्बर धारण किये हुए थे। उस से उन का नील मणि के समान श्याम सुन्दर शरीर विद्युल्लता से सुशोभित श्याम मेघ के समान प्रतीत होता था। जिस प्रकार सिंह हाथी पर टूट पड़ता है, इसी प्रकार श्री कृष्ण गर्जना करते हुए भीष्म जी की ओर लपके। कमल नयन श्री कृष्ण को अपनी ओर आते देख पितामह ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा—“गोविन्द ! आईये आईये, आपका स्वागत है। आज आप रण में उतर रहे हैं अहोभाग्य।”

तभी अर्जुन ने पीछे से आकर श्री कृष्ण को अपनी भुजाओं में भर लिया और पीछे की ओर खींचने लगा। परन्तु श्री कृष्ण भागे ही बढ़ते रहे, वे अर्जुन को भी घसीट ले गए। कहते जाते थे—

“धनजय ! तुम पितामह का मोह करते हो। तुम अवश्य ही उनके हाथो पाण्डव-सेना का नाश करादोगे। छोड़ दो मुझे। मैं अपने चाबुक से गंगानन्दन को यमलोक पहुंचा दूंगा। तुम कुछ नहीं कर सकोगे।”

तब अर्जुन दौड़ कर उनके सामने जा खड़े हुए और बोले—
“आप ने तो युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की है। अपनी प्रतिज्ञा को क्यों भंग करते हैं लोक आपको मिथ्यावादी कहेंगे।”

“तुम भी तो अपनी प्रतीज्ञा भंग कर रहे हो ? तुम ने भी तो पितामह का वध करने की प्रतिज्ञा की थी। पर तुम तो पितामह का आदर करते हो उन पर तुम से वाण चलाये ही नहीं जाते। तो क्या मैं पाण्डव-सेना जा सहार देखता रहूँ। क्यों रोकते हो मुझे। तुम जैसे व्यक्ति का सारथि बन कर मुझे मिथ्यावादी बनना न पड़ेगा तो क्या बनना पड़ेगा। तुम सभी की नाक कटादोगे।”—श्री कृष्ण ने गरज कर कहा।

“गोविन्द ! मेरी भूल क्षमा करदे। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि पितामह का वध करूंगा। मैं वहीं करूंगा जो आप चाहेंगे। लौट चलिए।”—अर्जुन ने आग्रह करते हुए कहा।

श्री कृष्ण तो चाहते ही यह थे कि अर्जुन को आवेश आये। वे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ना नहीं चाहते थे अर्जुन को प्रोत्साहित करके वे शान्त होगए।

जब अर्जुन ने बार बार कहा तो श्री कृष्ण लौट गए और रथ पर अपना स्थान ग्रहण करते हुए बोले—“भीष्म इस समय तुम्हारे पितामह नहीं वरन शत्रु हैं। वे तुम्हारा नाश कर रहे हैं। चलाओ वाण।”

पितामह ने आवेश में आकर दोनों पर ही वाण वर्षा आरम्भ कर दी। और साथ ही दूसरे पाण्डव पक्षीय महारथियों और वीरों पर भी वाण चलाते रहे। सैकड़ों वीर पृथ्वी पर लुढ़क गए। अर्जुन ने अपनी गी वहुत की। सम्पूर्ण शक्ति लगा कर वह वाण चलाता रहा। परन्तु भीष्म जो मध्याह्न के समय चमकते सूर्य की भांति हो रहे थे उनकी ओर पाण्डव सेना देख भी नहीं पाती थी। सैकड़ों वीर मारे गए। चीटी की भांति पाण्डव सैनिकों को भीष्म जी

मसलते रहे। पाण्डव-सेना में हाहाकार मचता रहा श्री कृष्ण रह रह कर अर्जुन को जोश दिलाते रहे। अर्जुन तीक्ष्ण बाण चला रहा। पर जैसे भयकर बाढ़ के आगे छोटे छोटे बाध ठहर नहीं पाते इसी प्रकार प्रलय मचाते भीष्म जी के प्राणहारी बाणों की बाढ़ के आगे अर्जुन के तीक्ष्ण बाण कुछ न कर पाते। पाण्डव-सेना में हाहाकार मच गया और सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे। अर्जुन के साथ भीमसेन भी आ गया और उसने भी अपने रण-कौशल के सहारे भीष्म जी के तूफान को रोकने की चेष्टा की। पर मव ध्यर्थ। ऐसा लगता था मानो आज भीष्म जी पाण्डवों का वेध्वंस करके रहेगे। कौरवों की सेना में सिंहनाद और शखनाद होने लगे और युधिष्ठिर के मुंह पर हवाईया उड़ने लगी। श्री कृष्ण बार बार अर्जुन को ललकारते रहे। सात्यकि, धृष्टद्युम्न, विराट और द्रुपद, नकुल व सहदेव के साथ अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भीष्म जी के साथी महारथियों पर बार करते रहे पर पाण्डव सेना का गहस टूट रहा। धड़ों में सर कट कट कर गिर रहे थे। कहीं हाथियों की चिंघाड़ें सुनाई देती तो कहीं सैनिकों के चीत्कार। रणस्थल में घोड़ों, हाथियों और मनुष्यों के शवों का ढेर जग गया। गोदाओं के रथ शवों पर होकर निकल रहे थे। तभी पश्चिम दिशा से भास्कर डूब गया और अधकार ने अपना डेरा डालना आरम्भ कर दिया। पाण्डवों की ओर से युद्ध नन्द होने का शख बज गया और भीष्म जी को प्रलय का परिच्छेद करवा पड़ा। कौरवों की सेना ने विजय घोष किए। पाण्डवों ने लडक गए। दोनों सेनाएं अपने अपने शिविरों की ओर लौट पड़ीं।

जो दिन मे घावो के कारण अर्ध मृत तक के समान हो चुके थे। कोई कोई घायल ऐसा है कि जिसका समस्त शरीर बाणो से छलनी हुआ है, पर ज्यो ही गहरे घावो पर औषधियो का लेप हुआ, तत्काल ही उसकी पीडा लुप्त हो गई और निद्रा का आलिंगन कर वह सुखद स्वप्नो मे खो गया, कुछ घण्टो बाद जब प्राची लाल हो उठेगी, वह घायल पुणतया-स्वस्थ होकर उठ बैठेगा और फिर शत्रुओ के सम्मुख उनके लिए एक समस्या बन कर खड़ा हो जायेगा।

थके मान्दे थोड़ाओ के शरीरो पर भी औषधि मिश्रित जल व तेलो का लेप कर दिया गया है, जिससे उन्हे विशेष रूप से सुख प्राप्त हो रहा है और अब वे आपस मे हस बोल रहे है। इस समय उनकी बातें यह प्रगट करती है कि दिन भर वे जिनसे जूझते रहे, वास्तव मे वे उनके शत्रुालु भक्त अथवा प्रणमक और अपने हैं। उनके प्रति इनके हृदय मे असीम स्नेह व आदर है। यदि कोई नही जानता कि यह युद्ध के क्षेत्र मे क्यों आये है तो यह जानकर कि जिनकी वे प्रशंसा कर रहे है दिन भर उन्ही क प्राणो के वे भूखे रहे, उसे असीम आश्चर्य से, बल्कि इस बात पर उसे विश्वास ही न हो।

सेना शिविर के पास ही अश्व, हाथि आदि पशुओ के लिए विश्रामालय बने है, जिनमे सेवक लोग उनकी उत्साह तथा जिम्मेदारी से सेवा कर रहे है उन्हे पौष्टिक पदार्थ खिलाए जा रहे है और अभी २ उन्हे मालिश करके थकान से मुक्त किया गया है।

एक पहर रात्रि जा चुका है और कौरव तथा पाण्डव वीर अपनी अपना शय्या पर पहुच गए है कुछ जो बहुत थके थे, खरटि भरने लगे और कुछ सोने का प्रयास कर रहे है। परन्तु एक शिविर है, पाण्डव सनिक छावनी मे जिस मे से अभि भी वातचीत की ध्वनि आ रही है। कोई कह रहा है।

“केशव ! तू दिन हो गए, पर पूर्ण शक्ति मे लडने पर, भी हम कौरव मेना को पक्का नही पाये-। उलटे, हमे अपने कितने ही वीरो से हाथ धोने पडे स्वय मे अपने पुत्र इरावान को भी खो चुका। जिस समय मुझे उस वोर की यदि आती है, तो आखें बरबस बरस पडने को उतावनी हो जाता है हृदय घटने लगता है मधु सूदन ! कभी कभी तो घोर निराशा के वादन मेरे मानस नभ पर छा जाते

है। कुछ मुझाई ही नहीं देता।”

स्पष्ट है कि बोलने वाला वीर अर्जुन है, जिसकी आवाज कुछ थकी सी है। ऐसी कि प्रतीत होता है मानो कोई थका मादा पथिक कह रहा हो।

मधु सूदन बोले — “पार्थ ! युद्ध में जहाँ शौर्य, रण कौशल भुज बल और सैन्य बल की आवश्यकता होती है, वहीं आत्म विश्वास और साहस भी नितान्त परमावश्यक है। यह युद्ध जो तुम कर रहे हो समारंभ के सभी युद्धों में भयानक और महान है। भरत क्षेत्र के समस्त योद्धा एक दूसरे के विरोध में आ उड़े हैं। विश्व के प्रसिद्ध रण कौशल प्रवीण, धुरधर वनुर्वागी, रण विद्या के आचार्य, महान वीरवर और परम-प्रतापी, अनुभवो, दिगज योद्धा लड़ रहे हैं। असंख्य वीरों के इस युद्ध में विजय प्राप्त करना आसान नहीं है। फिर भी विश्वास रखो कि विजय तुम्हारी ही होगी क्योंकि न्याय कभी परास्त नहीं हुआ। अर्थात् शुभ प्रकृतिवान विद्यावानों के अन्तर्गत से अभी तक टिके हुए हैं। परन्तु जैसे मेघ खडो से ज्योतिर्वान सूर्य भी छुप जाता है, इसी प्रकार अशुभ प्रकृति में कौरवों के अर्थात् के कारण उन शुभ कर्म वाले योद्धाओं का भी ह्रास हो जायगा, जो शुद्ध विचारों के लिए प्रसिद्ध हैं। धर्म से काम लो। त्याग में ही मेधा किसी महान वस्तु की प्राप्ति होती है। न्याय के लिए एक पुत्र तो क्या सहस्र पुत्रों की भी बलि दी जा सकती है।”

श्री कृष्ण को वान मून कर अर्जुन के टूटते साहस को कुछ बल मिला, फिर भी उसे निराशा में पूर्णतया मुक्ति न मिली। पूछा — “परन्तु कैशव ! मुझे ऐसा लगता है कि पितामह जैसे धुराय वान और परम-प्रतापी शूरवीर के रहते हमारा विजय असम्भव है। नौ दिन में अकेले वही कौरवों की ताँफा की डूबने से बचा रहे है। जब जब हमारे भयंकर प्रहार से कौरव सेना का साहस टूटा, तब तब भीष्म जी ने आकर उन्हें पुनर्जीवित कर डाला और उनके पने बाणों ने हमारे सैनिकों का सहार दिया। इस लिए कोई युक्ति ऐसी बतलें जिससे हमारे रास्ते में खड़ा यह मेरु-पर्वत हट जाये।”

प्रश्न-कड़ा जटिल था, कुछ देर के लिए पूर्णतः निस्तब्धता छा

गई। अन्त मे श्री कृष्ण बोले—“पार्थ ! ससार में कोई ऐसी समस्या नहीं जिसको सुलभाने का उपाय न हो। उपाय है।”

“तो फिर आप बताते क्यों नहीं ?”

केशव के अधरो पल्लवो पर मुस्कान उभर आई।

“हा, हाँ मधु सूदन ! भीष्म पितामह को रास्ते से हटाने का उपाय बताना ही होगा।”

अर्जुन के ज़ोर देने पर श्री कृष्ण बोले - “देखता हूँ भीष्म जो की उपस्थिति अब तुम्हें बुरी तरह खलने लगी है। मैं यह जानते हुए भी कि उनको रास्ते से केवल तुम्हारे ही पैने बाणों से हटाया जा सकता है और उस सहारे तक तुम्हारी दृष्टि नहीं जा रही, जो तुम्हें उपलब्ध है, चाहता हूँ कि ऐसे अवसर पर तुम अपने पितामह की महानता के दर्शन करो। तुम जाओ और पितामह से ही यह प्रश्न उठाओ।”

अर्जुन सोच मे पड़ गया। उसे यह बात अच्छी न लगी। धर्मराज युधिष्ठिर जो अभी तक मौन धारण किए बैठे थे और स्वयं उस प्रश्न पर विचार कर रहे थे उत्सुकता वश इस विषय मे परामर्श लेने लगे और कुछ देर बाद वे भीष्म पितामह के शिविर की ओर चल पड़े।

×

×

×

अभी अभी दुर्योधन परामर्श करके भीष्म पितामह के शिविर से निकला था कि धर्मराज पहुँच गए। पितामह का सुख कमल खिल उठा। अभिवादन स्वीकार कर के तुरन्त पूछ बैठे—“राजन् ! आप अपने भ्राताओं सहित सकुशल तो हैं ?”

“पितामह ! आपकी कृपा से अभी तक तो जीवित हूँ....”

“तो क्या भविष्य के प्रति सशक हो ?”

“हाँ, पितामह ! लगता है कि आप के वे बाण जो माता कुन्ती और माद्री की सन्तानों के लिए मृत्यु का सन्देश लेकर पहुँचने वाले हैं अभी समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।”

धर्मराज ने स्वाभाविक मुद्रा मे कहा। उस समय न तो उनके

मुख पर चिन्ता के लक्षण थे और न हास्य के ही। परन्तु इन पने शब्दों ने वह काम किया जो कदाचित् धर्मराज के वाण भी न कर पाते। बोले:—

‘राजन् ! ऐसी बात मुह से निकालते समय यह सोच लेते तो अच्छा था कि मैं आपको सफलता की कामना कर चुका हूँ और आप जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति को परास्त करने की शक्ति स्वयं देवराज इन्द्र में भी नहीं हैं।’

‘पितामह ! जब तक आप हैं तब तक हम दिजय का स्वप्न भी नहीं देख सकते। फिर मैं आप की कामना को क्रियात्मक रूप में परिणत होने की आशा करूँ तो क्यों कर ?’ धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा।

‘यह बात मैं स्वीकार करता हूँ पर मैं अजय तो नहीं, न अमर ही हूँ।’—पितामह बोले।

‘तो फिर पितामह ! आप हमें यह तो बताने की कृपा करें कि आप जो हमारे रास्ते में मेरू पर्वत के समान आ खड़े हुए हैं, किस प्रकार रास्ते में हटाए जा सकते हैं ? आप को याद हागा कि आप ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व मुझे इस प्रश्न को समय आने पर पूछने की आज्ञा दी थी।’

युधिष्ठिर की बात सुनकर भी पितामह के मुख पर कोई चिन्ता या विषाद के भाव न आये। वे उसी प्रकार बोले—‘हा, मैंने कहा था। तो क्या वह समय आगया ?’

‘हा, पितामह ! अब और नहीं महा जाता।’

पितामह चुप हो गए। इस चुप्पी से युधिष्ठिर के नेत्र चंचल हो उठे। उनके मुह पर चिन्ता पुत गई। पितामह कुछ क्षण मौन रहे और फिर बोले—‘बेटा ! मेरी मृत्यु तुम्हारे पक्ष में विद्यमान है। द्रुपद की प्रतिज्ञा याद है ना ! शिखण्डी तो है ही। मैं उस के ऊपर कभी अस्त्र शस्त्र प्रयोग नहीं कर सकता। वस उसी की आड़ लेकर धनञ्जय मुझे जीवन मुक्त कर सकता है। इस उपाय के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है कि मुझे रण क्षेत्र में हटा सको। कोई शक्ति ऐसी नहीं कि मेरे हाथों के चनते रहने पर मुझे परास्त कर सके।’

धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरणों में सिर रख दिया, स्वार्थ पूर्ति कर देने के कारण आभार प्रदर्शन के लिए नहीं, वरन इतने उच्च आदर्श के कारण ही।

इस के उपरान्त ही कुछ और बातें हुईं। पितामह ने अर्जुन के रण कौशल की प्रशंसा की और इरावान के मारे जाने पर दुःख प्रकट किया। धर्मराज ने उनके कौशल की प्रशंसा की और अन्त में प्रणाम करके वापिस चले आये।



मुख पर चिन्ता के लक्षण थे और न हास्य के ही। परन्तु इन पने शब्दों ने वह काम किया जो कदाचित् धर्मराज के वाण भी न कर पाते। बोले:—

‘राजन् ! ऐसी बात मुह से निकालते समय यह सोच लेते तो अच्छा था कि मैं आपको सफलता की कामना कर चुका हूँ और आप जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति को परास्त करने की शक्ति स्वयं देवराज इन्द्र में भी नहीं है।’

‘पितामह ! जब तक आप हैं तब तक हम विजय का स्वप्न भी नहीं देख सकते। फिर मैं आप की कामना को क्रियात्मक रूप में परिणत होने की आशा करूँ तो क्यों कर ?’ धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा।

‘यह बात मैं स्वीकार करता हूँ पर मैं अजय तो नहीं, न अमर ही हूँ।’—पितामह बोले।

‘तो फिर पितामह ! आप हमें यह तो बताने की कृपा करें कि आप जो हमारे रास्ते में मेरू पर्वत के समान आ खड़े हुए हैं, किस प्रकार रास्ते में हटाए जा सकते हैं ? आप को याद हागा कि आप ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व मुझे इस प्रश्न को समय आने पर पूछने की आज्ञा दी थी।’

युधिष्ठिर की बात सुनकर भी पितामह के मुख पर कोई चिन्ता या विपाद के भाव न आये। वे उसी प्रकार बोले—‘हा, मैंने कहा था। ... तो क्या वह समय आगया ?’

‘हा, पितामह ! अब और नहीं मचा जाता।’

पितामह चुप हो गए। इस चुप्पी से युधिष्ठिर के नेत्र चंचल हो उठे। उनके मुह पर चिन्ता पुनः गई। पितामह कुछ क्षण मौन रहे और फिर बोले—‘वेष्टा ! मेरी मृत्यु तुम्हारे पक्ष में विद्यमान है। द्रुपद की प्रतिज्ञा याद है ना ! शिखण्डी तो हैं ही। मैं उस के ऊपर कभी अस्त्र शस्त्र प्रयोग नहीं कर सकता। वस उसी की आड़ लेकर धनजय मुझे जीवन मुक्त कर सकता है। इस उपाय के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है कि मुझे रण क्षेत्र में हटा सकूँ। कोई शक्ति ऐसी नहीं कि मेरे हाथों के चलते रहने पर मुझे परास्त कर नके।’

धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरणों में सिर रख दिया, स्वार्थ पूर्ति कर देने के कारण आभार प्रदर्शन के लिए नहीं, वरन इतने उच्च आदर्श के कारण ही ।

इस के उपरान्त ही कुछ और बातें हुई । पितामह ने अर्जुन के रण कौशल की प्रशंसा की और इरावान के मारे जाने पर दुःख प्रकट किया । धर्मराज ने उनके कौशल की प्रशंसा की और अन्त में प्रणाम करके वापिस चले आये ।



सहारे पर बैठे रहना भी उचित नहीं हैं। यह युद्ध है, कभी भी कोई भी हम से छिन सकता है। हम यहाँ प्राणों का मोह त्याग कर आये हैं, इस लिए किसी व्यक्ति के प्रति मोह भी ठीक नहीं। मैं तुम से प्रत्येक मे अपूर्व शौर्य के साथ अपना पराक्रम दिखाकर अपने हाथ से विजय पताका फहराने की आकांक्षा देखना चाहता हूँ। मुझे अनुभव हो रहा है कि आज का युद्ध बड़ा विकट होगा। इस लिए आज पूरी शक्ति से शत्रु का मुकाबला करने की शपथ लो।”

पितामह की इस चेतावनी के बाद ही कौरव राज की सेना का राष्ट्र गीत रण के बाजे बजाने लगे। सैनिकों ने दुर्योधन और भीष्म पितामह की जय जयकार की। सभी कौरव पक्षी महारथियों ने शख नाद किए और फिर पितामह के आदेशानुसार व्यूह रचना की जाने लगे। भीष्म पितामह ने उस दिन बड़ी कुशलता से सेना को खड़ा किया और व्यूह की रक्षा के लिए चारों ओर विकट गाड़ियाँ लगा दी गईं। मुख्य द्वारों पर विकट गाड़ियों के पीछे महारथी खड़े किए गए जिनकी रक्षा के लिये सहस्रों सैनिकों को, जिन में गजारोही, अश्वारोही पदाति और रथी सभी प्रकार के सैनिक थे, नियुक्त किया गया। स्वयं भीष्म पितामह बीच में थे और उनकी रक्षा के लिए चुने हुए वीर अपनी अपनी सैनिक टुकड़ियों के साथ थे। यह व्यूह बिल्कुल उसी प्रकार था मानो किसी कलाकार ने एक उलभी हुई पहेली की रचना की हो, जिसमें प्रवेश करके उसके केन्द्र तक पहुँचना असम्भव प्रतीत होता हो।

सेना की अपूर्व व्यवस्था देख कर दुर्योधन जो सब से पीछे था, पितामह के पास पहुँचा और गदगद स्वर में बोला—“पितामह! आज आप ने जो कौशल दर्शाया है, उस से मुझे आशा हो गई कि अब आप के पराक्रम से शत्रु सेना की पराजय निकट आ गई है। मुझे अब अपने उन शब्दों पर लज्जा आ रही है, जो मैंने आप को उदासीन समझ कर प्रयोग किए थे। आप मुझे क्षमा कर दें।”

पितामह मुस्करा उठे, बोले—“आज तुम सन्तुष्ट हो, यह जान कर मुझे अपार हर्ष हो रहा है। परन्तु तुम यह मत भूलो कि मैंने जब से रणभूमि में पग रक्खा है अपनी शक्ति भर रण कौशल दर्शाया है। मैंने अपनी बुद्धि से सर्वोत्तम व्यूह रचनाएं की हैं परन्तु जब

दुर्भाग्य का तूफान आता है तो बड़े बड़े विशेषज्ञों द्वारा निर्मित शक्ति शाली बांध भी रेत के महल की भांति ठह जाते हैं।”

‘वस पितामह ! मेरे कान यह बातें सुनना नहीं चाहते। आप कभी तो मेरी मन चाही बात भी कह दिया करें।’—दुर्योधन ने कहा।

पितामह ने हसते हुए कहा—“बेटा ! विजय कौन नहीं चाहता पराजय की आशंका से किसका हृदय नहीं कांपता, फिर भी होता वही है जो होना होता है। पराजय किसी की विराट शक्ति से नहीं, बल्कि उसके विराट शक्ति शाली शुभ कर्मों से होती है।”

दुर्योधन पितामह की बात सुन कर तिलमिला उठा, उसने बात भुलाने का साहस न कर टालने का प्रयत्न किया, बोला—“पितामह ! आप से अधिक शुभ प्रकृति व्यक्ति कौन होगा। आप युद्ध का संचालन करें, फिर आप देखें कि शत्रु सेनाएं कितने पानी में है ?”

पितामह ने एक अट्टाहाम किया और तदुपरान्त अपनी सेना को सावधान करने के लिए भयकर सिंह नाद किया। घोड़े विचलित होगए और हाथियों ने अपनी सूंड ऊपर उठा कर अभिवादन किया।

दूसरी ओर घृष्टद्युम्न ने अपनी सेना की ऐसी व्यूह रचना की जो कि पितामह के व्यूह रचना को तोड़ सके। युधिष्ठिर और अर्जुन विशेष रूप से उसकी रचना में सहयोग दे रहे थे और भीम सेन अपने साथियों की पीठ ठोक रहा था। जब सारी सेना की व्यवस्था होगई तो श्री कृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा—“पार्थ ! पितामह की कुशल व्यूह रचना देख रहे हो ? चारों ओर विकट गाड़ियाँ ही विकट गाड़ियाँ हैं और उन के महारथी उन के पीछे हैं, उम के बाद है सैनिक और सैनिक टुकड़ियाँ भी मिली जुली हैं, पग पग पर गजारोही, अश्वारोही पदाति और रथी सैनिकों से पाला पड़ेगा। तब कही जाकर पितामह का रथ मिलेगा इस प्रकार पितामह का मुकाबला तुम इन सहस्रों दीवारों को तोड़ कर ही कर सकते हो। और इन दीवारों को तोड़ना महज नहीं है।”

अर्जुन ने बात समझते ही अपने सहयोगी गंधर्वों और विद्या-

धरो को बुलाया और उनसे उस दिन के लिए वायुयानों की व्यवस्था करने को कहा। कुछ ही देर में आकाश मार्ग से युद्ध करने की योजना पूर्ण हो गई और विकट गाड़ियों को विशेष रूप से मोर्चे पर लगा दिया गया। तभी युधिष्ठिर पहुंचे और धृष्ट द्युम्न से कुछ बातें करने के उपरान्त अर्जुन शिखन्डी को बुला कर उन्होंने आदेश दिया—“आज द्रुपद राज की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए तुम्हें अर्जुन के आगे रहना है। अर्जुन तुम्हारी आड़ लेकर भीष्म पितामह पर प्रहार करेगा और तुम स्वयं अपने पराक्रम का प्रदर्शन करोगे तभी द्रुपद महाराज की प्रतिज्ञा पूर्ण हो सकती है?”

शिखन्डी ने आदेश का पालन करने का वायदा करते हुए कहा—“मेरे द्वारा पिता जी की प्रतिज्ञा की पूर्ति हो, इस से बढ़ कर और मेरे लिए प्रसन्नता की क्या बात हो सकती है?”

वह अर्जुन के आगे होगया, यह देख श्री कृष्ण का मुखमण्डल [र्ण यौवन पर आये सूर्य की भाँति तेजमान हो गया, उन्हें अपार हर्ष हुआ और वे बोले—“पार्थ ! लो आज तुम्हारे रास्ते की मेरु पर्वत समान दीवार गिर जायेगी। शर्त यह है कि उस समय तुम्हारे हाथों में कम्पनू न आये,”

अर्जुन ने कहा—“मधु सूदन ! माता कुन्ती की कोख की सौगन्ध मैं रण क्षेत्र में अपनी किसी भी भावना को आड़े न आने दूंगा और सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध करूंगा।”

ज्यों ही युद्ध आरम्भ किए जाने की सूचना के लिए भीष्म पितामह ने रण भेरी बजवाई, कौरवों की विकट गाड़ियाँ आग के गोले बरसाने लगी, जिसके उत्तर में पाण्डवों की ओर से धुआँधार गोलों की वर्षा होने लगी। सारे रण क्षेत्र में धुआँ और आग की लपटें उछलने लगी। कुछ देर तक इसी प्रकार शतध्वी चलती रही। भयंकर आवाजों से घोड़े उछलने लगे। हाथियों की चिंघाड़ों का शोर सारे रण में छा गया। बड़ा भयंकर वातावरण हो गया। तभी धृष्ट द्युम्न के संकेत पर गधवों व विद्याधरों ने एक संकेत किया और आकाश से गोले बरसाये जाने लगे। जिन के कारण खुरदरी सेना में कोलाहल मच गया। बहुत से सैनिक आँखें फाड़ फाड़ कर आकाश से आते अग्नि गोलों को देखते, कुछ चंचल घोड़े

इधर उधर भागने लगे। कुछ पदाति नौसिखये सैनिक मल मूत्र व्यागने लगे और एक घण्टे की गोलावर्षा से ही कौरव सेना के छक्के छूट गए। कौरवों को अपनी विकट गाड़ियों को बन्द करना पड़ा और कौरवों की ओर से गोलों का वर्षा बन्द होते ही पाण्डवों की गोला वर्षा बन्द होगई ।

भीष्म पितामह ने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया और पाण्डवों की सेना भी अपने सेनापति का आदेश पाकर आगे बढ़ी । दोनों सेनाएं एक दूसरे के निकट पहुंचते ही परस्पर भिड़ गईं । दोनों ओर के महारथी एक दूसरे को परास्त करने के उद्देश्य से अपने भीषण अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग करने लगे । भीमसेन गदा लेकर गजारोही सेना पर टूट पड़ा । जिस हाथी की सूंड पर उसकी गदा पड़ती, वही चिंघाड़ मार कर भाग पड़ता । जिस हाथी पर दो तीन गदाओं के प्रहार हो जाते वह पहाड़ की भांति ढह जाता । कुछ ही देर में कौरवों की गजारोही सेना में हा हा कार मच गया । सात्यकि अपने धनुष के जौहर दिखा रहा था और भूरिश्रवा तथा भगदत्त अपने अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर रहे थे ।

परन्तु अर्जुन का रथ अपने सामने आने वाले वीरों का सहार करता आगे बढ़ रहा था, शिखण्डों तथा अर्जुन के वाणों के सामने कौरवों की सेना का जो भी दल पड़ता, वही या तो मुकाबला करता करता धाराशायी हो जाता; अथवा पैंने वाणों की ताबन लाकर भाग खड़ा होता । अर्जुन के साथ शिखण्डी को देख कर ही कौरव वीरों का साहस जवाब देजाता, कितने ही सैनिक दूर से देख कर ही दुम दबा कर भाग पड़ते और जो सामने आते, वे मानो प्राणों के साथ खिलवाड़ करते, मृत्यु दान लेने अथवा पराजय का प्रसाद देने भर को । उस दिन परम प्रतापी धनुर्धारी वीर अर्जुन के साथ शिखण्डी के हो जाने से कौरव सेना में तहलका मच गया और इस वातावरण से लाभ उठाते हुए श्री कृष्ण रथ की तेजी से भीष्म पितामह की ओर बढ़ाते जाते थे । वे भीष्म जो अमंश्य वीर दलों से रक्षित थे और जो तारागण के बीच गौरव पूर्ण ढंग पर दीप्तिमान चन्द्रमा के समान चमक रहे थे, जो नौ दिन के युद्ध में कौरवों की नौका के एक मात्र सफल तथा वीर केवट बने हुए थे, जिन पर कौरव सेना

गौरव आधारित था, अर्जुन की गति को रोकने के लिए तयार रहे थे। ज्यों ही उन्होंने सामने की सेना में भगदड़ मचती देखी, वे गोल उठे—“मालूम होता है घनजय आ रहा है।”

दुर्योधन, जो अपनी सेना में मचे कौलाहल और भगदड़ से चिन्तित हो उठा था, दौड़ कर पितामह के पास पहुंचा और घबरा कर बोला—“पितामह ! देख रहे हैं हमारी सेना का साहस टूट रहा है, भीमसेन की गदाओं की चोट के सामने हाथी नहीं ठहर पा रहे और दूसरी ओर न जाने क्यों पदाति, अश्वारोही और रथी सेना में हाहाकार मच गया है। जाने कौन सहारक आ गया है। जैसे वायु के प्रबल प्रहारों व तूफान के सामने मदोन्मत्त हाथियों की भांति भूमि में घड़ जाते हैं, हमारे रणेन्मत्त वीर महारथी तक किसी पाण्डव योद्धा के बाणों से उड़े जा रहे हैं। लगता है अर्जुन आ गया है। कुछ कीजिए पितामह ! वरना मैं कहीं का न रहूँगा।”

दुर्योधन की घबराहट भीष्म पितामह को न सुहाई। वे भय से घृणा प्रकट करते हुए बोले—“इतनी जल्दी तुम घबरा जाते हो, क्यों ? भय किस बात का। रण क्षेत्र में आये हैं, हम अपने प्राणों का मोह त्याग कर, फिर चाहे कोई भी क्यों न आये लड़ना ही तो है, कांपने से क्या होगा ? जाओ अपना मोर्चा सम्भालो। मैं जानता हूँ श्री कृष्ण रथ ला रहे हैं और अर्जुन के बाण प्रलय मचा रहे हैं।”

पितामह की बात में एक ललकार थी, डपट भी, दुर्योधन का मुह उतर गया, वह कांपता हुआ अपने स्थान पर चला गया और पितामह ने अपने बाण सम्भाले।

अर्जुन ने सामने पहुंचते ही एक बाण पितामह के चरणों में फंका। पितामह ने अपने चरणों में पड़े बाण को देखा और फिर एक बाण निकाल कर घनुष पर चढ़ाया, ज्यों ही डोरी को उन्होंने ने कान तक खींच कर सामने निशाना बांधा, दृष्टि सामने गई, तो वे सन्न रह गए। अंग अंग शिथिल पड़ गया, उत्साह जाता रहा।

उन्होंने देखा कि सामने है शिखण्डी। वह शिखण्डी, जो उनकी मृत्यु का साधन बन कर उत्पन्न हुआ है, जिस के लिए द्रुपद ने पौर तपस्या की थी। यह वही शिखण्डी है जो परुष होते हुए

भी स्त्री के समान है। नपुंसक का सामना है। उन के मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि क्या उन जैसे महाबलों के लिए नपुंसक से लड़ना उचित है? क्या अपुरुष पर शस्त्र चलाना क्षत्रियोचित धर्म के अनुसार उचित है? नहीं, वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि किसी भी नारी शरीर धारी मानव या नपुंसक पर अस्त्र नहीं उठायेंगे और नपुंसक से लड़ना उनकी मर्यादा के विरुद्ध है।

परन्तु शिखण्डी को उनके तथा अर्जुन के बीच दीवार घन कर खड़े हुए शिखण्डी की उपस्थिति से पितामह का मुख मण्डल क्रोध के मारे तपते सूर्य की भांति जलने लगा। लंगता था मोनो अभी अभी उनके नेत्रों से ज्वालाएं निकल पड़ेगी और शिखण्डी ज्वाला वाणों से भस्म हो जायेगा। उनकी आंखें लाल अगारों की भांति द्रहक रही थीं। उनका मुख मण्डल अगारों की नाईं लाल हो उठा था। उनके हाथों की मुठ्ठियां वध गईं। और जब अर्जुन ने तडातड़ वाण वर्षा जारी की, तो पितामह के क्रोध का ठिकाना न रहा। यह क्रोध था शिखण्डी और अपनी विवशता पर। किन्तु पितामह ने अपने को नियंत्रित किया और गम्भीर हो गए। उनका मुख कठोर हो गया।

निष्क्रिय खड़े देख कर शिखण्डी ने भी पितामह पर वाणों की वर्षा की और अर्जुन तो वाण चला ही रहा था। पितामह शिखण्डी के वाणों का कोई भी प्रतिरोध नहीं कर रहे थे। इस से शिखण्डी का साहस और भी बढ़ा और वह तीव्र गति से वाण वर्षा करने लगा। अर्जुन ने भी उस समय तनिक जो कड़ा करके पितामह के मर्मस्थलों पर वाण मारने आरम्भ कर दिए। उस समय पितामह पास खड़े दुःशासन को सम्बोधित करते हुए बोले—“देखो यह वान अर्जुन के है, जैसे कंकड़ी के बच्चे ही उसके शरीर को विदीर्ण कर डालते हैं, इसी प्रकार अर्जुन ही मेरे शरीर को वीच रहा है।”

उस समय जब कि एक ओर से घडाघड वाण चल रहे थे और दूसरी ओर पितामह निश्चल, व शांत खड़े थे, बल्कि अर्जुन के वाणों की चोट से भी उनका मुख तनिक भी मलिन नहीं हुआ, यह दृश्य देख कर उस अवसर पर उपस्थित सभी योद्धा आश्चर्यचकित रह गए। कौरवों ने शोर मचाया—“पितामह! वाण

चलाईये ।’

परन्तु वे तो समझ गए थे कि अब जीवन संध्या का समय आगया और कुछ ही देर बाद उसकी इहलीला समाप्त होने वाली है। वे शांत रहे और सहर्ष बाण सहते रहे। अर्जुन का एक एक बाण उनके किसी मर्मस्थल को वीधता। परन्तु पितामह के मुख से न आह निकलती और न क्रोध या पश्चाताप की ही बात। वे खड़े मुस्करा रहे थे, बल्कि कभी कभी यही कह उठते कि—“अर्जुन ! पर मुझे गर्व है कि उसके बाण ही मुझे चिरनिद्रा सुलाने में सफल होंगे।”

दुःशासन ने चीख कर कहा—“पितामह ! कीजिए युद्ध, वरना हम कहीं के न रहेंगे। देखिये अर्जुन किस प्रकार आक्रमण कर रहा है। पितामह ! अपनी रक्षा कीजिए।”

“दुःशासन ! अब तो जीवन संध्या हो चुकी। अब मेरी चिन्ता छोड़ो। अपनी चिन्ता करो।” — पितामह बोले।

उसी समय सारे कौरवों में खलबली मच गई। और सब मिल कर पितामह से आत्म रक्षा की प्रार्थना करने लगे। क्योंकि वे स्वयं उस भीषण बाण वर्षा को रोक सकने में असमर्थ थे।

शान्तनुनन्दन फिर भी निष्पेक्ष खड़े थे बल्कि उस समय वे जिन प्रभु की आराधना कर रहे थे। उन के मुख पर लेश मात्र भी चिन्ता न थी। कमल की नाई दमकता उनका मुख मण्डल शांत था। बाणों से उनका कवच छिद्र गया और शरीर से लाल लौह की धाराएँ स्थान से बह निकली। अर्जुन के बाण उनके शरीर को वेध कर दूसरी ओर निकल जाते। तभी एक कौरव चिल्लाया—
अरे ! पितामह तो अर्जुन के मोह में स्वयं अपना नाश करेंगे और हमें भी पराजित करा देंगे।”

इस चीख पुकार को सुन कर पितामह से न रहा गया वे अर्जुन की गति को रोकने की इच्छा से हाथ में खड्ग व डाल लेकर रथ से उतरने को हुए कि उसी समय श्री कृष्ण ने उस ओर इ गति किया और अर्जुन ने मन को दृढ़ कर के ऐसे तीखे बाणों की मार की कि देखते ही देखते पितामह की डाल टूटकर गिर गई और वे खड्गके लिए रह गए। अब क्या था, अर्जुन ने पितामह को गिराने के लिए और भी वेग से बाण चलाए और थोड़ी सी ही देर में पितामह का

सारा शरीर छिद गया। उस समय शांत खड़े पितामह को देखकर आकाश में युद्ध देख रहे देववाओ को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे भी पितामह की महानता की श्रद्धापूर्वक प्रशंसा करने लगे।

कुछ ही देर में पितामह का सारा शरीर बिघ गया और वे अपने रथ से लुढ़क पड़े। जैसे पर्वत के गिरने से उस के आश्रित सभी वृक्ष आदि दब जाते हैं, इसी प्रकार पितामह का गिरना हुआ कि कौरवों का मान भी ढह गया और वे सभी हा हा कार करने लगे। क्षण भर में कोह राम मच गया। पितामह का गिरना था कि मन्द मन्द सभीर छोटी छोटी वृन्दें बरसाने लगी, जैसे आकाश में उठा हो। चारों ओर शोक छा गया। कौरव रो पड़े और पाण्डव महारथियों ने विजय के शख नाद किए। पितामह गिरे तो पर उन का शरीर पृथ्वी से न लगा, बल्कि अर्जुन के उन बाणों के सहारे ऊपर ही रुका रहा, जो पितामह का शरीर भेद कर दूसरी ओर निकल गए थे। उस विलक्षण शस्त्रध्या पर पड़े भीष्म जी के शरीर से एक अन्ठी आभा फूट रही थी। अभी तक उनके मुख पर शांति विराजमान थी अभी तक उनके ब्रह्मचर्य का तेज अन्ठी शोभा दर्शा रहा था। अभी तक उस महाबली का सुर्य समान मुख मण्डल पर बला का तेज था।



पितामह के गिरते ही युद्ध बन्द हो गया और दोनों ओर के राजागण शूरवीर पितामह के अन्तिम दर्शन करने हेतु दौड़ पड़े। पाण्डव और कौरव सभी राजागण और पितामह के परिवार के तारागण चारों ओर से उन्हें घेर कर खड़े हो गए। सभी के हाथ जुड़ गए थे। सभी अभिवादन कर रहे थे। सभी गम्भीर थे और आपस में मिले हुए इसी प्रकार खड़े थे जैसे आकाश में दीप्तिमान चन्द्रमा के चारों ओर उन के परम शिष्य तथा प्रिय पुत्र तारागण। उस समय वे सभी पितामह के चारों ओर खड़े अपनी अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि आपित कर रहे थे। तभी सभी को लक्ष्य करके पितामह वाले—“मेरा सिर नीचे लटक रहा है। उसे ऊपर उठाने के लिए कोई सहारा तो लाओ। कोई वीर मेरे सिर के नीचे वीरोचित तकिया लगा दे।”

पितामह की बात सुनते ही पाण्डव तथा कौरव पक्षीय कई राजा गण अपने अपने डेरो की ओर दौड़े । नरम गदगदे तकिए लेने के लिए और कुछ ही क्षण बाद वहाँ अनेक रेश्मी, नरम तथा सुन्दर तकिए आ गए । चारों ओर से राजागण पितामह के सिरहाने अपना अपना तकिया लगाने के लिए आया । पर पितामह ने उन सभी के तकियों को देखकर इकार कर दिया किसी का भी तकिया स्वीकार न किया । प्रत्येक निराश होकर रह गया ।

तब पितामह ने अर्जुन से कहा—“बेटा ! मेरा सिर नीचे लटक रहा है, इससे मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है । तुम ने शय्या तो दी, पर तकिया नहीं । कोई उचित सहारा तो सिर के नीचे लगा दो ”

पितामह ने यह बात उसी अर्जुन से कही, जिसने अभी अभी प्राणहारी बाणों से पितामह का शरीर बीध डाला था । जो पितामह के वध के लिए कुछ ही देर पहले बड़ी चतुराई से बाण वर्षा कर रहा था । एक आज्ञाकारी शिष्य तथा पौत्र की भाँति अर्जुन ने आज्ञा शिरोधार्य की और अपने तरकश से तीन तेज बाण निकाले । और पितामह के सिर को उनकी नोक पर रख कर उन्हें भूमि पर गड़ा दिया । इस प्रकार महाबली भीष्म पितामह के लिए उपयुक्त तकिया बना दिया गया ।

पितामह प्रसन्न होकर बोले—“बेटा अर्जुन ! तुम्हारी तीक्ष्ण बुद्धि और वीराचित धर्म तथा कर्तव्य का तुम्हारा ज्ञान तुम्हें अपूर्व यश अरजन करने का कारण बनेगा । अन्तिम समय भी तुम मुझे अपनी वीरता की प्रशंसा के लिए बाध्य कर रहे हो । मुझे तुम पर गर्व है ।”

राजागण ने विनयपूर्वक निवेदन किया—“पितामह ! इस समय आपकी दशा देखकर हम सभी व्यथित हैं और यह सहन कर रहे हैं कि जब आप जैसे धर्म-योद्धा के सामने भी मृत्यु हाथ पसारे खड़ी है तो हम जैसे की क्या विसात है । एक दिन यह अवसर हमारे सामने भी आना है । ऐसे समय कुछ उपदेश कीजिए ।”

“प्रिय वन्धुओ ! मेरे प्रति तुम्हारी इतनी श्रद्धा होने का कारण जो है उसे मैं समझता हूँ । पर मैं वृद्ध होने के कारण इतना महान नहीं कि धर्मोपदेश कर सकूँ । और रणक्षेत्र में किसी के मृत्यु शय्या पर पड़े हुए यह सम्भव भी नहीं, फिर भी आप लोग

कुछ सुनना ही चाहते हैं तो मैं बस यही कहना चाहता हूँ कि परस्पर बैर नाश का कारण बनता है। युद्ध से कभी कोई समस्या हल नहीं होती। शुभ प्रकृति वाले व्यक्ति मनुष्य रूप में भी देवता समान ही हैं उन्हें परास्त करना असम्भव है। और जिन प्रभु का बताया मार्ग ही सच्चिदानन्द की प्राप्ति का एकमात्र साधन है। अब मेरा गला सूखता जा रहा है। बेटा दुर्योधन मुझे पानी चाहिए।”—इतना कह कर पितामह मौन हो गए।

“पितामह ! अभी ही लाया”—कह कर दुर्योधन वहाँ से पानी लेने चला। तभी पितामह की बाणी गूजी।—“ठहरो ! रण-क्षेत्र में बाणों की शय्या पर पड़े व्यक्ति के लिए उस जल की आवश्यकता नहीं। मेरी बात तुम नहीं समझोगे।”

दुर्योधन चक्कर में पड़ गया, वह पितामह का आशय न समझ पाया। हृत्प्रेम होकर बोला —“पितामह ! फिर कैसा जल चाहिए आपको ?”

दुर्योधन के प्रश्न का उत्तर न देकर, पितामह अर्जुन को लक्ष्य करके बोले—“हा बेटा ! तुम ही मुझे जल भी पिला सकते हो। मेरा सारा शरीर तुम्हारे बाणों की चोटों से जल रहा है। इस उष्णता को तुम्हीं शान्त कर सकते हो।”

अर्जुन ने तुरन्त गाण्डीव पर एक तीक्ष्ण बाण चढ़ाया और पितामह की दाहिनी बगल में पृथ्वी पर सम्पूर्ण शक्ति लगा कर खींच मारा। और बाण लगते ही विजली टूटने की सी आवाज़ आई। पृथ्वी दहल गई और एक जल स्रोत बड़े वेग से फूट निकला। मानो शान्तनुनन्दन भीष्म की माँ गंगा के स्तन से दुग्ध धारा निकली हो। अमृत समान मधुर तथा शीतल जल पीकर पितामह बड़े प्रसन्न हुए। बारम्बार अर्जुन को आशीर्वाद दिया, पर वह आशीर्वाद न युद्ध में उसकी विजय की कामना का था और न कीर्ति की वृद्धि का, बल्कि था धर्म निष्ठ होने का।

दुर्योधन को इस से बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मोचने लगा पितामह बहुत ही शुभ प्रकृति के महापुरुष हैं, कहीं युद्ध में अर्जुन को विजय का आशीर्वाद दे देते तो कौरवों का डेर हो जाता।

उम समय सूर्य का रथ अपनी मजिल की अन्तिम अध्याय को आरम्भ कर रहा था, जैसे भास्कर अन्तिम साँसें ले रहे पृथ्वी के

स्कर के गम में डूबने जा रहा हो ।

दुर्योधन हाथ जोड़ कर घुटनों के बल बैठ गया और अश्रुपात करते हुए बोला—“पितामह ! अब आप के पश्चात् हमारा क्या होगा, आप तो हमें बीच मझधार में ही छोड़ जा रहे हैं ”

पितामह की आवाज थक गई थी, बोले “बेटा दुर्योधन ! तुम्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो यही मेरी कामना है । देखा तुमने ? अर्जुन ने मेरे सिर को तांकिया कैसे लगाया, उस ने मेरी प्यास कैसे बुझाई ? यह बात क्या और किसी से सम्भव है ? यह सब उसके पुण्य, प्रताप तथा शुभ कर्मों का फल है और है उसकी न्याय प्रियता, तीक्ष्ण बुद्धि तथा पराक्रम के कारण । अब भी समय है । विलम्ब न करो । इनसे सन्धि करलो ।”

दुर्योधन को यह बात भला कैसे पसन्द आ सकती थी, बोला तो कुछ नहीं पर मन ही मन कुढ़ता रहा ।

तब अर्जुन ने हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक पूछा—“पितामह ! आप ने जो आज्ञा दी, मैंने पूर्ण की । अब आपकी अन्तिम कामना हो वह भी बतादे, ताकि उसे पूर्ण करके मैं अपने को धन्य समझूँ । आप चाहे जिस ओर भी रहे, पर हमने सदा ही आप का आदर किया है और आज आप को खोकर हमारे कुल को जो क्षति पहुँच रही है, उसका उत्तर दायित्व मेरे ही ऊपर है । यह धृष्टता मुझ से हुई है । मैं इसका अपराधी हूँ । कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए ।”

पितामह अपने जीवन की अन्तिम घड़िया गिन रहे थे, तो भी अर्जुन की बात सुन कर उनके अघरो पर मुस्कान खेल गई, बोले—“बेटा ! तुम ने जो कुछ किया, वह गृहस्थ धर्म के आधीन आता है, तुम ने अपना कर्तव्य निभाया । तुम युद्ध में इस लिए तो नहीं आये कि अपने कुल या वंश की रक्षा करे । बल्कि इस लिए आये हो कि अन्याय के पक्ष पातियों को, जिस प्रकार भी सम्भव हो, परास्त करें और न्याय की रक्षा के लिए शत्रु के प्राण हरण करने में भी न हिचको । मैं जानता हूँ कि तुम मेरा वध इस लिए नहीं करना चाहते थे कि मैं बुरा आदमी हूँ । बल्कि मैं तुम्हारे शत्रुओं का सेनापति था तुमने जो किया वह तुम्हारे लिए उचित ही था । रही बात अन्तिम कामना की तो यह प्रश्न दुर्योधन पूछे तो अच्छा हो ।”

दुर्योधन को बात खटकी, फिर भी उस समय-उपस्थित लोगों की लज्जा वश वह बोला - “हां पितामह बताईये ना। मैं तो आप का सेवक हूँ।”

“मेरी कामना यही है कि यह युद्ध मेरे साथ ही समाप्त हो जाये। बेटा ! मेरी आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिए तुम पाण्डवों से अवश्य ही सन्धि करलो।”—पितामह ने कहा।

वह बात दुर्योधन के तीर सी लगी, मन ही मन वह विल-विला उठा। परन्तु मुख से उसके कुछ भी न निकला, धीरे धीरे सभी राजा पितामह को अन्तिम प्रणाम कर के अपने अपने शिविर में चले आये।

×

×

×

×

दानवीर कर्ण को जब ज्ञात हुआ कि पितामह भीष्म रणभूमि में पड़े अन्तिम स्वाँसे ले रहे हैं, यह तुरन्त दर्शनार्थ दौड़ पड़ा।

पितामह बाणों की शय्या पर लेटे थे, कर्ण पहुँचा और घुटनों के बल पैरों की ओर बैठ कर उसने हाथ जोड़ दिये—“पूज्यकुल-नायक ! सर्वथा निर्दोष होने पर भी सदा आप की घृणा का जो पात्र बना रहा, वही सूनू पूत्र कर्ण आप को सादर प्रणाम करता है। स्वीकार करे।”

पितामह ने आँखें खोलीं. उन्होंने देखा कि विनय पूर्वक प्रणाम करके कर्ण कुछ भयभीत सा हो गया है। यह देख उन का दिल भर आया, निकट बुलाया और बोले - “बेटा ! तुम राधा पुत्र नहीं बल्कि कुन्ती पुत्र हो मैंने तुमसे कभी द्वेष नहीं किया और न कभी घृणा ही की। बल्कि पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता होते हुए भी तुम ने केवल दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए सदा अन्याय का पक्ष लिया, इसी से मेरा मन मलिन हो गया। वैसे तुम जैसा दानवीर आज पृथ्वी पर कोई नहीं, तुम्हारी दानवीरता के सामने मैं नतमस्तक तक होता हूँ। तुम्हारी वीरता, शूरता भी प्रशंसनीय है, श्री कृष्ण तथा अर्जुन के अतिरिक्त कौन है जो तुम्हारा मुकाबला कर सके। परन्तु ठण्डे दिल से सोचो कि इस भयंकर युद्ध की बुनियाद में तुम्हारा क्रोध और दुर्योधन के प्रति अति मोह व पाण्डवों के प्रति तुम्हारा वैर भाव कितना है। आज मैं बाणों की शय्या पर पड़ा दम तोड़ रहा हूँ, मेरी वीरोचित मृत्यु हो रही है, तुम्हारी ही कृपा से।

क्योंकि दुर्योधन के घमण्ड का एक मात्र कारण तुम्ही थे ।
अस्तु—जो कुछ हुआ सो हुआ, अब मैं चाहता हूँ कि मेरे जीवन का अन्त होने के साथ साथ पाण्डवों के प्रति तुम्हारा वैर भाव समाप्त हो जाये । तुम अपने भाईयों की ओर रहो, तो कदाचित् दुर्योधन सन्धि के लिए विवश हो जाये और यह भयकर युद्ध समाप्त हो जाये ।”

कर्ण ने पितामह की बात सुनी तो वह बड़े असमजस में पड़ गया, फिर भी बोला— “पितामह ! मैं माता कुन्ती का पुत्र हूँ, यह मुझे ज्ञात हो गया है । परन्तु मैं दुर्योधन की ओर रहने को बाध्य हूँ क्योंकि जब दुर्योधन ने मुझे सम्पत्ति दी थी तो मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि उसके लिए मैं अपने प्राण तक दे दूंगा । अतएव, मुझे कृपया कौरव पक्ष की ओर से लड़ने की आज्ञा दीजिए ।”

“जैसी तुम्हारी इच्छा ।” पितामह बोले ।

कर्ण की बातों को सुन कर पितामह सदा ही उसे ललकारा करते थे, इसी लिए कर्ण समझता था कि पितामह उससे धृणा करते हैं । एक बार आवेश में आकर युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कर्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि वह तब तक युद्ध में नहीं उतरेगा जब तक भीष्म का बध नहीं होजाता । अब चूँकि पितामह ससार से जा रहे थे, इस लिए उस ने पूछा—“पितामह आप ही कौरवों का सहारा थे । आप के बलबूते पर ही दुर्योधन ने युद्ध ठाना था, अब आप जा रहे हैं । अब तो कौरवों को बड़ी विपत्तियाँ पड़ेंगी कृपया बताईये कि युद्ध का संचालन कैसे हो ?”

“कर्ण ! तुम पर दुर्योधन को गर्व है और उसे मुझ पर सदा ही क्रोध आता रहा कि क्यों नहीं मैं, जो कर्ण के रास्ते में दीवार बनकर खड़ा हो गया हूँ, समाप्त हो जाता । तुम योग्य हो, धुरन्धर धनुर्धारी हो, तुम्हारे पास विद्या है, अस्त्र-शस्त्र है, बल है और बुद्धि है । इसी के साथ दानवीरता के कारण तुम्हारे पास अपने पुण्य का भण्डार है । साहस पूर्वक रण में उतरो । अब कौरवों की नौका की पतवार तुम्ही हो । कौरव सेना को अपनी सम्पत्ति समझ कर उसकी रक्षा करो ।”

भीष्म पितामह की आशीष पाकर कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ, पितामह के चरण छुए, बारम्बार प्रणाम किया और रथ पर चढ़कर

रणक्षेत्र में जा पहुँचा। शोक विह्वल दुर्योधन ने जब कर्ण को रण-क्षेत्र में आते देखा, उसका मन मयूर नृत्य कर उठा। उसकी आशाएँ पुनर्जीवित हो गईं। उसका चेहरा खिल उठा। उसने एक शखनाद किया, वह पितामह की मृत्यु को भूल गया और दौड़कर कर्ण को छाती से लगाकर बोला—“कर्ण ! तुम आगए तो मानो विजय मेरे शिविर में आ गई। तुम हो तो मेरी सारी चिन्ताएँ दूर हो गईं।”

“मैंने कहा था ना—कर्ण बोला—कि जब पितामह नहीं रहेगे मैं अपने प्राणों को भी तुम्हारे लिए बलि देने आ जाऊँगा। मैं आ गया और अब देखो मेरा रण कौशल।”

दुर्योधन ने बार बार शख ध्वनि की। सभी कौरव चौक पड़े। जब उन सभी ने तेजस्वी कर्ण को देखा, उछल पड़े और कर्ण की जय जयकार करने लगे।

×

×

×

×

ज्यों ही सूर्य डूबा, भीष्म रूपी भास्कर भी अस्त हो गया। अब हाड मांस का एक ढाँचा था जो बाणों पर रक्खा था। तेज तथा आभा मुखमण्डल से विलीन हो गई और वह शरीर जिसको देखकर अच्छे अच्छे वीर कांप जाया करते थे, अब मिट्टी के समान सो गया। चारों ओर अधकार छा गया, और उधर जब धृतराष्ट्र ने भीष्म पितामह के वध का समाचार सुना तो उनके मन में जल रहो आशा दीप बुझ गया, अधकार छा गया, महलों में अघेरा हो गया।

इधर दुर्योधन के शिविर में समस्त कौरव भ्राता उपस्थित थे। सभी गम्भीर और चिन्तित दिखाई देते थे। कर्ण को भी वही बुला लिया गया। इतनी अधिक सख्या में लोग उपस्थित होने के उपरान्त भी कोई शब्द सुनाई नहीं दे रहा था, जिसका यह अर्थ सहज ही में लगाया जा सकता है, कि अन्दर बैठे सभी लोग विचार मग्न हैं, किसी गम्भीर समस्या पर सोच रहे हैं।

तभी शिविर की निस्तब्धता को भग करते हुए दुर्योधन बोल उठा—“तो हाँ कर्ण ! कुछ सोचा, किसे सेनापति नियुक्त किया जाय ?

कर्ण ने कोई उत्तर न दिया।

दुर्योधन पुनः बोला—“तुम्हारे शौर्य पर मुझे बहुत विश्वास है और मुझे आशा है कि तुम सेनापति पद के लिए उपयुक्त हो। पर इस विषय में मैं तुम्हारी राय को महत्त्व दूंगा क्योंकि तुम मेरे ऐसे अन्तरंग मित्र हो जिसकी बात पर मैं आख मीचकर विश्वास कर सकता हूँ। तुम जो राय दोगे वह अवश्य ही मेरे हित में होगी।”

तब कर्ण ने उत्तर दिया, बड़ी जात मुद्रा में, गम्भीरता पूर्वक—“राजन् ! आप के लिए मैं अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकता हूँ। और मुझे स्वयं अपनी शक्ति का विश्वास है। तो भी मेरी राय में भीष्म पितामह के बाद हमारे पास द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे शस्त्र विद्या के गुरु विद्यमान हैं। हमारी सेना के वीरों की अधिकतर सख्या उनकी ही शिष्य है। वे शस्त्र विद्या में तो प्रवीण हैं ही, व्युह रचना और युद्ध संचालन में भी पारगट हैं। अतः इन दो महानुभावों में से किसी एक को यह कार्य सौंपा जाये तो अत्युत्तम होगा। मैं द्रोणाचार्य को अधिक उपयुक्त समझता हूँ।”

सभी कौरव एक स्वर से कह उठे—“ठीक है, पितामह के बाद द्रोणाचार्य ही सेनापति बनने चाहिए।”

दुर्योधन बोला—“द्रोणाचार्य पर मेरी भी दृष्टि गई थी, अब सबकी राय मिल गई तो बात निश्चित ही समझिए।

एक प्रकार से कर्ण का प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हुआ। तब दुर्योधन की आज्ञा से दो कौरव गए और द्रोणाचार्य को वहाँ ले आए।

दुर्योधन ने विनीत भाव से कहा—आचार्य जी ! जाति, कुल, शास्त्र ज्ञान, वय, बुद्धि, वीरता, कुशलता आदि सभी बातों में आप श्रेष्ठ हैं। पितामह के बाद एक आप ही हैं जिनके सहारे पर हम गर्व कर सकते हैं। अब हमारा भाग्य आप ही के हाथों में है। यदि आप हमारी सेना का संचालन कार्य सम्भाल लें और सेनापतित्व स्वीकार कर लें तो मुझे आशा है कि हम शत्रुओं को परास्त करने में सफल होंगे। हम सबका निर्णय यही है।”

द्रोणाचार्य गम्भीर हो गए, उनके मनोभाव जो उनके मुख मण्डल पर उभर आये थे, साफ बता रहे थे कि वे विनती तो स्वीकार कर लेंगे, परन्तु दुर्योधन की आज्ञा पूर्ण होगी इसमें उन्हें

सन्देह था । मौन की स्वीकृति का लक्षण जानकर सभी कौरव विपुलनाद कर उठे ।

उठने से पहले द्रोणाचार्य बोले—“आप जो कार्य मुझे सौंपेंगे, वह मुझे करना ही होगा, पितामह की इच्छा पूर्ण हो जाती तो अच्छा था ।”

“क्षत्रिय आगे बड़ा पग पीछे नहीं हटाया करते—दुर्योधन बोला—युद्ध के लिए आये हैं तो तलवार की धार पर हो हमारा फंसला होगा ।”

कर्ण उस अवसर पर चुप न रह सका, बोला—“आचार्य जी ! अब सन्धि की बातें उठाने से कोई लाभ नहीं हम दुर्योधन की इच्छा से रण क्षेत्र में आये हैं और उसी की इच्छा से कार्य करना हमारा कर्तव्य है ।”



✽ तैतालीसवां परिच्छेद ✽

★★★★★★★★★★★★★★
 ★
 ★★ दुर्योधन का कुचक्र ★★
 ★
 ★★★★★★★★★★★★★★

द्रोणाचार्य के चले जाने के उपरान्त अन्य कौरव भी उठ कर अपने अपने शिविर की ओर चल दिए, पर दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन वही बैठे रहे। वे तीनों आपस में मन्त्रणा करने लगे। यह मन्त्रणा थी युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए किसी षडयन्त्र की रूप रेखा के सम्बन्ध में।

तीनों घुल मिल कर आपस में बात चीत करते रहे और अन्त में दुर्योधन गद गद होकर गोला—“तो बस यही ठीक है। क्यों न इसी समय चल कर द्रोणाचार्य से वचन ले लिया जाये।”

“हा, हा, आचार्य चाहे तो यः उनके लिए बाये हाथ का खेल है।”—कर्ण ने प्रोत्साहित करते हुए कहा।

तीनों उठे और द्रोणाचार्य के शिविर की ओर चल पड़े।

× × × ×

आचार्य सोने की तैयारी कर रहे थे कि तीनों महारथियों को सामने देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। विस्मित होकर पूछा—“क्या कोई विशेष बात है?”

“हां आचार्य जी, एक विनती लेकर आये हैं।”—दुर्योधन ने बैठते हुए कहा।

द्रोणाचार्य समझ गए कि कोई विशेष बात है, तीनों को बैठा कर स्वयं भी सावधान होकर बैठ गए और धीरे से पूछा—“क्या बात है?”

“किसी भी उपाय से आप युधिष्ठिर को जीवित ही कंद कर के हमे सौंप दें तो बहुत ही अच्छा हो। इस भयकर युद्ध की अन्तेष्टि हो जाये इस से अधिक हम आप से कुछ अधिक नहीं चाहते।”—दुर्योधन ने कहा।

कर्ण स्वर मे स्वर मिला कर तुरन्त बोल पडा—“इम कार्य को आप यदि सफलता पूर्वक पूरा कन्दे तो फिर काम बन जाये गा। और महाराज दुर्योधन, मैं और हम सभी उनके साथी सन्तुष्ट हो जाये गे। और मैं यह जानता हू कि यह काम आप के लिए कठिन नहीं है।

कर्ण की बात समाप्त होते ही दुःशासन ने कहना आरम्भ कर दिया - ‘आप की बात पर हम सभी विचार कर ही रहे थे कि तभी हमे शीघ्र ही युद्ध समाप्त कर देने के लिए यह उपाय सूझा है। वस आप इकार न करें। इस काम का तो कर ही डालें। यही हमारी विजय है, जिसका श्रेय आप को हो प्राप्त हागा। बल्कि जो काम पितामह न कर पाये, वह आप के हाथो पूर्ण हो जायेगा।”

आचार्य ने तीनों की बातें सुन कर एक दृष्टि उन के मुख पर डाली और इस विनती का रहस्य उन्होंने अपने अपने विचारो के अनुरूप समझा। वे युद्ध मे तो अवश्य ही शरीक हो गए थे, पर पाण्डु पुत्रो का मारने के पक्ष में नहीं थे; बल्कि मन ही मन यह सघर्ष चल रहा था कि धर्मराज युधिष्ठिर को मारना अधर्म तो नहीं है। वे अर्जुन को अपने बेटे से भी अधिक प्यार करते थे, जब उसे अपने विरुद्ध रण मे लडते देखने तो उन का मन चीत्कार कर उठता। वे नहीं चाहते थे कि इतने भले व यशस्वी पाण्डवो का वध उनके हाथों हो। अतः दुर्योधन के प्रस्ताव से वे बडे प्रसन्न हुए।

बोले—‘दुर्योधन ! क्या तुम्ह री यही इच्छा है कि युधिष्ठिर के प्राणो की रक्षा हो जाये ? तुम्हाग कन्याण हो। वास्तव में युधिष्ठिर धर्मराज है, उसका वध होना ठीक है भी नहीं। और जब तुम ही ने यह ईममझ लिया कि धर्मराज युधिष्ठिर के प्राण न लिये जाये तो फिर युधिष्ठिर वाम्नव मे अजात शत्रु है। लोगों ने ‘शत्रु रहित’ की जो उमे उपाधि दी है वह आज सार्थक हुई प्रसन्नता की बात है कि तुम्हीं ने उसको मार्यक किया। जब तुम ही उसे

वध न करके जीवित पकड़ लेने के पक्ष में हो गए तो युधिष्ठिर धन्य है, जिसका कोई शत्रु नहीं। आज मुझे तुम्हारा प्रस्ताव सुन कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई।”

द्रोणाचार्य की बातें सुन कर दुर्योधन और उसके साथियों के मुह पर जो भाव आये थे, यदि उस समय आचार्य की दृष्टि उस ओर होती तो वे चौंक जाते पर वे तो कुछ सोचने लगे थे। नीची दृष्टि किए सोचते रहे और अन्त में गरदन उठा कर बोले—“बेटा ! मैंने जान लिया कि युधिष्ठिर को जीवित पकड़वाने से तुम्हारा क्या उद्देश्य है। तुम्हारा यही उद्देश्य तो है कि युधिष्ठिर को बन्दी बना कर पाण्डवों पर अपनी विजय की धाक जमा दे और फिर युधिष्ठिर से सन्धि करके, उन्हें छोड़ दे। युद्ध समाप्त हो जाये और बात भी रह जाये। इसके अतिरिक्त और क्या उद्देश्य हो सकता है युधिष्ठिर को पकड़ने का।”

यह कहते कहते द्रोणाचार्य की आंखों से प्रसन्नता व प्रफुल्लता उबलने लगी, वे गद गद हो उठे और सोचने लगे—“बुद्धिमान धर्म पुत्र का जन्म सफल है, कुन्ती नन्दन बड़े भाग्यशाली है, जिन्होंने अपने शील स्वभाव से शत्रु तक को प्रभावित कर दिया है।”

वे बार बार यही सोचते और धार्मिक जीवन की विजय पर असीम सन्तोष तथा प्रसन्नता अनुभव करने लगे। फिर यह सोच कर कि अपने भ्राताओं के प्रति दुर्योधन के मन में कुछ प्रेम तो है ही, भ्रातृ स्नेह ने जोर तो मारा ही, उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उन का मन खिल उठा।

“तुम धन्य हो दुर्योधन ! तुमने अपने भाईयों के लिए जो कुछ सोचा वह तुम्हारी महानता का प्रतीक है।”—द्रोण बोले।

दुर्योधन बड़ी कठिनाई से अपने को नियन्त्रित कर पा रहा था, फिर भी अवसर को देख कर उसने अपने को काबू में रखा, परन्तु अन्तिम बात तो उसके कलेजे में छुरी की भाँति चुभ गई। वह अपनी आवाज को सयत करते हुए, परन्तु आवेश में आकर बोला—“आचार्य जी ! आप को तो न जाने क्या हो जाता है, कभी कभी पाण्डवों की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा करके उन्हें पृथ्वी से उठा कर आकाश पर रख देते हैं। मैं युद्ध जीतने के लिए उपाय कर रहा हूँ और आप समझ रहे हैं कि मैं युधिष्ठिर के उच्चादर्श के

सामने नतमस्तक हो रहा हूँ ।”

द्रोणाचार्य को दुर्योधन की बात से ठेस लगी । फिर भी अपनी स्थिति को समझ कर उन्होंने शांत भाव से पूछा—“तो फिर साफ साफ बताओ न अपना उद्देश्य ।”

“बात यह है आचार्य जी !—दुर्योधन ने आचार्य जी को अपना वास्तविक उद्देश्य बताते हुए कहा—“यदि आप युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लें तो वे हमारे बन्दी हो जायेंगे और इससे पाण्डवों की हार हो जायेगी । फिर युधिष्ठिर हमारे हाथ में होगा, जो चाहे करेंगे । रण क्षेत्र से तो मामला समाप्त हो जायेगा । घर जाकर देखा जायेगा ।”

आचार्य सशंक हो उठे । बलिक जो शका उनके मन में जागृत हुई उससे सिहर उठे । विस्मित होकर पूछा—“तो क्या इरादा है तुम्हारा । साफ साफ बताओ ।”

उनकी वाणी में कठोरता आ गई थी कर्ण ने उसे भाप लिया, धीरे से दुर्योधन को कुहनी मारी । दुर्योधन ने सम्भलते हुए कहा—“आप गलत न समझे । हम युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर राज्य का थोड़ा सा भाग पाण्डवों को देने की बात करके सन्धि कर लेंगे । और फिर ... ”

द्रोणाचार्य एक दम प्रसन्न हो उठे—उनके भाव बदल गए । तेजी से बोले—“और फिर भाईयो की भांति रहने लगेंगे ।”

“नहीं आचार्य जी, आप फिर भ्रम में पड़ गए—दुर्योधन को कर्ण ने बहुत सकेत किया कि वह उस समय कुछ न कहे, पर वह बिना कहे न रह सका—“युधिष्ठिर तो क्षत्रिय राजाओं की रीति नीति के पालन में तनिक सो भी भूल नहीं करते । हम पुनः उन्हें जुए के लिये निमन्त्रित करेंगे ।”

“और पुनः राज्य ले लेंगे—बीच ही में दुःशासन बोल उठा—इस युद्ध से पाण्डवों को भी यह प्रतीत हो ही गया होगा कि युद्ध के द्वारा राज्य ले लेना दुर्लभ है, अतः पुनः वे युद्ध के लिए तैयार न होंगे । और राज्य हमारा ही रहेगा ।”

“क्या मैं पूछ सकता हूँ कि इस कुचक्र के रचने की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई ?”—द्रोणाचार्य ने पूछा । उस समय उनका

चेहरा कठोर था। परन्तु न तो दुर्योधन ने उनके चेहरे को परखा और न उनके शब्दों पर ही ध्यान दिया, वह तो अपनी बनाई योजना पर फूलकर कुप्पा हो रहा था और ऐसे कह रहा था जैसे इस सर्वोत्तम योजना के लिए उसे कोई पुरस्कार मिलने वाला है, अपने सेनापति के नाते अपने षडयन्त्र की सारी बातें उनके आगे खोलते हुए उसने कहा—“आचार्य जी ! हम तीनों ने यह अनुभव किया है कि युद्ध की जो गति चल रही है, यदि यही गति रहे तो सम्भव है कि कौरव और पाण्डव सभी रण क्षेत्र में पितामह भीष्म का अनुसरण कर जाए। पर कृष्ण तो फिर भी शेष रह जायेंगे। न द्रौपदी तथा कुन्ती आदि का ही बध होगा। इस लिए सम्भव है कृष्ण हमारा राजपाट कुन्ती या द्रौपदी को दे दें और इस प्रकार पाण्डवों के परिवार को ही राज श्री प्राप्त हो जाये। समस्या का अन्धकार पूर्ण पहलू यही है। इस लिए हम तीनों ने बड़ें विचार के उपरान्त इस अन्धकारपूर्ण व दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से बच निकलने का यही मार्ग सोचा है। आज पितामह की मृत्यु के समय युधिष्ठिर के मुख पर जो भाव आ रहे थे वे इस बात के द्योतक हैं कि वह अपने कुल का नाश नहीं देखना चाहता और दुबारा युद्ध के लिये किसी प्रकार तैयार न होगा।”

सारी बात सुनकर द्रोणाचार्य उदास हो गए। वे सोचने लगे कि व्यर्थ ही वे कल्पना करने लगे थे कि दुर्योधन का दिल अच्छा है, उसमें भ्रातृ स्नेह जागृत हो सकता है। वे मन ही मन दुर्योधन की निन्दा करने लगे। फिर भी अपने को यह कहकर उन्होंने सान्त्वना दी कि चलो, जो भी हो, युधिष्ठिर के प्राण न लेने का कोई न कोई तो बहाना मिला ही।

कर्ण ने द्रोणाचार्य के मुख पर गहरी दृष्टि डाली और पूछा—
“क्यों आचार्य जी क्या हमारी योजना आपको पसन्द न आई।”

“आप लोगो ने समस्या के अन्धकार पूर्ण पहलू को देखकर अपनी योजना बनाई और मुझे आपकी योजना पसन्द आ सकती है तो उसके प्रकाश पूर्ण पहलू को देखकर।” द्रोण ने कहा।

“वह क्या ?”

“वह यह कि आपकी योजना से युधिष्ठिर के प्राणों की रक्षा हो जायेगी, हम धर्मराज के बध करने के पाप से बच जायेंगे और यह

महा युद्ध बन्द हो जायेगा ।” —द्रोण ने बताया ।

दुर्योधन और कर्ण आचार्य की बात से सन्तुष्ट न हुए । पर उन्हें तो अपनी योजना मान लिए जाने से मतलब था । अतः कर्ण बोला—“जैसे भी हो आप इस योजना को सफल बनाने में तो सहयोग देंगे । इसकी सफलता का भार तो आप ही पर है ।”

“हां, आचार्य जी आपको कल युधिष्ठिर को जीवित पकड़ कर देना है ।” —दुर्योधन ने जोर देकर कहा ।

‘मैं पूर्ण प्रयत्न करूंगा ।’ द्रोणाचार्य के कण्ठ से निकला दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन के हर्ष का ठिकाना न रहा । उन्होंने आचार्य जी को धन्यवाद दिया ।

रात्रि बहुत हो गई थी, आचार्य सोना चाहते थे, उन्हें जम्हाई आने लगी, यह देख तीनों वहां से उठ खड़े हुए परन्तु चलते चलते दुर्योधन ने कहा —“तो मुझे आशा है कि आप युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की प्रतिज्ञा कर रहे हैं ।”

अनायास ही, न चाहते हुए भी, द्रोण के मुह से निकल गया —“हां, हा, तुम विश्वास रखो, मैं युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ूंगा ।”

कर्ण ने उस अवसर पर द्रोणाचार्य की प्रशंसा करदी—“राजन् ! आप द्रोणाचार्य की बात पर किसी प्रकार की शका न करें । वे अपनी बात के बड़े धनी हैं, जो एक बार मुह से निकल गया वस पत्थर की लकीर होगया ।”

कदाचित् उस समय आचार्य को दुर्योधन तथा कर्ण की नीति का भेद खुला होगा और सम्भव है अपने वचन पर उन्हें कुछ खेद भी हुआ हो ।

×

×

×

×

सारे पाण्डव युधिष्ठिर के शिविर में उपस्थित थे । आगे युद्ध चलाने की योजनाएं बन रही थी और शत्रुओं की योजना की जानकारी की प्रतिक्षा हो रही थी, तभी एक गुप्तचर ने प्रवेश किया ।

“कहो, क्या समाचार लाये ?”—यह अर्जुन का प्रश्न था ।

“द्रोणाचार्य, सेनापति चले गए । और कल को महाराज युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की योजना बनी है । दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से वचन लिया है कि वे महाराज युधिष्ठिर को जीवित पकड़

कर देगे।”—गुप्तचर ने कहा।

‘और कुछ?’

“दुर्योधन, कर्ण, तथा दुःशासन ने यह पडयन्त्र दुर्योधन के शिविर में बैठ कर रचा है।”

गुप्तचर की बातें सुन कर सारे पाण्डव चिन्ताग्रस्त हो गए। वे द्रोणाचार्य की अद्वितीय शूरता, एवं शस्त्र विद्या के अनुपम ज्ञान से तो भलि भाति परिचित ही थे। अतः जब द्रोणाचार्य द्वारा दुर्योधन को महाराज युधिष्ठिर के जीवन पकड़ कर उन्हें सौंप दिए जाने के वचन की बात सुनी तो वे भयभीत भी हुए।

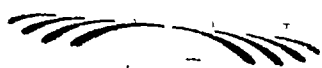
अर्जुन ने कहा—“अब तो किसी भी प्रकार महाराज युधिष्ठिर की रक्षा का पूरा पूरा प्रवन्ध किया जाना चाहिए। कहीं शत्रु अपनी योजना में सफल हो गए तो हम कहीं के न रहेंगे।”

भीम ने कुछ दृढ़ होकर कहा—“हम सबको अपनी सेना सहित महाराज के चारों ओर रक्षार्थ रहना चाहिए।”

नकुल तथा सहदेव ने भी भीमसेन का समर्थन किया। अर्जुन ने भी समर्थन कर दिया, पर अन्त में इतना और कह दिया—“कल का दिन हमें बड़ी सावधानी से व्यतीत करना है। शत्रु की प्रत्येक चाल को समझ कर युद्ध करना होगा। तनिक सी भी भूल हमें डेर कर देगी।”

युधिष्ठिर ने उसे सन्तुष्ट करते हुए कहा—“भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। कल हम अपनी व्यूह रचना इस प्रकार करेंगे कि शत्रु का उद्देश्य पूर्ण हो ही न सके। हा, यदि हमें उनके पडयन्त्र का पता न चलता तो सम्भव था वे सफल हो जाते।”

थोड़ी देर बाद सभी अपने अपने शिविर में चले गए। और धावनियों पर निस्तब्धता छा गई।



* चौतालीसवां परिच्छेद *

युधिष्ठिर को जीवत पकड़ने की चेष्टा

द्रोणाचार्य ने जान बूझ कर अपनी सेना की व्यूह रचना इस प्रकार की कि वे अन्य कौरव पक्षीय वीरो को एक एक पाण्डव महारथी के सामने छोड़ते हुए स्वयं युधिष्ठिर को पकड़ने जा सकें और अर्जुन आदि अन्य पाण्डव वीर कौरव वीरो से उलझ कर रह जाय। युधिष्ठिर उनके पजे से आ जाये। उस दिन जब द्रोणाचार्य को कौरव वीरो ने सेनापति के रूप में देखा तो उत्साह पूर्वक उनका अभिनन्दन किया और कर्ण को उनके साथ देखकर तो संनिक कहने लगे—“अब पाण्डवों की पराजय निश्चित है। पितामह तो पाण्डवों से स्नेह रखते थे अतः वे स्वयं ही अर्जुन के सामने निष्क्रिय होकर खड़े रहे और मारे गए, पर कर्ण तो किसी को रियायत नहीं करने वाला।” कौरव पक्षीय वीरो ने कर्ण के स्वागत में बार बार शस्त्र नाद किए और द्रोणाचार्य के अभिनन्दन में जय जयकार की।

उधर चूँकि पाण्डवों को दुर्योधन की योजना ज्ञात हो गई थी इस लिए धृष्टद्युम्न ने पाण्डव पक्षीय सेना की व्यूह रचना इस प्रकार की कि सारी सेना एक प्रकार से महाराज युधिष्ठिर की रक्षा में हो गई।

सूर्य का रथ आकाश पथ पर बढ़ रहा था। किरणें ताप वर्षा करने लगी और पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपना शस्त्र ब्रजाया। समस्त शूरवीर सेनापति की ओर किसी आदेश के सुनने की इच्छा से देखने लगे। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित हो गया।

सेनापति एक हाथी पर खड़े हो गए और समस्त सेना को

सुनाकर बोले—“वीर सैनिको ! आज का युद्ध बाज और मैना का युद्ध है। हमे अपने महाराज की रक्षा द्रोणाचार्य रूपी बाज से करनी है। आज हमे शत्रु को पराजित करने के लिए नही वरन आत्म रक्षा धर्मराज की रक्षा के निमित्त युद्ध करना है। हमे शत्रु के पडयन्त्र को विफल करना है। इस लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगाकर भी महाराज को बचाना है। आप सब आज आक्रमणी न होकर धर्मराज के अग्र रक्षक हैं। विजय हमारी होगी।”

समस्त सैनिको ने मिलकर धर्मराज की जय जयकार की। महारथियो ने सेनापति के आदेश का स्वागत करने के लिए शख नाद किए। हाथी चिंघाड़ उठे और अश्वो ने हिनहिना कर अपना उत्साह प्रदर्शित किया।

दूसरी ओर—

सेनापति द्रोणाचार्य के शख नाद को सुनकर कर्ण ने अपना शख बजाया और अन्य कौरव वीरो ने उसके शख नाद के उत्तर में अपने अपने शख बजाये। समस्त कौरव वीरो ने एक बार “महाराज दुर्योधन की जय” के नादों से आकाश गुंजा दिया। सेनापति के आदेश पर रण के बाजे बज उठे और कौरव सेना व्यूह के रूप में आगे बढ़ी। द्रोणाचार्य आज अपने वचन की पूर्ति के लिए मन ही मन योजना बना रहे थे। ज्यों ही दोनों सेनाओं में मुकाबला आरम्भ हुआ, विकट गाड़ियों ने आग उगलनी आरम्भ कर दी। और पदाति से पदाति, रथों से रथों, अश्वारोही से अश्वारोही तथा गजारोही से गजारोही जूझने लगे। तलवारों की खनाखन, धनुषों की टकार, हाथियों की भीषण चिंघाड़, नारकाट, गदाओं के परस्पर टकराव और रथों के दौड़ने से ऐसा भीषण ध्वनि हो रही थी कि कान फटे जाते थे। प्रत्येक अपनी अपनी रक्षा और अपने अपने मुकाबले के शत्रु को परास्त करने के लिए प्रयत्नशील था, फिर भी पाण्डवों की सेना को महाराज युधिष्ठिर का विशेष रूप से ध्यान था जैसे पुष्प काँटों से रक्षित होता है, उसी प्रकार धर्मराज विराट मैना से रक्षित थे।

युद्ध का ग्यारहवाँ दिन था और आज कौरवों की ओर से मुख्य योद्धा थे द्रोणाचार्य। वे जिधर से निकलते सैनिकों के जमघट का कोई भी भाँति साफ करते चले जाते। जैसे अग्नि सूखे वन को

जलाती हुई फैलती है, ठीक उसी प्रकार पाण्डव सेना को भस्म करते हुए आचार्य द्रोण चक्कर-काट रहे थे । उनके बाण जिस अभागे पर पड़ जाते, वही त्राहिमान त्राहिमान करता हुआ, यमलोक सिंघार जाता । कितने ही रथ खाली हो गए और अश्व बिना सवार के अनाथ की भांति भयभीत होकर भागने लगे । ऐसा भयकर संग्राम हो रहा था कि किसी को यह भी पता नहीं चल रहा था कि द्रोण है किस मोरचे पर । वे विद्युत गति से अपना स्थान बदल रहे थे, कभी इस ओर तो कभी उस ओर, कभी इस दिशा में नारकाट मचाई तो कभी दूसरी दिशा में जहां देखो द्रोण ही द्रोण दिखाई देते । पाण्डव सैनिकों को भ्रम होने लगा कि कहीं द्रोण अनेक शरीर तो धारण करके नहीं आ गए ।

धृष्टद्युम्न जिस मोरचे पर था, उस पर कौरव महारथियों ने मिलकर आक्रमण कर दिया । और संग्राम होने लगा और द्रोण तथा कर्ण के भीषण रूप धारण करके पाण्डव सेना पर धमराज की भांति टूट पड़ने से प्रोत्साहित होकर कौरव महारथी भीषण मारकाट मचाने लगे । जैसे उन्हें आगा हों कि वे अब हुए विजयी । कुछ ही देर बाद पाण्डवों का व्यूह उस मोरचे पर टूट गया और पाण्डव तथा कौरव दोनों के बीच द्वन्द्व युद्ध छिड़ गया । माया युद्ध में निपुण शकुनि सहदेव से युद्ध करने लगा भयकर दानव के रूप में शकुनि टूट कर पंडा पर सहदेव ने भी कच्चो गोलिया नहीं खेली थी । उसने ईंट का जवाब पत्थर से दिया । शकुनि के माथे पर पसीना छलक आया और सहदेव की आखें चमकने लगी । तब शकुनि को सन्देह हुआ कि कहीं सहदेव विजय तो नहीं हो जायेगा, उसने सम्पूर्ण साहम बटोर कर आक्रमण किया और दोनों बुरी तरह जूझने लगे । इस भयकर युद्ध में दोनों के रथ टूट गए । तब दोनों वीर अपने अपने रथों से गदा लेकर कूद पड़े । दोनों की भारी गदाएं टकराने लगी । ऐसी भीषण ध्वनि होती थी मानो दो पहाड़ संप्राण होकर आपस में टकरा रहे हों ।

इधर भीमसेन और विविशति आपस में टकरा रहे थे । भीमसेन ने बाणों की मार से विविशति के रथ की ध्वजा गिरा दी, फिर सारथि को मार डाला । कुपित होकर विविशति ने भी भीम को खूब छकाया, कुछ ही देर में दोनों के रथ टूट गए और वे तलवार व ढाल सम्भाल कर नीचे उतर आये । सूर्य किरणों के

प्रभाव ने दोनों तलवारे ऐसी चमक रही थी मानो तड़ित रेखा प्राकाश के वजाये पृथ्वी पर आकर बार बार चमक रही हो।

शल्य ने अपने भांजे नकुल को अपने मुकाबले पर आते देख कर कहा—“नकुल, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा वध मेरे हाथों हो। मरना ही है तो यह सेवा किसी और कौरव वीर से जाकर लो।”

नकुल को मामा की बात बड़ी कड़वी लगी, गरज कर बोला—“मुझे लगता है कि आप को अपने भांजे के हाथों ही अपनी मुक्ति करानी है, अब आपका मस्तिष्क फिर गया है। मरते हुए लोगों की आखें फिरती हैं पर आपका मस्तिष्क भी फिर गया है, इसलिए सिंह को ठोकर मार कर जगा रहे-हो।”

शल्य को बड़ा क्रोध आया, कहा—“रे मूर्ख ! मुझे क्रोध दिला कर अपनी मृत्यु को निमन्त्रिक कर रहा है। तो ले अपने कर्मों का फल भोग।”

—और भीषण बाण वर्षा कर दी। बाणों से अधिक चोट लगी नकुल को मामा के शब्दों, उसमें दाँत भीच कर ऐसे तीक्ष्ण बाण लगाए कि मामा के रथ की ध्वजा धूल में आ रही, रथ की छतरी घोड़ों के पैरों में लुढ़कने लगा और शल्य का रथ टूट फूट गया। मामा बड़े चिन्तित हुए। वे हतप्रभ होकर कुछ करने की सोच ही रहे थे, कि नकुल ने विजय का शख वज्रा दिया, शल्य हाथ मलते रह गए।

कृपाचार्य का पाला पड़ा घृष्टकेतु से। दानों में भीषण युद्ध हुआ, पर कृपाचार्य के सामने घृष्टकेतु अधिक देर न ठहर सका। साध्वीक और कृतवर्मा तो दो भयानक जंगलों पशुओं की भाँति एक दूसरे पर झपट रहे थे। और उधर विराट राज कर्ण से भिड़े थे। कर्ण को तो अपने पौरुष व रणकौशल पर अभिमान था, पर विराट राज के मुकाबले पर आकर उसे ज्ञात हो गया कि किसी वीर योद्धा का रण भूमि में आकर परास्त करना हसी खेल नहीं है।

अभिमन्यु अर्जुन का ही दूसरा रूप है। वह जिवर जाता है, अर्जुन की भाँति अपना पराक्रम दिखा कर शत्रुओं को चकित कर देता है। बल्कि युद्ध के दस दिन में ही उसका इतना दब दबा बैठ गया है कि जब कौरव सैनिक उस बालक के रथ को आते देखते हैं तो चीख चीख कर कहने लगते हैं—“अरे अर्जुन पुत्र अभिमन्यु आ

गया, सावधान, सावधान ।”

जब ऐसी आवाजें अर्जुन के कान में पड़ती हैं तो उसे अपने पुत्र पर गर्व होने लगता है । परन्तु अभिमन्यु अपने बाणों से प्रलय मचता हुआ चीखते हुए कौरव सैनिकों को खदेड़ देता है । उसने अकेले ही पौरव, कृतवर्मा जयद्रथ, शल्य आदि चार महारथियों का मुकाबला किया । और चारों महारथियों के डट कर मुकाबला करने पर भी अभिमन्यु ने उन्हें परास्त कर दिया ।

इसके बाद भीम और शल्य के बीच गदायुद्ध छिड़ गया भीमसेन जब भीषण सिंहनाद करके भपटता तो दूर खड़े कौरव सैनिकों का दिल काप जाता । शल्य ने कितनी ही देर तक भीमसेन की गदा का मुकाबला किया । जब सूर्य सिर पर आ गया और आकाश से अग्नि वाण बरसाने लगे, शल्य पसीने से तरबतर होकर हापने लगा, पर भीमसेन बार बार किए जा रहा था । अन्त में शल्य का साहस जाता रहा और उसे रण क्षेत्र छोड़ते ही बना ।

शल्य की रण क्षेत्र से भागते देख और भीमसेन को पीछा करते हुए कौरव सैनिक पर वज्र की भाँति टूटते देख कर कौरव सेना में खलबली मच गई । सैनिकों का साहस डगमगाने लगा । ‘भागो, भागो’ की ध्वनि गूँज उठी । और कौरव सैनिक भीमसेन की गदा से बचने के लिए पीठ दिखा कर भागने लगे ।

द्रोण ने यह देखा तो सैनिकों का साहस बढ़ाने के लिए उन्होंने अपने सारथि को आदेश दिया— ‘मेरा रथ तीव्र गति से उस ओर ले चलो जहाँ युधिष्ठिर है ।’

द्रोण के रथ में सिन्धु देश के चार फुरनीले और सुन्दर घोड़े जुते थे, सारथि ने चाबुक मारी और घोड़े कितने ही सैनिकों को कुचलते, तीव्र गति से युधिष्ठिर की ओर बढ़ने लगे, घोड़े हवा से वाते कर रहे थे । इतनी तीव्र गति से द्रोण के रथ को अपनी ओर आते देख कर युधिष्ठिर ने बाज्र के पर लगे हुए तीक्ष्ण बाणों की वर्षा उस ओर आरम्भ कर दी, ताकि द्रोण की गति अवरुद्ध हो सके ! परन्तु बाणों की वर्षा भी द्रोण की गति को न रोक पाई । उन्होंने क्रुद्ध होकर युधिष्ठिर के बाणों के उत्तर में ऐसे दाग चलाए कि युधिष्ठिर को आत्म रक्षा कर सकना दुर्लभ हो गया । एक बाण ऐसा लगा कि धर्मराज का धनुष टूट गया । युधिष्ठिर सम्भने और दूसरा धनुष लेकर युद्ध करे, इस से पहले ही द्रोणाचार्य बड़े वेग से

उनके निकट पहुँच गए। घृष्ट द्युम्न ने द्रोण को रोकने की हजार चेष्टा की पर किसी प्रकार भी द्रोण को न रोक पाये। उनका प्रचंड वेग किसी के रोके नहीं रुकता था।

कौरव पक्षीय वीरो ने द्रोण को युधिष्ठिर के निकट पहुँचते हुए देखकर ही शोर मचा दिया—“युधिष्ठिर पकड़े गए, युधिष्ठिर पकड़े गए।”

इस आवाज से सारा कुरुक्षेत्र गूँज उठा। भागते हुए कौरव सैनिक रुक गए। पाण्डव वीरो की गति मन्द पड़ गई। भीमसेन की भुजाएँ शिथिल सी पड़ गई।

इतने ही में अनायास ही अर्जुन उधर आ पहुँचा। द्रोणाचार्य द्वारा बहाई रक्त की नदी को पार करता, हड्डियों और शवों के ढेरों को लाघता और तीव्र गति से पृथ्वी को कपाता हुआ अर्जुन का रथ वहाँ आ खड़ा हुआ। श्री कृष्ण ने ललकारा—“देखते क्या हो धनजय। चलाओ वाण। द्रोण तुम्हारे गुरु नहीं इस समय मुख्य शत्रु हैं।”

द्रोण देखते ही तनिक देर के लिए तो सन्न रह गए। श्री कृष्ण को ललकार सुनकर अर्जुन ने आवेश में आकर जो गाण्डीव धनुष से वाणों की वर्षा आरम्भ की है, तो देखते ही देखते वाणों की वौछार हो गई। इतनी तीव्र गति से वाण चल रहे थे कि यह पता ही नहीं चलता था कि अर्जुन कब तीर चढ़ाता है, और कब छोड़ देता है। वाणों के मारे द्रोण के आगे अधेरा सा छा गया। उसी समय अर्जुन ने एक ऐसा अस्त्र प्रयोग किया कि जिसके छूटते ही चारों ओर धुएँ और अधकार का बादल सा फैल गया, द्रोणाचार्य अपने शिष्य के इस भोषण आक्रमण के मारे पीछे हट गए।

अर्जुन आगे बढ़ता रहा, तभी द्रोण की रक्षा के लिए कई कौरव महारथी आ डटे। अर्जुन सभी को एक साथ हटाता रहा। उस सेवा दिन समाप्त होने वाला था पश्चिम दिशा में लाली फैल रही थी, सूर्य किरणें पृथ्वी से विदा ले रही थी और अर्जुन के वाणों के आगे कौरव वीर पीछे हटने पर विवश थे, बल्कि बार बार आकाश की ओर देखते थे।

द्रोण ने युद्ध की समाप्ति का विगुल बजवा दिया। और पाण्डवों ने विजय के वाजे बजाने आरम्भ कर दिए। कौरव सेना पर भय छा गया। परन्तु पाण्डव पक्षीय सैनिक बड़ी शान से अपने अपने शिविर को लौट चले। सब से पीछे थे कृष्ण और अर्जुन।

भापे कि वह अवकाश न ग्रहण कर सके मेरे निकट पहुँचने का, तो युधिष्ठिर को बन्दी बनाया जा सकता है। इतनी बड़ी योजना बनाई है तो ऐसी भी योजना बनाओ कि अर्जुन का मुझ से मुकाबला हो और वह युधिष्ठिर की रक्षा को आ ही न सके।”

भला ऐसा उपाय क्या हो सकता है ? मेरी समझ में तो नहीं आता।”

“यदि कुछ वीर अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हो जाय तो यह भी सम्भव है।”

“जानबूझ कर प्राण खोने की भला कौन तैयार होगा ?”

“कुछ भी हो जब तक कुछ वीर संशप्तक व्रत धारण कर के अर्जुन को युद्ध के लिए नहीं ललकारेंगे, और अपने प्राणों का मोह छोड़ कर यमलोक जाने की तैयारी करके अर्जुन के मुकाबले पर नहीं जायेंगे तब तक काम न चलेगा।”—द्रोणाचार्य ने सोचकर बताया।

‘ऐसे वीर कौन हो सकते हैं ? आप ही बताए।’

दुर्योधन के प्रश्न पर अभी द्रोणाचार्य विचार कर ही रहे थे कि सुशर्मा वहाँ से उठ गया। विचार मग्न द्रोण तथा दुर्योधन को इस का आभास भी न हुआ।

कुछ देर तक दुर्योधन तथा द्रोणाचार्य में विचार विमर्श होता रहा, पर उन्होंने संशप्तक—व्रत धारण करके युद्ध करने के लिए तैयार हो सकने वाले वीरों को न खोज पाये।

रात्रि यौवन की ढ्योढ़ी पर पग रखने वाली थी, दिन भर युद्ध करने के कारण सभी थके हुए थे फिर भी द्रोण तथा दुर्योधन का नींद कहा, वे तो युद्ध की योजना बनाने और अपनी योजना की सफलता का उपाय खोजने में तल्लीन थे।

सुशर्मा ने कुछ देर बाद शिविर में पग रखा। सुशर्मा बाहर से आते देखकर कदाचित्त तब द्रोण को मान हुआ कि सुशर्मा बिना कुछ कहे सुने ही वहाँ से चला गया था।

सुशर्मा ने विनीत भाव से कहा।—‘शुन देव ! आपको चिन्तित रहने की आवश्यकता नहीं। मैंने आपकी समस्या हल कर दी है। मेरे देश के वीर संशप्तक-व्रत धारण करके कल अर्जुन

को युद्ध के लिए ललकारेंगे और आत्म आहुति देकर भी उस का बध करेंगे। अब आप निश्चित होकर युधिष्ठिर को बन्दी बनाने की बात सोचें।”

सुशर्मा की बात सुनकर दुर्योधन एक दम प्रसन्न हो उठा। उसे अगर हर्ष हुआ। उसने आत्म सन्तोष के लिए पूछा—“क्या सच?”

“हाँ, राजन ! मैं आपकी ओर से युद्ध करने के लिए आया हूँ, अपने वीर साथियों अथवा अपने प्राणों की रक्षा करने नहीं। मैंने आप दोनों को चिन्ता मग्न देखा और जाकर अपने भाईयो से मन्त्रणा की। मुझे प्रसन्नता है कि ऐसे वीर शूरो की एक टोली मैंने तैयार कर ली है, जो आपकी आज्ञा मिलते ही संशप्तक-व्रत की दीक्षा ग्रहण करलेगी।” सुशर्मा ने उल्लास पूर्वक कहा। उसे बहुत सन्तोष था कि वह दुर्योधन के प्रति अपनी वफादारी को सिद्ध कर पा रहा है। बल्कि वह ऐसे कार्य को सम्पन्न कर रहा है, जिसे पूर्ण करने के लिए कोई मिला ही नहीं।

द्रोणाचार्य को कोई प्रसन्नता हुई या नहीं यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे उसी प्रकार शांत बड़े रहे, अपनी ओर से कुछ कहना आवश्यक जानकर वे बोले—“भगिर्त्त नरेश ! तुम अपनी उस सैनिक टोली को संशप्तक-व्रत की दीक्षा दिलाओ। मरणसन्न पर पड़े लोगों के लिए जो दान-पुण्य आदि आवश्यक समझे जाते हैं, वे सभी सम्पन्न कराओ। प्रातः उस टोली को अपने प्राणों का मोह छोड़ कर अर्जुन के सामने जाना है।”

दुर्योधन को लक्ष्य करके उन्होंने ने कहा—“बेटा ! रात्रि बहुत जा चुकी, अब आराम करो। कल फिर मैं अपने वचन को पूर्ण करने का भागीरथ प्रयत्न करूँगा।”

× × + × × × ×

ज्यो ही पूर्वं क्षितिज की मांग सिन्दूरी हुई। एक भारी सेना ने संशप्तक-व्रत की दीक्षा ली। सब ने घास के बने वस्त्र धारण किए। जिन भाषित धर्म के अनुसार उन्होंने प्रभु वन्दना की और फिर साधारण मोह तथा परिग्रह आदि का त्याग करके, सभी से

क्षमा याचना करने के उपरान्त शपथ ली कि हम लोग युद्ध में धनजय का वध किए बिना नहीं लौटेंगे। यदि भय के कारण पीठ दिखाकर भाग आये तो हमें महापाप का दोष प्राप्त हो। हम प्राणों तक का उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहेंगे।

शपथ लेने के पश्चात् वे संशप्तको ने दान-पुण्य किए। अपने गुरुओं, बन्धु-बाधवों को अन्तिम प्रणाम किया और अस्त्र-सस्त्र सम्भाल कर तैयार हो गए।

दोनों ओर की सेनाएं सज गई। रण क्षेत्र में जाने से पूर्व दोनों ओर के सैनिक एक-दूसरे से बन्धुओं की भांति मिलते जुलते थे, धायलों की खबर लेते थे। इसी प्रकार दोनों ओर के वीर परस्पर मिले और जब युद्ध का समय हो गया, सेनापतियों ने रण क्षेत्र की ओर जाने के लिए अपना शस्त्र बजाया, दोनों ओर के सैनिक अपनी-अपनी सेना में आकर अपने-अपने स्थान पर खड़े हो गए। सेनापतियों ने उस दिन के युद्ध के लिए आवश्यक सूचनाएं तथा हिदायतें दी और फिर दोनों सेनाएं रण क्षेत्र की ओर चल दी।

सूर्य एक बास ऊपर चढ़ चुका था, दोनों ओर से व्यूह रचना हो चुकी थी। तभी कौरवों की ओर से भिगर्तराज की संशप्तकों की टोली ने पुकार-पुकार कर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। इस टोली को आत्मघाती सैनिक टोली भी कहा जा सकता है। इस प्रकार की सैनिक टोलियों का आजकल भी रिवाज है। कि सेना की कोई विशेष टुकड़ी किसी मुख्य कार्य को पूर्ण करने की शपथ लेकर जाती है और कार्य-पूर्ण किए बिना नहीं लौटती।

इसी प्रकार की थी वह भी भिगर्त देश की सेना, जिसकी ललकार को सुनकर अर्जुन तड़प गया। उन दिनों क्षत्रियों में यह प्रथा थी कि यदि रण क्षेत्र में किसी विशेष व्यक्ति को युद्ध की चुनौती दी जाती है तो वह बिना किसी का वहाना किए ही युद्ध करने के लिए आ बटता। उसी रीति के अनुसार जब अर्जुन ने एक विशेष सैन्य-दल को, जो संशप्तकों के वेश में था, युद्ध की चुनौती देते हुए देखा, तो युधिष्ठिर के पास जाकर बोला—“राजन्! देखिए वे लोग संशप्तक व्रत लेकर मुझे ललकार रहे हैं। आप तो जानते ही हैं कि मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि कोई मुझे, युद्ध के लिए ललकारेगा

तो मैं उस से युद्ध अवश्य करूँगा। वह देखिये, सुशर्मा और उसके साथी आज मुझे ही युद्ध की चुनौती दे रहे हैं। इसलिए मैं तो जा रहा हूँ और उनका विनाश करके ही लौटूँगा। आप मुझे इसकी आज्ञा दीजिए।”

युधिष्ठिर ने सारी परिस्थिति पर विचार किया और बोले—
“बड़ी विकट समस्या आ गई है। मेरी आज्ञा की बात जाने दो। तुम्हें दुर्योधन का इरादा मालूम ही है। द्रोणाचार्य का वचन भी ज्ञात है और यह भी जानते हो कि द्रोणाचार्य बड़े बली हैं, शूर हैं, कृष्ट-सहिष्णु, शस्त्र विद्या में पारंगत, बुद्धिमान और पराक्रमी हैं और अपने वचन की पूर्ति के लिए हर सम्भव उपाय अपना सकते हैं। उनके प्रण और उनकी सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए तथा शत्रु की चाल को समझ कर अपनी मर्यादा का ध्यान रखकर जो तुम उचित समझते हो करो।”

अर्जुन भी सोच में पड़ गया, तभी भिगत्त देश के वीरो ने ललकारा—“अर्जुन! कहाँ छुप गया है। यदि वह जीवित है तो आये और हम से लोहा ले हम या तो उसका वध कर देंगे अथवा अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देंगे। अन्य किसी दशा में नहीं लौटेंगे।” अर्जुन यह सुनकर उद्विग्न हो गया। बोला—“राजन्! वह देख फिर शत्रुओं ने मुझे ललकारा। मुझे जाना ही होगा। आपकी रक्षा पांचाल राज पुत्र सत्याजित करेंगे। जब तक वे जीवित रहेंगे तब तक आप पर किसी प्रकार का सकट नहीं आ सकता।”

सत्याजित को बुलाकर अर्जुन ने कहा—“मैं अपने महाराज को तुम्हें सौंपता हूँ। मेरी ही तरह उनकी रक्षा करना और शत्रु तुम्हारे शव पर ही उतरकर हम तक जा सके। वस यही मैं चाहता हूँ।”

सत्याजित ने विश्वास दिलाया कि प्राणों की आहुति देकर भी वह युधिष्ठिर की रक्षा करेगा।

और अर्जुन सशस्त्रको की ओर ऐसे लपका जैसे भूखा शेर शिकार पर लपकता है। श्री कृष्ण अर्जुन से कह रहे थे—“धनजय! यह सब तुम्हारे ही वाणों की प्रतीक्षा में खड़े हैं। प्राणों के भय के कारण तो उन्हें रोना चाहिए था, पर व्रत के नशे में यह बड़े उत्साह तथा उत्लास के साथ खड़े हैं। तनिक इन्हें अपना रण कौशल

खाकर इनका नशा तो चूर कर दो।”

इधर पाण्डव तथा कौरव सेनाएं एक दूसरे को परास्त करने लिए भीषण संग्राम कर रही थी और उधर अर्जुन ने भिगर्त शवासी सैनिकों पर इतना भयकर आक्रमण किया कि देखते ही देखते उनके सिर पर चढ़ा, व्रत का भूत हवा हो गया। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से भिगर्तों का सारा उत्साह भग्न हो गया। एक बार जो अर्जुन ने अग्नि बाण मारा और उसकी लपटें, जो विशाल विषधरो की लपलपाती जिह्वाओं की भांति लपलपाई, भिगर्त-देशीय सुशप्तक विचलित हो गए। सभी के मुह पर घबराहट नृत्य कर गई। अपने सैनिकों को भयभीत देखकर सुशर्मा ने ललकारा—

“शूरवीरो ! याद रखो । तुम ने क्षत्रियों की भरी सभा में शपथ खाकर व्रत धारण किया है । घोर प्रतिज्ञा कर चुकने और प्राणों का मोह त्याग चुकने के बाद भय-विह्वल होना तुम्हें शोभा नहीं देता । तुम कहीं मैदान से यूँ ही वापिस चले गए, तो लोग तुम्हारी हसी उड़ायेंगे । कोई तुम्हें पास भी न बैठायेगा । डरो नहीं । आगे बढ़ो । तुम इतना बड़ी सख्या में हो और शत्रु अकेला है । आगे बढ़ो और प्राणों की वलि चढ़ा दो । या शत्रु का वध कर डालो । अरे यदि तुम अर्जुन को वाटने बैठो तो एक एक खोटी भी एक एक के भाग में न पड़े ।”

यह कहकर सुशर्मा ने शख-नाद किया, फिर सैनिक भी एक दूसरे को प्रोत्साहित करने लगे । कितने ही शख एक साथ वज्र उठे और फिर भयानक युद्ध आरम्भ हो गया ।

दोनों ओर से बाण वर्षा होती रही, पर भिगर्त नरेश के सुशप्तक सैनिक हटे नहीं, तब अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—“मधुसूदन ! लगता है सुशर्मा की चैतावनी नव स्फूर्ति प्रदान करने में सफल हो गई । अब जब तक इनके तन में प्राण हैं यह हटेंगे नहीं, इसलिए आप भी तनिक उत्साह में आ जाइये । हमें भिक्कना नहीं है, इन्हें यमलोक पहुंचाना ही होगा ।”

श्री कृष्ण पूर्ण कुशलता से रथ चलाने लगे । उस समय उन्होंने ऐसी अद्भुत कुशलता का परिचय दिया कि शत्रु भी दातों तले जगली दवाते रह गए और अर्जुन के गान्डीव का कमाल तो देखने

ही लायक था उस ने पूर्ण चतुराई का परिचय दिया । अर्जुन विद्युत गति से अपने स्थान बदल लेता था, जल्दा ही बाणों का रुख बदल जाता और प्रत्येक सशप्तक को अर्जुन अपने ही सामने प्रतीत होता । घोर संग्राम हो रहा था, एक बार क्रुद्ध होकर सशप्तको ने इतनी घोर बाण वर्षा की कि अर्जुन का रथ बाणों से ढक गया, उस समय श्री कृष्ण ने कहा—“अर्जुन ! कुशल तो है ?”

अर्जुन श्री कृष्ण की बात समझ गया और ‘हा’ कह कर भिगत्तों के बाणों से छाये अधकार में ही गाण्डीव से एक ऐसा अद्भुत बाण मारा कि भिगत्तों की बाण वर्षा विलकुल ऐसे ही हवा में उड़ गई जैसे आंधी से मछखण्ड ।

उस समय रणभूमि का दृश्य इतना भयानक था मानो प्रलय के समय सदृश की नृत्य भूमि का दृश्य हो । सारे क्षेत्र में जहाँ तक दृष्टि जाती, सिर विहीन घड़, भुजा विहीन घड़, टूटे हाथ पैर, कटे सिर आदि ही दिखाई देते । स्थान स्थान पर मांस पिंड और रक्त की धाराएं सी बहती दिखाई देती ।

× × × × × ×

ज्यों ही अर्जुन भिगत्त देशीय सशप्तको से युद्ध करने के लिए गया, द्रोणाचार्य ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि पाण्डवों के व्यूह पर उस ओर आक्रमण करो जहाँ पर युधिष्ठिर की पताका लहरा रही है । आज्ञा पाने की देर थी कि सेना ने उसी ओर अभियान कर दिया ।

द्रोणाचार्य को एक विशाल सेना सहित अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर उनका मन्तव्य समझ गए और उन्होंने घृष्ट द्युम्न को सचेत करते हुए कहा—“वह देखो ब्राह्मण वीर आचार्य द्रोण अपने वचन की पूर्ति के लिए मेरी ओर आ रहे हैं । ऐसा न हो कि अर्जुन के दूसरी ओर होने का लाभ वे उठा जायें । शीघ्र ही उनकी प्रगति रोकने का प्रयत्न करो ।”

धृष्ट द्युम्न ने कहा—“आप निश्चित रहिए । मैं द्रोण को आप के पास तक पहुँचने का अवसर ही न दूँगा ।”

—और एक विशाल सेना लेकर, द्रोण के पास आने की प्रतीक्षा किए बिना ही, धृष्ट द्युम्न आगे बढ़ा। बीच ही में जाकर वह उन्हें घेर लेना चाहता था। जब द्रोणाचार्य ने विशाल सेना सहित धृष्ट द्युम्न को अपनी ओर आते देखा तो उन्हें द्रुपद राज की प्रतिज्ञा और तपस्या तुरन्त याद आ गई, जो उनकी विस्मृति के गर्भ में सुरक्षित थी। उसी समय उन्हें पितामह की मृत्यु और शिखण्डी की याद आई। उनका मन कह उठा—“शिखण्डी का जन्म पितामह के वध के लिए हुआ, वह सार्थक हो गया, और धृष्ट द्युम्न नेरी मृत्यु का कारण बनेगा, यह बात भी सत्य ही सिद्ध होगी।” इतना मन में आना था कि वे धृष्टद्युम्न के तेजमयी मुख को देख कर सिंहर उठे। उन्हें वह साक्षात् यमदूत प्रतीत हुआ। और शीघ्रता से उन्होंने अपने रथ का रुख द्रुपद की ओर घुमवा दिया।

द्रुपद द्रोणाचार्य से भिड़ गये। भयकर युद्ध होने लगा। क्षण भर में ही रक्त धारा बह निकली। दोनों ओर से सैनिक ‘आह’ करके गिरने लगे। तनिक तनिक देर बाद महमाती जीवन ज्योतियां बुझ जाती। शवों के ढेर लग गए। वे सुन्दर युवा शरीर जो किसी परिवार के रक्त थे, रथों के नीचे, घोड़ों और हाथियों के पैरों में कुचल जाते। पर दो सिंह, द्रोण तथा द्रुपद उसी प्रकार डटे हुए थे। फिर द्रोण ने अपना रथ पुनः युधिष्ठिर की ओर बढ़वा दिया।

आचार्य को अपनी ओर आते देख कर युधिष्ठिर अविचलित भाव से गुरुदेव पर वाण वर्षा करने लगे। पहले तीन वाण जा कर आचार्य के चरणों में गिरे और फिर दूसरे वाण उन को क्षति पहुंचाने लगे। पर आचार्य के वाणों की भी झड़ी लग गई। यह देख कर सत्यजित द्रोणाचार्य पर टूट पड़ा। भयानक युद्ध छिड़ गया। उस समय द्रोण साक्षात् काल का रूप ग्रहण कर गए। उनके वाण पाण्डव पक्षीय वीर सैनिकों के प्राण हरने लगे। पांचाल राज कुमार वृक के प्राण उन के वाणों ने हर लिए और सत्यजित का भी वही हाल हुआ।

यह देख कुपित होकर विराट पुत्र शतानीक द्रोण पर झपटा। पर दूसरे ही क्षण शतानीक का कुण्डलो वाला सिर युद्ध-भूमि पर लुढ़कने लगा। इसी बीच केदम नामक राजा द्रोणाचार्य के सामने आया, उसने भीषण वाण वर्षा आरम्भ की, पर इस से पूर्व कि वह

द्रोण का कुछ विगाड़-पाता, उस के ही प्राण पखेरु द्रोण के बाणों से उड़ गए ।

द्रोण आगे बढ़ते ही चले गए । उनके प्रबल वेग को रोकने के लिए साहस कर के वमुधान आया और वह भी यमलोक पहुँचा । युधामन्यु, सात्यकि, शिखण्डी, उत्तमौजा आदि कितने ही महारथियों को तितर बितर करते हुए द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के निकट पहुँच गए । उस समय अपने प्राणों का मोह त्याग कर द्रुपद राज का एक और पुत्र पाचात्य विजली की भाँति द्रोण पर टूट पड़ा । वह कितनी ही देर तक भीषण संग्राम करता रहा । पर अन्त में वह विल्कुल उसी प्रकार अपने रथ से नीचे लुढ़क गया, जैसे आकाश से कोई तारा टूटता है ।

उस समय द्रोणाचार्य का अद्भुत रण कौशल देख कर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ । वह कर्ण से बोला—‘कर्ण ! द्रोणाचार्य का पराक्रम तो देखो । पाण्डवों की सेना को कैसे मूली गाजरो की भाँति काटते हुए आगे बढ़ रहे हैं । सारे क्षेत्र में जो शव ही शव दिखाई देते हैं और रक्त की जो नदी सी बह रही है, वह सब द्रोणाचार्य का ही प्रताप है । मैं कहता हूँ अब पाण्डव अवश्य ही परास्त हो जायेंगे ।’

इधर दुर्योधन ने यह बात कही, उधर भीमसेन, सात्यकि, युधामन्यु, उत्तमौजा, द्रुपद, विराट, शिखण्डी, धृष्टकेतु, आदि बहुत से वीर द्रोणाचार्य के सम्मुख आए और बड़ा ही भयकर आक्रमण कर दिया ।

उधर कर्ण दुर्योधन की बात का उत्तर देते हुए बोला—‘दुर्योधन ! पाण्डव यूँ ही हार मानने वाले नहीं । वे इतनी जल्दी पराजय से पीछे हटने वाले । वे कभी उन यातनाओं को नहीं भूल सकते जो उन्हें विष से, आग से और जुए-के खेल से पहुँची थी । वनवास और अज्ञात वास में हुए उन के हृदय में घाव अभी तक रिस रहे होंगे । वे उन सब यातनाओं को भूलने वाले नहीं । वे अन्तिम क्षण तक मुकाबला करेंगे । और भीमसेन तथा नकुल सहदेव अपने प्राणों की आहुति देकर भी युधिष्ठिर की रक्षा करेंगे । वह देखो पाण्डव पक्षीय कितने ही वीरों ने एक साथ मिल कर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया है, वे द्रोण के आगे लोहे की दीवार बन गए हैं ।

प्राचार्य कितने भी बलिष्ठ और शास्त्र विद्या में पारंगत सही, पर सहन करने की भी एक सीमा होती है। हमें ऐसे समय पर चलकर उनकी सहायता करनी चाहिए।”

इतना कह कर कर्ण द्रोणाचार्य की सहायता को आगे बढ़ा और उस के पीछे पीछे ही दुर्योधन का रथ चल पड़ा।

X

X

X

X

द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की कितनी ही चेष्टा की, पर द्रुपद, भीम, सांत्यकि और विराट आदि उनके आड़े आये और वे लाख प्रयत्न करने पर भी युधिष्ठिर को न पकड़ पाये। तब दुर्योधन ने एक भारी गज-सेना भीम की ओर बढ़ा दी। भीम सेन ने रथ पर से ही हाथियों पर बाणों की ऐसी वर्षा की कि समस्त हाथी विलविला उठे। बाणों की बौछार से उन की बुरी दशा होगई। और हाथियों के शरीर रक्त-प्रपात बन गए।

भीमसेन को ज्ञात था कि गज सेना को उसके सामने भेजने की उद्धण्डता किस घूर्त ने की है, अतः गजारोही सेना को निष्काम कर के उसने दुर्योधन के रथ को अपने बाणों का निशाना बनाया। उस के अर्द्ध-चन्द्र बाणों के प्रहार से दुर्योधन के रथ की ध्वजा काट कर गिर गई और धनुष भी टूट गया। दुर्योधन की यह दुर्दशा होते देख कर अग नामक एक नरेश साथी पर सवार होकर भीमसेन के आगे जा डटा। उस से क्रुपित होकर भीमसेन ने नाराज बाणों की वर्षा की। जिससे कुछ ही देर में अग का हाथी रक्त से लथ पथ होगया और एक नभ स्पर्शी चिंघाड़ मार कर रण क्षेत्र से भाग पड़ा। वेचारा अंग बहुत प्रयत्न करने पर भी जब हाथी को न रोक पाया तो निराश होकर रण भूमि से जाने में ही अपना कल्याण समझ बैठा। उसे रण क्षेत्र से भागता देख सारी कौरव सेना भाग पड़ी। जो शूरवीर अपने प्राण हथेली पर रख कर रण क्षेत्र में आये थे। इस प्रकार भाग रहे थे मानो भेड़ के भुपड़ पर किसी भेड़िये ने आक्रमण कर दिया है।

हाथियों की सेना का भागना था कि अश्व भी कांप गए और वे भी हाथियों का अनुसरण करते हुए भागने लगे। फिर नन्वर रथों का आया। इस भाग दीड़ में पदाति सैनिक कुचले जाने लगे।

हाथियो व घोड़ो के पैरो तले सैरुडों नरमुण्ड कुचले गए। त्राहि त्राहि और चीख पुकार से सारा क्षेत्र भर गया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो प्रलय आ गई है।

यह देख कर दुर्योधन पक्षीय भगदत्त नरेश से न रहा गया उस ने सेना को रोकने के लिए शख नाद किए। शोर मचाया। गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाया — “रुक जाओ, रुक जाओ, भागो मत, तुम्हे माता के दूध की सौगंध।”

परन्तु वहाँ कौन मुनता था, सब को अपने अपने प्राणों की पड़ी थी, यह देखकर वह अपने सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर, भीम सेन की ओर भ्रमटा। वह हाथो बहुत ही हिसक प्रकृति का था। ऐसे अवसरो के लिए ही शूर भगदत्त ने उसे पाल रक्खा था।

हाथी ने जाते ही अपनी सूण्ड गदा की भांति बड़े जोर से घुमाई और क्षण भर में ही उस ने भीमसेन के रथ को चूर चूर कर दिया। रथ के घोड़ो को सूण्ड में दबा दबा कर दूर फेंक दिया। विवश होकर भीमसेन रथ से कूद पड़ा और गदा सम्भाल कर उस दुष्ट हाथी की ओर भ्रमटा। वह हिसक हाथी, भीमसेन को गदा लिए अपनी ओर आते देख कर और भी कुपित हो गया और भीमसेन को अपनी सूण्ड में दबोच कर मार डालने के लिए दौड़ा। परन्तु उस समय भीमसेन को एक उपाय सूझा। गदा घुमा कर उस ने हाथी के मस्तक पर फेंक कर मारी और स्वयं दौड़कर हाथो के पैरो के पास पहुंच गया उसे हाथियो के मर्मस्थलो का तो पूर्ण ज्ञान था ही, जाते ही घुंसों से हाथी के नीचे के मर्मस्थालो पर चोट करने लगा। वज्रकाय भीमसेन के घुंसो की मार से हाथी विल-विला उठा। पर टांगो से सटे होने के कारण हाथी उसका कुछ न विगाड सकता था। वह उसे पकडने और घुंसो की मार से बचने के लिए कुम्हार के चाक की भांति चक्कर खाने लगा। पर भीमसेन भी उसे बुरी तरह चिपटा था, वह भी घूमता रहा।

घूमते घूमते अचानक उस हिसक गज ने भीमसेन को अपनी सूण्ड में कस लिया और उठा कर दूर फेंक दिया। चोट तो लगी पर क्रोध के मारे भीमसेन जल उठा। दौड़ कर पुनः हाथी के पोछे से उसकी टांगों में घुस गया और लगा मर्म स्थलो पर चोट करने। आखिर हाथी बेचारा उसके घुंसो से तग आगया।

भीमसेन को आशा थी कि शीघ्र ही कोई गजारोही पाण्डव पक्षीय उधर आ निकले गा और भीमसेन को उस के सहारे इस खूँवार हाथी से छुटकारा मिल जाये गा, पर किसी का ध्यान इस ओर हो तो कोई आये भी । कितनी ही देर तक हाथी और भीमसेन के बीच आख-मिचौली का खेल सा चलता रहा । और इधर जब किसी ने भीमसेन को कही न पाया तो पाण्डव पक्षीय सेना में शोर मच गया—“अरे ! भीमसेन को भगदत्त के हाथी ने मार डाला ।”

इतनी आवाज उठनी थी कि सारी पाण्डव पक्षीय सेना में कोलाहल मच गया । यह शोर सुन कर युधिष्ठिर ने भी समझ लिया कि सचमुच ही भीमसेन मारा गया होगा । यह सोच कर उन्हें जितना शोक हुआ उस से अधिक भगदत्त पर क्रोध आया । उन्होंने अपने जवानों को आदेश दिया कि चलो तुरन्त भगदत्त पर आक्रमण कर दो । भीमसेन के हत्यारे को उस की घृष्टता का फल चखा दो ।

दशार्ण देश के राजा ने अपने लडाकू हाथी पर सवार होकर अपने सगी सौथी सैनिकों सहित भगदत्त पर भीषण आक्रमण कर दिया । दशार्ण के हाथी ने बड़े जोर से युद्ध किया, फिर भी सुप्रतीक के आगे वह अधिक देर न ठहर सका । सुप्रतीक ने अपने दातों से उस हाथी की पस्लिया तोड़ डाली । और देखते ही देखते वह भूमि पर लुढ़क गया । उसी समय भीमसेन को अवसर मिला और वह सुप्रतीक की टांगों के बीच से निकल भागा ।

इधर दशार्ण के सैनिक और युधिष्ठिर के भेजे सैनिक एक साथ सुप्रतीक पर टूट पड़े । उन के बाणों, भालों, गदाओं और तलवारों की मार से सुप्रतीक व भगदत्त की बुरी दशा हो गई तो भी भगदत्त ने हिम्मत न हारी । भगदत्त और सुप्रतीक घायल हो चुके थे, फिर बूढ़ भगदत्त का कलेजा दावानल की भाँति जल रहा था । अपने चारों ओर पड़े सैनिकों की कोई चिन्ता न कर के, उस ने अपने हाथी को सात्यकि की ओर बढ़ा दिया । क्रुद्ध हाथी ने जाते ही सात्यकि के रथ पर आक्रमण कर दिया और रथ को उठा कर फेंक दिया । सात्यकि फुरती से रथ से कूद गया, वरना कदाचित्त वह स्वयं भी अपने रथ के साथ साथ नष्ट हो जाता । परन्तु सात्यकि

का सारथि बड़ा कुशल था, ज्यो ही रथ दूर जा गिरा, उस ने दौड़ कर रथ को सीधा किया, घोड़ो को पकड़ कर पुनः जोड़ा और सात्यकि के पास ले आया। परन्तु रथ की कील कील हिल गई थी, वह युद्ध के काम का न था, आश्रय लेने के लिए सात्यकि उस पर चढ़ गया अवश्य पर दूर नैजा कर वह उतर गया और दूसरे रथ पर चढ़ गया।

सुप्रतीक का क्रोध गात न हुआ था, उसने दूसरे पाण्डव पक्षीय सनिकों को मारा, रथ तोड़े और घोड़ो को धाराशाही कर दिया। जो पदाति सामने पड़ता हाथी उसे ही उठा कर गेद की भाति फेंक देता, जो रथ सामने आ जाता, उसे ही तोड़ डालता। इस प्रकार उसने नाश का डका वजा दिया, चारो ओर तबाही सी आ गई। पाण्डव पक्षीय सैनिको मे भय मा छा गया। भगदत्त शान से हाथी पर बैठा पाण्डवो के नाश की इस लीला पर गर्व कर रहा था, मानो इन्द्र अपने ऐरावत गज पर विराजमान होकर असुरों का नाश कर रहे हों।

इतने ही मे भगदत्त ने देखा कि सामने से वाण वरसाता भीमसेन का रथ उसको ओर बढ़ता आ रहा है। भीम अपने घनुष से पंने वाणो की वर्षा कर रहा था। भगदत्त ने अपना हाथी उसी ओर बढ़ा दिया, स्वयं वाण वर्षा करनी आरम्भ कर दी। सुप्रतीक ने जब अपने वैंरो को रथ पर सवार देखा उसकी आखो मे खून उतर आया। जाते ही रथ पर सूण्ड को गदा की भाति मारने लगा, कुछ ही देरी में रथ की बुरजी तोड़ डाली और इतने जोर की चिघाड़ मारी कि उसे सुनकर भी भीमसेन के रथ के घोड़े भयभीत होकर भाग पड़े।

उस समय इतनी धूल उड़ रही थी कि आकाश की ओर पृथ्वी से बादल से उठते प्रतीत होते। बार बार सुप्रतीक की कलेजे को कम्पित कर डालने वाली चिघाड़ें उठ रही थी- यह चिघाड़ें सगप्तको का मुकाबला करते हुए अर्जुन के कान मे भी पड़ी। सुन कर वह स्तब्ध रह गया। इधर देखा और श्री कृष्ण से बोला—
“मधु सूदन ! रण क्षेत्र मे धूल ही धूल उड़ रही है। हाथियो की चिघाड़ें सुनाई दे रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शूर भगदत्त ने अपने सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर भयकर आक्रमण कर दिया

है। युद्ध के खूँखार हाथियों को चलाने में भगवत्त जैमा समार मे और कोई नहीं है। मुझे डर है कहीं भगदत्त हमारी सेना को तितर-बितर करके हमें हरा न दे।”

कृष्ण बोले—“भीमसेन तो वहाँ है ही। और तुम ठहरे सशप्तको के मुकाबले पर, तुम कर ही क्या सकते हो।”

“मधु सूदन ! मैं काफी सशप्तको को मौत के घाट उतार चुका। काफी सेना को परास्त कर चुका अब इस मोर्चे को जोड़कर पहले मुझे उनकी खबर लेनी चाहिए। देखिये वहाँ चलना बड़ा आवश्यक है जहाँ द्रोणाचार्य युधिष्ठिर से लड़ रहे हैं।”—अर्जुन बोला।

श्री कृष्ण ने अर्जुन की बात मान ली और रथ उसी ओर घुमा दिया जिधर भीमसेन और भगदत्त के हाथी का युद्ध हो रहा था। पर सुशर्मा राज और उसके भाई सशत्तक उसके रथ का पीछा करने लगे और चिलाने लगे—“ठहरो ठहरो जाते कहा हो।”

यह देख अर्जुन बड़ी दुविधा में पड़ा। क्षण भर के लिए किकर्तव्य विमूढ़-सा होकर सोचने लगा कि “क्या करूँ ? सुशर्मा इधर ललकार रहा है। उधर उत्तरी मोर्चे पर सेना व्यूह टूट रहा है, सफट आ गया है, उधर जाऊ तो सुशर्मा समझेगा कि अर्जुन डर कर भाग गया है। यदि यही डटा रहूँ और उधर तुरन्त मदद न पहुँची तो किया कराया सब चौपट हो जायेगा और पराजय हो जायेगी।”

अर्जुन अभी इसी सोच विचार में पड़ा था कि इतने में सुशर्मा ने एक शक्ति-अस्त्र अर्जुन पर छोड़ा और एक तोमर श्री कृष्ण पर। सचेत होकर तुरन्त ही अर्जुन ने तीन बाण मारकर सुशर्मा को ईंट का जवाब पत्थर से दे दिया और श्री कृष्ण को तेज़ी से भगदत्त की ओर रथ दौड़ा ले चलने को कहा।

अर्जुन के पहुँचते ही पाण्डवों की सेना में नवीन उत्साह का संचार हुआ। सब जहाँ के तहाँ रुक गए और आक्रमण करने के लिए तैयार हो गए। कौरव सेना पर भीषण आक्रमण करके अर्जुन भगदत्त के हाथी की ओर बढ़ा। सुप्रतीक वुरी तरह अर्जुन के रथ पर झपटा, पर श्री कृष्ण की कुशलता के कारण हाथी रथ का कुछ न बिगाड़ सका। भगदत्त ने श्री कृष्ण और अर्जुन पर भीषण बाण

दर्पा आगम्भ कर दी। परन्तु अर्जुन ने पहले अपने वाणों से सुप्रतीक के कवच को तोड़ डाला, इस से वाणों का प्रभाव हाथी के शरीर पर होने लगा। गाण्डीव से छूटे वाणों की मार से सुप्रतीक नाचने सा-लगा। भगदत्त को बड़ा क्रोध आया उसने श्री कृष्ण पर एक शक्ति फेंकी परन्तु धनुर्धारी अर्जुन ने शक्ति को अपने वाणों से तोड़ डाला। तब भगदत्त ने एक तोमर अर्जुन पर चलाया जो जाकर अर्जुन के मुकुट पर लगा। उसने अपना मुकुट तो सम्भाल लिया, पर कुपित होकर गर्जना की—“भगदत्त लो, अब इस ससार को अन्तिम बार अच्छी प्रकार देख लो।”

कहते कहते अपना गाण्डीव तान लिया। क्रुद्ध भगदत्त के बाल पक गए थे, चेहरे पर भुर्रिया पड़ी हुई थी, भीहो का चमड़ा आँखों की ओर लटक गया था, उसे देख कर सिंह का रुमण हो आता था, फिर भी वृद्ध सिंह भगदत्त अपने शील स्वभाव तथा प्रताप के लिए बड़ा प्रसिद्ध था, लोग उसे इन्द्र का मित्र कहा करते थे, अर्जुन की गर्जना सुन कर भी उसने हिम्मत न हारी, वाण चलाता ही रहा। पर गाण्डीव से छूटे वाणों के कारण उसका धनुष टूट गया, तरकश टूट कर दूर जा गिरा। अर्जुन ने भगदत्त के मर्म स्थानों को छेद डाला।

अस्त्र शस्त्र विद्या सिखाते समय उन दिनों यह भी सिखाया जाता था कि कवच धारी के शरीर को बीचने के लिए कहाँ प्रहार करना चाहिए। अर्जुन अपने गुरु द्रोणाचार्य से यह सभी कुछ सीख चुका था, इस लिए उस ने वही वाण जहाँ वाणों से शरीर बिध जाता था। उस ने भगदत्त के सभी अस्त्रों को भी काट डाला। भगदत्त का शरीर लोहलुहान हो गया। अन्त में उस ने हाथी का अकुश ही अभिमन्त्रित कर के अर्जुन पर इस प्रकार मारा कि यदि उस समय श्री कृष्ण अपनी कुशलता से रथ को दूसरी ओर न मोड़ देते तो अर्जुन का सिर कट गया होता। हाँ, अर्जुन तो उस अस्त्र से बच गया, परन्तु वह अभिमन्त्रित अकुश जो प्राणहारी अस्त्र बन गया था, श्री कृष्ण की छाती पर आ कर लगा। परन्तु श्री कृष्ण का यह अस्त्र कुछ न बिगाड़ सका। यह सब उन की शुभ प्रकृति का ही प्रभाव समझिए। कुछ लोग इस बात को इस प्रकार मानते हैं कि द्रोणवास्त्र ने अभिमन्त्रित होने के कारण श्री कृष्ण

की छाती पर लगते ही वह शक्ति बने-मोला सी बन कर श्री कृष्ण की शोभा बढ़ाने लगी।

अर्जुन के अभिमान को इस घटना से बड़ी ठेस लगी। वह श्री कृष्ण से बोला—“जनादेन ! शत्रु द्वारा चलाया हुआ अस्त्र अपनी छाती पर लेना क्या आप के लिए उचित था ? जब आप ने प्रतिज्ञा की है कि महाभारत में आप रथ हाँकने के अतिरिक्त और कुछ न करेंगे तो फिर जब धनुष लिए तो मैं खड़ा हूँ, और वार आप सह रहे हैं, यह कहाँ का न्याय है ?”

श्री कृष्ण हस कर बोले—“मैं युद्ध में तो भाग नहीं ले रहा, पर यदि शत्रु का वार मेरे ऊपर होता है तो फिर क्या इस लिए कि मैं युद्ध नहीं कर रहा, उस से किसी प्रकार बच सकता हूँ। मैं सारथि हूँ इसलिए मेरा धर्म है कि रथ इस प्रकार हाँकू कि रथ पर सवार योद्धा को कम से कम हानि हो।”

अर्जुन कुछ न बोला, बल्कि भगदत्त के उस वार का उत्तर दृढ़ता से देने के लिए एक तीक्ष्ण बाण गाण्डीव की डोरी को कान्त तक खींच कर इस प्रकार मारा कि सुप्रतीक हाथी के मस्तक को काटता हुआ वह बाण इस प्रकार निकल गया जैसे साँप अपने बिल में जाता है बाण का लगना था कि हाथी के मुँह से चिघाड़ के रूप में एक भयकर चीत्कार निकला। और वह वही पृथ्वी पर बैठ गया। भगदत्त ने अपने हाथी को बहुत उकसाया, बड़ा डोटा डपटा, बार बार उसे सहलाया, पर हाथी जब बैठ गया तो बैठ गया, वह न उठा। पीड़ा के भारे उस का बुरा हाल था, वह रहे-रहे कर चिघाड़ रहा था बेहाल होकर और पीड़ा से परेशान होकर वह अपने दांतों से घरती कुरेदने लगा और थोड़ी ही देर बाद उस विपले बाण की मार से ही पीड़ित होकर पैर पटक पटक कर उसने प्राण छोड़ दिये।

यह देख कर अर्जुन को मानसिक दुख हुआ, क्योंकि वह हाथी को मारना नहीं चाहता था, वह यदि मारना भी चाहता था, तो भगदत्त को, पर भगदत्त बच गया था, उसे देख कर अर्जुन फिर व्याकुल हो उठा। उस ने समझ वृक्ष कर एक ऐसा बाण मारा जिससे भगदत्त के सिर पर बघी रेणमी पट्टी कट गई। वह पट्टी इस लिए बंधी थी कि भौआँ पर कौ खाल जो बुढ़ापे के कारण लटक

गई थी, उसे पट्टी ऊपर रोके रहती थी। वह खाल ऐसी थी कि उस के लटक जाने पर भगदत्त की आंखें पूरी तरह न खलती थी। पट्टी का कटना हुआ है कि खाल पुनः आखों के आगे आ गई। तब वेचारा भगदत्त अर्द्ध चक्षु हीन होगया और उस की आंखों के आगे अवकार छा गया, तभी गाण्डीव से छूटा एक बाण और आया जो उसकी छाती को चीरता हुआ निकल गया। सोने की माला पहने हुए भगदत्त हाथी पर से नीचे लुढ़क गया। और अभी कुछ देर पहले जो शूरवीर पाण्डव सेना के लिए काल रूप धर कर आया था, जिस के हाथी ने कौहराम मचा दिया था, वही भगदत्त मिट्टी में लुढ़कने लगा। और उस के रक्त से दो हाथ मिट्टी लाल कीचड़ की नाई हो गई।

भगदत्त के मरते ही पाण्डव सेना में उत्साह छा गया, विजय के गंख बजने लगे। अर्जुन की जय जयकार होने लगी। कौरवों की सेना में शोक छा गया। परन्तु शकुनि के भाई वृषक और अचल तब भी विचलित न हुए और वे जम कर लड़ते रहे। उन दोनों में से एक ने आगे से और दूसरे ने पीछे से अर्जुन पर बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। अर्जुन को कुछ देर तक तो उन सिंह-शिशुओं ने खूब तग किया। पर अन्त में अर्जुन से न रहा गया, उस ने भयकर बाण वर्षा की और उन दोनों को मार गिराया।

अपने दोनों सुन्दर तथा चवल भाईयों के मरने पर शकुनि के क्षोभ और क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने अर्जुन के विरुद्ध माया युद्ध आरम्भ कर दिया और वे सभी अस्त्र तथा उपाय प्रयोग करने लगा जिनमें उसे कुशलता प्राप्त थी। परन्तु अर्जुन भी किसी बात में कम न था, उसने शकुनि के प्रत्येक अस्त्र को अपने अस्त्र से काट डाला। एक बार शकुनि ने ऐसी शक्ति प्रयोग की जिससे अर्जुन की ओर घुएं का बादल सा उमड़ पड़ा। अर्जुन ने उसके उत्तर में ऐसा अस्त्र प्रयोग किया, जिससे वह घुएं का बादल घूमकर शकुनि की ओर बढ़ने लगा और फिर वेचारे शकुनि को उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया। अन्त में अर्जुन के बाणों से शकुनि बुरी तरह घायल हो गया। निकट था कि अर्जुन के बाण उसके प्राण लेते कि शकुनि बच कर रण क्षेत्र से भाग निकला। रण से भागते सैनिक पर वीर पुरुष अस्त्र प्रयोग नहीं किया करते। इस

बाहरवां दिन

लिए अर्जुन ने उसे निकल जाने दिया।

भगदत्त के मारे जाने और शकुनि के भाग जाने के उपरान्त तो पाण्डव सेना में असीम उत्साह आ गया और वह द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पड़ी मार काट होने लगी। असंख्य वीर खेत रहे। कितने ही योद्धा घायल हो गए। रक्त की धाराएँ बह निकलीं। रण क्षेत्र की भूमि गारे की भाँति हो गई। शवों से क्षेत्र पट गया। महारथियों के कवच टूट गए। घोड़ों की जिन्हा बाहर निकल आईं। कौरव सेना का साहस टूट गया, त्राहि त्राहि मच गई।

उधर आकाश में सूर्य आत्ममुत्सर्ग की तैयारी कर रहा था। अपना ताप सूर्य ने समेट लिया था और रात्रि के आगमन के लक्षण साफ होते जा रहे थे। इधर कौरवों की सेना की दुर्दशा देखकर पाण्डवों की सेना को और भी प्रोत्साहन मिला। उसने कौरवों के हाथी घोड़ों को भी धाराशाही करना आरम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य से भी उस समय कुछ करने न बना। इस दशा को देखकर कुछ कौरव महारथी तो मानसिक सन्तुलन तक खो बैठे।

ज्योहो सूर्य अस्त हुआ द्रोणाचार्य ने विनाश के उस अध्याय को स्थगित कर देने में ही कल्याण समझा। युद्ध के समाप्त करने के लिए शव वजा दिए गए। पाण्डव विजय नाद करते हुए अपने शिवरो की ओर चले और कौरव मुह लटकाए हुए वापिस हुए। बारहवें दिन का युद्ध इस प्रकार समाप्त हो गया।



दुर्योधन के इन शब्दों से द्रोण को बड़ी चोट लगी। सैनिकों की उग्रस्थिति में बात कही गई थी, इस लिए उन्हें और भी असह्य हो गई। वह उत्तोजित होकर बोले—“दुर्योधन ! तुम्हारी यह बातें बता रही हैं कि तुम मानसिक सन्तुलन खो बैठे हो। मैंने तो पहले ही कह दिया था कि जब तक अर्जुन हस्तक्षेप करता रहेगा, तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा। कल भी ठीक समय पर अर्जुन वहाँ पहुँच गया। फिर मैं क्या कर सकता था, अपना सा प्रयत्न मैंने बहुत किया। और भविष्य में भी करता रहूँगा। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर भी तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें निकलती हैं कि आश्चर्य होता है।”

क्रोध तो द्रोण को भी बहुत आया था, परन्तु वे क्रोध को पी गए, अपने को उन्होंने शांत कर लिया। दुर्योधन उत्तर में कुछ कहना ही चाहता था कि द्रोण बोल उठे—“युद्ध का समय होने चला है। मुझे तैयार हो लेने दो। बातों से काम नहीं चलेगा। युद्ध में शस्त्र और बल चाहिए। दुर्योधन चुप होकर वापिस चला गया।



कर्ण का दान

रात्रि का प्रथम पहर था। भोजन करके सैनिक विश्राम कर रहे थे। परन्तु अर्जुन के नेत्रों से तो निद्रा सठी हुई थी। वह कभी शैया पर करवटे बंदलता, तो कभी व्याकुल होकर उठ पड़ता और शिविर में इधर से उधर टहलने लगा। पर उसे शांति किसी भी प्रकार न मिलती। कोई समस्या उसके मस्तिष्क को मथे डाल रही थी। जब किसी भी प्रकार चैन न आया तो वह अपने शिविर से निकल कर श्री कृष्ण के शिविर की ओर चला।

उसने देखा कि मधुसूदन भी शैया पर पड़े करवटे बंदल रहे हैं, जैसे शैया पर शूल बिछे हो और उनके कारण उन्हें चैन न पड़ती हो। श्री कृष्ण की व्याकुलता देखकर वह सोचने लगा—“मधुसूदन ! तो स्वयं ही चिन्ताकुल है। इस समय उनसे कुछ पूछना ठीक न होगा, जो स्वयं व्याकुल है वह दूसरे की व्याकुलता कैसे दूर कर सकेगा ?—नहीं, इस समय उनसे कुछ कहना ठीक नहीं।”—यह सोचकर वह जैसे आया था वैसे ही उल्टे पैर लौटने लगा।

उसी समय श्री कृष्ण ने पुकार कर कहा—“अर्जुन ! क्यों आये थे और क्यों वापिस चल दिए ?”

अर्जुन के पैर रुक गए, जैसे किसी ने श्रवलाएं डाल दी हो। वोला—“महाराज ! एक समस्या का समाधान कराने आया था। पर यहाँ देखा कि आप स्वयं व्याकुल हैं। कोई जटिल समस्या आपके हृदय से शूल की भाँति खटक रही है। फिर एक व्याकुल दूसरे की

व्याकुलता कैसे हरेगा ? यही सोचकर मैं वापिस लौट रहा हूँ।”

“नहीं, मुझे ऐसी कोई बात नहीं है। मेरी व्याकुलता का कारण तुम्हारा ही भविष्य है। मैं तुम्हारे ही वारे में सोच रहा था।

“रहने दीजिए, मधुसूदन। अर्जुन जब निश्चित होंगे, तभी पूछूँगा।”—यह कह कर अर्जुन ने जाने का उपक्रम किया।

“अर्जुन ! तुम यो चले जाओगे, तो मुझे एक और चिन्ता आ घरेगी। बोलो क्या बात है ?”—मधुसूदन ने आग्रह करते हुए कहा।

अर्जुन को रुकना पड़ा। वह श्री कृष्ण के पास बैठ गया, बोला—“आज मुझे नींद ही नहीं आती, बार-बार मेरे सामने यही प्रश्न आ खड़ा होता है कि द्रोणाचार्य को कैसे मारा जाये। वे जब तक जीवित हैं, तब तक हमारी सेना के लिए कालरूप धारण किए रहेंगे। हमारी सफलता के लिए उनका बघ होना आवश्यक है। पर हम में से कोई ऐसा नहीं देख पड़ता, जो उन्हें मार सके। आप से यही जानना चाहता हूँ कि द्रोण को मारने का क्या उपाय है ?”

श्री कृष्ण के अधरो पर मुस्कान खेल गई वे बोले—“पार्थ ! द्रोणाचार्य को मैदान से हटाना कोई बड़ी बात नहीं है परन्तु मैं सोच रहा हूँ कि कर्ण का क्या होगा ? उसे कैसे मारा जायेगा ?”

“ओह ! बस कर्ण के वारे में आप चिन्तित हैं ?—अर्जुन ने उत्तावलेपन से कहा—वह तो मेरे एक बाण का भक्षण है। आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हैं।”

“धनजय ! कर्ण न तेरे बाण का भक्षण है न मेरे। उसे न तुम मार सकोगे न मैं। वह वास्तव में विकट वीर है, हमारे लिए वही विकट समस्या है।”—श्री कृष्ण ने कहा।

अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ उसने कहा—“मधुसूदन ! आप न जाने कर्ण को क्या समझ वंटे हैं ? मेरे विचार से तो उसका बघ करना साधारण सी बात है।”

“नहीं, कर्ण जहाँ महाबली है, वहीं इस युग में सब से श्रेष्ठ रानवीर है। उसके पूर्व सचित पुण्य के प्रभाव से उसे मार डालना किसी के बस की बात नहीं। वह अपनी शुभ प्रकृति के कारण अजेय है। और उस समय तक वह अजेय है, जब तक उसके पास दैवी

कवच, कुण्डल है। जब तक उसके शरीर पर देवता द्वारा दिये गए कवच तथा कुण्डल है, तब तक तुम्हारा कोई अस्त्र भी उसका वध नहीं कर सकता।” श्री-कृष्ण ने कर्ण की अपराजिता का कारण बताते हुए कहा।

यह सुनकर अर्जुन को भी चिन्ता हो गई। उसने पूछा—“तो गोविन्द उसके शरीर से कुण्डल उतरवाने की युक्ति ही सोचिए।”
“वस इसी जटिल समस्या को सुलझाने के लिए मैं व्याकुल हूँ।”—श्री कृष्ण बोले।

देवी कवच कुण्डल कर्ण को कैसे मिले? यह जाने बिना कर्ण की कथा अधूरी ही रह जायेगी, इस लिए यहाँ हम उसे भी बता देना आवश्यक समझते हैं।

युद्ध से बहुत दिनों पूर्व की बात है।

कर्ण की दानवीरता की चर्चा सारे संसार में होने लगी। कोई याचक उसके द्वार से खाली हाथ नहीं लौटता था। कर्ण की प्रतिज्ञा थी कि याचक यदि प्राण भी मागे तो भी वह उसे निराश न करेगा। धन तथा सम्पत्ति दान में देना तो उस के दैनिक कार्य क्रम की बात थी।

आखिर यह चर्चा देवताओं तक भी पहुँच गई और स्वयं इन्द्र ही कर्ण के प्रशंसक हो गए।

एक दिन समस्त देवता गण उपस्थित थे। इन्द्र अपने गीसहासन पर विराजमान थे। मृत्यु लोक की बात चल पड़ी इन्द्र बोले—“भरत खण्ड के दानवीर कर्ण जैसा दानवीर न आज तक कोई हुआ, न है और कल्पिते भविष्य में कोई हो भी न। वह किसी याचक को इकार करना ही नहीं जानता। उसकी प्रतिज्ञा है कि कोई उस के प्राण भी मागे तो वह प्रसन्नता पूर्वक दे देगा। सारा संसार उसका प्रशंसक हो गया है।”

एक देवता को शंका हो गई। बोला—“महाराज! मुझे इस बात में सन्देह है। सम्भव है वह धन आदि दान में दे देता हो, इसी से नाम हो गया हो, पर किसी याचक को वह इकार नहीं करता; यह गलत बात है।”

“तुम्हें सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा ले लो।” इन्द्र बोले।

“आप की आज्ञा हो तो मैं परीक्षा लूँ।”

“हां, हां, तुम्हे पूर्ण स्वतंत्रता है।”

इस प्रकार इन्द्र की आज्ञा पा कर देवता कर्ण की परीक्षा को चला और उस ने जाते ही चम्पापुरी पर जो कर्ण की राजधानी थी, मूसलाधार वर्षा करनी आरम्भ कर दी। लगातार वर्षा होती रही वह ऐसी वर्षा थी कि चम्पापुरी के इतिहास मे उस वर्षा से पूर्व कभी ऐसी घोर वर्षा का उदाहरण मिलता ही न था। वह घोर वर्षा लगातार सात दिन तक होती रही। नागरिकों को रोटी के लाले पड गए। क्योंकि लकड़ियां भीग गई थी। जो कुछ सूखी थी, उन से चार पांच दिन तक रोटिया पकाते रहे। पर फिर तो चूल्हे मे आग जलाना असम्भव हो गया। एक दो दिन तो बेचारों ने किसी प्रकार गुजारा किया, पर जब वर्षा ने एकने का नाम ही न लिया, तो वे चिल चिला उठे। अपने बच्चों को रोटी के लिए रोते व हा हा कार करते देख कर उनका हृदय चीत्कार कर उठा। सब लोग तग आ गए और अन्त मे विचश होकर वे एकत्रित हो कर कर्ण के पास गए। और जपकर दुहाई मचाई। कर्ण ने उनकी बात सहानुभूति पूर्वक सुनी और उन की विपदा को दूर करने के लिए उस ने अपने भण्डार की सारी लकड़ियां नागरिकों मे वितरित कर दी।

एक दो समय उन से नागरिकों ने काम लिया: पर वर्षा तो रुकने का नाम ही न लेती थी। वह देवता जो इतनी भयंकर वर्षा करा रहा था, सोचने लगा कि परीक्षा का समय तो अब आने वाला है। देखता हूं अब नागरिकों को कर्ण क्या देता है। उस ने वर्षा और भी तीव्र कर दी। नागरिक पुनः कर्ण के पास गए और दुहाई मचाई।

एक ही सवाल था कि—“महाराज लकड़ियां चाहिए। वरना हमारे बालक भूखों मर जायेंगे।”

कर्ण ने उनकी बात सुनी और बोला—“प्रजा जन! धनराशो नही। जब तक मेरे पास लकड़ी का एक भी टुकड़ा रहेगा, मैं देता रहूंगा। तुम्हारे बालकों को मैं भूखी नही मरने दूंगा।”

और इतना कह कर उस ने धनुष उठाया, चल पड़ा शुद्ध चन्दन से निर्मित अपने राज प्रसाद को गिराने के लिए। कर्ण का

महल बहुत ही विशाल था, जो शुद्ध चन्दन की लकड़ियों से बनाया गया था। उस चन्दन की सुगन्ध ५२ कोस तक जाती थी। चारों ओर बावन कोस तक कर्ण का महल महकता रहता था। करोड़ों रुपये की लकड़ी उस में लगी थी, वर्षों में वह तैयार हुआ था। पर कर्ण ने अपने बाणों से गिरा दिया और सारे महल की लकड़ियाँ नागरिकों में बाँट दी। जहाँ विशाल महल था, वहाँ उजाड़-स्थान रह गया पर कर्ण के मुख पर पश्चात्ताप अथवा खेद का तनिक सा भाव भी नहीं आया, बल्कि वह बहुत प्रसन्न था कि उस के द्वार से याचक खाली वापिस नहीं लौटे। वह सन्तुष्ट था और जिन प्रभु के प्रति बार-बार कृतज्ञता प्रगट कर रहा था कि उनकी कृपा से वह अपने नागरिकों को विपदा से उबार पाया।

यह देख देवता को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह कर्ण के पास पहुँचा। उस ने कहा—“धन्य, धन्य दानवीर कर्ण, तुम धन्य हो।”

“क्या तुम्हें भी कुछ चाहिए। वोलो क्या चाहते हो।” देवता को याचक समझ कर कर्ण ने कहा।

“नहीं राजन् ! मैं तो देवलोक से आपकी परीक्षा के लिए आया था। देवराज इन्द्र ने जो कहा था, वही सत्य निकला। आप वास्तव में महान दानवीर हैं। मैं आप से बहुत प्रसन्न हूँ।”—देव ने कहा।

फिर कर्ण को उस वर्षा का रहस्य ज्ञात हुआ। देवता द्वारा प्रशंसा होने पर भी कर्ण को गर्व न हुआ।

उस देवता ने कर्ण से प्रसन्न होकर कवच तथा कुण्डल दिए और बोला कि जब तक तुम्हारे शरीर पर यह रहेगा, तुम्हें कोई भी शत्रु न मार सकेगा।

तभी से कर्ण के पास वह कवच और कुण्डल थे।

× × × ×

श्री कृष्ण ने कवच तथा कुण्डल कर्ण से लेने की एक युक्ति सोची। उन्होंने किसी प्रकार दोनों पक्षों को तीन दिन तक युद्ध स्थगित रखने के लिए रजामन्द कर दिया और स्वयं तैलाधारण करके बैठ गए। तीन दिन तक अखण्ड तपस्या की। जिसके कारण स्वयं देवराज इन्द्र को वासुदेव के पास आना पड़ा। उसने आते ही पूछा—“मधु सूदन ! बतलाईये, कैसे याद किया ?”

श्री कृष्ण बोले—“युद्ध तीन दिन के लिए स्थगित कराकर मेने आपको बुलाया है। समझ लीजिए कोई महत्त्वपूर्ण कार्य ही होगा।”

“हा, यह तो मैं समझता हूँ। अब बताइये भी कि मुझ से आप क्या चाहते हैं?”—इन्द्र ने पूछा।

“बस आप से इतना ही चाहता हूँ कि याचक का रूप धारण करके जाइये और कर्ण से दैवी कवच कुण्डल मांगकर ला दीजिए।”—श्री कृष्ण अपने उद्देश्य की प्रगट करते हुए बोले।

“कर्ण के कवच और कुण्डल से आप क्या लाभ उठाना चाहते हैं?”—इन्द्र ने पूछा।

“बात यह है कि कर्ण पर जब तक दैवी कवच कुण्डल रहेंगे, वह किसी प्रकार भी नहीं मारा जा सकता। और बिना कर्ण के मरे पाण्डवों की विजय नहीं हो सकती, सम्भव है कर्ण के हाथों अर्जुन ही मारा जाये। इस लिए दुष्ट दुर्योधन को पराजित करने के लिए कर्ण से कवच कुण्डल ले आने की आवश्यकता है।”—श्री कृष्ण गम्भीरता पूर्वक बोले।

“मधु सूदन! आप भी ऐसे उपाय अपनाकर शत्रु को पराजित करना चाहेंगे, यह तो आशा नहीं थी।”—विस्मित होकर इन्द्र बोले।

“मैं न्याय के पक्ष में हूँ। खद की बात है कर्ण इतना महान व्यक्ति होते हुए भी परिस्थितियों वश दुष्ट दुर्योधन की ओर है, उम नीच को परास्त करने के लिए मुझ सखेद कर्ण का वध कराने की योजना करनी पड़ रही है।”—श्री कृष्ण ने कहा।

“लेकिन। कर्ण से धोखा देकर कवच कुण्डल लेना तो अन्याय है। मैं ऐसा कैसे करूँ? कर्ण महान व्यक्ति है। मुझे उसके चरण छूने चाहिए। उस जसा दानवीर ससार में और कौन है? फिर आप ही बताइये इतने पुण्यवान से धोखा करना कहा तक उचित है?”—इन्द्र ने श्री कृष्ण की आज्ञा का पालन न कर सकने की अपनी विवशता को दर्शाते हुए कहा।

“कर्ण! इतना दानवीर है कि वह यह जानते हुए भी कि कवच कुण्डल क्यों मांगे जा रहे हैं, वह सहर्ष दे देगा। आप निश्चिन्त रहिए कि इससे आपकी महानता पर आच नहीं आने वाली। क्योंकि आप जो कुछ करेंगे वह धर्म व आपकी रक्षा के लिए ही करेंगे और

आपके कार्य से अधर्म तथा अन्याय का पक्ष कमजोर होगा।”—
श्री कृष्ण ने समझाते हुए कहा।

“क्या आप इस कार्य की किसी दूसरे के द्वारा नहीं करा सकते? कर्ण यह थोड़े ही देखता है कि याचक छोटा है बड़ा। कोई साधारण व्यक्ति भी यदि उक्त-याचना करेगा, तो वह उसे निराश नहीं लौटाएगा।”—इन्द्र ने कहा।

“बात इतनी सी ही होती तो आपको कष्ट नहीं दिया जाता—श्री कृष्ण ने कहा—सवाल तो एक और भी गम्भीर है, वह यह कि कर्ण की शुभ प्रकृति के कारण आपका एक देवता, जिसने उसे कवच व कुण्डल दिये थे, उसको रक्षा में रहता है।—यदि कोई साधारण व्यक्ति जायेगा, तो कदाचित्त वह देवता विघ्न उत्पन्न कर देगा और हम सफल नहीं हो सकेंगे। इसीलिए आपको स्मरण किया है।”

इस प्रकार श्री कृष्ण ने इन्द्र को वाध्य कर दिया कि वही याचक बन कर जाये। वासुदेव होने के कारण इन्द्र उनकी आज्ञा का पालन करने को विवश था। वह वहाँ से याचक का वेष धारण करके चल पड़ा।

उधर उस देवता को भी इस बात का पता चल गया कि इन्द्र याचक बन कर कर्ण से कवच तथा कुण्डल मांगने जा रहा है। उसने कहा :—

आग बन कर तू चला है मैं हवा हो जाऊंगा।

रोग बन कर तू चला है मैं दवा हो जाऊंगा।

और वह इन्द्र के पहुंचने से पूर्व ही कर्ण के पास पहुंच गया और जाकर कहा—“सावधान, कर्ण ! सावधान !”

“क्यों क्या बात है ?” विस्मित होकर कर्ण ने पूछा।

“अभी ही एक याचक आयेगा—वह देवता बोला—वह आप से देवी कवच कुण्डल मागेगा, आप कही उसे कवच कुण्डल मत दे बठना।”

कर्ण ने कहा—“यह भला कैसे सम्भव है, कि कोई याचक आये तथा मुझ से किसी वस्तु की याचना करे, और मैं उसे इकार कर दूं। यह तो मेरे स्वभाव के ही प्रतिकूल है। नहीं, मैं उसे निराश नहीं कर सकता।”

“कर्ण ! आप नहीं जानते कि वह कौन है ?”

“कोई भी हो ।”

“वह देवराज इन्द्र है श्री कृष्ण ने उसे भेजा है ।”

“यह तो और भी अच्छी बात है कि देवराज इन्द्र याचक बन कर मेरे पास आ रहा है मैं उसे कदापि निराश नहीं करूंगा ।”

“परन्तु एक तरफ से वह तुम्हारा जीवन ही तुम से मांग रहा है ।”

“प्राणों के रक्षक यशो की ही नहीं, वह चाहे मुझे से प्राण भी माग ले, मैं सहर्ष दे दूंगा । यही तो मेरी प्रतिज्ञा है ।”

कर्ण का उत्तर सुनकर वह देवता अवाक् रह गया । बहुत समझाया, पर कर्ण न माना । बेचारा निराश होकर चला गया, और मोचता रहा—“यह तो स्वामी ही जा रहा है, अब मैं क्या कर सकता हूँ, कोई दूसरा होता तो उसे जाने ही न देता ।”

× × × × ×

इन्द्र याचक के वेश में पहुँचे । कर्ण ने बढ़ा कर आदर सत्कार किया । फिर पूछा—“कहिए क्या चाहिए ?”

इन्द्र बोले—“कर्ण ! मैंने आपकी दानवीरता की बड़ी प्रशंसा सुनी है । यदि यह सत्य है कि आप किसी को निराश नहीं करते तो कृपया अपने दैवी कवच कुण्डल मुझे प्रदान कीजिए ।”

सुनते ही कर्ण ने कवच उतारना आरम्भ कर दिया । कुण्डल भी उतार डाले और इन्द्र को देते हुए बोले—“और कुछ ? कुछ और चाहिए तो वह भी माग लो ”

अरे इन्द्र कवच और कुण्डल तो क्या वस्तु है तुम जाओ और श्री कृष्ण की सम्मति लेकर आओ और तुम मेरे प्राण मागो देखो मैं देता हूँ या नहीं । कर्ण ने हार्दिक प्रसन्नता के साथ कहा ।

कर्ण की दानवीरता को देखकर इन्द्र मन ही मन नज्जित हुए । उन्हें खेद हुआ कि ऐसे महापुरुष से मैंने उसके प्राण ही माग लिए । वे बोले—“कर्ण ! जानते हो मैं कौन हूँ ?”

“हा, जानता हूँ, तुम याचक हो ।

“नहीं, मैं इन्द्र हूँ ।”

“शलत, धित्कुल शलत ! तुम इन्द्र कैसे ? इन्द्र तो मैं हूँ । तुम तो याचक हो ।”

“नहीं, मैं याचक के रूप में भले ही हूँ पर मैं देवता हूँ।”

“नहीं, नहीं, इन्द्र तो मैं हूँ, जो तुम्हें दान दे रहा हूँ। तुम इन्द्र कैसे ? तुम तो मेरे सामने हाथ फैला रहे हो।”

इन्द्र लज्जित हो गए और मन ही मन कहा—“हां, कर्ण तुम वास्तव में इन्द्र से भी महान हो।”

इन्द्र ने तब सोचा कि ऐसे महापुरुष के साथ मुझे अन्याय नहीं करना चाहिए। और उन्होंने कहा—“कर्ण ! तुम चाहो तो मुझ से कुछ मांग सकते हो।”

कर्ण ने हस कर कहा—“तुम भला मुझे क्या दे सकते हो। मैं याचक से कुछ मांगूँ यह मुझे शोभा नहीं देता। मैं देना जानता हूँ, मागना नहीं।”

इन्द्र ने बहुत चाहा कि कर्ण कुछ मांगे, पर उसने स्वीकार नहीं किया, तब वे स्वयं ही बोले—“लो मैं तुम्हें एक शक्ति देता हूँ, जो युद्ध में किसी भी महान योद्धा को मार सकती है। पर एक ही योद्धा का वध इस से हो सकेगा। तुम चाहो तो किसी पर भी इसे प्रयोग कर सकते हो।”

कर्ण ने हस कर कहा—“मुझे तुम कुछ नहीं दो तो ही अच्छा है। क्या पता तुम पुनः याचक रूप धारण करके आओ और उस शक्ति को भी वापिस ले जाओ।”

“नहीं, ऐसा नहीं होगा।”

यह कहकर इन्द्र ने वह शक्ति वही फेंक दी और वहां से चल पड़े। जाकर कवच कुण्डल श्री कृष्ण को दिए और कहा—
“वासुदेव ! मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि उस महापुरुष के साथ मेरे द्वारा अन्याय हुआ है। वास्तव में कर्ण बहुत ही महान पुरुष है। उसकी समता करने वाला संसार में कोई नहीं।”

✕ ✕ ✕ ✕
इधर दोनों ओर की सेनाएं रण क्षेत्र में पहुंच गईं। सेनापतियों ने अपनी अपनी सेना को क्रम में खड़ा किया और आवश्यक हिदायतें करके अख बजाए। कल जो घायल हुए थे, उन में से भी अधिकतर आज रण क्षेत्र में खड़े थे। कौरवों की ओर से युद्ध आरम्भ होते ही मशप्तकों (भित्त देसीय वीरों) ने आज पुनः अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। दक्षिण दिशा की ओर खड़े सशप्तकों की चुनौती अर्जुन ने स्वीकार की और अपना रथ बढ़ाते हुए उधर चल पड़ा।

निकट जाकर उसने कहा—“तो तुम लोग यमलोक सिधारने के लिए बेंताब हो रहे हो।”

सुशर्मा गरज बड़ा—“तनिक दो दो हाथ करले तब तुम्हे पता चले कि कौन यमलोक सिधारता है।”

अर्जुन ने गाण्डीव उठाया और बाण वर्षा आरम्भ कर दी, सशप्तक भी टिड्डी दल की भांति अर्जुन पर टूट पड़े। घोर संग्राम छिड़ गया।

अर्जुन के दक्षिण की ओर चले जाने पर द्रोणाचार्य ने अपनी सेना की चक्र व्यूह में रचना की। यह देख कर पाण्डव सेना का सेनापति धृष्टद्युम्न चिन्तित हो उठा। उसने जाकर युधिष्ठिर से कहा—“राजन् ! आज बड़ी विकट समस्या आ गई। द्रोण ने आज चक्र व्यूह रचा है। उसे कौन तोड़ सकेगा ?”

इतने ही में द्रोण ने धावा बोल दिया। युधिष्ठिर की ओर से भीम, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुतिभोज, उत्तमौजा, विराट राज, कंकेय वीर आदि कितने ही महारथी थे। परन्तु चक्र व्यूह में व्यवस्थित द्रोण की सेना के धावे को उन सभी सर्व विख्यात महारथियों में से कोई न रोक पाया। सभी जी तोड़ प्रयत्न कर रहे थे, भीमसेन कभी घनुष उठाता, तो कभी गदा लेकर चलता। धृष्टद्युम्न कभी किसी ओर से आक्रमण करता, तो कभी किसी ओर से व्यूह तोड़ने का प्रयत्न करता, पर जहाँ भी जाता, अपने को घिरा पाता। यह दशा देखकर युधिष्ठिर चिन्तित हो उठे। सैनिकों को मोर्चे पर लगाकर उन्होंने भीमसेन, नकुल और सहदेव को अपने पास बुलाया। बोले—“आज लगता है हमारी पराजय का दिन आ गया। द्रोणाचार्य ने ऐसे चक्र व्यूह की रचना की है कि हम में से सिवाय अर्जुन के और कोई इसे तोड़ने की विधि नहीं जानता। जिधर से हमारे महारथी, इस व्यूह को तोड़ने की चेष्टा करते हैं उसी ओर से अपने को घिरा पाते हैं। हमारे सभी किये कराये पर पानी फिरना चाहता है। अब क्या किया जाये ?”

भीमसेन ने कहा—“महाराज ! मैं अपने सभी अस्त्र प्रयोग कर चुका परन्तु इस व्यूह का तो रास्ता ही दिखाई नहीं देता। ऐसा चक्र है कि जिधर से जाता हूँ उसी ओर से टिड्डी दल की भांति संनिकर्ष महारथी टूट पड़ते हैं। मैं स्वयं निराश हो चुका हूँ।”

नकुल ने कहा—“राजन् ! आज लक्षण अच्छे नहीं दिखाई देते । मैं स्वयं विस्मित हूँ कि यह व्यूह है तो कैसा ? एक ऐसा चक्करदार किला द्रोणाचार्य ने बनाया है कि हम कुछ कर ही नहीं पाते ।”

सहदेव भी बोला—‘महाराज ! मुझे तो लगता है कि यह जो कुछ हो रहा है । दुर्योधन और द्रोणाचार्य के पहले से सोचे समझे पडयन्त्र के अन्तर्गत है । द्रोणाचार्य को ज्ञात है कि चक्र व्यूह को तोड़ना हम में से कोई नहीं जानता, जो जानता है, उसे पहले ही हम से अलग कर दिया गया है ।’

युधिष्ठिर को आशा थी कि भाईयो से परामर्श करके कोई न कोई उपाय निकल आयेगा, परन्तु उन सब की बातों से भी वे निराश ही हुए । अन्त में सिर पकड़ कर बैठ गए और शोक विह्वल होकर कहने लगे—‘हाय ! मैंने समझा था कि यह युद्ध हमारी विपत्तियों को समाप्त कर देगा, परन्तु अब तो यह दीख रहा है कि यह सब कुछ हमारे नाश का सामान हो रहा है । और इस नाश के बीज को बोने वाला मैं ही । मेरे ही कारण हमारे कुल के महान पितामह का वध हुआ, मेरे ही कारण भरत क्षेत्र के असह्य योद्धा मौत के घाट उतरे । मैं ही विनाश का कारण हूँ हा देव ! अपना विनाश होते मैं कैसे देख सकता हूँ । इस से तो अच्छा है कि मेरे जीवन ही का अन्त हो जाये ।’

भीमसेन ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को इस प्रकार विचलित होते देखकर बड़ा दुखी हुआ और सान्त्वना देते हुए बोला—“महाराज ! अब पश्चात्ताप से क्या लाभ । आपका इस में क्या दोष ? दुष्ट दुर्योधन के पडयन्त्रों में हम लोग फसते रहे और विपत्तियों में पड़ते रहे । आज भी उसी दुष्ट के जाल में फसे हैं । पर कोई विपत्ति सदैव नहीं रहती । समस्त महान आत्माओं का कथन है कि युद्ध में आरंभ ही की विजय होगी । आप सन्तोष करके हमें प्रयत्न करते रहने का आदेश दीजिए । जब तक मेरे शरीर में प्राण है, मैं आपकी पराजय नहीं होने दूंगा ।”

“भैया ! तुम से मुझे यही आशा है, पर भेड़िया धसान से क्या लाभ ? मैं तुम्हें बिना मौत मरवाकर कैसे सुखी रह सकता हूँ ? और जब राज्य व सम्पत्ति को भोगने वाले मेरे भाई ही नहीं

रहेगे तो मैं इस राज्य को लेकर क्या करूंगा ? इस लिए मैं तुम्हारे प्राणों की आहुति दिलाना नहीं चाहता ।” — युधिष्ठिर गम्भीरता पूर्वक बोले ।

“राजन् ! शत्रु की-सेनाएं आगे बढ़ रही हैं, वह देखिए हमारे सैनिक मिट्टी के पुतलों की भांति ढहते चले जा रहे हैं । द्रोणाचार्य के रथ से बार-बार विजय शंख की ध्वनि आ रही है । हमारी सेना का मनोबल गिर रहा है । अब बातें करने से काम न चलेगा । चलिए सब मिलकर टूट पड़ें । जिए या मरे, पर हम जीते जी दुष्ट दुर्योधन के हाथ में विजय पताका नहीं देख सकते ।” — नकुल ने उत्साह पूर्वक कहा ।

युधिष्ठिर ने पुनः दुःख प्रगट करते हुए कहा—“मुझे पराजय या विजय की इतनी चिन्ता नहीं, चिन्ता इस बात की है कि मेरा प्रिय भ्राता अर्जुन, जिस पर हमें गर्व है, मेरे लिए अपने प्राणों की बाजी लगा रहा है, यदि कहीं शत्रुओं की विजय हो गई तो हम उस वीर को क्या उत्तर देंगे ? “... हा शोक ! आज रण क्षेत्र में मुझे यह भी दिन देखना पड़ा ?”

युधिष्ठिर सिर पकड़े दुःख प्रगट कर ही रहे थे । कि उधर से अर्जुन पुत्र अभिमन्यु आ निकला, जिसने बाल्यावस्था में ही मत १२ दिन में वह पराक्रम दिखाया था कि शत्रु उससे उसी प्रकार कांपते थे जैसे अर्जुन से । सभी कहते थे कि अभिमन्यु श्री कृष्ण और अर्जुन से किसी बात में कम नहीं । वह आया और आते ही युधिष्ठिर को प्रणाम किया, फिर विस्फारित नेत्रों से सभी पर दृष्टि डाली उन्हें देखते ही उसके विस्मय का ठिकाना न रहा । उसने कहा—“महाराज ! आप लोग इस समय किस सोच में बैठे हैं ? आपके चेहरे से तो लगता कि आप पर कोई भारी विपत्ति आई है । या कोई भयानक घटना घटी है । आप किस का शोक मना रहे हैं ? उधर शत्रु सेना प्रलय मचाती चली आ रही है । हमारे महारथी तक कान टुक गए । और इधर आप शोकावस्था में बैठे आंसू बहाते से दीख पड़ रहे हैं ? क्या कारण है ? कुछ मैं भी तो जानूँ ।”

युधिष्ठिर ने गरदन उठाई और उसे अपने पास बुलाकर कहा—“बेटा ! तुम्हारी वीरता पर हम जितना भी गर्व करें कम

ही है। बाग्रह दिन तक तुमने जिस पराक्रम का प्रदर्शन किया, उस ने हमें भी आश्चर्य में डाल दिया है। तुम ने बड़े बड़े विख्यात योद्धाओं के दात खट्टे कर दिए हैं। तुम्हारे अन्दर उत्साह है, बल है और कौशल है। ठीक है हमें इस समय इस प्रकार देखकर तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा। पर देटा ! दुःख है कि आज हमारे और तुम्हारे बाग्रह दिन के सफलता पूर्ण युद्ध के कारनामों पर पानी फिर रहा है।”

“क्यों क्या हुआ ?” आश्चर्य से अभिमन्यु ने कहा। “वात यह है कि दुष्ट दुर्योधन के कुचक्र में फिर एक बार हम फस गए हैं। आज द्रोणाचार्य ने चक्र व्यूह रचा है, परन्तु उस में प्रवेश करने और उसे तोड़ने की विधि हम में से कोई नहीं जानता। वीर अर्जुन जानता था, पर वह तो दक्षिण की ओर संशप्तको से लड़ने गया है। यही वह समस्या है जिसके कारण हम दुःखित हैं। कुछ समय में नहीं आता कि क्या करें ? आज हमारी पराजय निश्चित है।”— युधिष्ठिर ने बड़े प्रेम से अभिमन्यु को समझाया।

अभिमन्यु ने छाती तानकर कहा—“पिता जी, यहाँ नहीं तो क्या हुआ, उनका पुत्र तो यहाँ है।”

युधिष्ठिर की आँखों में तुरन्त चमक आ गई। हर्षातिरेक से पूछा—“क्या तुम जानते हो चक्र व्यूह तोड़ना ?”

“मैं चक्र व्यूह में प्रवेश करना तो जानता हूँ परन्तु प्रवेश करने के उपरान्त कहीं कोई सकट आ जाये तो व्यूह से बाहर निकलने की विधि मुझे ज्ञात नहीं।”—नम्र शब्दों में अभिमन्यु बोला।

भीम को अभिमन्यु की बात से बड़ी प्रसन्नता हुई, उस ने कहा—“प्रवेश करने के उपरान्त संकट की तुम ने एक ही कही। मैं जो तुम्हारे साथ रहूँगा।”

युधिष्ठिर बोले—“हां, हां हम सभी तुम्हारे पीछे पीछे चलेंगे व्यूह को तोड़कर एक बार तुम प्रवेश कर लो, फिर तो जिधर से तुम आगे बढ़ोगे, हम तुम्हारे पीछे पीछे चले आवेंगे और तुम्हारी सहायता को तैयार रहेंगे।”

भीमसेन ने पुनः कहा—तुम्हारे ठीक पीछे मैं रहूँगा। उस समय तुम्हारे अंगरक्षक जैसा काम करूँगा और घृष्टद्युम्न, सात्यकि

आदि वीरो को भी साथ लेलेंगे, वे सब अपनी अपनी सेनाओं सहित तुम्हारा अनुकरण करेंगे। एक बार तुम ने व्यूह तोड़ दिया, तो फिर यह निश्चित समझो कि हम सब कौरव सेना को तहस नहस करके छोड़ेंगे।

युधिष्ठिर ने तब कुछ सोचकर कहा—“लेकिन तुम्हें कुछ हो गया तो मे अर्जुन भैया को क्या उत्तर दूंगा। नही, यह ठीक नहीं है। मैं अपनी विजय की कामना के लिए तुम्हें सकट में नहीं डाल सकता।”

“संहाराज ! अ प क्यों ऐसी चिन्ता करते हैं। मैं अपने-मामा श्री कृष्ण और अपने पिता को दिखा दूंगा कि उनको अनुपस्थिति में मैं उनके कार्य को पूर्ण कर सकता हूँ। अपने पराक्रम से मैं उन्हें प्रसन्न कर दूंगा।” बड़े जोश के साथ अभिमन्यु ने श्री कृष्ण और अर्जुन की वीरता को स्मरण करके कहा।

“हा, हाँ ठीक है। अभिमन्यु अपने पिता के अनुरूप ही है। और हम जो साथ होंगे तो इस पर संकट हो कैसे सकता है। मैं अपनी गदा से एक-एक कौरव को मौत के घाट उतार दूंगा।”— भोमसेन ने उत्साह दशति हुए कहा।

युधिष्ठिर ने आशीर्वाद देते हुए कहा—“बेटा ! तुम्हारा बल हमेशा बढ़ता रहेगा। तुम यशस्वी होवोगे।”



* संतालीसवाँ परिच्छेद *

अभिमन्यु का वध

युधिष्ठिर चाहते थे कि अभिमन्यु को किसी सकट में न डाला जाय अतः उन्होंने घृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, भीमसेन, सात्यकि, मकुल और सहदेव आदि सभी महारथियों को साथ लेकर एक विशाल सेना सहित अभिमन्यु का अनुकरण करना आरम्भ किया।

अभिमन्यु गर्व के साथ अपने रथ पर सवार होकर द्रोण की चक्रव्यूह में व्यवस्थित सेना की ओर बढ़ा। उसने अपने सारथि को उत्साहित करते हुए कहा—“सुमित्र ! वह देखो द्रोण के रथ की ध्वजा। वस उसी ओर रथ बढ़ाओ। जल्दी करो।”

सारथि ने अभिमन्यु की आज्ञा पाकर रथ को तीव्र गति से उसी ओर हांकना आरम्भ कर दिया। परन्तु रथ की गति से अभिमन्यु सन्तुष्ट न हुआ। उसने रथ को तेजी से हाकने के लिए पुनः सारथि को उकसाया। उत्साह में आकर वह बार-बार कहने लगा —“सुमित्र चलाओ, और तेज चलाओ।”

सारथि ने घोड़ों को तेजी से हांकते हुए नम्र भाल से कहा —“भैया ! चक्रव्यूह तोड़ना, वह भी द्रोणाचार्य जैसे रणचातुर्य में पारंगत विद्याभास्कर द्वारा रचित, बड़ा ही जटिल कार्य है। तुम्हें महाराज युधिष्ठिर ने बड़ा ही भारी काम सौंप दिया है। द्रोणाचार्य अस्त्रविद्या के महान् आचार्य हैं और महाबली हैं। आप तो उनके सामने अवस्था में अभी बिलकुल बालक समान ही हैं। इस लिए एक बार पुनः सोच लीजिए, ऐसा न हो कि

अभिमन्यु सारथि की बात सुन कर हस पड़ा और बोला —
 “मुमित्र ! तुम जानते हो कि मैं वासुदेव श्री कृष्ण का भानजा और
 सर्व विख्यात धनुर्धारी वीर अर्जुन का पुत्र हूँ । मेरी रगो मे वह रक्त
 दोड़ रहा है कि भय और अशंका तो मेरे पास भी नहीं फटक सकते ।
 तुम जिन्हे महावली कह रहे हो उस की सारी सेना को मिला कर
 भी मेरा बल उन से अधिक है । और फिर कुल नायक को चिन्तित
 पड़ा देख कर मैं चुप रह जाऊँ यह मुझ से नहीं होगा । तुम चिन्ता
 मत करो । बस तेज चलाओ । मुझे शीघ्र ही उस ओर पहुँचादो ”

अभिमन्यु की आज्ञा मान कर सारथि ने उसी ओर रथ बढ़ा
 दिया। पीछे पीछे अन्य पाण्डव वीरों के रथ और उन के सैनिक थे ।

X X X X

आकाश में मूर्य चमक रहा था, उसकी किरण अग्निबाणों
 की भाँति पृथ्वी पर बरस रही थी, इधर अभिमन्यु का रथ बड़े वेग
 से कौरव सेना को ओर बढ़ रहा था । तीन तीन वर्ष की आयु के
 बड़े ही सुन्दर, चंचल और वेगवान घोड़े अभिमन्यु के सुनहरे रथ
 में जुते थे । अभिमन्यु की भाँति उन में भी उत्साह था । मानो वे
 भी शीघ्र ही कौरव सेना में पहुँच कर उन के चक्र व्यूह को तोड़
 डालने के लिए उत्सुक हो ।

अभिमन्यु का रथ ज्यों ही कौरव सेना के व्यूह के निकट
 पहुँचा कौरव सेना में हल चल मच गई । “—वह देखो अर्जुन पुत्र
 अभिमन्यु आ रहा है ।” बहुत से सैनिक अभिमन्यु के रथ की
 ओर सकेत कर के एक साथ चीख उठे ।

कुछ दूसरे सैनिक चिल्लाए - “और उस के पीछे पाण्डव-वीर
 अपनी सेना सहित बड़ी तेजी से बढ़े चले आ रहे हैं ।”

“अर्जुन न सही अभिमन्यु ही आज प्रलय मचा देगा ।” किसी
 ने आशंका प्रकट करते हुए कहा ।

“अजी ! द्रोणाचार्य ने आज वह व्यूह रचा है कि अभिमन्यु
 जैसे कल के छोकरे को तो प्रवेश मार्ग का पता भी नहीं चलेगा ।”
 एक सैनिक बोला ।

“वह भी सिंहनी का एक केहरी ही है देखो तो किस शान से
 चला आ रहा है ।” दूसरे ने कहा ।

कर्णिकार वृक्ष की ध्वजा लहराते हुए अभिमन्यु के रथ के

कौरव सेना के निकट पहुंचते ही, एक बार तो कौरव सैनिकों के दिल दहल गए। सभी मन ही मन सोचने लगे—“वीरता में अभिमन्यु अर्जुन से किसी प्रकार कम नहीं। आज के युद्ध में देखना ही चाहिए।”

—और अभिमन्यु का रथ घड़ घड़ाता हुआ ऐसे आ धमका जैसे छलांग लगा कर सिंह अपने शिकार के सिर पर आ धमकता है। एक मुहूर्त के लिए तो कौरव सेना की वह गति हो गई जैसे विजली टूटने पर भयभीत असहाय मनुष्य की हो जाती है। आन की आन में अभिमन्यु का रथ आया और बड़े वेग से आक्रमण कर के उस ने अपने लिए मार्ग बना लिया। बड़े यत्न से बनाया हुआ द्रोणाचार्य का व्यूह देखते ही देखते टूट गया और अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश कर लिया।

जैसे तूफान के सामने आने वाली चट्टानें भी ढहती चली जाती हैं। इसी प्रकार अभिमन्यु के सामने जो भी कौरव वीर आया वही यमलोक कूच करता गया। जैसे आग में पड़ कर पतंगे भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार अभिमन्यु की गति को रोकने की चेष्टा करने वाले कौरव वीर अभिमन्यु के शौर्य की ज्वाला में भस्म हो गए शर्वों और नर मुण्डों के ढेरो पर से उतरता हुआ अभिमन्यु का रथ आगे ही बढ़ता गया। शिशु सिंह का प्रत्येक वाण यमदूत बन कर निकलता जिस पर पड़ता उसी के प्राण लेकर छोड़ता। जिधर से उसका रथ निकलता उधर ही सैनिकों के शव भूमि पर विछ जाते यहा तक कि पैर रखने को स्थान न मिलता। जिधर दृष्टि जाती उधर ही धनुष वाण, ढाल, बलवार, फरसे, गदा, अफुश, भाले, रास, चाबुक, शख, नर मंड, कटे हुए मानव अंग, फटे कवच, रथों के टुकड़े आदि बिखरे पड़े थे। कटे हुए हाथों, फटे सिरों, कुचली हुई खोपड़ियों, हाथ पाव विहीन घड़ी आदि इस प्रकार विछ गए कि भूमि दिखाई ही नहीं देती थी। कौरव सैनिक जान हथेली पर रख कर आते, परन्तु क्षण भर में वे यमलोक सिंघार जाते। यह दशा देख कर कौरव सैनिक भय विह्वल होकर इधर उधर भागने की चेष्टा करने लगे।

द्रोण के व्यवस्थित व्यूह को यह दुर्दशा देख कर दुर्योधन विक्षुब्ध हो उठा। उस ने अपने सैनिकों को फटकारना प्रारम्भ कर दिया और जब उसकी फटकारों से भी सैनिकों को उत्साह न आया

तो वह स्वयं ही जोश में आकर बाल वीर से जा भिड़ा। परन्तु दुर्योधन को क्रुद्ध होकर अपने सामने आया देख कर अभिमन्यु की वाछें खिल गईं। बड़े जोश से बोला—“आईये ! महाराज में आप ही की सेवा के लिए तो यहा आया हूं। अभी तक आप कहां छुपे हुए थे ?”

दुर्योधन की कनपटी जलने लगी, आवेश में आकर बोला—
“क्यों रे छोकरे ! कुछ सैनिकों पर तेरा वार क्या चल गया तू होश ही खो बैठे। सिंह की मद में आकर भी छाती तानता है। ठहर अभी ही तुझे बताता हूं।”

कह कर दुर्योधन अभिमन्यु की ओर झपटा, पर इस से पहले कि वह कोई वार कर सके, अभिमन्यु के बाण उसकी ओर फुफकारे-नागों की भाँति झपटे।

“ओह ! तू तो सिपेलिया है।”—इतना कह कर दुर्योधन वही एक गया और बाण वरसाने लगा परन्तु अभिमन्यु के बाणों के आगे उस के बाण कुछ न कर पाये। दुर्योधन कितनी बार दिशा बदल बदल कर वार करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु अभिमन्यु दुर्योधन के बाणों को बीच ही में काटता रहा। इस प्रकार दोनों में गौर युद्ध छिड़ गया। अभिमन्यु के प्रहारों को देख कर कौरव सैनिकों को शका होने लगी कि कहीं महाराज दुर्योधन बालक के बाणों ही न मारे जायें। भयभीत होकर सैनिक शोर मचाने लगे।

द्रोणाचार्य को जब पता चला कि दुर्योधन अभिमन्यु से जा भिड़ा है और वह वीर बालक दुर्योधन का नाक दम किए हुए हैं। तब बड़ी ही चिन्ता हुई और तुरन्त कुछ वीरों को आदेश दिया कि वे जाकर शीघ्र ही दुर्योधन की रक्षा करें। जैसे भी हो दुर्योधन को उस सिंह-शिशु के पजे से सुरक्षित छुड़ा लें। आदेश पाते ही कितने ही वीर दुर्योधन की सहायता के लिए दौड़ पड़े।

दुर्योधन अपनी सी बहुत कोशिशें कर रहा था कि किसी प्रकार अभिमन्यु के चक्कर से निकला जाये पर वह वीर बालक उसे होश लेने दे तभी तो दुर्योधन निकले। इतने में ही द्रोणाचार्य की दृष्टि वहा पहुँच गई। जब एक साथ कितने ही वीरों ने दुर्योधन की रक्षा करनी प्रारम्भ कर दी, तो दुर्योधन को बड़ा सन्तोष हुआ। सभी वीर बड़े परिश्रम से अभिमन्यु से युद्ध करने लगे, परन्तु अभि-

मन्यु इतने वीरो के मुकाबले पर आने के पश्चात् तनिक भी विचलित न हुआ। वह उसी तरह वहादुरी से लड़ता रहा। यह देख कर दुर्योधन सहित सभी कौरव वीर चकित रह गए और मन हा मन उसकी प्रशंसा करने लगे।

कौरव वीर जी जान तोड़ कर लड़ रहे थे, इस घोर युद्ध में दुर्योधन का दांव चल गया, और वह वहां से बच निकला। और “खेर से बुद्धु घर को आये” को कहावत चरितार्थ करता हुए, वह अपने प्राणों की खेर मनाते हुए वहाँ से चला गया।

जब अभिमन्यु ने अपने सामने के योद्धाओं में दुर्योधन को न पाया, तो वह पश्चाताप करते हुए सोचने लगा—“अफसोस हाथ में आया हुआ शिकार बच कर निकल गया।”

उसे दुःख तो हुआ पर युद्ध करने में शिथिलता न आई। उसी प्रकार वह लड़ता रहा और सोचता रहा कि शीघ्र ही इन वीरों को मार कर वह दुर्योधन को जा घेरे। उस ने बड़े उत्साह से उन्हें मार भगाया और आगे बढ़ा। इसी आशा से कि आगे कहीं न कहीं तो फिर दुर्योधन से सामना होगा और अब की बार वह उसे बच निकलने का अवसर ही न देगा। वह मार काट करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था, पर उसकी चंचल दृष्टि बार बार दुर्योधन को ही खोज रही थी।

कौरव सेना ने जब देखा कि बालक अभिमन्यु प्रलय मचाता हुआ आगे बढ़ा ही जाता है, और यदि यही गति रही तो शीघ्र ही वह समस्त कौरव सेना को मार भगायेगा, तो युद्ध-धर्म और लज्जा को उसने ताण पर रख दिया। और बहुत से वीर इकट्ठे होकर एक साथ चारों ओर से उस वीर बालक पर टूट पड़े। परन्तु जैसे बढ़ती हुई घाट के सामने रेत के असह्य टोले सहस्र नहस होते चले जाते हैं, वर्षा-ऋतु में उफनती नदिया अपनी रेती ले किनारों को ढहाती हुई चली जाती हैं, इसी प्रकार अभिमन्यु अपने सामने आये हुए वीरो को ढहाता, मार काट करता आगे बढ़ गया। कौरवों की विशाल सेना के मध्य अभिमन्यु में पर्वत की भांति दृढ़ होकर खड़ा था, जो टकराता वही टुकड़े टुकड़े हो जाता।

कौरव वीरो में ही हा हा कार मच गया और यह देखकर द्रोण, अश्वत्थामा, कर्ण, शकुनि आदि सात महारथियों ने अपने अपने

रथो पर चढ़कर एक साथ ही उस पर हल्ला बोल दिया। इसी बीच अश्वत्थ नासक एक राजा बड़े वेग से अभिमन्यु के सामने पहुँचा और जाकर भीषण प्रहार करने लगा। अपने बाणों से अभिमन्यु ने उसके वेग को रोक दिया और दो ही बाणों की मार से उसका शरीर आहत होकर रथ से नीचे लुढ़क गया। क्रुद्ध होकर कर्ण ने तब बाण वर्षा आरम्भ की और मुकाबले पर जा डटा। अभिमन्यु ने कर्ण को देखा तो तनिक सा मुस्करा कर बोला—“पिता से पराजित होने की कामना छोड़कर पुत्र के हाथों अपनी मिट्टी खराब कराने आये हो तो लो।”

बस बाण वर्षा आरम्भ कर दी, उसके अभेद्य कवच को तोड़ डाला और काफी परेशान किया। कर्ण की बुरी दशा देख दूसरे वीर आ डटे, पर सभी को अभिमन्यु ने अधिक देर तक न टिकने दिया। कितने ही वीरों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। मद्रराज शल्य भी बुरी तरह घायल हुए, और अपने रथ पर ही अचेत पड़ गए। यह देखकर मद्रराज का छोटा भाई क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और गरज कर बोला—“अभिमन्यु अब सम्भल। देख मैं तेरा काल बनकर आता हूँ” इतना कहकर वह अभिमन्यु की ओर भपटा, परन्तु अभिमन्यु ने उसके रथ को तोड़ डाला और अन्त में यह कहकर कि—“जा तू भी, मृत्यु को प्राप्त हो।” एक बाण मारा जो उसके सिर को दो भागों में विभाजित करते हुए दूर निकल गया।

अपने मामा श्री कृष्ण और पिता वीर अर्जुन से सीखी अस्त्र विद्या को काम में लाकर कौरव दल के लिए सर्वनाश का दृश्य प्रस्तुत करने वाले अभिमन्यु की वीरता तथा रण कौशल को देखकर द्रोणाचार्य मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। वे गदगद हो उठे। और कृपाचार्य को सम्बोधित करके कहने लगे—“मुझे सन्देह है कि अर्जुन भी इस वीर के समान पराक्रम दिखा सकता है।”

द्रोण ने मुग्ध होकर यह शब्द कहे थे, जो दुर्योधन ने भी सुन लिए। अभिमन्यु की प्रशंसा द्रोण के मुह से सुनकर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया। कहने लगा—“आचार्य को अर्जुन से कितना स्नेह है, यह उसके पुत्र की प्रशंसा सुनकर ही कोई समझ सकता है। अभिमन्यु ठहरा उनके परम शिष्य का पुत्र। फिर आचार्य उसका

दमन कैसे कर सकते हैं ? वे चाहते तो अब तक भला यह बालक जीता वच सकता था ?”

दुर्योधन का मन अपराधी था, अपराधी जैसे दूसरो की ओर से शांकित रहता है। इसी प्रकार दुर्योधन सदैव ही द्रोण के प्रति सशंक रहता था उसने यह बात कहकर द्रोणाचार्य के मन को अशांत कर दिया। तभी दुःशासन बोला—“राजन् ! द्रोणाचार्य उससे स्नेह रखने के कारण उसे क्षमा कर रहे हैं तो क्या हुआ ? मैं जो हूँ। लो मैं अभी ही इस अभिमानी बालक को ठिकाने लगाये देता हूँ।”

इतना कहकर वह अभिमन्यु की ओर झपटा। दोनों में घोर संग्राम होने लगा। वे दोनों एक दूसरे को चकमा देते, पेटरे बदलते और अद्भुत अस्त्रों का प्रयोग करके परास्त करने का प्रयत्न करते रहे। जब बहुत देर हो गई, युद्ध चलते तो एक बार अभिमन्यु ने क्रुद्ध होकर एक तीक्ष्ण बाण मारा, जिसे खाकर दुःशासन पुनः बाण न खला सका। अचेत होकर अपने रथ में हो चित गिर पड़ा। उसके चतुर साथी ने दुःशासन की देश देखकर अपने रण को रण स्थल से दूर ले गया। पराक्रमी दुःशासन की पराजय को देखकर कौरवों में सर्वत्र भय छा गया और जो थोड़े बहुत पाण्डव सैनिक इस दृश्य को देख रहे थे, वे हर्षातिरेक में अभिमन्यु की जय जयकार करने लगे।

महाबली कर्ण अभिमन्यु की जय जयकार को सुनकर ओष से जलने लगा, वह पुनः ताल ठोककर अभिमन्यु के सामने आ डटा। दोनों में भयकर युद्ध होने लगा, अन्त में एक बार अभिमन्यु ने जोर से कहा—“कर्ण ! पहले तो वच गए थे, अब की बार सावधान।”

कर्ण ने उसी क्षण एक भयानक बाण धनुष पर चढ़ाया पर अभिमन्यु ने उसका धनुष ही तोड़ डाला। कर्ण दात पीसने लगा, पर अभिमन्यु ने उसे इतना अवकाश ही न दिया कि वह दूसरा धनुष ले सके। तभी कर्ण के भाई सूत पुत्र ने अभिमन्यु पर आक्रमण कर दिया। वह कर्ण का बदला लेना चाहता था, परन्तु अभिमन्यु के एक बाण से ही उसका सिर घड से भिन्न होकर पृथ्वी पर गिर गया। लगे हाथों अभिमन्यु ने कर्ण की भी फिर खबर ले ली और कर्ण को अपने प्राण वचाने के लिए अपनी सेना सहित रण क्षेत्र से हट जाना पड़ा।

कर्ण को जब अभिमन्यु ने खदेड़ दिया, तो कौरवों की पक्तियाँ जगह जगह से टूट गईं। सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे। यह दशा देखकर द्रोणाचार्य को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सैनिकों को ललकारा, उन्हें रोका और युद्ध के लिए उकसाया। पर जो भी अभिमन्यु के सामने आने का साहस करता वहीं मारा जाता। वह उस समय उस ज्वाला के समान था, जिसमें कोई भी सैनिक रूपो लकड़ी जाने पर धू-धू करके जलने लगती थी।

X

X

X

X

अभिमन्यु तो उस ओर साक्षात् यमराज का रूप धारण किए प्रलय का ताण्डव नृत्य कर रहा है। आओ हम दूसरी ओर लौट चलो। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, पाण्डव-वीर अपनी सेना सहित अभिमन्यु के पीछे पीछे आ रहे थे, जब अभिमन्यु ने व्यूह ताड़ कर अपने लिए मार्ग लिया, और कौरव सैनिक उसकी गति को अवरोध करने के लिए उससे युद्ध करने लगे, तो उधर पाण्डव वीरों ने भी व्यूह में घुसने की चेष्टा की। परन्तु उसी क्षण जयद्रथ अपने सैनिकों को लेकर वहाँ पहुँच गया और उसने पाण्डवों पर भीषण आक्रमण कर दिया। धृतराष्ट्र के भाँजे, सिंधु नरेश जयद्रथ के इस साहस पूर्ण कार्य और सूफ को देखकर उस मोरचे के कौरव सैनिकों को उत्साह की लहर दौड़ गई। दूसरी ओर के कौरव सैनिक शीघ्र ही दौड़कर वहाँ पहुँच गए, जहाँ जयद्रथ पाण्डव-वीरों का रास्ता रोके खड़ा था। शीघ्र ही व्यूह में आई दरार भर गई। इतने सैनिक वहाँ पहुँच गए, कि अभिमन्यु ने जिन पक्तियों को तोड़कर अपने लिए मार्ग बनाया था, वे पूर्ण हो गईं और पहले से भी अधिक सुदृढ़ हो गईं। पाण्डव वीर जयद्रथ से टक्कर लेने लगे। व्यूह के द्वार पर युधिष्ठिर तथा भीमसेन जयद्रथ से भिड़ गए। भीषण संग्राम हो रहा था, कि युधिष्ठिर ने एक बार भाला फेंक कर जयद्रथ पर मारा, जिससे जयद्रथ का धनुष टूट गया। क्षण भर में ही जयद्रथ ने दूसरा धनुष सम्भाल लिया। और युधिष्ठिर पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

भीमसेन ने जयद्रथ के भीषण आक्रमण के उत्तर में बाण बरसाये और उसके रथ की ध्वजा तथा छतरी कट कर रणभूमि में गिर गई। जयद्रथ का धनुष भी टूट गया, फिर भी वह किंचित-

मात्र भी विचलित न हुआ। उसने पुनः एक दूसरा धनुष सम्भाला और भीमसेन पर ही बाण बरसाने लगा, जिससे भीमसेन का धनुष कट कर गिर गया। पल भर में ही जयद्रथ के बाणों से भीमसेन के रथ के घोड़े ढेर हो गए। लाचार होकर भीमसेन को अपना रथ छोड़कर सात्यकि के रथ पर चढ़ना पड़ा।

जयद्रथ ने जिस कुशलता से व्यूह की टूटो किले बन्दी को फिर से पूरा करके और वीरता से पाण्डवों को रोके रखकर व्यूह को ज्यों का त्यों बना दिया और पाण्डवों को व्यूह में प्रवेश न करने दिया, इस लिए अकेला अभिमन्यु कुछ सैनिकों सहित ही व्यूह में पहुँच पाया और समस्त पाण्डव-वीर जो सकट के समय अभिमन्यु की रक्षा करने के उद्देश्य से चले थे, व्यूह से बाहर ही रह गए। अभिमन्यु व्यूह में अकेला महाबली होने हुए भी कौरवों का नाश कर रहा था, जो भी उसके सामने आता उसे वह मार गिराता। पाण्डव-वीर बाहर खड़े खड़े तो उसका तमाशा देखते रहे या कभी-कभी व्यूह में प्रवेश करने के लिए भीषण आक्रमण करते रहे। परन्तु जयद्रथ वहाँ से न टला। उसने एक बार ललकार कर कहा भी—“मैं जीते जी अब किसी को भी व्यूह में प्रवेश न करने दूँगा।”

—और हुआ भी यही भीमसेन की गदा, नकुल सहदेव का रण कौशल और अन्य वीरों की चतुरता भी किसी काम न आई।

इधर पाण्डव वीर व्यूह में प्रवेश करने के लिए असफल प्रयत्न कर रहे थे, उधर बालक अभिमन्यु सभी कौरव वीरों और उनकी सेना के बीच खड़ा अपने बाणों से सेना को तहस-नहस कर रहा था। दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण अभी बालक ही था, विलकुल अभिमन्यु की आयु का ही परन्तु अभिमन्यु की भाँति उस में भी वीरता फूट रही थी। उसे भय छू तक न गया था। अभिमन्यु की बाण वर्षा से व्याकुल हो कर जब सभी योद्धा पीछे हटने लगे, तो लक्ष्मण से न रहा गया। वह अकेले ही जाकर अभिमन्यु से जा भिड़ा। बालक लक्ष्मण की इस निर्भयता तथा वीरता को देख कर भागती हुई कौरव सेना पुनः इकट्ठी हो गई और बालक लक्ष्मण का साथ देकर लड़ने लगी। उसने बड़े वेग से अभिमन्यु पर बाण वर्षा करती आरम्भ कर दी, पर वे बाण उसे ऐसे लगे, जैसे पर्वत पर मेघ बूँदे।

दुर्योधन पुत्र अपने अदभुत पराक्रम का परिचय देता हुआ बड़ी वारता से युद्ध करता रहा। जब बहुत देर हो गई और

बालक लक्ष्मण ने हार न मानी तो आवेश में आकर अभिमन्यु ने उस पर एक भाला चलाया। केचुली से निकले साँप की भाँति चमकता हुआ वह भाला वीर लक्ष्मण के बड़े जोर से लगा। घुघराते बालों वाला वह परम सुन्दर बालक भाले की चोट न सह सका बेचारा घायल हो कर भूमि पर लुढ़क गया और देखते ही देखते कुडल धारी, सुन्दर मासिका व सुन्दर भीहो वाले उस राजकुमार लक्ष्मण के प्राण पखेरू उड़ गए।

सैनिकों में शोर हुआ—“राजकुमार लक्ष्मण मारा गया। लक्ष्मण काम आया।”

इस शोर को सुन कर विस्मित नेत्रों से दुर्योधन ने भूमि पर तड़प तड़प कर प्राण देते अपने प्रिय पुत्र को देखा। वह आपे से बाहर हो गया। उस के नेत्रों में खून उतर आया, उसका मुख मण्डल प्रातः काल के उदय होते सूर्य की भाँति लाल हो उठा अग अग गरम हो गया और चिल्ला कर कहा—“इस दुष्ट अभिमन्यु का इसी क्षण वध करो मार डालो इस सपोलिये को सब मिलकर मेरे पुत्र के हत्यारे को एक क्षण मत जीवित रहने दो।”

अर्त स्वर में हा हा कार कर रहे कौरव सैनिक एक दम अभिमन्यु पर टूट पड़े।

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य की ओर देखकर कहा—“अब तो आप को सन्तोष आया आचार्य ! मेरे बेटे को मरवा दिया ना।”

दुर्योधन की बात से द्रोणाचार्य के तन, वदन में आग सी लग गई पर पुत्र शोक का आघात पहुँचने की अवस्था में दुर्योधन को जानकर उन्होंने शांत भाव से कहा—“लक्ष्मण जैसे वीर के वध हाने से किसे दुःख न हुआ होगा। पर किया ही क्या जा सकता है। मैं तो अपने प्राण देकर भी उसे बचा सकता तो प्रसन्नता होती।”

“आप तो अभी अभी ऐसे खड़े हुए हैं मानो कुछ हुआ ही नहीं। मैं अभिमन्यु को जीवित नहीं देखना चाहता आचार्य ! अभी ही सब महारथियों को लेकर उस दुष्ट को मार डालना होगा।”—दुर्योधन ने दात पीसते हुए चिल्लाकर कहा।

“एक वीर बालक के मुकाबले पर हम सब का जाना तो युद्ध धर्म के विपरीत होगा।” द्रोणाचार्य बोले।

“युद्ध-धर्म, युद्ध-धर्म—जल कर दुर्योधन ने कहा—क्या है आप का युद्ध धर्म। मेरा बेटा मारा गया और आप ने युद्ध धर्म की रट

लगा रखी है। आप सेनापति हैं या धर्म गुरु? मुझे अभिमन्यु का सिर चाहिए।”

“ठीक है इस दुष्ट को अभी ही मार डालेंगे।” संमत्ते महारथी घिल्लाए।

“चलिए! देख क्या रहे हैं वह दुष्ट हमारे सैनिकों को खा जायेगा।”—दुर्योधन पुनः गरजा।

द्रोणाचार्य क्रोध में आकर अश्वस्थामा, बृहद्वल, कृतवर्मा, आदि पाँच महारथियों को साथ लेकर तेजी से अभिमन्यु की ओर बढ़े। और क्षण भर में ही छः महारथियों ने उस वीर बालक को चारों ओर से घेरा। अब तक दुर्योधन की आज्ञा पाकर चारों ओर से घरने वाले सैनिकों को अभिमन्यु मौत के घाट उतार चुका था।

कौरव महारथी जी तोड़ कर युद्ध करने लगे। पर अभिमन्यु चारों ओर से प्रहार कर रहे महारथियों को सफलता से मुकाबला करता रहा। उस ने एक बार द्रोण की ओर अबाध गति से बाण बरसाते हुए गरज कर कहा—“आचार्य जी! क्या यही है आप और आपके साथियों की वीरता? आप तो ब्राह्मण हैं। विद्वद्भर, धर्म शास्त्रों के ज्ञाता, नीतिवान होकर अधर्म पर कमर बाध ली? कहाँ गया तुम्हारा युद्ध धर्म?”

कर्ण की ओर बाण बरसाते हुए उसने ताना मारा—“बड़े दानवीर व नीतिवान बनते हो। हारने लगे तो न्याय और धर्म को ही तिलाजलि दे दो? धिक्कार है तुम्हारी वीरता पर। दो चूल्हू पानी में डूब मरो।”

चारों ओर बाण वर्षा करता हुआ वह वीर बालक रथ पर खड़ा नाच सा रहा था। अकेला ही छहो महारथियों का डट कर मुकाबला कर रहा था। अपने बाणों से शत्रुओं के बाण तोड़ता और स्वयं प्रहार कर के उन के नाको दम कर रहा था। द्रोणाचार्य पूर्ण कौशल का प्रयोग कर के लड़ रहे थे तभी एक बार पुनः अभिमन्यु ने ताना मारा—“तो आप हैं शत्रु, व युद्ध विद्या के गुरु। दुर्योधन के साथ रह कर लाज, धर्म और नीति सभी बेच खाये। एक बालक को छ महारथियों और उन के सैनिकों ने घेर रक्खा है। कहा है आपकी वह विद्या? कहा है आपकी आँखों का पानी? क्या बूढ़ा-

वस्था में सभी भूल गए ? युद्ध धर्म को तिलाजलि देदी है तो कुछ कर के भी दिखाओ ।”

बात ठीक थी । उस स्थिति में उसे यही कहना भी चाहिए था । वह अकेला ही छ महारथियों से टक्कर ले रहा था, फिर भी किसी के बाण उस पर असर न कर रहे थे । शत्रुओं से घिरा होने पर भी उस के मुख पर चिन्ना का कोई लक्षण दिखाई न देना था । वह पहले की ही भांति निश्चिंत हो कर युद्ध कर रहा था । द्रोणाचार्य मन ही मन लज्जित थे, पर लड़ने पर विवश थे । कर्ण बहुतेरा निशाना बाध कर बाण चलाता पर अभिमन्यु तो क्षण क्षण में पैतरे बदल रहा था । अपने निशाने खाली जाने से वह भी घबरा गया, लज्जित भी हुआ और अन्त में क्रोध भी आया, न जाने अपने पर या अभिमन्यु पर । फिर भी वह लड़ता रहा । कदाचित् अकेला उस स्थिति में लड़ता तो अब तक अभिमन्यु के बाणों से विध गया होता । आकाश में अपने विमानों पर चढ़े जो देवता इस महा समर को देख रहे थे अभिमन्यु के पराक्रम, वीरता तथा साहस पर मुग्ध हो गए । उनका मन हुआ कि दौड़ कर इस वीर बालक को छाती से लगा ले ।

तभी कर्ण ने घीरे से द्रोणाचार्य से कहा—“गुरुदेव ! यह बालक है या माया मयी-योद्धा । किसी तरह मार ही नहीं खाता । कुछ कीजिए गुरुदेव ! वरना दुर्योधन हमें अपने बागवानों से वीध डालेगा ।”

द्रोण ने कर्ण को उत्तर देते हुए कहा—“बात यह है कि इस ने जो कवच पहन रक्खा है, वह भेदा नहीं जा सकता । ठीक से निशाना बाध कर इस के घोड़ों को रास काट डालो और पीछे की ओर से इस पर अस्त्र चलाओ ।”

कर्ण ने आचार्य के परामर्श के अनुसार कार्य किया । पीछे की ओर से अस्त्र चलाए । अभिमन्यु का धनुष कट गया । तब क्रुद्ध हो कर अभिमन्यु ने ललकारा—“अधर्मियो ! पीछे से अस्त्र चलाते तुम्हें लज्जा नहीं आई । इसी विरते पर वीर वनते हो । एक बालक के ऊपर यह अन्याय । धिक्कार है तुम्हारे बाहुबल पर ।”

कर्ण रुका नहीं, वह अस्त्र चलाता ही रहा और शीघ्र ही समस्त महारथियों ने मिल कर अभिमन्यु के सारथि और उस के

घोड़ो को मार डाला। वह रथ विड़ो न हो गया। घनुष भी उस के पास न रहा। पर उस वीर के मुख पर भय का कोई भाव प्रकट न हुआ। वह साहस पूर्वक ढाल तलवार लेकर मैदान में आ डटा उस समय उस के मुख पर अदम्भ वीरता झलक रही थी, मानो क्षत्रियोचित शूरता का वह मूर्त रूप हो।

ढाल तलवार लेकर ही उस वीर ने रण कौशल का ऐसा अदभुत प्रदर्शन किया कि शत्रु विस्मय में पड़ गए। अभिमन्यु विद्युत् गति से तलवार घुमाता रहा और जो भी उस के सामने पड़ा उसी की अच्छी खासी खबर लेता रहा। तलवार का चक्कर इस जोर से उस न बाधा कि तलवार चलती हो दिखाई न देती थी। ऐसा लगता था कि जैसे कोई तेज धार का चक्र उसके हाथों में हो। पर तभी द्रोण ने उसकी तलवार काट डाली और कर्ण ने कई तीक्ष्ण बाण चला कर उसको ढाल काट डाली।

उस समय वीर अभिमन्यु का साहस अभूत पूर्व था, जिसने देखा उससे प्रशंसा करते न बनी। ढाल तलवार के समाप्त होने ही उसके पास कोई अस्त्र न रह गया था परन्तु उस की सूझ देखिए। दौड़ कर उसने तुरन्त ही टूटे रथ का पहिया हाथ में उठा लिया और उसे ही चक्र की भाँति घुमाने लगा। ऐसा करते हुए लगता था मानो श्री कृष्ण के भाजे के हाथ में सुदर्शन चक्र आ गया हो। वल्कि मानो सुदर्शन चक्र लिए ही स्वयं वासुदेव ही रण क्षेत्र में आगए हों। द्रोण के मुह से भी हठात निकल गया—“घन्य वीर बालक! तुम अजेय हो।”

रथ के पहिए को ही अस्त्र के रूप से प्रयोग करके कितने ही कौरव सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। कुपित होकर यह समझ कर अस्त्रहीन वीर बालक अब कर ही क्या सकता है, कौरव सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। भालो, गदाओ, तलवारों और बाणों से उस पर आक्रमण करने लगे और कुछ ही देर में वीर अभिमन्यु के हाथ का रथ का पहिया चूर—चूर हो गया। इसी बीच दुःशामन पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर आ झपटा। परन्तु दूर पड़ी एक गदा अभिमन्यु के हाथ भी लग गई। दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। दोनों वीर एक दूसरे पर भयकर गदा प्रहार करते रहे दोनों ही कई बार गिरे, पुनः उठे और भिड़ गए। दूसरे सैनिक

भी कभी कभी दुःशासन के पुत्र का साथ दे देते। अभिमन्यु बुरी-रह घायल हो चुका था, उसकी सारा शरीर चूर-चूर हो रहा था कि वार जव दोनी गिरे तो अभिमन्यु के उठने में कुछ देर हो गई। दुःशासन का पुत्र तनिक पहले ही उठ खड़ा हुआ। तब तो समस्त कौरव चिल्ला उठे—“मारो, देर न करो।” और उसने अभिमन्यु पर गदा का एक भीषण प्रहार किया। अभिमन्यु गदा की मार से उठ न सका। फिर क्या था, कितने ही प्रहार उस पर हुए। जब कौंग्व सैनिको ने उसे बेजान समझ कर छोड़ा, तो अभिमन्यु ने अपनी डूबती आवाज में कहा—“अरे पापियो एक व्यक्ति को चारो ओर से घेरकर मारना कहा का धर्म है ? जाओ अब भी मुझे विश्वास है कि मेरे पिता तुम दुष्टों के इस अन्याय का बदला लेंगे। तुम अपने किए पर पछताओगे और तुम्हारी वह गति होगी कि तुम्हारी सन्तानो तक तुम पर थूकेगी विश्वास रखो अधर्म तथा अन्याय ही कभी विजय नहीं होगी ”

फिर उसने अपनी डूबती आवाज में धीरे धीरे कहा—“मातेश्वरी ! तुम्हें अन्तिम प्रणाम । खेद कि मैं अन्तिम समय तुम्हारे दर्शन न कर सका । पिता जी ! आप जहाँ भी हो, मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें । आप विश्वास रखें कि आप के पुत्र ने आपके नाम को बढ़ा नहीं लगाया । आप मेरी त्रुटियों को क्षमा कर दे और इन दुष्टों को इन के अपराध का अवश्य दण्ड दे । .. मामा जी ! आप कहा हैं, आपका भानजा शत्रुओं के बीच अकेला प्राण दे रहा है जहाँ हो मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें ।” इतना कहते कहते उसकी जवान वन्द होगई । आँखे फिर गई और गरदन एक ओर लटक गई ।

सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के शव को घेर कर कौरव जगली व्याघो की भाँति नाचने कूदने और आनन्द मनाने लगे । लेकिन जो सच्चे वीर थे उनकी आँखों में आसू आ गए । आकाश के पक्षी तक चीत्कार करने लगे और देवतागण उस वीर बालक के शव पर पुष्प पंखुडियाँ बरसाने लगे । यह देख कर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया । द्रोण का मुख लज्जा से लटक गया ।

जब कौरव वीर अभिमन्यु की मृत्यु पर आनन्द मना रहे थे और रह रह कर दुर्योधन, दुःशासन के पुत्र और द्रोणाचार्य की जय

जयकार मना रहे थे, उस समय ही युधिष्ठिर व्यूह से बाहर खड़े अभिमन्यु की पताका और रथ कहीं न देख कर मन ही मन सन्न हो उठे और अपने धड़कते हृदय से बार बार पूछने लगे—यह जय जयकार कैसी ? कहीं सुभद्रा पुत्र.....?”

आगे उनसे कुछ न कहा जाता

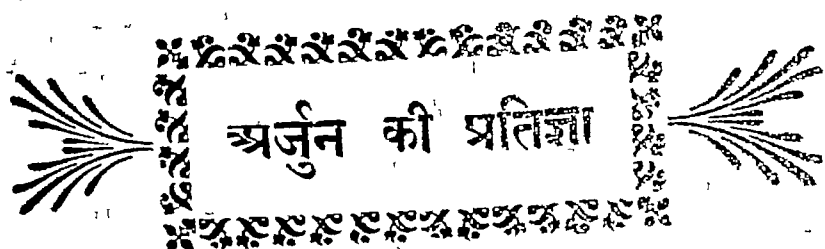
एक महारथी ने द्रोण को उल्लास पूर्वक कहा—“आचार्य ! आज बड़ी कठिनाई से उस दुष्ट का अन्त हुआ । कैसा शुभ दिन है आज कि.....”

“आज हम सब परास्त हो गए । हम सब पथ विमुख हो गए । आज शोक का दिन है ।” द्रोण बोले ।

सुनकर दुर्योधन की आँखों में खून उत्तर आया ।



* अठतालीसवां परिच्छेद *



पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य रक्त के आंसू बहाता हुआ शोक में डूब रहा था, उधर कुरुक्षेत्र में सूर्य मुख अभिमन्यु अन्तिम स्वासे ले रहा था। कौरव वीर बिल्कुल वैसे ही आनन्द मना रहे थे जैसे जंगली असम्य लोग किसी मनुष्य की अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि देकर आनन्द मनाते, नाचते गाते हैं। बार बार गख ध्वनियां हो रही थी; बार बार जय जयकार की गगन भेदी आवाज गूज जाती। युधिष्ठिर का मन सशक हो उठा। उनका रोम रोम कांप उठा।

तभी किसी ने समाचार दिया—“सुभद्रा पुत्र वीर अभिमन्यु मारा गया। कौरव महारथियों ने उस वीर बालक को चारों ओर से घेर कर हत्या कर डाली।”

युधिष्ठिर के हृदय पर भयंकर आघात हुआ। वे अपने को सम्भाल न सके। उनकी पलकें भीग गईं। कण्ठ अवरोध हो गया। कुछ कह नहीं पाये। भीम, नकुल और सहदेव को भी बड़ा दुख हुआ परन्तु इस से अधिक दुख उन्हें महाराज युधिष्ठिर की दशा देख कर हुआ।

सूर्य अस्त हो गया। युद्ध बन्द कर दिया गया।

× × × × × × ×

अपने शिविर में शोकानुर यधिष्ठिर रह रह कर अभिमन्यु की वीरता और अपनी भूल पर कुछ न कुछ कह बैठते। सभी पाण्डव

जयकार मना रहे थे, उस समय ही युधिष्ठिर व्यूह से बाहर लड़े अभिमन्यु की पताका और रथ कहीं न देख कर मन ही-मन सशंक हो उठे और अपने घडकते हृदय से बार-बार पूछने लगे—यह जय जयकार कैसी ? कहीं सुभद्रा पुत्र”

आगे उनसे कुछ न कहा जाता

एक महारथी ने द्रोण को उल्लास पूर्वक कहा—“आचार्य ! आज बड़ी कठिनाई से उस दुष्ट का अन्त हुआ । कैसा शुभ दिन है आज कि.....”

“आज हम सब परास्त हो गए । हम सब पथ विमुख हो गए । आज शोक का दिन है ।” द्रोण बोले ।
सुनकर दुर्योधन की आँखों में खून उत्तर आया ।



* अठतालीसवां परिच्छेद *

अर्जुन की प्रतिज्ञा

पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य रक्त के आंसू बहाता हुआ शोक में डूब रहा था। उधर कुरुक्षेत्र में सूर्य मुख अभिमन्यु अन्तिम स्वास ले रहा था। कौरव वीर बिल्कुल वैसे ही आनन्द मना रहे थे जैसे जंगली असभ्य लोग किसी मनुष्य की अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि देकर आनन्द मनाते, नाचते गाते हैं। बार बार शख ध्वनियां हो रही थी; बार बार जय जयकार की गगन भेदी आवाज गूज जाती। युधिष्ठिर का मन सशक हो उठा। उनका रोम रोम कांप उठा।

तभी किसी ने समाचार दिया—“सुभद्रा पुत्र वीर अभिमन्यु मारा गया। कौरव महारथियों ने उस वीर बालक को चारों ओर से घेर कर हत्या कर डाली।”

युधिष्ठिर के हृदय पर भयकर आघात हुआ। वे अपने को सम्भाल न सके। उनकी पलकें भीग गईं। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। कुछ कह नहीं पाये। भीम, नकुल और सहदेव को भी बड़ा दुख हुआ परन्तु इस से अधिक दुख उन्हें महाराज युधिष्ठिर की दगा देव कर हुआ।

सूर्य अस्त हो गया। युद्ध बन्द कर दिया गया।

X X X X X X X

अपने शिविर में शोकातुर युधिष्ठिर रह रह कर अभिमन्यु की वीरता और अपनी भूल पर कुछ न कुछ कह बैठते। सभी पाण्डव

महारथी वहा बैठे उन्हें सान्त्वना दे रहे थे। युधिष्ठिर बोले—“हा शोक ! कृपाचार्य, दुर्योधन कर्ण और दुःशासन को खदेड़ देने वाला परम प्रतापी मेधावी वीर बालक अभिमन्यु मेरी ही भूल के कारण मारा गया। अब मैं अर्जुन को क्या उत्तर दूंगा। जब वह अपने प्रिय पुत्र को मुझ से पूछेगा तो मैं किस मु- से कहूंगा कि मैंने अपनी विजय की कामना से चक्र व्यूह में भेज कर मरवा डाला। सुभद्र और उत्तरा जब मुझ से उस वीर की मृत्यु के लिए उत्तर मागेगी तो मैं कैसे कहूंगा कि वह बालक मेरे लिए रण करता हुआ शहीद हो गया। हाय ! सुभद्रा का लाल और उत्तरा का सुहाग मेरे रहते हुए दुष्ट वीरव महारथियों द्वारा मारा गया और मैं कुछ न कर सका। नहीं, नहीं उसकी मृत्यु का जिम्मेदार मैं हूँ। मैंने ही उसे चक्रव्यूह में भेजा था। ससार क्या कहेगा ? यही ना, कि युधिष्ठिर ने अपने भाग्य की आग में अर्जुन पुत्र की आहुति दे दी।”

युधिष्ठिर को इस प्रकार विलाप करते देख कर समस्त उपस्थित पाण्डव वीरों का हृदय-विदीर्ण हुआ जा रहा था। भीमसेन ने सान्त्वना देते हुए कहा— ‘महाराज ! वीर अभिमन्यु मरा नहीं, वह शमर हो-गया, उसने ऐसे पराक्रम का प्रदर्शन किया कि शत्रु तक सत्रा मुग्ध हो गए। वह आज भी, अब भी जीवित है। उसे मैं अपने पिता और अपनी माता का नाम उज्ज्वल कर दिया। धन्य है अर्जुन, धन्य है सुभद्रा। हमें उस के लिए शोक नहीं करना चाहिए। वह वीर गति को प्राप्त हुआ।’ पर प्रम वीर शक्ति जिन्हो में है उन्हें दुख होता ही है।

कहने को तो भीम ने यह शब्द कह दिए, पर स्वयं उस का हृदय भी उस के शब्दों से सन्तुष्ट नहीं हो रहा था। यह तो सभी जानते हैं कि जिसने जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन मरना है। शोक और विलाप करने से भी कुछ होता नहीं, फिर भी महान् आत्माएँ तक अपने प्रिय व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप करती ही हैं। अभिमन्यु का विद्योह तो ऐसा विद्योह था कि सुनने वाले भी बेवस रो पड़े। उसकी वीरता और शत्रुओं के अधर्म की गाथा ने तो और अग्नि में घृत की आहुति का काम किया।

—युधिष्ठिर सुवक्ते हुए बोले— ‘मैं किस तरह अपने मन को सभाऊ ! उस वीर की मृत्यु ने मेरे मन को क्षत-विक्षत कर दिया

है। ऐसा लगता है मानो वीर बालक मेरी आखों के सामने अदम्य उत्साह से शत्रु के व्यूह को ओर बढ़ रहा है और कह रहा है—
“ताऊं जी ! आप चिन्ता मत करें यह शत्रु तो कुल भिजा कर भी मेरी शक्ति के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं, मैं अभी ही उन्हें मार भगाता हूँ।”—ओह ! किस उत्साह से वह गया। अलक झपकते ही उस ने कौरवों का व्यूह तोड़ कर अपने लिए मार्ग बना लिया। और हम सब मिल कर भी उस व्यूह में प्रवेश न कर सके। पाँचों भद्रयुद्धों में मुझ से मेरे वीर-बालक को छीन लिया।”

सात्यकि बोला—“राजन् ! अब इस शोक से क्या लाभ धैर्य रखिये। अर्जुन उन दुष्टों में से एक एक से अभिमन्यु की हत्या को बदला लेगा। आप की ही यह दशा है तो सोचिये कि उस की क्या दशा होगी, अभिमन्यु जिस के दिल का टुकड़ा था अर्जुन अभी आता ही होगा। आप ही हैं जो उसे सान्त्वना दे सकते हैं। इसलिए सम्भलिये और अर्जुन को धैर्य-बन्धाने के लिए तैयार हो जाईये। उस वीर बालक की मृत्यु पर आसू बहाना आप को शोभा नहीं देता। आप को तो गर्व होना चाहिए कि आप के परिवार का एक बालक सारी शत्रु सेना को नाको करने चला गया और यदि शत्रु इस अधर्म पर न उतरता, तो वह विजय पताकी फहराता हुआ सीढ़ता।”

“आप जो कह रहे हैं अक्षरशः सत्य है। पर मैं क्या कह दिला तो नहीं मानता। मैं सोच रहा हूँ कि जब राजकुमारी उत्तरेा विधवा के वेश में बाल खोले हुए मेरे सामने से निकलेगी तो मैं अपने हृदय का कटने से कैसे रोकूंगा ? सुभद्रा के नेत्रों से बहती अश्रुधारा को कैसे रोकूंगा। वह दोनों सन्नारीया मुझे जीवित देखकर क्या कहेंगी ? यही ना कि राज्य-पाने के लिए स्वयं तो जीवित रहा, और अभिमन्यु की बलि दे आया।”—दुख-चिह्नित होकर युधिष्ठिर ने कहा।

दुपद बोले—“राजन् ! मौत में किसका चारा है, कौन है जो मृत्यु को रोक सके। मौत किसी के टाले नहीं टलती। एक दिन सब ने मरना ही है। आप कर ही क्या सकते हैं। जिन भगवान के वचन अटल हैं—

जान ही लेने की हिक्मत में तरक्की देखी,
मौत का रोकने वाला कोई पैदा न हुआ।”

इसी प्रकार सभी महाराज युधिष्ठिर को सान्त्वना दे रहे थे। पर-युधिष्ठिर बार-बार अपने मन को समझाते, पर हृदय में उठ रहे शोक के तूफान को वे रोक न पाते।

युधिष्ठिर के शिविर में शोक और विलाप चल रहा था, सान्त्वना तथा धैर्य के वार्तालाप हो रहे थे। कभी कभी कोई वीर अभिमन्यु की वीरता के राग छेड़ देता, कोई उसके असीम साहस का गुणगान करता, तो कोई उसके उठ जाने से हुई हानि को याद करके रो उठता। शोक सभा थी वह, प्रत्येक एक दूसरे को धैर्य बन्वा रहा था, और प्रत्येक आसू भी बहाता जाता था। उस वीर बालक की मृत्यु पर युधिष्ठिर के शिविर में ही नहीं कौरवों के भी शिवरो में शोक प्रकट किया जा रहा था। जाने वाला जा चुका था, हा उसकी बातें रह गई थीं उसकी चर्चा गेष थी—

छुप गए वे साजे हस्ती छोड़ कर।

अब तो बस आवाज ही आवाज है।

संशप्तकों का सहार करके जब अर्जुन अपने शिविर की ओर लौट रहा था, बार-बार उसका मन किसी अज्ञात शोक से बोझल हो जाता। बार-बार उसके मन पर कोई आघात सा लगता और वह आप ही आप शोक विह्वल सा हो जाता। उसने एक बार श्री कृष्ण से कहा—“मधुसूदन ! न जाने क्यों मेरा मन दुखित हो रहा है। बार-बार कोई अज्ञात खेद मेरे हृदय पर छा जाता है और ऐसा होता है मानो मेरे हृदय पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा हो। मेरा मन बोझल हो रहा है, आँखें बरस पड़ने को हो रही हैं। जाने क्या बात है ?”

श्री कृष्ण मुस्करा पड़े—“शत्रुओं का सहार करके लौट रहे हो और बता रहे हो अपने मन को दुखित, बड़े आश्चर्य की बात है। सम्भव है मन में तुम्हारे कोई आशका छुपी हो, हमें कभी कभी विश्वास का रूप धारण करके तुम्हारे मन को शोकातुर कर जाती हो। पर यह तो युद्ध है, इस में कितनी ही घटनाएँ ऐसी भी घट सकती हैं, जिन्हें सुनकर ही तुम्हारे हृदय पर वज्राघात हो। किन्तु तुम्हें दुखित होना शोभा नहीं देता। धैर्य और साहस से काम लो”

अर्जुन शांत हो गया। परन्तु कुछ ही दूर आगे आने पर जब

सका रथ शिविर के इतना निकट हो गया कि वह शिविर के सामने खड़े व्यक्ति को देख सकें, दुखित होकर फिर बोला— 'गोविन्द ! आज कुछ लक्षण ही उलटे हो रहे हैं । प्रतिदिन जब मैं युद्ध से लौटता था, तो सभी मेरे स्वागत को बाहर निकल आते थे । मेरा पुत्र वीर अभिमन्यु शिविर से बाहर खड़ा मुस्कराता होता, पर आज तो कोई भी नहीं दीख पड़ रहा, बल्कि शिविर के सामने खड़ा सैनिक भी बार-बार मुझे देखकर सिर नीचा कर लेता है । कहीं-कोई दुखद घटना तो नहीं घट गई ? आज मेरे दक्षिण की ओर चले जाने के पश्चात्, सुना है, द्रोणाचार्य ने चक्र व्यूह रचा था । उसे तोड़ना मेरे अतिरिक्त हम में से और कोई नहीं जानता । हाँ अभिमन्यु को अभी मैं चक्र व्यूह में प्रवेश करना ही सिखा सका हूँ, व्यूह से निकलना अभी उसे नहीं बताया । कहीं महाराज युधिष्ठिर या मेरे किसी दूसरे भ्राता के ऊपर कोई विपत्ति तो नहीं टूट गई ? मेरा हृदय बोझल हो रहा है । मुझे सारा शिविर शोक में डूबा प्रतीत हो रहा है । क्या कारण है ? ”

“घनजय ! विश्वास रखो कि युधिष्ठिर का वध कोई कर पायेगा, अभी ऐसा कोई नहीं जन्मा ।—श्री कृष्ण ने घोड़ों की रास ढीली करते हुए कहा—रहो किसी के युद्ध में काम आने की बात, सो दावानल जले और उसमें लोग कूदें तो यह आशा करना कि दावानल का उन पर कोई प्रभाव ही नहीं होगा, मूर्खता है । युद्ध में आये हैं तो कितने ही प्रियजन मारे ही जायेंगे । मरने वालों का शोक करने से क्या लाभ ? जो आया है उसे जाना ही है । जब भीष्म जैसे मारे गए तो दूसरों की तो बात ही क्या ? फिर भी निश्चित रहो, तुम्हारे भाईयो में से सभी सुरक्षित हैं । ”

अर्जुन का मन फिर भी दुखित रहा, वह शोक को अपने से अलग न कर पाया । बोझल मन लिए वह शिविर पर जाकर उतरा, तो सैनिकों ने उसे सामने देखकर गरदन झुका ली । उसका हृदय धड़क उठा ।

‘क्या बात है ? ’

सैनिक कुछ न बोला ।

उसने पुनः प्रश्न किया—“यह रोनी सी सूरत क्यों बना ली है ? क्या कोई विशेष घटना हुई ?

सैनिक ने अपनी दृष्टि पृथ्वी पर जमा दो और पैर से मिट्टी कुरेदने लगा ।

अर्जुन सिंह उठा,—“अभिमन्यु आज कहा गया ?”

सैनिक पुनः कुछ न बोला ।

आहत पक्षी की भांति उसका मन तड़प उठा । वह घन्दर गया, जहाँ युधिष्ठिर अपने भ्राताओं तथा सगी-साधियों सहित बैठे थे । जाते ही उसने चारों ओर दृष्टि डाली । सभी की गरदन तटक रही थी । अर्जुन के मन में खेदयुक्त आशका का खवडर उठ खड़ा हुआ । उसने युधिष्ठिर को प्रणाम किया और छूहते ही पूछा—“क्या बात है आप इस प्रकार मुरझाये हुए क्यों बैठे हैं ? क्या हुआ है ? क्या कोई... ?”

उसने उपस्थित वीरों पर दृष्टि डाली । उसके सभी भ्राता और अन्य स्नेही बन्धु बान्धव वहाँ बैठे थे । फिर पूछा—“महाराज ! आप सभी के चेहरे क्यों उतरे हुए हैं ? क्या बात हुई है ? आप सभी शोक विह्वल दिखाई देते हैं ?

महाराज युधिष्ठिर फिर भी कुछ न बोले । किस मुंह से वे उस दुखद समाचार को सुनाते, उनका मन तुरन्त चीत्कार कर उठने को हुआ, पर अपने को उन्होंने नियंत्रित किया ।

“आप मौन क्यों हैं, बताईये, मुझे भी बताईये, हुआ क्या है ? मेरा मन आशक्ति हो गया है । अभिमन्यु कहाँ है, वह रोज की भांति आज कहीं दिखाई क्यों नहीं पड़ता ?”—अर्जुन ने पूछा ।

कुछ कहने के लिए युधिष्ठिर ने मुह खोला, पर आवाज कण्ठ में ही अटक कर रह गई ।

अर्जुन ने दुःखित होकर कहा—“तो क्या मेरा प्रिय पुत्र... ?”

आगे वह कुछ न कह पाया, उसके नेत्रों में आसू आ गए ।

“हम ने तो बहुत प्रयत्न किया कि उस वीर बालक की सहायता को पहुँचे पर

युधिष्ठिर के इतने शब्द सुनकर ही अर्जुन ने सारी बात समझ ली । उसके मन पर भयकर वज्राघात हुआ वह खड़ा न रह सका और बालको की भांति विलख विलख कर रोने लगा । उसके रुदन को देखकर अन्य वीर भी अश्रुपात करने लगे ।

अर्जुन ने विसाप करते हुए कहा—“हाय ! मैं कहीं का न

रहा। मेरे लिए आज सारा ससार अधिकारपूर्ण हो गया। अब मैं सुभद्रा को क्या जवाब दूंगा। और राजकुमारी उत्तरा जिसके हाथों का मेहन्दों भी अभी तक न मिटी, उसको क्या कहकर सान्त्वना दूंगा। हा! जिसका पालन पोषण मैंने इतने प्यार से किया, जिसके कौशल, साहस और वीरता पर मुझे सदा ही गर्व रहा, मेरे रहते वह होनहार मुझे विलखता छोड़ कर मुझ से मुंह मोड़ कर चला गया। हा! मेरा गाण्डीव, मेरा भुजबल उस सुकुमार मेरे हृदय पाश के किसी काम न आ सका। ओह! जब मैंने द्रोणाचार्य द्वारा चक्रव्यूह रचना की बात सुनी थी, मेरा माथा तो तभी ठनका था। पर खेद कि मैंने संशयियों का सामना छोड़कर आत्म सम्मान को ठेस देना गवारा न किया। मैं क्या जानता था कि मेरे चार महाबली भ्राताओ और अनेक महारथियों के रहते हुए शत्रु उस वीर बालक को निगल जायेंगे? मैं होता तो एक बार उसकी रक्षा के लिए साक्षात् यमराज से भी टंकरा जाता और प्राण रहते मैं उसे ससार से मुंह न मोड़ने देता। हाय! सुभद्रा सोचती होगी कि उसका लाल शीघ्र ही विजयसन्देश लेकर आयेगा, उत्तरा उसके स्वागत के लिए आरती का पाल सजाए बैठी हागी। द्रौपदी उससे उसके शत्रुओं के संहार का शुभ सम्वाद सुनने के लिए बैठा बैठी होगी। लेकिन वह वीरवर चला गया। और मैं असहायों की भांति रोने के लिए रह गया।”

अर्जुन की हिचकियाँ बंध गईं। जो वीर सदा सिंह की भांति गर्जना करता रहता था, जो सदा साहस और वीरता की बातें करते रहने के लिए प्रसिद्ध था, जिसके नेत्रों से सदा हर्ष, उत्साह, यौवन, साहस, आलोक, तेज और चिनगारिया निकलती थी, वह अश्रुपात कर रहा था। देखने वालों से भी न रहा गया और वे अपने करुण कुन्दन को ता बड़ी कठिनाई से रोक पाये पर अपनी आखों से बहती अविरल अश्रुधारा को किसी प्रकार भी न रोक पाये।

अर्जुन ने फिर अपने को धिक्कारते हुए कहा—“टूट जाओ ऐ अतुल्य बलवाहिनी भुजाओं टूट जाओ, फट जा ऐ वज्र के समान विशाल छाती फट जा, जब मैं अपने लाइले की रक्षा ही न कर सका तो फिर मुझे तुम्हारी क्या जरूरत। नहीं, नहीं मुझे नहीं चाहिए

यह शरीर ।

उसी समय श्री कृष्ण ने उसे सम्भाते हुए कहा—घनजय ! तुम्हें क्या हो गया है ? अपने को सम्भालो । तुम तो शत्रु के लिए साक्षात् काल हो । तुम्हारी आखों में आंसू ? छी, छी: तुम्हें यह शोभा नहीं देता । मुझे तो आशा थी कि इस दुःखद समाचार को सुनकर तुम्हारे नेत्रों से क्रोध की चिंगारियां निकल पड़ेंगी और तुम वीर-अभिमन्यु के हत्यारों से बदला लेने के लिए बेचैन हो जाओगे । परन्तु तुम तो नारियों की भाँति विलाप करने लगे । वह वीर वीर-गति को प्राप्त हुआ है, उस पर अश्रु बहाना उसका अपमान करना है । घनजय ! मनुष्य सभी कुछ टाल सकता है, पर मृत्यु को टालना उसके वस की बात नहीं । जिसने जन्म लिया है उसे मरना ही है । हाँ,

फूल तो दो दिन वहाँ गুলिस्ताँ दिखला गए ।

हसरत उन गुँचो पे है, जो बिन खिले मुरझा गए ।”

परन्तु वह वीर तो कली होते हुए भी अपने अभूत पूर्व गुणों से अपने को अमर कर गया । अर्जुन ! आत्मा कभी नहीं मरता; वह चोला बदल सकता है, परन्तु उसका कभी नाश नहीं होता । अभिमन्यु के शरीर को शत्रुओं ने निर्जीव कर दिया तो क्या हुआ, उस की आत्मा जिस रूप में भी जायेगी, उसी रूप में वह अपना उज्ज्वल रूप दिखायेगी । तुम विश्वास रखो कि वह वीर मर कर भी अमर है । उसने तुम्हारे नाम को उज्ज्वल ही किया है । तुम्हें गर्व होना चाहिए कि तुम्हारी अनुपस्थिति में उस ने वही काम किया जो तुम्हें करना चाहिए था ।”

इसी प्रकार कितनी ही प्रकार से श्री कृष्ण अर्जुन को धैर्य वन्धाने लगे । वे अभिमन्यु के मामा थे, उस की मृत्यु से उन्हें भी धक्का लगा, पर उन के लिए शोक और हर्ष समान ही थे । उन्होंने अनेक धार्मिक गाथाएँ सुना कर और जिन प्रभु की वाणी बताकर इस नश्वर ससार की वास्तविकता दर्शाते हुए अर्जुन को धैर्य वन्धायी जब श्री कृष्ण के उपदेश से अर्जुन को कुछ सन्तोष हुआ तो उस ने युधिष्ठिर से कहा—“महाराज ! मुझे यह तो बताइये कि वीर अभिमन्यु किस प्रकार मारा गया और कौन उसकी हत्या के लिए

जिम्मेदार है ! ”

तब युधिष्ठिर बोले—“तुम्हारे सशस्त्रकों से युद्ध करने जाने के उपरान्त द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह रचा । हम में से कोई उस व्यूह को तोड़ना नहीं जानता था, हमारी सेना का संहार होने लगा मैं बड़ा ही दुखी हुआ । तभी उस वीर ने आकर बताया कि वह व्यूह में प्रवेश करना जानता है । हमने सोचा कि हम भी उस के पाछे व्यूह में चले जायेंगे ताकि सकट के समय हम उस की रक्षा कर सक । यह सोच कर मैंने उसे व्यूह तोड़ने की आज्ञा देदी । और हम सब उस के पीछे पीछे चले । एक विनाश सेना हमारे साथ थी, परन्तु पापी जयद्रथ ने हमारा रास्ता रोक लिया और वीर अभिमन्यु तो व्यूह में चला गया, जयद्रथ ने हमें न जाने दिया वह वीर अकेला ही शत्रुओं को तहस नहस करता हुआ आगे बढ़ता रहा । जहाँ से व्यूह टूटा था जयद्रथ ने अपने सैनिकों से वह दरार तुरन्त भर दी और फिर द्रुष्ट कौरव महारथियों ने मिल कर चारों तरफ से घेर कर उसे मार डाला ”

इतना सुन कर ही अर्जुन को भृकुटि घनुष के समान तन गई आँखों में ज्वाला भाकने लगी और उस ने उसी समय प्रतिज्ञा की—
‘मैं अपने गाण्डीव की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल सूर्य अस्त होने से पहले ही द्रुष्ट जयद्रथ का जो मेरे पुत्र के वध का कारण बना सिर काट डालूँगा । अन्यथा मैं स्वयं ही जीवित चित्ता में प्रवेश करूँगा ।’

अर्जुन की प्रतिज्ञा सुन कर वहाँ उपस्थित पाण्डव कांप उठे । बड़ी ही दृढ़ प्रतिज्ञा थी । और सभी जानते थे कि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूर्ण करेगा । श्री कृष्ण भी उस की प्रतिज्ञा सुन कर विस्मित रह गए ।

उस के बाद युधिष्ठिर ने सारी कथा विस्तार सुनाई । जिसे सुन कर अर्जुन बिगड़ कर बोला—“द्रोणाचार्य को लज्जा न आई । एक बालक को छत्र महारथियों ने घेर कर मारा, इस अधर्म पर वे डूब न मरे । अच्छा कोई बात नहीं मैं इस युद्ध में इन सबको मौत के घाट उतार दूँगा ।”

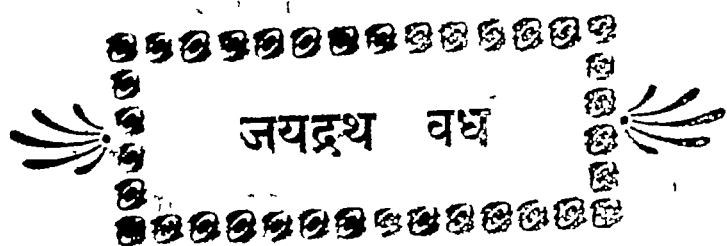
फिर उस ने अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा को दोहराया और कहा कि

“यदि जयद्रथ की रक्षा के लिए आचार्य द्रोण और कृप भी मा-जाए तो उन को भी मैं अपने बाणों की भेद चढ़ा दूंगा।”

... यह कह कर अर्जुन ने अपने गाण्डीव का जोर से टकार किया और श्री कृष्ण ने पाच-जन्य बजाया और भीमसेन बोल उठा—
“गाण्डीव की यह टकार, और मधुसूदन के धृतराष्ट्र के पुत्रों के सर्वनाश की सूचना है।”



* उन्चासवां परिच्छेद *



जयद्रथ अपने शिविर में विश्राम कर रहा था, तभी एक दूत ने आकर प्रणाम किया।

“क्या बात है ?”

“राजन् ! अभी अभी हमारे जासूसों ने सूचना दी है कि अर्जुन ने कल सूर्यास्त से पहले पहले आप का वध करने की प्रतिज्ञा की है। वह या तो सूर्यास्त से पूर्व ही आप को मार डालेगा अन्यथा स्वयं जीवित ही चिता में जल मरेगा।”

जयद्रथ को जैसे विजली का नगा तार छू गया हो। एक दम व्याकुलता से उठ खड़ा हुआ। उसकी आखें फटी सो रह गईं।

पूछा—“क्या कहा ? अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है ?”

“जी हाँ।”

वह खड़ा न रह सका, आसन पर गिर सा पड़ा। “अब क्या होगा ?”—यह ये वें शब्द जो उसके मुह से निकले। उसके बाद वह चिन्ता मग्न हो गया। न जाने क्या सोचता रहा।

कुछ देर बाद वह कहता सुना गया—“लेकिन मैंने तो अर्जुन के पुत्र को नहीं मारा, मैंने तो एक भी बाण उस पर नहीं चलाया। मैं तो अभिमन्यु का हत्यारा नहीं। फिर अर्जुन मुझ पर क्यों क्रुपित हुआ ?”

कुछ देर तक फिर उसके मुह पर मौन छा गया। वह

तडप रहा था, मानो उस के हृदय में विष से बुझा तीर चुभ गया हो ।

‘दुर्योधन ! सुना आप ने ? अर्जुन ने मुझे कल सूर्यास्त तक मारने की प्रतिज्ञा की है ।’—भय विह्वल जयद्रथ ने दुर्योधन से जाकर कहा ।

दुर्योधन ने उसका भय विह्वल चेहरा देखा तो स्वयं व्याकुल हो गया—“हां, दूतो ने ऐसा ही समाचार दिया है ।” उस ने कहा ।

“तो फिर अब क्या होगा ?”

“जो होगा देखा जाये गा । चिन्ता क्यों करते हो ?”

“नहीं दुर्योधन ! अर्जुन अपनी बात का धनी है, वह मुझे मारे बिना न छोड़ेगा । देखो तो अभिमन्यु को मारा किसी ने और फल भोगे कोई हैं न यह अन्याय । मुझे तो अपने देश लौट जाने की आज्ञा दे दीजिए । वस मैं अब और यहां नहीं ठहर सकता ।”—कापता हुआ जयद्रथ बोला ।

“क्या कह रहे हो ? युद्ध छोड़ कर चले जाना चाहते हो ?” विस्मित होकर दुर्योधन ने प्रश्न किया ।

“हां, मुझे नहीं चाहिए यह युद्ध आप के साथियों ने वास्तव में अभिमन्यु के साथ अन्याय किया, और अब उस अन्याय का बदला मुझ से लिया जायेगा । मैं दूसरे को आई में क्यों मरू ? मुझे तो वस आज्ञा दीजिए ताकि मैं अभी ही अपने देश लौट जाऊं ।”—जयद्रथ ने अपनी मानसिक दशा का परिचय देते हुए कहा ।

दुर्योधन समझ गया कि जयद्रथ बुरी तरह घबरा गया है, उस ने उसे धीरज बघाते हुए कहा—‘आप भय न करें, मैं विश्वास दिलाता हू कि अर्जुन आपका बाल भी बांका नहीं कर सकता । आप की रक्षा के लिए मैं कर्ण, चित्रसेन, विविशति, भूरिश्रवा, शल्य, वृषसेन, पुष्पमित्र, जय, कांभोज, मुदक्षिण, नल्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, कालिंगव, अवन्तिदेश के दोनों राजाओं, आचार्य द्रोण, अश्वस्थामा, शकुनि आदि समस्त महारथियों को लगा दूंगा । हम प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेंगे । फिर अर्जुन की क्या मजाल है आप के पास भी फटक सके । प्रसन्नता की बात तो यह है कि कल को हम आप का पुता भी न चलने देंगे । और सूर्यास्त

होने पर हमारा मुख्य शत्रु अर्जुन स्वयं ही जीवित जल मरेगा । इस लिए आप को तो प्रसन्न होना चाहिए कि क्रोध में आकर हमारा शत्रु स्वयं ही अपने नाश का जाल रच गया ।”

“किन्तु यदि अर्जुन ने मुझे खोज निकाला तो ?”

“मैं कहता हूँ हम तुम्हें ऐसे स्थान पर रखेंगे कि हम सब मारे गए तभी अर्जुन आप के पास तक पहुँच सकता है, जो कि असम्भव है ।”

“अर्जुन बड़ा वीर है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं ।”

मैं समझता हूँ कि भय के मारे आप पर अर्जुन को भूत सवार हो गया है ।”

जयद्रथ स्वयं भी एक महाबली था पहले तो भय के मारे वह अपने मनोभावों को छुपा न सका, पर जब उसे दुर्योधन का सहारा मिला और कुछ धैर्य बचा तो वह आत्म सम्मान और व्याभिमान की रक्षा के लिए सचेत होगया और दुर्योधन की अन्तिम बात से वह स्वयं ही आत्म शान्ति के मारे कुछ कह सकने योग्य न रहा । हाँ उसने इतना अवश्य कहा—“दुर्योधन ! कल यदि थोड़ी सी भी भूल हो गई, तो आप अपने एक परम सहयोगी से हाथ धो बैठेंगे ।”

“नहीं, ऐसा कदापि नहीं होगा ।” दृढ़ता से दुर्योधन बोला ।

जयद्रथ सन्तुष्ट होकर वहाँ से चला गया तो दुर्योधन ने एक भयकर अट्टहास किया और फिर स्वयं ही बोला—“अवश्य ही मेरा भाग्य जाग रहा है । आज भयकर शत्रु, अर्जुन पुत्र अभिमन्यु का पता कटा और कल अर्जुन भी समाप्त हो जायेगा । फिर तो विजय का श्रेय मुझे मिला ही रक्खा है ।”

उस के पापी मन ने शंकित होकर पूछा—“और यदि अर्जुन जयद्रथ तक पहुँच गया तथा उसका वध कर डालने में ही सफल हो गया तो ? स्मरण है कि उस के सारथि हैं श्री कृष्ण और सहयोगी हैं भोमसेन, धृष्टद्युम्न आदि ।”

वह बोला—“तो भी मेरा ही लाभ है, जीत फिर भी मेरी ही है क्योंकि जयद्रथ के पिता की भविष्य वाणी के अनुसार जो जयद्रथ का सिर काट कर भूमि पर गिरा देगा उसी के सिर के उसी समय सी टुकड़े हो जायेंगे । जयद्रथ का पिता बड़ा ही पुण्यवान

तथा शुभ प्रकृति वाला व्यक्ति है, उसकी बात कभी असत्य सिद्ध नहीं होगी। इस लिए मेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। जीते हर प्रकार से मेरी ही है। अहा हाइ हाइ हाइ”

बात-यह थी कि सिन्धु देश के प्रसिद्ध नरेश वृद्ध क्षय के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रक्खा गया जयद्रथ। बड़ी तपस्या के पश्चात् यह पुत्र हुआ था। इस कारण बड़ा ही आनन्द मनाया गया। ज्योतिषियों से इसके जीवन के सम्बन्ध में पूछा गया। तब उन्होंने बताया कि जयद्रथ बड़ा ही यशस्वी व परम प्रतापी राजा बनेगा, किन्तु एक श्रेष्ठ क्षत्रिय के हाथों सिर काटे जाने से इसकी मृत्यु होगी।

यद्यपि वृद्ध क्षय बड़ा ही धर्म व्यापी, सच्चरित्र, सुशील, गुणी, विद्यावान और धर्म के मर्म का ज्ञाता था, और वह जानता था कि यह शरीर नाशवान है, आत्मा अपने किए कर्मों का फल भोगता ही है, उसे अपने कर्मानुसार चले बदलने हाते हैं, जिसे जीवन मिला, उसके लिए मृत्यु अवश्यमभावी है तथापि बड़े-बड़े ज्ञानियों और तपस्वियों तक को अपने प्रिय जनो की मृत्यु पर खेद होता ही है अतः वृद्ध क्षय भी घोर तपस्या से प्राप्त पुत्र रत्न की मृत्यु की भविष्य-वाणी सुनकर व्यथित हो गया और उसने कई सप्ताह निराहार जाप किया, फिर घोर तपस्या की कि जो मेरे पुत्र का सिर काटे कर-पृथ्वी पर गिरायेगा, उसी क्षण उसके भी सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

जयद्रथ के व्यस्क हो जाने पर वृद्ध क्षय ने राज-सिंहासन पर जयद्रथ को बैठाया और स्वयं पंच महा व्रती, साधु वृत्ति धारण कर ली।

द्रोणाचार्य अपनी शैश्या पर पड़े-करवटे बँदल रहे थे। जयद्रथ वहाँ पहुँचा और चरणों पकड़ कर प्रणाम किया। फिर विनीत भाव से पूछा—“आचार्य! इस समय आने के लिये मुझे क्षमा करें। मैं यहाँ जानना चाहता हूँ कि आप ने मुझे और अर्जुन को एक साथ ही अस्त्र-विद्या सिखाई थी। क्या हम दोनों की शिक्षा में कोई अन्तर है? अर्जुन मुझ से किसी बात में अधिक तो नहीं?”

द्रोण जानते थे कि यह प्रश्न क्यों पूछा गया है, वे बोले—

“जयद्रथ ! तुम दोनों को मैंने तो एक जैसी ही शिक्षा दी थी । परन्तु आपने लगातार अभ्यास और अपनी कठिन तपस्या के कारण, साथ ही अपने पूर्व संचित पुण्य तथा शुभ प्रकृति के कारण अर्जुन तुम से बड़ा-चड़ा है इस में कोई सन्देह नहीं ।”

जयद्रथ को हृदय कांप उठा । बोला—‘तो फिर क्या अर्जुन मुझे . . ?”

“नहीं, नहीं, तुम्हें भयभीत न होना चाहिए—द्रोण ने बात समझते हुए बीच में ही कहा—कल हम ऐसे व्यूह की रचना करेंगे जिसे तोड़ना अर्जुन के लिए भी दुःसाहस होगा । उस व्यूह के सबसे पिछले मोरचे पर हम तुम्हें रखेंगे, तुम्हारी रक्षा में अनेक वीर रहेंगे । व्यूह के अगले मोरचों पर मैं स्वयं रहूंगा । फिर तुम तो क्षत्रिय हो । अपने पूर्वजों की शानदार परम्परा को जीवित रखते हुए निर्भय होकर युद्ध करो । यमराज तो हम सब का पीछा कर रहे हैं, अन्तर इतना है कि कोई पहले जाता है, किसी को पीछे जाना है । सभी को अपने अपने कर्मों का फल भोगना है, तुम्हें भी और मुझे भी । तुम या मैं इस से बचकर भागकर और कहीं जा ही कहा सकते हैं ।”

सारी रात बेचारे जयद्रथ ने व्याकुलता से गुजारी । विल्कुल उसी सैनिक की भाँति जिसे स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर उसके सिर पर नंगी तीक्ष्ण तलवार बाल में बांध कर लटका दी गई हो । उसे चारों ओर अर्जुन ही गाण्डीव लिए हुए दिखाई देता ।

X -X -X X X X X

पक्षियों का कलख आरम्भ हो गया, अधकार की चादर को विदीर्ण करती सूर्य की स्वर्णिम किरणें फूट निकलीं । छावनियों में चहल पहल आरम्भ हो गई । ज्यों ही सूर्य की किरणें सफेद दुर्ग, द्रोणाचार्य अपने शिविर से बाहर निकले, तैयारी का शस्त्र नाद हुआ और कुछ ही देर में बाढ़ सेनाएं रण क्षेत्र में पहुँच गई । द्रोणाचार्य अपनी सेना की व्यवस्था में लग गए । सबसे पीछे जयद्रथ की अपनी सेना व सरक्षकों के साथ रक्खा गया । उसकी रक्षा के लिए भूरि-भवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य वृषसेन आदि महारथी अपनी सेनाओं सहित सुसज्जित खड़े थे । इन वीरों की सेना और पाण्डवों की

सेना के बीच में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने एक भारी सेना को शकट चक्र-व्यूह में रचा। शकट व्यूह के अन्दर कुछ दूर आगे पद्म-व्यूह बनाया। उससे आगे एक सूत्री-मुख-व्यूह रचा। उस व्यूह में जयद्रथ सुरक्षित था। शकट व्यूह के द्वार पर स्वयं द्रोण आचार्य खड़े हुए। उस दिन उन्होंने सफेद वस्त्र धारण किए हुए थे, उनका कवच भी सफेद रंग का था। उनके रथ के घोड़ों का रंग भी सफेद ही था। वे अपने अपूर्व द्वेज के साथ प्रकाशमान ह रहे थे। व्यूह की व्यवस्था तथा मजबूती देखकर दुर्योधन को धीरज बधा।

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्मर्षण ने कौरव सेना के आगे लाकर अपनी सेना खड़ी कर दी। उस सेना में एक हजार रथ, एक सौ हाथी, तीन हजार घोड़े, दस हजार पैदल और डेढ़ हजार धनुर्धारी वीर सुव्यवस्थित रूप से खड़े थे। अपनी इस सेना के आगे अपना रथ खड़ा करके दुर्मर्षण ने अपना शंख बजाया और पाण्डवों को युद्ध के लिए ललकारा—

“कहा है वह अर्जुन, जिसे अपने बल पर बड़ा अभिमान है, जिसके बारे में पाण्डवों ने उड़ा रक्खा है कि उसे युद्ध में परास्त ही नहीं किया जा सकता। कहा है वह? आये-तो हमारे सामने। मैं अभी ससार को दिखा दूंगा कि अभिमानों का सिर नीचा होता है। वह हमारी सेना से टकराकर इसी प्रकार चूर चूर हो जायेगा जिस प्रकार मिट्टी का घड़ा पहाड़ से टकराकर टुकड़े टुकड़े हो जाता है।”

अर्जुन ने चुनौती सुनी तो पाण्डवों की व्यवस्थित सेना से निकलकर दुर्मर्षण की सेना के सामने आ खड़ा हुआ और अपना शंख बजाया, जिसका अर्थ था कि उसे चुनौती स्वीकार है। उस ने गरज कर कहा—“दुर्मर्षण! घबराते क्यों हो, तुम्हें अभी ही अपनी शक्ति का पता चल जायेगा, ठीक ही कहा है कि जब चींटी की माँत आती है तो उसके पंख निकल जाते हैं।”

कौरव सेना में बार-बार शंख बजने लगे। तब अर्जुन ने श्री कृष्ण को कहा—“केशव! अब रथ, दुर्मर्षण की सेना की ओर चलाईये, उधर जो गज सेना है, उसको तोड़ते हुए अन्दर घुसंगे।”

जाते ही अर्जुन ने दुर्मर्षण की सेना पर भयंकर प्रहार किया।

गज सेना उसके वाणों का ताव न ला सकी और कुछ ही देर में तितर-बितर हो गई।—दुर्मर्षण बार-बार ललकारना रहा। पर सेना में उत्साह का संचार न हुआ। बल्कि जो भी वीर अर्जुन के सामने आया, वही मृत्यु को प्राप्त हुआ। तीव्र अंधड़ के चलने पर जैसे पेष खण्ड बिखर जाते हैं इसी प्रकार अर्जुन के वाणों से दुर्मर्षण की सेना बिखर गई। यह देख दुःशासन को बड़ा क्रोध आया और वह अपनी सेना सहित अर्जुन के सामने आ डटा—बड़ा ही रोमांच-कारो और वीभत्स दृश्य उपस्थित हो गया। अर्जुन के वाणों की मार से सैनिकों के शरीर निष्प्राण होने लगे। चांगे और शवों के ढेर लग गए। रथ टूट-गए और सिर, धड़ तथा हाथ पैर इधर-उधर बिखर गए। उस वीभत्स दृश्य को देखकर दुःशासन की वची खुची सेना का साहस टूट गया और वह मैदान छोड़कर भाग निकली। दुःशासन ने बहुतेरा जोर मारा, पर जैसे सिंह के सामने भेड़ों की एक नहीं चलती, इसी प्रकार दुर्मर्षण तिलमिलाने के उपरान्त कुछ न कर पाया। वह भागा और जाकर द्रोणाचार्य के पास भय विह्वल होकर पुकार की—“आचार्य ! अर्जुन की गति को रोकिए वह तो साक्षात् काल रूप धारण करके तबाही मचाता हुआ बड़ा चला आ रहा है।”

द्रोण बोले—“दुर्मर्षण ! उसकी गति को रोक पाना बच्चों का खेल नहीं है।”

इतने ही में अर्जुन का रथ भी द्रोण के पास पहुंच गया। जाते ही उसने तीन वाण उनके चरणों में फेंके और वीरोचित प्रणाम के उपरान्त उसने कहा—“गुरुदेव ! अपने प्रिय पुत्र को गवाकर और दुःख से व्यथित होकर अपने पुत्र की हत्या के लिए जिम्मेदार जयद्रथ की खोज में मैं आया हूँ। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी है। आज आप कृपया मुझे अनुगृहीत करें।”

अर्जुन के नम्र निवेदन को सुनकर द्रोण बोले—“पार्थ ! आज तो तुम मुझ से टक्कर लिए बिना आगे न जा सकोगे।”

“क्या आप मेरी प्रतिज्ञा पूर्ति के पथ पर दीवार बनकर खड़े रहना चाहते हैं ?”—अर्जुन ने प्रश्न किया।

“मैं तुम्हारे शत्रु दल का सेनापति जो हूँ।”—द्रोण बोले।

अर्जुन ने द्रोण के शब्दों का उत्तर अपने तीक्ष्ण वाणों से

दिया ।

भयंकर संग्राम छिड़ गया । अर्जुन तीक्ष्ण बाणों का प्रहार कर रहा था और द्रोण उसके बाणों को तोड़ जा रहे थे । तब कुपित होकर अर्जुन ने पैतरा बदल कर बाण चलाने आरम्भ कर दिए । एक दो बाण द्रोण को चोट पहुंचाने में सफल हुए तो उन्हें भी क्रोध आया और कुपित होकर ऐसे बाण चलाये कि अर्जुन तथा श्री कृष्ण दोनों ही घायल हो गए । इस से कृपित होकर अर्जुन गाण्डीव पर बाण चला ही रहा था कि द्रोण ने उसके धनुष की डोरी काट डाली । और फिर मुस्करा कर आचार्य ने उसके घोड़ों रथ और उसके चारों ओर बाणों की वर्षा कर दी । अर्जुन ने दूसरा धनुष लेकर बाण चलाये और आचार्य पर हावी होने की इच्छा से तीक्ष्ण बाण चलाने आरम्भ कर दिए ।

परन्तु द्रोण भी उसी प्रकार अर्जुन का मुकाबला करने लगे । फिर क्या था वे रोक बाणों से उन्होंने अर्जुन को घने अवकार में डाल दिया । यह देखकर वासुदेव अर्जुन से बोले— शस्त्र विद्या में पारंगत द्रोण से ही जूझते रहे तो यही शाम ही जायेगी । अब देर करना ठीक नहीं कहो तो द्रोण को यही छोड़ कर रथ आगे बढ़ा दूँ । आचार्य थकने वाले नहीं है

अर्जुन ने स्वीकृति दे दी, तब श्री कृष्ण ने बड़ी कुशलता से आचार्य की वाई ओर से रथ हांक दिया और आगे निकल गए । यह देख द्रोण ने कहा—“पार्थ ! तुम तो शत्रु को परास्त किए बिना आगे बढ़ते ही न थे, आज कैसे निकले जा रहे हो ?”

अर्जुन ने मुस्कराकर कहा—“आप कहीं शत्रु थोड़े ही हैं, आप तो गुरु देव हैं । भला आप को हराने की क्षमता मुझ में कहाँ ? मैं तो आपका शिष्य हूँ पुत्र के समान । आप को परास्त करने की समता भला ससार में किस रण बांकुरे में हो सकती है ।”

यह कहता हुआ अर्जुन आगे बढ़ गया । श्री कृष्ण घोड़ों की तेजी से दौड़ा रहे थे । द्रोण के सामने से हट कर अर्जुन का रथ कौरव-सेना की ओर चला ।

अर्जुन जाते ही भोजों की सेना पर टूट पड़ा । कृत, वर्मा और सुदक्षिण पर उसने एक साथ ही आक्रमण कर दिया और उन दोनों

को परास्त करके श्रुतायुध से जा भिड़ा। भयकर संग्राम छिड़ गया। श्रुतायुध के घोड़े मारे गए। इस पर क्रुद्ध होकर वह गदा हाथ में लेकर रथ से उतर आया और क्रोधवश गदा का प्रहार श्री कृष्ण पर कर दिया। पर निःशस्त्र और युद्ध में न लड़ रहे श्री कृष्ण पर चलाई गदा उलटी श्रुतायुध को ही जा लगी, जिसकी चोट खाकर उसका शरीर तड़पने लगा। कुछ ही क्षण पश्चात् उसकी यई लीला समाप्त हो गई। यह उस वर दान का परिणाम था जो उसकी मां ने प्राप्त किया था।

इस वर दान की भी एक कथा है।

× × × ×

कहते हैं श्रुतायुध की मां पर्णशम बड़ी पुण्यवती थी। उस ने अपनी तपस्या से वैसमण देवता के प्रसन्न होने पर वर दान मांगा था कि उसका पुत्र किसी शत्रु के हाथों न मारा जाये।

उत्तर में देवता ने कृपा कर एक गदा उसे भेंट की और कहा कि तेरा बेटा इस गदा को लेकर लड़ेगा तो कोई भी शत्रु उसका वध न कर सकेगा। परन्तु शर्त यह है कि यह गदा उस पर न चलाई जाय, जो निःशस्त्र हो, अथवा जो युद्ध में शरीर न हो। यदि इन में से किसी पर चलाई गई तो यह गदा उलटकर चलाने वाले का ही वध कर देगी।

तो वही थी वह गदा जो श्रुतायुध ने चलाई थी और क्रोधवश देवता की शर्त वह भूल गया, जिसके कारण श्री कृष्ण जो निःशस्त्र भी थे और लड़ भी न रहे थे पर गदा का वार कर बैठने से उस गदा ने उसी का वध कर दिया।

× × × ×

श्रुतायुध के मरते ही काभोज राज सुदक्षिण ने अर्जुन पर प्रहार किया। परन्तु अर्जुन के वाणों के सामने उसकी एक न चली। अर्जुन ने उसके घोड़ों को मार डाला। घनुप तोड़ डाला और उस के कवच को चूर चूर कर दिया। अन्त में एक ऐसा तीक्ष्ण वाण खींच कर मारा जो साँघे जाकर उसकी छाती पर लगा और वह हाथ फला कर भूमि पर गिर पड़ा। उसके मुह से एक चोत्कार निकला और छाती से रक्त का फव्वारा।

श्रुतायुध और काभोज का इस प्रकार अन्त देख कर श्रुतायु व अञ्छुतायु दो राजा अर्जुन पर टूट पड़े । वे दोनों दो ओर से अर्जुन पर बाण बरसाने लगे । दोनों ही बड़े चंचल और बलवान राजा थे, उनका मुकाबला करते २ अर्जुन बहुत थक गया बड़ा घोर संग्राम छिड़ा था । दोनों ने मिलकर अर्जुन को घायल कर दिया । थक कर अर्जुन ध्वज स्तम्भ के सहारे खड़ा हो गया ।

“उस समय श्री कृष्ण वंशले “पार्थ ! रुक कैसे गए ?” इन दोनों राजाओं की आत्मा इनके शरीर के बन्धन से मुक्त होने को लालायित है । और तुम्हारे बाणों की प्रतीक्षा कर रही हैं । देखो सूर्य का रथ बहुत आगे जा चुका है । तुम्हें जयद्रथ का वध करना है ”

अर्जुन को फिर उत्साह हुआ और उसने धनुष हाथ में सम्भाल लिया । देखते ही देखते उसने उन दोनों राजाओं को मार डाला । यह देख उनके दो पुत्र क्रुद्ध हो कर अर्जुन पर झपटे । पर जैसे इस्पात की दीवार से सिर टकराने पर सिर टकराने वाले को ही हानि पहुंचती है, उसी प्रकार उन दोनों के प्रहार करने से उनके प्राणों पर ही बन आई । अर्जुन ने दोनों को ही चिरनिद्रा में सुला दिया ।

गाण्डीव पर दूसरी डोरी चढ़ाकर, अर्जुन कौरव-सेना सागर फो चीरता हुआ आगे बढ़ा । उसके बाणों की मार से चारों ओर शव ही शव दिखाई देने लगे । कहीं कुचली हुई खोपड़ियां पड़ी थी, तो कहीं कटे हुए सिर रक्त के धारारों बह रही थी । टूटे हुए कवचो, चूर चूर हुए रथो और घोड़ों के शवों से घरती पट गई । कुछ ही देर में, वह स्थान, जो पहले छटे हुए कड़ियेले जवानों की पक्तियों से भरा था, मांस पिण्डों, रक्त धाराओं, हड्डियों और रथों के अवशेषों से भर गया और तिल धरने को भी भूमि नहीं मिलती थी । अर्जुन का रथ शवों को कुचलता हुआ आगे जा रहा था ।

उस समय वह भयानक अस्त्र प्रयोग कर रहा था । कभी उस के अस्त्रों से आग की लपटें निकलती थी तो कभी धुआं छूटता था । चिनगारियां सी छोड़ते उसके बाण क्षणभर में अनेक प्राणियों को मौत के घाट उतार देते थे । घोड़ों व मनुष्यों के चीत्कारों ने उस

स्थान पर वीत्स वातावरण बना दिया।

मार काट करता, रथो और हाथियो को मिटाता विनाश की ज्वाला बखेरता अर्जुन उस स्थान पर पहुच गया जहाँ जयद्रथ था।

अर्जुन का रथ जयद्रथ की ओर जाते देख दुर्योधन बहुत चिन्तित हुआ। तुरन्त ही वह द्रोणाचार्य के पास पहुचा और बोला—

“आचार्य ! अर्जुन तो हमारे व्यूह को तोडकर अन्दर प्रवेश कर चुका है और वह मार काट करता उस स्थान पर पहुच गया है, जहा अनेक वीरो से सुरक्षित जयद्रथ खडा है। हमारी इस हार से वह वीर विचलित हो उठेंगे जो जयद्रथ की रक्षा पर तैनात हैं। हम सब को आशा थी कि अर्जुन बिना आचार्य जी से निवटे आगे नहीं जायेगा, न आचार्य ही उसे आगे जाने देगे। पर वह आशा तो झूठी निकली। आप के देखते २ अर्जुन अपना रथ आगे बढा ले गया मालूम होता है कि आप पाण्डवों की विजय का रास्ता साफ करने को सदा ही प्रस्तुत रहते हैं। यह देख कर मेरा मन अंधीर हो उठा है। आप ही बताईये कि मैंने आप का क्या बिगाड़ा है, जौ आप मुझे पराजित करने पर तुले हैं। यदि पहले ही मुझे आपका इरादा ज्ञात हो जाता तौ बेचारे जयद्रथ से यहाँ रुकने का आग्रह ही न करता। वह तौ अपने देश जाना चाहता था। परन्तु मैंने ही उसे न जाने दिया। मेरी भूल से उस बेचारे के प्राणों पर आ बनी। अर्जुन ने यदि उस पर आक्रमण कर दिया तो फिर वह किसी प्रकार न बच पायेगा।”

दुर्योधन के शब्दो से द्रोणाचार्य को बड़ी ठेस लगी। तौ भी समय के अनुसार उन्होने क्रोध को पी लिया और बोले—“दुर्योधन! तुम ने इस समय जो शब्द कहे है, यद्यपि वे मेरे हृदय में वाणों की भाँति लगे है तथापि मैं उनका बुरा नहीं मानता। क्योंकि मे तुम्हे पुत्रवत् मानता हूँ, जैसा अश्वस्थामा, वैसे ही मेरे लिए तुम। इस लिए तुम्हारी बात को छोडकर मैं इस समय जो उचित समझता हूँ वही बताता हूँ। देखो! पाण्डवो की सेना हमारे सैनिको को मारती काटती बड़ी तीव्र गति से बड़ी चली आ रही है। इस समय मैं यह उचित नहीं समझता कि यह मोर्चा छोडकर अर्जुन का पीछा करने जाऊँ। यदि मे यहाँ से हट गया तो अनर्थ हो जायेगा। देखो! इस समय अर्जुन तौ जयद्रथ की खोज में गया है और युधिष्ठिर इधर आ

रहा है। मैं उसे जीवत पकड़ कर तुम्हें सौपना चाहता हूँ। इस प्रकार तुम्हारी एक इच्छा की पूर्ति हो जायेगी।”

बीच ही में दुर्योधन बोल उठा—“पर जयद्रथ बेचारे का क्या हागा ?”

“हाँ, तुम भी बड़े शूरवीर हो। अर्जुन का सामना करने के लिए तुम तुरन्त वहाँ जाओ।”

“क्या आपको आशा है कि क्रुद्ध अर्जुन को मैं रोक पाऊँगा।”

“मैं तुम्हें एक अभिमानित कवच दूँगा। इस देवी कवच को पहन कर यदि तुम युद्ध करोगे तो तुम पर शत्रु का कोई भी अस्त्र प्रभाव न डाल सकेगा। और इस कवच के सहारे तुम जयद्रथ की रक्षा कर सकोगे। इधर मैं युधिष्ठिर को पकड़ लूँगा।”

द्रोण की बात सुनकर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। उसने देवी कवच लिया और उसे पहन कर एक बड़ी सेना साथ ले अर्जुन का सामना करने चल पड़ा।

× × × ×

अर्जुन कौरव सेना को तहस नहस करता हुआ आगे बढ़ा चला जा रहा था। बहुत दूर निकल जाने पर श्री कृष्ण ने देखा कि घोड़े थके हुए हैं। उन्होंने रथ एक स्थान पर रोक दिया ताकि घोड़े सुस्ता लें। रथ रुका देखकर विन्द और अनुविन्द नामक दो वीरों ने आक्रमण कर दिया। अर्जुन ने बड़े कौशल से उनकी सेना को तितर बितर कर दिया और उन्हें भी मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद थोड़ी देर श्री कृष्ण ने घोड़ों को सुस्ताने का अवसर देकर फिर रथ हाँक दिया और जयद्रथ की ओर तेजी से रथ बढ़ाने लगे।

पीछे से शोर उठा तो श्री कृष्ण ने घूम कर देखा और अर्जुन को सचेत करते हुए बोले “पार्थ ! देखो, पीछे से दुर्योधन आ रहा है, उसके साथ एक बड़ी सेना है। चिरकाल से मन मैं क्रोध की जो आग दबा रखी है, आज उसे प्रगट करो। इस अनर्थ की जड़ को जला कर भस्म कर दो। इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा ! आज यह तुम्हारा शत्रु तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बनने को आ रहा है। स्मरण रहे यह महारथी है। दूर से भी आक्रमण करने की सामर्थ्य

रखता है। अस्त्र विद्या का कुशल जानकार है। जोश के साथ युद्ध करेगा। शरीर का गठोला और बल है तनिक सावधानी से गाण्डीव के कमाल दिखाना।”

यह कह कर श्री कृष्ण ने रथ घुमा दिया और अर्जुन ने एका एक दुर्योधन पर हमला कर दिया।

इस अचानक आक्रमण से दुर्योधन तनिक भी न घबराया बल्कि गरज कर बोला—‘अर्जुन ! सुना तो बहुत है कि तुम बड़े वीर हो, वीरोचित रामाचकारी कृत्य तुम ने किए हैं, किन्तु तुम्हारी वीरता का सही परिचय तो हम अब तक मिला नहीं है। जरा देखें तो सही कि तुम मे कौन सा ऐसा पराक्रम है कि जिसकी इतनी प्रशंसा सुनने में आ रही है।” तनिक सो गरमी पाकर या शरद ऋतु में बर्फानी हवा से जैसे कच्चे चमड़े का जूता है, इसी प्रकार देवी कवच पाकर दुर्योधन अकड़ गया था। और दोनों में घोर संग्राम छिड़ गया।

बहुत देर तक दोनों एक दूसरे पर बाण वर्षा करते रहे। फिर भी दुर्योधन उसी प्रकार डटा रहा। गाण्डीव से निकले प्राण बाण उसका कुछ न विगाड़ रहे थे तब श्रीकृष्ण ने विस्मय पूर्वक कहा—‘पार्थ ! यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जो बाण बलिष्ठ लोगों के प्राण ले लेते हैं, उन्हीं का दुर्योधन पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा। गाण्डीव से निकला बाण और उसका शत्रु पर कोई प्रभाव न हो। आश्चर्य की बात है, मुझे तो कभी ऐसी आशा न थी। अर्जुन ! कही तुम्हारी पकड़ में ढील तो नहीं रहती ? भुजाओं का बल तो कम नहीं हो गया ? गाण्डीव का तनाव तो स्वाभाविक है ? फिर क्या बात है जो तुम्हारे बाण दुर्योधन पर असर नहीं करते ?”

अर्जुन ने कहा—“मधु सूदन ! लगता है द्रोण ने अपना अभिमन्त्रित कवच इसे दे दिया है उसी को दुर्योधन पहने हुए है। आचार्य ने इस कवच का भेद मुझे भी बताया था। यही कारण है कि मेरे बाण उस पर असर नहीं करते। यह उसी के बल पर साहस बाँध अभी तक रुका है। फिर भी आप अभी ही देखिये कि दूसरे के कवच को शरीर पर लादे, लदे बल की भाँति खड़े दुर्योधन का क्या दशा होती है ?”

यह कहते अर्जुन ने पैतरे बदल कर ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाये, कि उनकी मार से क्षण भर में ही दुर्योधन के रथ के घोड़े धारा-शायी हो गए। सारथि नीचे लूढ़क गया और रथ चूर चूर हो गया कुछ ही देर में दुर्योधन का धनुष भी अर्जुन ने काट डाला। दस्ताने फाड़ डाले और दुर्योधन के शरीर का वह भाग जो कवच से ढका नहीं था, अर्जुन के बाणों से विध गया। अर्थात् जिन वस्तुओं व भागों पर अभिमन्त्रित कवच नहीं था, अर्जुन के बाणों की मार उन्हीं पर अपना रंग दिखा गई।

अर्जुन के बाणों से दुर्योधन के हाथ, पाव, नाखून, उगलियां तक विध गए और अन्त में दुर्योधन को हार माननी पड़ी। वह समर भूमि में पीठ दिखा कर भाग खड़ा हुआ। श्री कृष्ण ने पांचजन्य बजाया और बड़े जोर से विजय नाद किया।

जयद्रथ की रक्षा पर नियत वीरों ने जब यह देखा उनके दिल एक बारगी दहल उठे। पर मरता क्या न करता की लोकीक्ति के अनुसार भूरि श्रवा कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ आदि आठो महारथी अर्जुन के मुकाबले पर आए। परन्तु अर्जुन ने गाण्डीव की एक टकार करके उनकी सेना का दिल दहला दिया। बाण वर्षा आरम्भ हो गई।

×

×

।

×

दुर्योधन को अर्जुन का पीछा करते देख कर पाण्डव सेना ने शत्रुओं पर और भी जोर का आक्रमण कर दिया। धृष्टद्युम्न ने सोचा कि जयद्रथ की रक्षा करने यदि द्रोणाचार्य भी चले गए तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। इसलिए उन्हें रोक रखना चाहिए। इसी उद्देश्य से उसने द्रोण पर लगातार आक्रमण जारी रखा। धृष्टद्युम्न की इस चाल के कारण कौरव सेना तीन भागों में विभाजित होकर कमजोर पड़ गई।

एक बार अवसर पाकर धृष्टद्युम्न ने अपना रथ द्रोण के रथ से टकरा दिया। दोनों के रथ एक दूसरे से भिड़ गए। दोनों रथ आस पास खड़े बड़े ही भले प्रतीत हो रहे थे। धृष्टद्युम्न ने अपने धनुष-बाण फेंक दिए और तलवार लेकर द्रोण के पर जा चढ़ा और उन पर उन्मत्त होकर प्रहार करने लगा। वह तो था उनका जन्म का वैरी।

उस पर वे बिल्कुल उसी प्रकार झपटे जैसे किसी मृग को अपनी मादुर आया देख सिंह झपटता है। धृष्टद्युम्न की आंखों में रक्त-पिपासा मलेक रही थी। बहुत देर तक वह आक्रमण करता रहा। एक बार शेष ने ऐसा पैना वार किया कि वह धृष्टद्युम्न के प्राण ही ले लेता, यदि ठीक उसी समय सात्यकि बाण से उनके प्रहार को न काट देता। प्रचानक सात्यकि की बाण वर्षा हो जाने से द्रोण का ध्यान उसकी ओर चला गया। इसी बीच पांचाल देश के रथ सवार धृष्टद्युम्न को वहां से हटा ले गए।

काले नाग के समान फुफकारते हुए और लाल-लाल नेत्रों से चनगारिया बरसाते हुए द्रोणाचार्य सात्यकि पर टूट पड़े। परन्तु सात्यकि भी कोई मामूली योद्धा न था। पाण्डव-सेना के सब से शूर योद्धाओं में उसका स्थान था। जब उसने द्रोणाचार्य को अपनी ओर झपटते हुए देखा तो वह खुद भी उनकी ओर झपट पड़ा।

चलते २ सात्यकि ने अपने सारथि से कहा—“सारथि! यह द्रोणाचार्य! जो अपनी ब्राह्मणोचित वृत्ति को छोड़कर घर्म राज को पीड़ा पहुंचाने वाले क्षत्रियोचित कार्य कर रहे हैं : इन्हीं के कारण दुर्योधन को घमण्ड है। स्वयं यह भी अपने बल के, घमण्ड में गिराये रहते हैं चलाओ वेग व कुशलता से रथ, तनिक इनका भोक्तृ चूर्ण कर दो।”

सात्यकि का सकेत पाते ही सारथि ने घोड़े छोड़ दिए। चाँदी सफेद चमकने वाले घोड़े हवा से बातें करने लगे और सात्यकि ने द्रोणाचार्य को ओर ले दौड़े। पास पहुंचते २ सात्यकि और द्रोण एक दूसरे पर बाण बरसाने आरंभ कर दिए। दोनों में भयकर युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर से नाराच बाणों की वर्षा हो रही थी। दोनों वीर कब बाण तरकश से लेते हैं कब खींचते हैं और कब छोड़ते हैं। इस बात का पता ही न चलता था। दोनों के बाणों से रथों के बीच की दूरि बाणों से पट गई। इस रोमांचकारी दृश्य को देख कर दूसरे सैनिक परस्पर युद्ध करना भूल गए और सात्यकि दोनों रथों की ध्वजाएँ टूट कर गिर गईं। रथों की छतरिया भी टूट गईं। पर वे आपस में भिड़े ही हुए थे। कोई भी हार मानने को तैयार न था। सात्यकि बार बार सिंह गर्जना करता और उनके

उत्तर में द्रोण वृद्ध सिंह की भाँति गरजते । दोनों के धनुषों की टकारें बड़े जोरों से सुनाई दे रही थी । उनके आस पास युद्ध रत सभी सैनिक रुक गए थे । मृदग, शंख आदि की ध्वनिया मीन हो गईं । आकाश में देवता, विद्याधर-गधर्व, यक्ष आदि इन दोनों के युद्ध को विस्मय पूर्वक देख रहे थे ।

द्रोण का धनुष सात्यकि के वाण से टूट गया, तो उन्होंने दूसरा धनुष सम्भाला पर उसकी डोरी चढा ही रहे थे कि वह भी सात्यकि ने तोड़ डाला । द्रोण ने तीसरा धनुष उठाया, कुछ ही देर में वह भी टूट गया । इस प्रकार द्रोण के पूरे एक सौ धनुष सात्यकि ने तोड़ डाले । द्रोण उसके पराक्रम को देखकर मन ही मन कहने लगे—‘सात्यकि तो धुरन्धर रामचन्द्र, कार्तिकेय, भीष्म और धनजय आदि कुशल योद्धाओं की टक्कर का वीर है ।’

सात्यकि ने और भी कुशलता का परिचय दिया । द्रोण जिस अस्त्र का प्रयोग करते, सात्यकि भी उसी अस्त्र का उसी प्रकार प्रयोग करता । द्रोण तग आगए । तो उन्होंने सात्यकि के वध की इच्छा से आग्नेयास्त्र चलाया । आग की लपटे बखेरता आग्नेयास्त्र चला । तभी सात्यकि ने वरुणास्त्र चलाया, जो पानी बरसाता हुआ चला और उस ने वोच ही में आग्नेयास्त्र को ठण्डा कर दिया । इस प्रकार बहुत देर तक भयकर अस्त्रों का प्रयाग होता रहा परन्तु सात्यकि ने किसी से भी डार न मानी वह डटा ही रहा और प्रत्येक अस्त्र की काट करता रहा । द्रोणाचार्य यह देखकर बड़े क्रोध हुए, तब उन्होंने एक दिव्यास्त्र छोड़ा, जिसे सात्यकि न काट पाया, तो भी उसने अपने को बचा लिया परन्तु भी से वह कुछ कमजोर पड़ने लगा । यह देख कौरव-सेना में हर्ष की लहर दौड़ गई ।

तभी युधिष्ठिर को पता चला कि सात्यकि पर संकट आया हुआ है, उन्होंने अपने आस-पास के वीरों से कहा—“कुशल योद्धा नरोत्तम और सच्चे वीर सात्यकि द्रोण के वाणों से बहुत ही पीड़ित हो रहे हैं । चलो, हम लोग उधर चल कर उस वीर पुरुष की सहायता करें ।”

धृष्टद्युम्न ने युधिष्ठिर को रोकते हुए कहा—“धर्मराज ! आप का वहाँ जाना ठीक नहीं है । मुझे आशा दीजिए कि सात्यकि की सहायता करूँ ।”

“ठीक है द्रुपद कुमार ! तुम तुरन्त जाओ—युधिष्ठिर बोले—
अपने माथ कुशल वीरो को लेते जाओ। सात्यकि कमजोर पड़ रहा
है, कही अवसर पाकर द्रोणाचार्य उसका वध करने में सफल हो गए
तो हमें ‘भयकर क्षति होगी। जाओ, देर न करो।’

एक बड़ी सेना को लेकर घृष्टद्युम्न तुरन्त उस ओर चल पड़ा।
बड़ी कठिनाई से उसने सात्यकि को द्रोण के फन्दे से बचाया।

दूर से श्री कृष्ण के पांच जन्य की आवाज सुनाई दे रही थी।
युधिष्ठिर के कान उसी ओर थे। सात्यकि को सम्बोधित करते हुए
वह अपनी चिन्ता प्रगट करते हुए बोले—“सात्यकि ! मुना तुमने !
अकेले पांच जन्य की ही आवाज आ रही है, गाण्डीव धनुष की
टकार सुनाई नहीं देती। अर्जुन को कही कुछ हो तो नहीं गया ?”

सात्यकि ने ध्यान से सुना और बोला—“बात तो आपकी
ठीक है पर पांच जन्य भी तो अर्जुन के लिए ही बज रहा होगा।
अर्जुन के प्रहारों से शत्रु मर रहे होंगे तभी तो श्री कृष्ण शख बजाते
होंगे। यदि अर्जुन को कुछ हो जाता। तो पांच जन्य ही क्यों सुनाई
देता ?”

“नहीं सात्यकि, सम्भव है श्री कृष्ण ही उस दगा में स्वयं
लड़ने लग गए हो। जान पड़ता है अर्जुन सकट में पड़ गया है। आगे
सिन्धु राज की सेना है, पीछे द्रोण की। अर्जुन सुबह से व्यूह में घुसा
है और अब शाम होने को आई, अभी तक उसका पता नहीं चला।
जरूर दाल में कुछ काला है।”—युधिष्ठिर चिन्ता व्यक्त करते हुए
बोले।

“नहीं धर्मराज ! आप व्यर्थ ही चिन्तित हो गए। अर्जुन
को कोई परास्त कर सके, असम्भव है।” सात्यकि ने दृढ़ता पूर्वक
कहा।

“वह देखो फिर पांच जन्य की ही ध्वनि सुनाई दी—युधिष्ठिर
फिर चिन्तातुर होकर बोले—गाण्डीव की टकार सुनाई ही नहीं
देती। सात्यकि ! तुम अर्जुन के मित्र हो। वह तुम से बड़ा स्नेह
रखता है। वह तुम्हारी बड़ी प्रशंसा किया करता। जब हम वनवास
में थे तो कितनी ही बार अर्जुन को मैंने कहते सुना कि सात्यकि

जैसा ऊँचा वीर कही देखने को भी न मिलेगा। उस ओर तो देखो ! आकाश में कैसी घूल उड़ रही है। अर्जुन जरूर शत्रुओं से घिरा हुआ है और सकट में है। जयद्रथ कोई असाधारण महारथी नहीं, फिर उसकी रक्षा के लिए आज कई महारथी अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हैं। तुम अभी ही इसी घड़ी अर्जुन की सहायता को चले जाओ।

कहते कहते युधिष्ठिर बड़ ही अधीर हो उठे।

महाराज युधिष्ठिर के बार बार आग्रह पर सात्यकि ने नम्र भाव से कहा—‘धर्मराज ! आपकी आज्ञा मेरे सिर-आखों पर है और फिर अर्जुन के लिए मैं क्या नहीं कर सकता ? मैं उसके लिए अपने प्राण भी न्योछावर कर सकता हूँ, आपकी आज्ञा होने पर तो मैं एक बार देवताओं से भी टक्कर ले सकता हूँ। परन्तु मुझे वासुदेव और धनंजय ने जो आज्ञा दी है, वह भी मुझे याद है : उसी के कारण मैं आपको अकेला नहीं छोड़ सकता।’

उतावले होकर युधिष्ठिर पूछ बैठे—‘वह कौन सी आज्ञा है, जो मेरी आज्ञा के रास्ते में रोड़ा बन गई है ?’

‘महाराज ! रुष्ट न हो। उन्होंने जाते समय मुझ से कहा था कि—‘जब तक हम दोनों जयद्रथ का वध करके न लौटें तब तक तुम युधिष्ठिर की रक्षा करते रहना। खूब सावधान रहना, तनिक सी भी असावधानी न हो। तुम्हारे ही भरोसे हम युधिष्ठिर को छोड़े जाते हैं, द्रोण की प्रतिज्ञा को ध्यान में रखना और उनकी रक्षा में प्रत्येक प्रकार की बाजी लगा देना।’—अब आप ही बताइये मैं कैसे यहाँ से जा सकता हूँ ? वे मुझ पर भरोसा करके इतनी बड़ी जिम्मेदारी डाल गए हैं।’—सात्यकि ने विनीत भाव से कहा।

‘जिसके आदेश की तुम्हें इतनी चिन्ता है, उसके प्राणों की तुम्हें तनिक भी चिन्ता नहीं ! तुम इसी समय उसके काम न आओगे, तो कब आवेगी तुम्हारी मित्रता ?—आवेश में आकर, युधिष्ठिर बोले।

‘महाराज ! मुझे विश्वास है कि शत्रुओं की सम्मिलित शक्ति धनंजय की शक्ति के सोलहवें भाग के समान भी नहीं है। धनंजय अजेय है। आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे हैं।’—सात्यकि ने कहा।

“नही, नही यह तो तुम्हारा बहाना है। साफ़ क्यों नहीं कहते कि उस सकट पूर्ण स्थान पर तुम जाना ही नहीं चाहते।” — युधिष्ठिर अर्जुन के स्नेह में आकर कह गए।

सात्यकि के हृदय को इन शब्दों से ठेस लगी, आहत पक्षी की भाँति तड़प कर वह बोला—“महाराज। मुझे ज्ञात नहीं था कि आप रण क्षेत्र में खड़े होकर अपने इस अनन्य भक्त के लिए यह कटु शब्द भी प्रयोग कर सकेंगे। मुझे इसका बड़ा ही खेद है। तो भी आपको ललकारने और फटकारने का अधिकार है, इसलिए मैं सब कुछ सहन करूँगा। फिर भी शत्रुओं से आपकी रक्षा के लिए अन्त समय तक डटा रहूँगा।”

यह सुन युधिष्ठिर अपने शब्दों पर पश्चात्ताप करने लगे और बहुत सोच विचार के बाद बोले—“सात्यकि! मुझे क्षमा करना। वास्तव में अर्जुन मुझ अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। जब कभी मैं उसे सकट में पड़ा महसूस करता हूँ तो बेचैन हो जाता हूँ। तुम मेरी बात मानो और उसकी जाकर खबर लो। यहाँ मेरी रक्षा के लिए भीमसेन है, धृष्टद्युम्न है और भी कितने ही वीर हैं, तुम्हें मेरी आज्ञा माननी ही होगी।”

विषय होकर सात्यकि चलने की तैयार हुआ। धर्मराज ने सात्यकि के रथ पर हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री रखवा दी और खूब विश्राम करके तैयार हो रहे चंचल तथा चतुर घोड़े भी जुतवा दिए। आशीर्वाद देकर सात्यकि को विदा किया।

सात्यकि ने रथ पर सवार होकर भीमसेन से कहा—“महोदय भीमसेन! केशव और धर्मजय ने तो धर्मराज का मुझे सौंपा था, उसी भरोसे के साथ मैं युधिष्ठिर को तुम्हें सौंपता हूँ। उनकी अच्छी तरह देखभाल करना और द्रोण से संवधान रहना।”

सारथि ने घोड़े छोड़ दिए। हवा से बात करते घोड़े कौरव सेना की ओर तीव्र गति से भागने लगे। रास्ते में कौरव-सेना ने सात्यकि का डटकर मुकाबला किया। पर सात्यकि उनकी भारी सेना को तितर बितर करता हुआ आगे बढ़ता रहा।

जैसे ही सात्यकि युधिष्ठिर को छोड़कर अर्जुन की ओर चला, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पाण्डव सेना पर हमले करने आरम्भ

कर दिए । पाण्डव सेना की पक्षिया कई जगह से टूट गई और उन्हें पीछे हटना पड़ गया । यह देख युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए ।

X

X

X

X

युधिष्ठिर पुनः चिन्तित हो उठे । बोले — “अर्जुन अभी तक लौटा नहीं और सात्यकि की भी कोई खबर नहीं आई और उधर से बार बार पाँचजन्य की ध्वनि आ रही है, गाण्डीव की टंकार सुनने को मेरे कान बेचैन हो रहे हैं, टंकार सुनाई हो नहीं देती । मेरा मन शका के मारे काँप रहा है, न जाने क्यों मुझे चिन्ता हो रही है । कहीं मेरे प्रिय भ्राता अर्जुन पर कोई सकट तो नहीं आ गया । भीमसेन ? मैं बहुत चिन्ताकुल हों रहा हूँ । मेरी समझ में ही नहीं आता कि क्या करूँ ?”

युधिष्ठिर को इस प्रकार व्याकुल देखकर भीमसेन भी चिन्ताकुल हो गया, उसने कहा — “महाराज ! यद्यपि मैं आपको चिन्ता रहित करने के लिए आपकी आज्ञानुसार सब कुछ करने को तत्पर हूँ । तो भी मैं आपकी चिन्तानिमूल समझना हूँ । क्योंकि प्रिय भ्राता अर्जुन का कुछ विगाड़ सके, ऐसा तो मुझे कोई दिख ई नहीं देता । आपको मैंने कभी इतना अधीर होते नहीं देखा । आप निश्चिन्त रहिए अथवा मुझ से बताईये कि क्या करूँ ?”

“भैया ! न जाने क्यों मेरा दिल बहुत घबरा रहा है तू म तुरन्त जाओ और अर्जुन की खबर लो ।” — युधिष्ठिर बोले । “मेरे लिए तो अर्जुन की खबर लेना भी उतना आवश्यक है जितना आपको रक्षा करना । सात्यकि आपकी रक्षा का भार मुझ पर छोड़ कर गए हैं, अब आप ही बताईये कि मैं क्या करूँ ? आपकी आज्ञा का पालन करूँ या आपके प्रति अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए यही रहूँ ?” — भीमसेन ने कहा ।

“तुम मेरी चिन्ता न करो । मुझे यहां कोई खाये नहीं जा रहा । अर्जुन के प्राण बहुत मूल्यवान हैं । उसकी रक्षा पहले करो । वह है तो हमारे लिए सब कुछ है । वह न रहा और तुमने मेरे प्राणों की रक्षा कर लो तो भी सब कुछ चौपट हो जायेगा । मैं जो कुछ कहता हूँ वही करो । तुरन्त अर्जुन की सहायता को पहुँचो ।” — युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर कहा उस समय यह साफ जाहिर हो रहा था कि अर्जुन के प्रति उन्हें कितना स्नेह है ।

भीम सेन ने एक आज्ञाकारी अर्जुन की भांति कहा—“आप को आज्ञा सिर-आंखों पर । मैं जाता हूँ और वहाँ यदि अर्जुन भईया पर कोई सकट होगा तो अपने प्राण देकर भी उन्हें सकट-मुक्त करूँगा । पर आप अपने को सम्भाले रहे । कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन की चिन्ता ही में आप अपने को भूल जायें और शत्रु का दाव चल जाय । और ऐसा भी न हो कि आप मेरी तरह किसी और को भी मेरे पीछे पीछे ही भेज दें, और शत्रु के लिए मैदान साफ हो जाये ।”

“तुम निश्चित रहो भीम ! मैं सावधान हूँ । हाँ, तुम ज्योंही अर्जुन के पास पहुँचो और वह कुशल से हो तो सिंह-नाद करना । मैं तुम्हारे नाद को सुनकर समझ लूँगा कि अर्जुन सकुशल है ।”—युधिष्ठिर बोले ।

भीमसेन ने अपने रथ में आवश्यक अस्त्र-शस्त्र रखे और जाने से पूर्व धृष्टद्युम्न को पास बुलाकर कहा—महाराज युधिष्ठिर अर्जुन के लिए बड़े चिन्तित हैं । उनकी आज्ञा से मैं उसकी सहायता के लिए जा रहा हूँ । राजा की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है इसलिए मैं यह जानता हुआ भी कि अर्जुन भैया सकुशल होंगे और शत्रु को कोई शक्ति भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती, मैं उस ओर जा रहा हूँ । अब मैं महाराज की रक्षा का भार तुम पर सौंपता हूँ । द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा तो तुम्हें ज्ञात ही है । उनसे सावधान रहना ।”

“तुम विश्वास रखो जब तक मेरे शरीर में प्राण है, महाराज के पास भी कोई नहीं फट सकता ।” धृष्टद्युम्न ने आश्वासन देते हुए कहा ।—और भीम सेन का रथ कौरव सेना की ओर तीव्र गति से बढ़ने लगा ।

भीम के रथ को अपनी ओर आते देख कौरव-सेना में कोलाहल मच गया । सब ने उसका रास्ता रोक लिया, पर भीम सेन की वाण वर्षा के आगे किसी की न खली । रक्त की नदिया बहाता हुआ, कौरव सैनिकों के शवों पर से बढाता हुआ भीम सेन आगे बढ़ता गया । धृतराष्ट्र के ग्यारह बेटों को उसने यम लोक पहुँचाया ।

भीम इस प्रकार कौरव-सेना का संहार करता करता दूर निकल गया और आगे जाकर उसका वास्ता पड़ा, द्रोणाचार्य से ।

कर दिए । पाण्डव सेना की पक्तियां कई जगह से टूट गई और उन्हें पीछे हटना पड़ गया । यह देख युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए ।

X

X

X

X

युधिष्ठिर पुनः चिन्तित हो उठे । बोले — “अर्जुन अभी तक लौटा नहीं और सात्यकि की भी कोई खबर नहीं आई और उधर से बार बार पांचजन्य की ध्वनि आ रही है, गाण्डीव की टकार सुनने को मेरे कान बेचैन हो रहे हैं, टकार सुनाई ही नहीं देती । मेरा मन शका के मारे कांप रहा है, न जाने क्यों मुझे चिन्ता हो रही है । कहीं मेरे प्रिय भ्राता अर्जुन पर कोई सकट तो नहीं आ गया । भीमसेन ? मैं बहुत चिन्ताकुल हो रहा हूँ । मेरी समझ में ही नहीं आता कि क्या करूँ ?”

युधिष्ठिर को इस प्रकार व्याकुल देखकर भीमसेन भी चिन्ताकुल हो गया, उसने कहा — “महाराज ! यद्यपि मैं आपको चिन्ता रहित करने के लिए आपकी आज्ञानुसार सब कुछ करने को तत्पर हूँ । तो भी मैं आपकी चिन्तानिर्मूल समझना हूँ क्योंकि प्रिय भ्राता अर्जुन का कुछ विगाड़ सके, ऐसा तो मुझे कोई दिख ई नहीं देता । आपको मैंने कभी इतना अधीर होते नहीं देखा । आप निश्चिन्त रहिए अथवा मुझ से बताईये कि क्या करूँ ।”

“भैया ! न जाने क्यों मेरा दिल बहुत घबरा रहा है तुम तुरन्त जाओ और अर्जुन की खबर लो ।” — युधिष्ठिर बोले । “मेरे लिए तो अर्जुन की खबर लेना भी उतना आवश्यक है जितना आपको रक्षा करना । सात्यकि आपकी रक्षा का भार मुझ पर छोड़ कर गए हैं, अब आप ही बताईये कि मैं क्या करूँ ? आपकी आज्ञा का पालन करूँ या आपके प्रति अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए यही रहूँ ?” — भीमसेन ने कहा ।

“तुम मेरी चिन्ता न करो । मुझे यहां कोई खाये नहीं जाना रहा । अर्जुन के प्राण बहुत मूल्यवान हैं । उसकी रक्षा पहले करो । वह है तो हमारे लिए सब कुछ है । वह न रहा और तुमने मेरे प्राणों की रक्षा कर ली तो भी सब कुछ चौपट हो जायेगा । मैं जो कुछ कहता हूँ वही करो । तुरन्त अर्जुन की सहायता को पहुंचो ।” — युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर कहा उस समय यह साफ़ जाहिर हो रहा था कि अर्जुन के प्रति उन्हें कितना स्नेह है ।

भीम सेन ने एक आज्ञाकारी अर्जुन की भांति कहा—“आप की आज्ञा सिर-आखो पर । मैं जाता हूँ और वहाँ यदि अर्जुन भईया पर कोई सकट होगा तो अपने प्राण देकर भी उन्हें सकट-मुक्त करूँगा । पर आप अपने को सम्भाले रहे । कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन की चिन्ता ही में आप अपने को भूल जायें और शत्रु का दाव चल जाय । और ऐसा भी न हो कि आप मेरी तरह किसी और को भी मेरे पीछे पीछे ही भेज दे, और शत्रु के लिए मैदान साफ़ हो जाये ।”

“तुम निश्चित रहो भीम ! मैं सावधान हूँ । हाँ, तुम ज्योंही अर्जुन के पास पहुँचो और वह कुशल से हो तो सिंह-नाद करना । मैं तुम्हारे नाद को सुनकर समझ लूँगा कि अर्जुन सकुशल है ।”—युधिष्ठिर बोले ।

भीमसेन ने अपने रथ में आवश्यक अस्त्र-शस्त्र रखे और जाने से पूर्व धृष्टद्युम्न को पास बुलाकर कहा—महाराज युधिष्ठिर अर्जुन के लिए बड़े चिन्तित हैं । उनकी आज्ञा से मैं उसकी सहायता के लिए जा रहा हूँ । राजा की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है इसलिए मैं यह जानता हुआ भी कि अर्जुन भैया सकुशल रहे और शत्रु की कोई शक्ति भी उनका कुछ नही बिगाड़ सकती, उस ओर जा रहा हूँ । अब मैं महाराज की रक्षा का भार तुम पर सौंपता हूँ । द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा तो तुम्हें ज्ञात ही है । उनसे सावधान रहना ।”

“तुम विश्वास रखो जब तक मेरे शरीर में प्राण है, महाराज के पास भी कोई नहीं फटक सकता ।” धृष्टद्युम्न ने आश्वासन देते हुए कहा ।—और भीम सेन का रथ कौरव सेना की ओर तीव्र गति से बढ़ने लगा ।

भीम के रथ को अपनी ओर आते देख कौरव-सेना में गेलाहल मच गया । सब ने उसका रास्ता रोक लिया, पर भीम सेन ने बाण वर्षा के आगे किसी की न खली । रक्त की नदियाँ बहाता आ, कौरव सैनिकों के शवों पर से बढाता हुआ भीम सेन आगे बढ़ता गया । धृतराष्ट्र के ग्यारह बेटों को उसने यम लोक पहुँचाया ।

भीम इस प्रकार कौरव-सेना का सहार करता करता दूर निकल गया और आगे जाकर उसका वास्ता पड़ा, द्रोणाचार्य से ।

द्रोण उसका रास्ता रोक कर बोले—“भीम सेन ! मैं तुम्हारा शत्रु हूँ । मुझे परास्त किए बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकोगे । मेरी अनुमति पाकर ही तुम्हारा भाई अर्जुन व्यूह में प्रवेश कर सका है । पर तुम्हें जाने की मैं आज्ञा नहीं दूंगा ।”

आचार्य का विचार था कि अर्जुन की ही भाँति भीम सेन भी उनके प्रति आदर प्रगट करेगा । परन्तु भीम सेन तो उल्टा क्रुद्ध हो गया । उसने गरज कर कहा—“ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अर्जुन व्यूह में घुस गया है तो आप से आज्ञा लेकर नहीं आपकी कृपा वश ; नहीं, वरन अपने बल के बूते पर उसने व्यूह को तोड़ कर प्रवेश किया है । परन्तु आप याद रखिये कि अर्जुन ने आप पर दया की होगी, किन्तु आप मुझ से ऐसी आशा न रखिये । मैं आप का शत्रु हूँ और मेरे सामने जो कोई आयेगा, चाहे वह मेरा गुरु ही क्यों न हो, मेरे हाथों अपनी धृष्टता का फल चखे बिना न रहेगा । भीम किसी की दया का मोहताज नहीं है, वह बल के द्वारा अपना रास्ता बनाना जानता है ।”

द्रोण तो उसके स्वभाव से परिचित थे ही, उन्होंने क्रुद्ध भीम को शांत करने के लिए कहा—‘अरे वृकोदर ! पहले गुरु-ऋण तो चुकाता जा । जाता कहाँ है ?’

भीम और भी क्रुद्ध हो गया और खिसिया कर बोला—‘हा ठीक है, आपका ऋण भी चुकाता चलूँ । पर याद रहे कि मैं आपको पूरी तरह छका दूँगा ।’

“मूर्ख ! यह मत भूल कि मुझ से ही तूने वह विद्या प्राप्त की है, जिसके बल पर तू अकड रहा है ।”—कुपित होकर द्रोण बोले ‘ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह दिन लड़ गए, जब आप हमारे गुरु थे हमारे पिता तुल्य थे । तब हम आपका शीश झुकाते थे आप को पूजते थे । पर आज तो आप छूटते हैं स्वयं अपने को मेरा शत्रु कह चुके हैं । फिर भी आप चाहते हैं तो आप को शत्रु गुरु मानकर आप का गुरु ऋण चुकाए ही देता हूँ ।’

“यह कहता हुआ भीम सेन भूखे भोंडों की भाँति अपने रथ से उतरा और दौड़कर उसने द्रोण का रथ उठाकर फेंक दिया । द्रोण बड़ी कठिनाई से कूद कर अपने प्राण बचा सके । वे दौड़ कर दूसरे

रथ पर जा चढ़े, उसे भीम ने अपनी गदा से चूर चूर कर दिया। तब विवश हो द्रोण एक और रथ पर जा चढ़े, क्रुद्ध होकर पागल हाथी की भाँति भीम उस रथ की ओर भागा और इससे पहले कि द्रोण अपने बाणों से उसको गति को रोक पाये उसने उस रथ को अपनी बलिष्ठ भुजाओं से ऊपर उठा लिया और ऊपर की ओर फेंक कर अपने रथ पर आ चढ़ा। द्रोण उस बार भी बड़ी कठिनाई से बच सके।

भीम सेन इस प्रकार गुरु ऋण चुक कर आगे बढ़ गया। स्मरण रहे कि इस अदृशुन बल-प्रदर्शक के कारण ही भीम को मदोन्मत्त हाथी की उपमा दी जाती है, वास्तव में उसमें विचित्र बल था। वह अपनी गदा घुमाता हुआ कौरव सेना पर टूट पड़ा और असंख्य सैनिकों को यमलोक पहुँचाता हुआ व्यूह में घुस गया। उस दिन उसने द्रोण के कई रथ तोड़े थे, जिससे कौरव-सैनिक भय विह्वल हो गए थे और उसके सामने पड़ कर युद्ध करने का साहस उन्हें न होता था। वह कौरव सेना को चीरता फोड़ता जा रहा था कि भोजो ने उसका सामना किया। परन्तु जिन प्रकार अग्नि सूखे वन को जला कर भस्म कर डालती है, इसी प्रकार भीम ने भोजो को भी नष्ट कर डाला और आगे बढ़ने लगा। जितने भी सैनिक बल उसके सामने आये उन्हें मारता, पछाड़ता वह आगे ही बढ़ा। कहीं बाणों से वार करता तो कहीं गदा से सैनिकों का संहार करना आखिर वह उस स्थान पर पहुँच हा गया जहाँ अर्जुन जयद्रथ की सेना से लड़ रहा था।

अर्जुन को सुरक्षित देखते ही भीम सेन ने सिंह नाद किया। भीम का सिंह नाद सुन कर श्री कृष्ण और अर्जुन आनन्द के मारे छल पड़े और उन्होंने भी जोरों से सिंह नाद किया। इन सिंह नादों को सुन कर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके मन के लोक के बादल हट गए। उन्होंने अर्जुन को मन ही मन आशीर्वाद दिया। वे सोचने लगे—“अर्जुन अवश्य ही सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को वध कर देगा। उसके करने से दुर्योधन का साहस टूट जायेगा। भीष्म पितामह के वध के उपरान्त यह दूसरी बड़ी क्षति दुर्योधन को होगी, जो उसकी कमर तोड़ देगी। इससे वह युद्ध के भावी परिणाम

के सम्बन्ध में शक्ति हो जायेगा और सन्धि के लिए तैयार हो जायेगा सम्भव है कि जयद्रथ की समाप्ति पर ही इस युद्ध की समाप्ति हो जाय । मैं राज्य का न्यूनतम भाग लेकर भी सन्धि कर सकता हूँ । फिर हम दोनों, कौरव तथा पाण्डव भाईयों की भाँति प्रेम से रहने लगेंगे ।”

डधर युधिष्ठिर के मन में ऐसे विचार उठ रहे थे, उधर भीम तथा कर्ण में भयकर संग्राम हो रहा था । कर्ण ने भीम का रास्ता रोक कर कहा—अरे मूर्ख ! तू भी अर्जुन के साथ ही यमलोक जाने के लिए यहाँ पहुँच गया ?”

भीम कर्ण के शब्दों को सुन कर क्रुद्ध हो गया और आवेश में आकर उस पर टूट पड़ा वड़ा ही भयकर संग्राम होने लगा । भीम के बाणों से कर्ण का धनुष टूट गया । उसने दूसरा धनुष उठाया, पर भीम ने उसे भी तोड़ दिया । फिर कर्ण ने एक और धनुष उठा लिया, और बाण वर्षा आरम्भ कर दी । भीम सेन ने उसका रथ तोड़ डाला और घोड़ों व सारथि को मार डाला । दुर्योधन ने अपने दो भाईयों को कर्ण की रक्षा के लिए भेजा । परन्तु उनको भीम ने काल का ग्रास बना दिया ।

इस प्रकार दुर्योधन के कई भाईयों को भीम सेन ने मार गिराया । और कर्ण को बुरी तरह घायल कर दिया । दुर्योधन को कर्ण की दशा देखकर बड़ी चिन्ता हुई । उसने बार बार अपने भ्राताओं को कर्ण की रक्षा को भेजा, पर प्रत्येक भीम के हाथों मारा गया । कर्ण पहले तो शांत भाव से लड़ता रहा और बार बार ऐसे शब्दों का प्रयोग करता रहा, जिन से भीम विचलित हो जाता वह आवेश में आ जाता और पागल हाथों की भाँति प्रहार करता, परन्तु अन्त में कर्ण का मन दुर्योधन के भाईयों का वध होने के कारण क्रुद्ध हो गया । उसने जी तोड़ कर युद्ध आरम्भ कर दिया ।

भीम सेन ने कर्ण के कई रथ तोड़ डाले । अनेक धनुष काट डाले और बार बार ऐसे भीषण प्रहार किए जिनसे कर्ण के प्राणों पर आ वमती । कर्ण था वड़ा ही यशस्वी-प्रतापी योद्धा । वह अपनी रक्षा कर लेता । अन्त में कर्ण ने कुपित होकर भीम सेन के रथ को तोड़ डाला । उसके रथ के घोड़ों, और सारथि को मार डाला ।

भीम सेन ने रथ से कूद कर हाथियों के शवों के पीछे मोरचा जमाया । वहाँ से उसके हाथ जो भी लगा, रथों के टुकड़े, पहिए, टूटे हुए भाले, टूटी गदाएँ आदि, वही फेंक कर कर्ण को मारी । उस समय यदि कर्ण चाहता तो भीम को मार डालता, परन्तु जब ऐसा अवसर आया, जो उसे कुन्ती को दिया वचन याद आगया । उसने वचन दिया था कि वह अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव को न मारेगा । उसी वचन के अनुसार उसने भीम सेन का वध न किया ।

इतने में ही श्री कृष्ण की नजर भीम सेन पर पड़ गई जो निःशस्त्र होकर भी कर्ण के ऊपर प्रहार कर रहा था उन्होंने अर्जुन से कहा—“पार्थ ! उधर देखो भीम सेन को कर्ण मार डाल रहा है ।”

अर्जुन औरों से लड़ना भूल तुरन्त भीम सेन की रक्षा के लिए पहुँच गया ।

× × × ×

उधर सात्यकि और भूरि श्रवा में युद्ध हो रहा था । लड़ते लड़ते सात्यकि और भूरि श्रवा दोनों के घोड़े मारे गए, घनुष कट गए और रथ भी ब्रेकार हो गए । इसके पश्चात् दोनों वीर ढाल तलवार लेकर भूमि पर उतर आये । और आपस में भिड़ गए । दोनों ने ही बड़े पराक्रम का प्रदर्शन किया । दोनों ही एक दूसरे से बढ़ कर थे । अतः दोनों अपने अपने बाहु बल से एक दूसरे को पराजित करने की चेष्टा करते रहे । परन्तु किसी ने भी हार न मानी और दोनों की ढालें कट गई । तब वे आपस में मल्ल युद्ध करने लगे ।

दोनों एक दूसरे की छाती से छाती टकराते और गिर पड़ने । एक दूसरे को कसकर पकड़ लेते और जमीन पर लोटने लगते । फिर अचानक उछल कर खड़े हो जाते । और एक दूसरे को धक्का देकर मार गिराते । इसी प्रकार दोनों युद्ध रत रहे ।

इतने में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—“धनजय ! सात्यकि थक गया प्रतीत होता है । जान पड़ता है भूरि श्रवा उसकी जान ही लेकर छोड़ेगा ।”

परन्तु अर्जुन तो कौरव सेना से भिड़ा था, फिर उसे यह बात भी भली नहीं लगी थी कि जब वह सात्यकि को युधिष्ठिर की रक्षा का भार सौंप कर आया था, तो सात्यकि वहाँ युधिष्ठिर को छोड़कर चला क्यों आया। इसलिए वह युद्ध करने में दत्तचित्त रहा। उसने सात्यकि की चिन्ता नहीं की।

परन्तु श्री कृष्ण ने पुनः अर्जुन का ध्यान उसी ओर खींचा। बोले—“अर्जुन ! सात्यकि को जब भूरिश्रवा ने युद्ध के लिए ललकारा था, वह तभी थका हुआ था और अब तो वह बहुत ही थक गया है। उसकी रक्षा करो वरना तुम्हारा प्रिय मित्र भूरिश्रवा के हाथों मारा जायेगा।”

इतने में भूरिश्रवा ने सात्यकि को दोनों हाथों में दबोच कर ऊपर उठा लिया और भूमि पर पटक दिया। कौरव सैनिक चीख पड़े—“सात्यकि मारा गया। सात्यकि मारा गया।”

“अर्जुन ! देखो वृष्णि कुल को सब से प्रतापी वीर सात्यकि भूमि पर असहाय सा पड़ा है। जा तुम्हारे प्राण बचाने और तुम्हारी सहायता करने आया था उसी की तुम्हारे सामने हत्या हो रही है। तुम्हारे देखते ही देखते तुम्हारा मित्र अपने प्राण गवाने वाला है।” श्री कृष्ण ने अर्जुन से एक बार पुनः सात्यकि की सहायता करने का आग्रह किया।

अर्जुन ने देखा कि भूमि पर पड़े उसके मित्र सात्यकि को भूरिश्रवा उसी प्रकार खींच रहा है, जिस प्रकार सिंह हाथी को घसीट रहा हो। यह देख अर्जुन भारी चिन्ता में पड़ गया। उसे कुछ सूझ न पड़ा कि क्या करे ?

अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—“मधु सूदन ! भूरिश्रवा मुझ से नहीं लड़ रहा, फिर मैं क्या करूँ ? जब कोई वीर दूसरे से लड़ रहा हो तो तिसरे को उस में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। पर मैं अपने मित्र का वध भी अपनी आखों के आगे नहीं देख सकता अब आप ही बताइये कि क्या करूँ ?”

श्री कृष्ण बोले—“अर्जुन ! कई वीरों से युद्ध कर चुकने के कारण सात्यकि अब निहत्था, निस्हाय और थका हुआ है, वह बुरी

तरह भूरि श्रवा के हाथों में फसा है तुम्हे इस समय इस सम्बन्ध में तटस्थता नहीं बरतनी चाहिए ।”

ज्यों ही अर्जुन ने सात्यकि की ओर देखा, उस समय सात्यकि नीचे पड़ा था और भूरि श्रवा उसके शरीर को एक पांव से दबा कर दाहिने हाथ में तलवार लेकर उस पर वार करने को उद्यत था । यह देख अर्जुन से न रहा गया । उसने उसी क्षण तान कर बाण चलाया । बाण लगते ही भूरि श्रवा का दाहिना हाथ कटकर तलवार सहित दूर भूमि में जा गिरा ।

हाथ कटे हुए भूरि श्रवा ने पीछे मुड़ कर अर्जुन को देखा तो क्रुद्ध होकर बोला :—

“अरे, कुन्ती पुत्र, मुझे तुम से ऐसे अवीरोचित कार्य की आशा न थी जब मैं दूसरे से लड़ रहा था, तुम्हारी ओर देख तक न रहा था, तो तुमने पीछे से मुझ पर आक्रमण क्यों किया ? ऐसा अधार्मिक, अनियमित और अवीरोचित युद्ध करना तुम्हे किसने सिखाया, कृप ने या द्रोण ने ? मैं जानता हूँ कि क्षत्रियों को कलकित करने वाला यह कृत्य तुमने स्वयं नहीं किया होगा, अवश्य ही तुम्हे श्री कृष्ण ने उकसाया होगा ? वही है ऐसे अधर्मों के मूल ।”

इस प्रकार भूरि श्रवा के मुख से अपनी और श्री कृष्ण की निंदा सुनकर अर्जुन ने कहा—“भूरि श्रवा ! दूसरे के मुँह पर धूँकने से पहले अपना मुँह पानी में देख लिया होता । तुम मेरे दाहिने हाथ सात्यकि का वध कर रहे थे, जब कि वह निशस्त्र था और भूमि पर पड़ा था । तुम्हारे इस अधर्म को मैं सह लेता, तो क्यों ? वह कृत्य तुम्हारा कौन सा ही धर्म के अनुसार था ? और जब अभिमन्यु वुरी तरह थक गया था, निःशस्त्र था, उसका कवच फट गया था, तब कई महाशक्तियों द्वारा चारों ओर से घेर कर उस निहत्थे बालक को मारना कौन से धर्म के अनुसार उचित था ? हमारा नाश करने के लिए तुम धर्म को भूल जाते हो, और जब तुम्हारे अधर्म को हम रोकते हैं तो तुम धर्म का दुहाई देते हो । वृद्धावस्था में क्या बुद्धि भी गवाली है ?”

भूरि श्रवा सुनकर मौन रह गया और प्रायश्चित्त करने के लिए वह वही एक स्थान पर श्रमरण अनशन कर के बैठ गया ।

तभी सात्यकि को होश आया और उसने चारों ओर देखा । अपने अपमान से क्रोध के मारे वह जल रहा था, उसने आव देखा न ताव, तलवार से ध्यान मग्न भूरि श्रवा का सिर कोट दिया ।

×

×

×

+

अर्जुन जयद्रथ की खोज में चारों ओर रक्त की नदिया बहाता फिर रहा था, पर कहीं जयद्रथ नजर ही न आता था । तब वह चिन्तित होकर बोला “सखे ! सूर्य अस्त होने वाला है और जयद्रथ कहीं दिखाई नहीं देता ! क्या करू ? क्या मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाऊंगा ?”

श्री कृष्ण ने पश्चिमी दिशा की ओर देखा । वे भी चिन्ता मग्न हो गए और कुछ ही देर में सूर्य प्रकाश लुप्त हो गया । कौरव सेना में हर्ष छा गया और पाण्डव सेना का एक एक महारथी और सैनिक चिन्ताकुल हो गया । स्वयं अर्जुन दुःख के मारे शिथिल हो गया ।

तभी जयद्रथ आनन्द के मारे उछलता हुआ सामने आ गया और बार बार पश्चिम की ओर देखने लगा । तभी श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—“पार्थ ! वह देखो जयद्रथ प्रफुल्लित होकर बारम्बार पश्चिम को ओर देख रहा है । बस इसी समय निशाना बाधकर ऐसा बाण मारो, जो उसके सिर को काटता हुआ निकल जाये । हा देखो वह अपना दैवी, अभिमन्त्रित बाण चलाना, तांकि वह सिर काटता हुआ निकल ही न जाये, बल्कि सिर को लेजा कर जयद्रथ के पिता की गोद में गिराये ।”

श्री कृष्ण ने एक ऐसा बाण पहले ही जयद्रथ बध के लिए रख छोड़ा था, श्री कृष्ण की आज्ञा पाकर उसी बाण को गाण्डीव पर चढाकर अर्जुन ने मारा, और बाण जयद्रथ का सिर उड़ाता हुआ निकला । जयद्रथ का सिर उस बाण की मार से कट कर उसके बाप की गोद में जाकर पड़ा । और जब उसका बाप शोकातुर होकर उठा तो सिर भूमि पर गिर पड़ा और उसके सिर के सौ टुकड़े हो गए ।

इधर ज्यों ही जयद्रथ का सिर कटा, त्यों ही सूर्य चमक उठा । इस अद्भुत चमत्कार को देख कर सभी चकित रह गए ।

अर्जुन भी विस्मित था। श्री कृष्ण बोले—“पार्थ ! चकित न हो। मैंने ही एक विद्या के द्वारा सूर्य पर अधकार का परदा डाल दिया था, ताकि जयद्रथ बाहर आ जाये। सो मेरी इच्छा पूर्ण हुई इससे तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।”

अर्जुन ने श्री कृष्ण के प्रति बड़ी ही कृतज्ञता प्रगट की।

इधर कौरव सेना में शोक छा गया और पाण्डव सेना सिंह नाद कर उठी।



* पचासवां परिच्छेद *

द्रोणाचार्य का अन्त

युद्ध के चौदहवें दिन जब सायंकाल के उपरान्त भी युद्ध जारी रहा और बड़ी बड़ी मशालों के प्रकाश में दोनों ओर की सेनाएं जूझती रही।

कर्ण और घटोत्कच में उस रात बड़ा ही भयानक युद्ध हुआ घटोत्कच और उसकी सेना ने इतनी भयंकर बाण वर्षा की कि दुर्योधन के झुण्ड के झुण्ड सैनिक मारे गए। प्रलय सा मच गया। यह देख कर दुर्योधन का दिल कापने लगा।

कौरव वीरों ने कर्ण से अनुरोध किया कि किसी न किसी तरह आज घटोत्कच का काम तमाम कर दिया जाय। वरना यह राक्षस हमारी सेना को तबाह कर डालेगा। घटोत्कच ने कर्ण को भी इतनी पीड़ा पहुंचाई थी कि वह भी क्रुद्ध हो रहा था। कौरवों का अनुरोध सुनकर उसकी उत्तेजना और भी प्रबल हो उठी। वह आपे में न रहा और उसने देवराज इन्द्र द्वारा दी हुई उस शक्ति-अस्त्र का प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया, जिसे उसने बड़े यत्न से अर्जुन का वध करने के लिए सम्भाल कर रक्खा हुआ था। घटोत्कच मारा गया। कौरव सेना की जान में जान आई। पाण्डवों की सेना को बड़ा शोक हुआ।

इतने पर भी युद्ध बन्द नहीं हुआ। द्रोणाचार्य बाणों की इतनी तीव्र बौछार कर रहे थे कि पाण्डव सैनिक गाजर मूली की भांति

कट रहे थे। रहे सहे पाण्डव सैनिक भी भयभीत हो गए थे।

पाण्डव महारथी चिन्तित हो उठे। श्री कृष्ण ने कहा—
“अर्जुन ! आज द्रोणाचार्य से अपनी सेना की रक्षा करना आसान नहीं है। जब तक वे हैं, तुम्हें अपनी सफलता की आशा ही नहीं करनी चाहिए। और जब तक उनके हाथों में शस्त्र हैं, तब तक तुम्हें उनके परास्त होने की आशा नहीं होनी चाहिए।”

“फिर क्या किया जाय, मधु सूदन ! कुछ तो उपाय बताइये।”—अर्जुन ने विनीत भाव से पूछा।

कृष्ण बोले—“एक ही उपाय है वह यह कि किसी प्रकार उन्हें हत प्रद कर दिया जाये। वे जब किसी अपने प्रिय के वध का समाचार सुनेंगे, तो वे व्याकुल होकर रह जायेंगे और उनसे शस्त्र चलेगा ही नहीं, वस उसी समय उन्हें मारा जा सकता है।”

“परन्तु पहले उनके किसी प्रिय जन का मृत्यु होनी चाहिए”—अर्जुन सोचते हुए बोला।

“नही, इसके लिए यह उपाय किया जा सकता है कि कोई उनके पास जाकर यह समाचार सुनाये कि अश्वस्थामा मारा गया, वस काम बन जायेगा।”—श्री कृष्ण बोले ! अर्जुन मुनकीर सन्न रह गया। इस प्रकार असत्य मार्ग का अनुकरण करना उसे ठीक न जचा। ऐसा करने से उसने साफ इन्कार कर दिया। पाण्डव पक्ष के दूसरे वीरों ने भी इसे नापसन्द कर दिया।

तब श्री कृष्ण ने कहा—“सोच लो !—आज द्रोणाचार्य तुम्हारी सेना को तहस नहस कर देगे। कल तुम्हारे महारथियों को मार डालेंगे और इस प्रकार तुम सब मारे जाओगे। यही नहीं, बल्कि तुम्हारे परिवार का भी एक प्रकार से नाश हो जायेगा, जो तुम्हें विजय दिलाने अथवा दुर्योधन के अन्याय को परास्त करने के लिए तुम्हारे साथ जीवन की आशा त्याग कर यहाँ आये हैं।”

कृष्ण की बातों का जादू की भाँति प्रभाव हुआ। और युधिष्ठिर सोचने लगे—“मेरी भूल से मेरे आता जी मेरे साथ वनों में भटकते फिरे, और दास बनकर रहे और आज मेरे ही कारण सहस्रो शूरवीर द्रोण के हाथों मारे जायेंगे। सहस्रो ललनाएँ विवहा होगी, लाखों बालक अनाथ हों जायेंगे। उसके बाद भी अन्याय का

साम्राज्य रह जायेगा। इसलिए जहाँ अपना यश बढ़ाने के लिए मैंने अपने भ्राताओं तथा अपने सहयोगियों को यातनाएँ पहुँचाई हैं, वहाँ आज अपने यश को हानि पहुँचाने का एक कार्य करके मैं इतने प्राण बचा सकता हूँ। अपने परिवार की रक्षा कर सकता हूँ और अन्याय का सिर नीचा होने का रास्ता खोल सकता हूँ।”

यह सोच कर वे बोले—“ठीक है, इस असत्य भाषण द्वारा द्रोण को मैदान से हटाने का अपयश मैं अपने ऊपर लूँगा। श्री कृष्ण की बताई युक्ति हमें अपनानी ही चाहिए।”

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर असत्य भाषण द्वारा शत्रु को परास्त करने को तैयार हो गए। और फिर तो सभी पाण्डव पक्षीय वीर उसी पक्ष में हुए। भीम सेन को एक उपाय और सूझा। उसने अपनी गदा से अश्वस्थामा हाथी को मार डाला, और जोर जोर से चिल्लाने लगा—“अश्वस्थामा को मैंने मार डाला, अश्वस्थामा मारा गया।”

जब यह शब्द द्रोणाचार्य के कान में पड़े तो वे सन्न रह गए। उन्होंने पुनः ध्यान से सुना और निकट ही खड़े युधिष्ठिर से पूछा—“युधिष्ठिर क्या यह संहो है कि अश्वस्थामा मारा गया।”

उस समय युधिष्ठिर जी कड़ा करके कह गए—“हाँ यह ठीक है कि अश्वस्थामा मारा गया, उसी समय उन्हें धर्म का ध्यान आया और वे धीरे से बोले—“परन्तु मनुष्य नहीं बरन हाथी” इन शब्दों को द्रोणाचार्य के कानों में न पड़ने देने के लिए, पाण्डव पक्षीय सैनिकों ने उसी समय ढोल, मृदंग और शंख बजाने आरम्भ कर दिए और उनकी ऊँची आवाज में युधिष्ठिर की आवाज दब कर रह गई।

फिर तो द्रोणाचार्य शोकानुर होकर खड़े के खड़े रह गए। इस समाचार से उन्हें इतना धक्का लगा कि वे शस्त्र सुध बुध खींचकर लड़ना भूल गए और अपने हृदय को सम्भालने की चेष्टा करने लगे। तभी भीम सेन ने आकर उन्हें बड़ी जली कटी सुनाई। बोलो—“कहिए द्रोणाचार्य श्रेष्ठ! अपना धर्म छोड़ कर क्षत्रियों का धर्म अपनाया और वह भी अन्याय का पक्ष लेने के लिए? कहा गई आपकी नीति आपका धर्म? आपने बेचारे अभिमन्यु बालक को

अधर्म पूर्वक मरवा दिया । इसी वल पर विद्वान तथा नीतिवान बनते हो ?”

एक तो वह अश्वस्थामा की मृत्यु का मिथ्या समाचार सुन कर ही खिन्न हो रहे थे, इन शब्दों से वे और भी दुखित हो गए । उन्होंने अपने शस्त्र फेक दिए । अपने को उन्होंने युद्ध करने में असमर्थ पाया । तभी धृष्टद्युम्न ने दौड़ कर उनका सिर काट डाला । और द्रोणाचार्य ससार से उठ गए ।

कौरवों की सेना में हाँ-हाँकार मच गया और पाण्डव सेना आनन्द मनाने लगी । परन्तु युधिष्ठिर बहुत दुखित थे ।



बाज्र कवूतर की ओर झपटता है।

दुःशामन ने भीम को अपनी ओर झपटते हुए देख कुछ घबरा सा गया, फिर भी वह वहाँ खड़े रहने पर विवश था बाण घनुष पर चढ़ाकर उसने भीम पर प्रहार किया ही था कि भीम ने अपने बाण से उसके बाण को तोड़ डाला और घनुष को काट डाला। उसके बाद उसने एक छलांग मारी और दुःशामन को घर दाँबा। दोनों भुजाओं में उसे दाब कर नीचे गिरा दिया, फिर लगा उसके हाथ पाँव तोड़ने। घूसों की मार से ही दुःशामन अर्धमरा हो गया। नीचे पड़ा पड़ा ही वह गाली वके जा रहा था और भीम सेन उसे इस प्रकार मार रहा था जैसे कुम्हार मिट्टी को ठीक करने के लिए ऊपर घूसे लगाता है। थोड़ी ही देर में भीम ने दुःशामन का एक हाथ तोड़ कर फेंक दिया। वह दृश्य बड़ा ही विभत्स था। भीम उसे मार रहा था और कहता जाता था - “बुला कौन है तेरा सहायक ? देख तो कौन आता है तुझे बचाने के लिए ? मूर्ख !” द्रौपदी को असहाय देखकर तो तूने अपनी वीरता दिखाने के लिए नीचता पूर्ण कार्य किए और उस पर भी अपने पर गर्व करता रहा अब बता कौन है जो तेरी मुझ से रक्षा कर सके ? कौन है जो तुझे छुड़ा सके ?”

भीम सेन की मार से दुःशामन के प्राण पखेरू उड़ गए। इस प्रकार भीम ने उसका रक्त बहा दिया उस समय भीम सेन का रूप बड़ा भयानक था। वह उठा और चारों ओर आनन्द तथा गर्व से नृत्य सा करने लगा, उस समय उसके भाषण रूप की देखकर कौरव सैनिक कांप उठे। भीम ने सिंह नाद किए और गर्जना की—“कहा है दुःशामन का दुष्ट भाई दुर्योधन ! अब उसका नम्बर है। कहीं छुपा बंठा है, मेरे सामने आये ताकि उसे भी शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दू। अब वह मरने को तैयार हो जाय।”

उस समय भीम की सिंह गर्जना, उसके भयानक रूप और उसकी दहाड़े कौरवों का दिल दहला रही थी। यहाँ तक कि एक बार तो कर्ण भी कांप उठा। कर्ण की ऐसी दशा देख कर शल्य ने उसे दिलासा देते हुए कहा :—

“कर्ण ! तुम जैसे वीर को साहस त्यागना शोभा नहीं देता। दुःशामन की मृत्यु से दुर्योधन बहुत शोकातुर हो गया है अब उसकी

आखें तुम्ही पर हैं । यदि तुम धीरज खो दोगे तो कैसे काम चलेगा ? वह देखो अर्जुन तुम्हारा वध करने की इच्छा से वाण वर्षा कर रहा है ।”

इतना सुनते ही कर्ण को होश आया । और वह क्रुद्ध होकर अर्जुन पर टूट पड़ा ।

× × × ×

दुर्योधन दुःशासन को मृत्यु के कारण बहुत ही शोक विह्वल था वह चिन्ता मग्न खड़ा था, अश्वस्थामा उसके पास आया और बोला—“भैया दुःशासन का जिस प्रकार वध हुआ, उसे देखकर ही रोगटे खड़े हो जाते हैं । भीम ने बड़ा ही अमानुषिक व्यवहार किया है जो हो, अब हमारे लिए युद्ध बन्द कर लेना ही उचित है । आप पाण्डवों से सन्धि कर लीजिए ।”

सन्धि का नाम सुनते ही दुर्योधन का खून-खौल उठा और क्रुद्ध होकर बोला, ‘प.पी भीम सेन ने जगली पशुओं सा व्यवहार किया और तुम कहते हो उन लोगों से मैं सन्धि कर लूँ जो ऐसे असभ्य हैं जिन्होंने मेरे भाईयों को जयद्रथ को और मेरे सेनापतियों को मार डाला । नहीं मैं लड़ूँगा । अन्तिम समय तक लड़ता रहूँगा ।”

उसके सिर पर तो मृत्यु नाच रही थी, वह भला कैसे मानता आवेश में आकर उसने पाण्डवों पर भयकर आक्रमण कर दिया ।

× × × ×

कर्ण और अर्जुन में भीषण संग्राम छिड़ा था । दोनों ही टक्कर के महारथी थे । कर्ण ने एक ऐसा वाण चलाया जो काले नाग की भाँति विष की आग वरसाता हुआ अर्जुन की ओर चला । श्री कृष्ण ने जब देखा कि सर्पमुखास्त्र अर्जुन की ओर आ रहा है, तो उन्होंने युक्ति पूर्वक रथ नीचा कर लिया और वह अस्त्र अर्जुन के मुकुट को गिराता हुआ निकल गया । यदि श्री कृष्ण ऐसा न करते, तो वह अस्त्र अर्जुन के प्राण ले लेता । अर्जुन को इस बात से बड़ा क्रोध आया और उसने बड़ी तीव्र गति से वाण वर्षा आरम्भ कर दी । इतने में ही समयवश कर्ण के रथ का एक पहिया अचानक धरती में घस गया । कर्ण घबरा गया और बोला — “अर्जुन ! मेरे रथ का पहिया कीचड़ में घस गया है, तनिक ठहरो मैं उसे कीचड़ से निकाल

कर सूखी धरती पर रख दू। तुम तो धर्म-युद्ध के घनी हो। युद्ध धर्म को निभा कर तुमने जो यश कमाया है, उसे कलकित न करना तनिक बाण वर्षा वन्द करलो।”

श्री कृष्ण ने चिढ़कर कहा—“अरे बाहू रे। धर्म के ठेकेदार जब अपनी जान पर बन आई तो तुम्हें धर्म याद आया, पर जब द्रौपदी को अपमानित करा रहे थे, तब तुम्हें धर्म याद नहीं आया? नौ सिखिये युधिष्ठिर को कुन्ति मे फसाते समय तुम्हें धर्म याद नहीं आया। दुधमुए बालक अभिमन्यु को तुम सात महारथी घेरकर मार रहे थे तब तुम्हें धर्म याद क्यों नहीं आया?”

श्री कृष्ण की भिड़की सुनकर कर्ण को कुछ कहते न बना और वह अपने अटके हुए रथ पर से ही युद्ध करने लगा। उसने एक बाण बड़ा ही ताक कर मारा, जो अर्जुन को जा लगा जिससे अर्जुन कुछ देर के लिए विचलित हो गया। बस इस समय का ही उपयोग करने के लिए कर्ण भट से कूद पड़ा, रथ का पहिया कीचड़ से निकालने के लिए। उसने भरसक प्रयास किया पर उस का भाग्य उससे रूठ चुका था, पहिया हजार प्रयत्न करने पर भी न निकला।

यह स्थिति देख श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—“पार्थ ! इस सुन्दर अवसर को हाथ से मत जाने दो।”

और अर्जुन ने बाण वर्षा आरम्भ करदी। कर्ण ने उस समय परशुराम से सीखी विद्या को प्रयोग करना चाहा। पर उसे वह याद न रही। और अर्जुन के एक बाण ने उसका सिर घड़ से अलग कर दिया।



* वाचनवा परिच्छेद *

दुर्योधन का अन्त

हिंसात्मक युद्ध के द्वारा अधर्म अथवा अत्याचार को नष्ट करने की आशा करना व्यर्थ है। हथियार बन्द युद्ध से अत्याचार तथा अन्याय कभी नहीं मिटते। तभी तो भगवान् महावीर ने कहा है कि—

“वैर से वैर निकालने में वैर ही की वृद्धि होती है।” धार्मिक उद्देश्यों के जो भी युद्ध किए जाते हैं, उनमें भी अनिवार्य रूप से अन्याय और अधर्म होते हैं। ऐसे युद्धों के परिणाम स्वरूप अधर्म की वृद्धि ही होती है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार यदि हम महाभारत के युद्ध को देखें तो इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि कितनी ही बातें पाण्डवों की ओर से भी धर्म विरुद्ध ही हुईं। कर्ण का वध किस प्रकार हुआ, इसे देखकर, द्रोणाचार्य के वध की गाथा पढ़कर और भूरिश्रवा के वध में अपनाए गए उपायों को देखकर तो यह और भी प्रगट हो जाता है कि युद्ध दूसरे पापों अधर्मों तथा अन्यायों का कारण बन जाता है, चाहे वह किया गया हो अधर्म अथवा अन्याय के प्रतिकार के ही लिए।

जब दुर्योधन को कर्ण के वध का समाचार मिला तो उसके शोक की सीमा न रही। यह दुःख उसके लिए असहाय हो उठा। वह बार बार कर्ण को स्मरण करके विलाप करने लगा। उसकी इस शोचनीय स्थिति को देखकर कृपाचार्य ने कहा—“राजन् ! आपने जो जो कार्य, जिस जिस व्यक्ति को सौंपा, उसी ने प्रसन्नता पूर्वक

उसे किया और करते करते अपने प्राणों का उत्सर्ग भी कर दिया। इस प्रकार हमारे कितने ही महारथी मारे गए। अब युद्ध के इस भयानक दावानल को शांत करना ही उचित है। आपको अपनी रक्षा के लिए अब सन्धि कर लेनी चाहिए। युद्ध बन्द ही आपको श्रेयस्कर होगा।

यद्यपि दुर्योधन हताश हो चुका था तथापि कृपाचार्य के मुख से सन्धि का शब्द सुनकर वह आवेश में आगया। कहने लगा— “आचार्य! क्या आप चाहते हैं कि मैं अपने प्राण बचाने के लिए पाण्डवों से सन्धि कर लूँ? नहीं, यह तो कायरता होगी। हमे वीरता से काम लेना होगा क्या मैं भीरु की भाँति अपने प्राण बचालूँ जब कि मेरी खातिर मेरे बन्धु बाधवों व मित्रों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया है। यदि मैं ऐसा करूँगा तो ससार मुझ पर थूकेगा, लोग कहेंगे कि दुर्योधन ने अपने वृद्ध जनो, मित्रों तथा बन्धु बाधवों को तो मरवा डाला और जब वे सब मारे गए और अपने प्राणों का प्रश्न आया तो सन्धि कर ली। लोक निन्दा सहकर मैं कौन सा सुख भोगने को जीता रहूँ? जब मेरे अपने सभी मित्र व बन्धु मारे जा चुके तो सन्धि करके कौन सा सुख भोग सकूँगा? अब तो जो भी हो, हमे लड़ते ही रहना है। क्या तो अन्त में हम विजयी होंगे, अन्यथा अपने प्राण देकर अपने बन्धु बान्धवों के पास पहुँच जायेंगे।”

सभी कौरव वीरों ने दुर्योधन की इन बातों की सराहना की। सभी ने उसका समर्थन किया और सब ने युद्ध जारी रखना ही उचित ठहराया। इस पर सब की सम्मति से मद्र राज शल्य को सेनापति बनाया गया। शल्य बड़ा ही पराक्रमी, वीर और शक्तिमान था। उसकी वीरता अन्य मृत कौरव सेनापतियों से किसी भाँति कम नहीं थी। शल्य के सेनापतित्व में आगे युद्ध आरम्भ हुआ।

पाण्डवों की सेना के संचालन का कार्य स्वयं युधिष्ठिर ने सम्भाला। युद्ध आरम्भ होते ही महाराज युधिष्ठिर ने स्वयं ही शल्य पर आक्रमण किया। जो शांति को मूर्ति से प्रतीत होते थे अब क्रोध की प्रति मूर्ति से बनकर बड़े प्रचण्ड वेग से शल्य पर टूट पड़े। उनका भीषण-स्वरूप बड़ा ही आश्चर्य जनक था। देर तक दोनों में द्वन्द्व युद्ध होता रहा। आखिर युधिष्ठिर ने शल्य पर एक शक्ति-

अस्त्र का प्रयोग किया जिसके द्वारा मद्रराज शल्य घायल होकर घड़ाम से रथ पर से इस प्रकार गिरे जंसे उत्सव-समाप्ति के बाद इन्द्र-ध्वजा ।

उनके गिरते ही वच्ची खुशी कौरव-सेना में कोलाहल मच गया । शल्य के मर जाने से कौरव-सेना नि सहाय सी हो गई । भय विह्वल होकर सभी सैनिक कांपने लगे । परन्तु रहे सहे धृतराष्ट्र पुत्रों ने साहस से काम लिया और सब मिलकर भीम सेन पर टूट पड़े । बाणों की वर्षा आरम्भ करदी, पर उन्मत्त हाथी की भाँति भीम सेन धार वार सिंह नाद करता हुआ उन पर भपटता रहा और कुछ ही देर में उसने अपने बाणों से उन सभी को मार गिराया । फिर तो कौरव सैनिकों में और भी भय छा गया । भीम सेन तो आनन्द के मारे उछलता कूदता रण भूमि में दहाड़े मारता घूमने लगा, मानो आज ही उसका जीवन सार्थक हुआ हो । तेरह वर्ष तक दबा रखी क्रोध की अग्नि उस दिन भड़की और दुर्योधन के अतिरिक्त शेष रहे सभी धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर वह सन्तुष्ट सा प्रतीत होता था । वह हर्ष से फूला न समाता था ।

दूसरी ओर शकुनि और सहदेव का युद्ध हो रहा था । तलवार की पंनी धार के समान नोक वाला एक बाण शकुनि पर चलाते हुए सहदेव ने कहा — ‘सूखे शकुनि ! ले अपने पापों का दण्ड भुगत ही ले ।’

वह बाण शकुनि के हृदय में प्रविष्ट हो गया, जिससे वास्तव में उसको अपने पापों का फल मिल ही गया । एक चीत्कार के साथ वह ढेर हो गया । युधिष्ठिर, भीम और सहदेव ने उस दिन इसी प्रकार अनेक दुर्योधन पक्षीय वीरों को मार गिराया ।

×

×

×

×

कौरव-सेना के लगभग मारे वीर सदा के लिए सो गए । कुरु क्षेत्र मानव शवों से पटा पड़ा था । चांगे और कटे हुए हाथ पैर, घड़ और सिर बिखरे हुए थे । उनसे दुर्गन्ध उठने लगी थी । अकेला दुर्योधन रह गया था, जिसका हृदय टूट गया था और वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर उधर भटकता फिर रहा था । परन्तु उसे शांति न मिलती थी ।

अभी कृपाचार्य शेष थे । उन्हें अपने मन की व्यथा सुनाते हुए दुर्योधन बोला—‘आचार्य ! अब तो सब तहस नहस हो गया । मैं अकेला हूँ न जाने मुझे भी कब मृत्यु आ दबाये । दूरदर्शी विदुर शायद पहले ही इस युद्ध के परिणाम को जानते थे, तभी तो वे मुझे बार बार समझाते रहते थे और युद्ध करने को भी उन्होंने बहुत मना किया था । वे चाहते थे कि मैं सन्धि कर लूँ । पर मुझ पर न जाने कैसा भूत चढ़ा था कि मैंने उनकी एक न सुनी और अपनी हठ से अपना सब कुछ गवा बैठा । अब मैं निस्सहाय हूँ । कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ । राज्य पाण्डवों के हाथ में चला गया, इसका मुझे दुःख नहीं है, दुःख है तो इस बात का कि मेरे अपने सभी चले गए । मैं उनकी याद में तड़पने रहने के लिए जीवित बचा हूँ । पिता जी जन्म के अन्ध हैं और माता पिता जी के कारण चक्षु हीन हैं । वे हमें याद कर करके रोते रहा करेगी । हाय ! मेरा अन्त इस प्रकार होगा, मुझे इसकी कभी आशा नहीं थी ।’

कृपाचार्य ने उसे धैर्य बन्धाते हुए कहा—‘दुर्योधन ! इस प्रकार अधीर क्यों होते हो । तुमने तो साहस त्यागना कभी सीखा नहीं । तुम अभी अपने को अकेला क्यों समझते हो । अश्वस्थामा और मैं अभी तुम्हारे साथ हैं । तुम साहस पूर्वक युद्ध करो । देखो ! तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम भीरु की भाँति जीना नहीं चाहते । जिस मनुष्य ने सदा शत्रुओं को ललकारा है वह विपदा आने पर इस प्रकार विलाप करने लगे, यह उसके लिए लज्जा की बात है ।’

“नहीं, आचार्य जी ! अब क्या रह गया है, जिस पर मैं गर्व करूँ । मैं जिन पर गर्व करता था, वे सभी मारे गए । अब युद्ध की बात मैं चाहे न करूँ तो भी युद्ध तो मेरे वध के बाद ही बन्द होगा । मैं भाग कर कहा जा सकता हूँ । भीम मुझे जीवित थोड़े ही छोड़ेगा । पर मैं निराश हो चुका हूँ । युद्ध से मैं ऊब गया हूँ । मेरे जीवित रहने का तो कोई उपाय ही नहीं । पर खेद है तो इस बात का कि समय रहते मेरी आँखें न खुली और अपने बन्धु बांधवों के हत्यारों से मैं बदला न ले सका ।’ दुर्योधन ने व्याकुल व निराश होकर कहा ।

कृपाचार्य बोले—‘दुर्योधन ! तुम्हें इतना हताश होने की

आवश्यकता नहीं है। तुम चाहो तो तुम में अब भी ऐसी शक्ति आ सकती है कि कोई शत्रु तुम्हें न मार सके। किन्तु बदला लेने की भावना छोड़ दो सर्वज्ञ जिन देव का कथन है की बदला लेने की भावना वाला उतना ही कर्मवर्धन करता है, पार्थ विस्मय पूर्वक दुर्योधन ने पूछा—“क्या कह रहे हैं आचार्य जी। क्या वास्तव में कोई ऐसा उपाय भी है कि मैं शत्रुओं द्वारा न मारा जा सकूँ?”

“हा हा तुम्हारे घर ही एक ऐसी सन्नारी है, बल्कि देवी है, जिसकी दृष्टि तुम्हारे जिस अंग पर पड़ जायेगी, उसी अंग पर शत्रु का कोई शस्त्र या अस्त्र असर न कर सकेगा।” कारण ससार का वरणक हस्त स्पष्ट नहीं देखता नीची भावना से शुभ प्रकृति संग्रह है ऐसा जिन देव भगवान का कथन है वह शुभ प्रकृति नत्रो और भावना द्वारा तुम्हें आयेगी फिर कोई शस्त्र अस्त्र असर नहीं करेगा।—“कौन है वह देवी। मुझे शीघ्र बताइये।”

“वह है तुम्हारी जननी, गाधारी। वह पतिव्रता नारी यदि तुम्हारे शरीर पर एक बार दृष्टि डाल दे तो तुम्हारा शरीर इस्पात का हो जायेगा। परन्तु तुम्हें उसके आगे विलकुल नगनावस्था में जाना होगा।”—कृपाचार्य ने कहा।

“पर मेरी माता की आखों पर तो पट्टी बन्धी रहती है, वे कभी अपनी आखों से पट्टी खोलती ही नहीं, वे अपनी पट्टी खोल सकेंगी?”

“हा, हा पुत्र प्रेम के कारण वे ऐसा कर सकती है।”

“पर मैं उनके सामने नग्न कैसे जाऊँ?”

“यदि तुम्हें अपने प्राणों की रक्षा करनी है, तो यह करना ही होगा।”

कृपाचार्य के शब्द सुनकर दुर्योधन सोचने लगा कि वह क्या करे। बहुत देर तक वह सोचता रहा और अन्त में उमने वैसा ही करने का निश्चय कर लिया।

नग्न होकर वह अपनी माता के पास चला। श्री कृष्ण ने उसे देख लिया और वे समझ गए कि दुर्योधन वैसा क्यों कर रहा है। उन्होंने तुरन्त ही एक बहुत बड़ा, बड़े बड़े मोटे पुष्पों से बना

हुआ हार लिया। जिसकी कई लडिया थी। और दुर्योधन के निकट पहुंच कर कह।—“दुर्योधन ! नग्नावस्था में कहां चल दिए।”

“माता जी के पास जा रहा हूँ।” दुर्योधन ने सत्य ही कहा।

“माता के पास जा रहे हो और नग्नावस्था में ? वड्डे आश्चर्य की बात है।” श्री कृष्ण ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा।

“बात ही कुछ ऐसी है।”—केशव समझ गये और विचार किया की हारे हुये शत्रु का विश्वास नहीं करना चाहिए और दाव नहीं देना चाहिये—

कोई भी बात हो पर गुप्तागो को तो ढक लिया होता। लो यह पुष्प हार पहन लो जिससे जघाओं का भाग ढक जाये। तुम्हारा उद्देश्य भी पूरा हो जायेगा और व्यवहार धर्म भी निभ जायेगा।”

उसने खुशी खुशी हार पहन लिया।

माता के पास जाकर उसने अनुनय विनय की। गांधारी ने अपनी आखों की पट्टी उतार डाली और उस पर दृष्टि डाली। गले में पड़ी पुष्प माला देखकर बोली—“मूर्ख ! तूने यह क्या किया ? यह हार गले में क्यों डाल लिया ?”

“लाज के मारे।”

“कहीं तुम्हें रास्ते में श्री कृष्ण तो नहीं मिल गए थे ?” गांधारी ने शक्ति होकर पूछा।

“हां. उन्होंने ही तो मुझे यह माला पहनाई है।”

“मूर्ख ! वस उन्होंने तुझे माला क्यों पहनाई तेरे प्राण ही हर लिए।”

“वह क्यों।”

“पगले ! माता ने कहा—फूलों से ढकी जंघाओं पर हो शत्रु वार करेगा और याद रख इसके कारण तेरी मृत्यु होगी।”

“यदि मैं अब पुष्प मालाएँ उतार फेंकूँ तो।”

“अब क्या होता है। वह वही समय था पट्टी उतारने से। जा श्री कृष्ण इस अवसर पर भी तुम्हें मात दे गए। मुझे खेद है कि मेरी दृष्टि से तू लाभ न उठा पाया।”

गांधारी के यह वचन सुनकर दुर्योधन को बड़ा खेद हुआ होता व निराश होकर वह वापिस चला आया ।

अपने शोक विह्वल हृदय को लिए दुर्योधन इधर उधर फिरता था । श्री कृष्ण द्वारा उसकी योजना असफल कर दिए जाने से वह बहुत दुखित हुआ और अन्त में जब उसे कहीं भी शांति न मिली तो गदा लेकर एक जलाशय को ओर चला गया । जहां वह छुपकर अपने जीवन पर विचार करने लगा । जितना वह विचार करता, उतना ही उसे दुःख होता । वह अपने को सर्व प्रकार से असफल व्यक्ति समझने लगा ।

दूसरे दिन जब रणक्षेत्र में दुर्योधन दिखाई न पड़ा, तो पांडव सोचने लगे कि वह कहीं जा छुपा है । पांचों ने सोचा कि उसे खोजना चाहिए । जहां कहीं हो, ढूँढकर उसे दण्ड दिया जाय । पांचों श्री कृष्ण सहित उसकी खोज में निकले । चलते चलते वे उसी जलाशय पर पहुंच गए जहाँ दुर्योधन छिपा बैठा था । युधिष्ठिर ने उसे ललकार कर कहा—“धूर्त ! अब अपने प्राण बचाने के लिए यहाँ आ छुपा है । अपने परिवार और मित्रों का नाश कराने के पश्चात् स्वयं बच निकलना चाहते हो । तुम्हारा हर्ष और अभिमान क्या हुआ ? तुम क्षत्रिय कुल में पैदा होकर भी कायरता दर्शाते हो ? बाहर निकलो और क्षत्रियोचित ढंग से युद्ध करो । युद्ध से भाग कर जीवित रहने की चेष्टा करके कौरव कुल को कलंकित करने वाले दुर्योधन ! तुम अपने कर्मों से अपने कुल पर बहुत कालिख पोत चुके, अन्त समय पर और कालिख क्यों पोतते हो ?”

युधिष्ठिर की ललकार सुनकर दुर्योधन व्यथित होकर बोला—“युधिष्ठिर ! यह मत समझना कि मैं प्राण बचाने के लिए यहाँ छप कर बैठा हूँ । मैं भयभीत होकर भी नहीं आया ।”

“तो फिर किस लिए आये है यहाँ श्रीमान् ?”—भीम ने चिढ़कर पूछा ।

“मैं अपनी थकान मिटाने के लिए इस ठण्डे स्थान पर चला आया था, युधिष्ठिर ! मैं न तो डरा हुआ हूँ न मुझे प्राणों का कोई मोह है । फिर भी, सच पूछो तो युद्ध से मेरा जी ऊब-गया है । मेरे

सगे सम्बन्धी सब मारे जा चुके हैं। बस मैं अकेला ही बचा हू। राज्य सुख का मुझे लोभ नहीं। यह सारा राज्य अब तुम्हारा ही है। जाओ और निश्चित होकर राज्य काज सम्भालो।”—दुर्योधन ने क्षुब्ध होकर कहा।

“दुर्योधन ! कदाचित् तुम्हें याद होगा कि एक दिन तुम्हीं ने कहा था कि सुई की नोक जितनी भी भूमि नहीं दूंगा। शांति प्रस्ताव जब हमने तुम्हारे पास भेजा, तुमने उसे ठुकरा दिया। श्री कृष्ण को भी तुमने निराश लौटाया। हमें पांच गांव देना भी तुम्हें स्वीकार न हुआ। अब कहते हो कि सारा राज्य तुम्हारा ही है। शायद तुम्हें अपने सारे पाप याद नहीं रहे। तुमने हमें जो यातनाएं पहुंचाईं और द्रौपदी का जो अपमान किया था, वे सब तुम्हारे महा पाप तुम्हारे प्राणों की बाल माग रहे हैं। अब तुम बच नहीं पाओगे।”—युधिष्ठिर ने गरजते हुए कहा।

युधिष्ठिर के मुख से जब दुर्योधन ने यह कठोर बातें सुनी तो उसने गद्दा उठा ली और आगे आकर बोला—“अच्छा, यही सही, बिना युद्ध किए तुम्हें चैन नहीं पड़ने वाला, तो फिर आजाओ। मैं अकेला हू, थका हुआ हू। मेरे पास कवच भी नहीं है। और तुम पांच हो, तथा तरो ताजा हो। इसलिए एक एक करके निबट लो। चलो।”

यह सुन युधिष्ठिर बोले—“यदि अकेले पर कईयों का आक्रमण करना धर्म नहीं है, तो इसका ध्यान तुम्हें बालक अभिमन्यु को मारते समय क्यों नहीं आया था ? तुम्हीं ने तो घिरवाकर अभिमन्यु को मरवाया था। सात सात महारथी एक बालक को इकट्ठा मिल कर मारें तो धर्म है, और जब हम पांच हो और तुम अकेले हो तो अधर्म है। अब तुम्हें धर्म के उपदेश सूझ रहे हैं। सारे जीवन भर अधर्म किये और अब अन्त समय में धर्म का आडं लेते हो ? चलो, हम तुम्हारी ही बान मान लेते हैं, चुन लो हम में से किसी एक का। जिस तुम चाहो वही तुम से युद्ध करेगा। यदि द्वन्द्व युद्ध में तुम हम में से किसी को, जिससे तुम लड़ोगे, हरा दिया तो सारा राज्य तुम्हारा ही होगा, तुम्हारी विजय हो जायेगी और यदि मारे गए, तो अपने पापों का बदला नरक में पाओगे।”

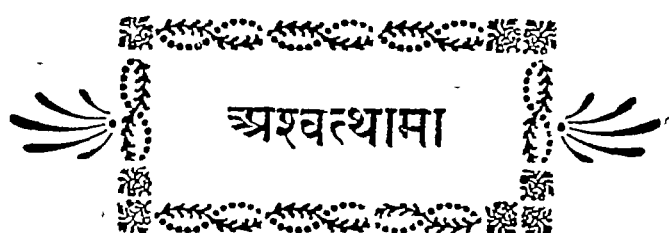
यह सुन दुर्योधन ने भीम से गदा युद्ध करने की इच्छा प्रगट की। भीम सेन भी राजी हो गया और गदा युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों की गदाएँ जब परस्पर टकराती तो उनमें से चिनगारिया निकल पड़ती थी। इस प्रकार बड़ी देर तक युद्ध जारी रहा।

इसी बीच दर्शक आपस में चर्चा करने लगे कि दोनों में जीत किस की होगी उस समय श्री कृष्ण ने अर्जुन से इशारे में ही बताया कि यदि भीम दुर्योधन की जाँघ पर गदा मारेगा तो जीत जायेगा भीम सेन ने उस सकेत को देख लिया और आव देखा न ताव एक गदा पूरा शक्ति से दुर्योधन की जाँघ पर दे मारी। जाँघ पर गदा लगनी थी कि दुर्योधन पृथ्वी पर कटे पेड़ की भाँति गिर पड़ा। यह देख भीम सेन और उन्मत्त हो गया, मन में बसी घृणा क्रोध के साथ उबल पड़ी। उसी उन्मत्त दशा में उसने घायल पड़े दुर्योधन के माथे पर जोर की लात जमाई।

उसका यह कार्य श्री कृष्ण को अच्छा न लगा उन्होंने बहुत बुरा भला कहा। भीम सेन चुप रह गया दुर्योधन जाँघ टूट जाने के कारण अधमरी अवस्था में वहीं पड़ा रहा। और पाण्डव अपने शिविर की ओर लौटने लगे तो दुर्योधन ने श्री कृष्ण को बड़ी जली कटी सुनाई।



—* त्रेपनवाँ परिच्छेद *



अश्वत्थामा

दुर्योधन पर जो कुछ बीती उसका वृत्तांत सुनकर अश्वत्थामा बहुत क्षुब्ध हो उठा। उसे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि भीम सेन ने दुर्योधन की जाघ पर गदा प्रहार किया और इस प्रकार युद्ध के नियमों का उल्लंघन करके अर्धम तथा पाप किया। साथ ही उसे अपने पिता द्रोणाचार्य के मरने के लिए जो कुछ कुचक्र रचा गया था, वह भी अभी भूला नहीं था। वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया। उसकी मुठिया बार बार बन्ध जाती और दांत पीसने लगता। उसके जी में आया कि वह कहीं भीम को अकेला पाये तो उसे अपने क्रोध की ज्वाला में भस्म करके रखदे। वह तुरन्त दुर्योधन के वचे खुचे सैनिकों को लेकर उस स्थान की ओर चल पड़ा, जहाँ दुर्योधन पड़ा हुआ मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था।

जाते ही उसने दुर्योधन के सामने प्रतिज्ञा की कि आज ही रात्रि को मैं पाण्डवों का वीज नष्ट करके, रूहगा मृत्यु की प्रतीक्षा करते दुर्योधन के मन में पुनः पाण्डवों के प्रति विद्वेष की ज्वाला भड़क उठी। उसने पड़े पड़े ही आस पास खड़े लोगों के सामने विधिवत अश्वत्थामा को अपनी सेना का सेनापति बना दिया और बोला—“प्यारे अश्वत्थामा! अब तुम्हीं मुझे शांति दिला सकते हो। तुम्हें सेनापति बनाना कदाचित् मेरे जीवन का अन्तिम काय है। मैं बड़ी आशा से तुम्हारी बाट जोहता रहूँगा। मत भूलना कि

पाण्डवों ने तुम्हारे यशस्वी पिताका असत्य भाषण के द्वारा वध किया था।”

X

X

X

X

सूर्य डूब चुका था, रात्रि का अन्धकार धीरे धीरे बढ़ रहा था। चारो ओर अन्धेरा ही अन्धेरा था। तारों के धूमिल प्रकाश के होते हुए भी अन्धकार का साम्राज्य छाया था। अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा एक वरगद के पेड़ के नीचे रात बिता रहे थे। कृत और अश्वस्थामा बहुत थके हुए थे, वे पड़ते ही खरटि भरने लगे। पर विद्वेष की ज्वाला में जल रहे अश्वस्थामा को नींद कहां। वह तो पाण्डवों के नाश का उपाय सोच रहा था।

चारो ओर कई प्रकार के पशु पक्षियों की बोलियां गूंज रही थी। उनके होते हुए भी अश्वस्थामा की विचार तरंग चल रही थी।

उस वरगद की शाखाओं पर कौरवों के झुण्ड के झुण्ड बसेरा कर रहे थे। रात्रि में वे सब सोये हुए थे कि कहीं से एक उल्लू उड़ कर आया और आते ही उन सोते कौओं पर प्रहार कर दिया। एक एक करके चोचे मार मार कर उल्लू उन्हें चीरने-फाड़ने लगा। रात का समय था। उल्लू तो भलि भाँति देख रहा था, किन्तु कौओं को अन्धेरे में कुछ दिखाई ही नहीं देता था। वे चिल्ला चिल्ला कर मरते गए। अकेले उल्लू के आगे सैकड़ों कौओं की भी एक न चली।

यह देख अश्वस्थामा सोचने लगा—“जिस प्रकार अकेले उल्लू ने सोते हुए सैकड़ों कौओं को मार डाला, यदि मैं भी सोते हुए पाण्डवों, जिन्होंने मेरे साथियों को मार डाला है, धृष्टद्युम्न जिसने मेरे पिता की हत्या की और उनके साथियों पर आक्रमण कर दू तो उन्हें मार सकता हूँ। वे बहुत हैं, मैं अकेला हूँ। इसी प्रकार मैं उनसे बदला ले सकता हूँ। वे सोते होंगे, इस लिए मेरा सामना न कर पायेंगे।”

तभी उसके मन में प्रश्न हुआ—“क्या यह धर्म युक्त कार्य होगा?”

अश्वस्थामा सोचने लगा—“पाण्डवों ने भी तो अधर्म से मेरे पिता का वध किया है, भीम ने भी तो अधर्म से दुर्योधन की जाघ तोड़ी है। फिर अधर्म पाण्डवों को अधर्म से मार डालने में क्या

हानि । शत्रु की कमजोरी से लाभ उठाना अनुचित नहीं है । और फिर हमारे पास अब इतनी सैना कहा जो धर्म युद्ध में उनसे जीत सके । मुझे अपनी प्रतिज्ञा भी तो पूर्ण करनी है ।”

वहुत सोच विचार के उपरान्त अश्वस्थामा ने उल्लू और कौओं वाली नीति का पालन करने का ही निश्चय किया और कृपाचार्य को जगा कर उसने अपना निश्चय कह सुनाया । अश्वस्थामा की बात सुनकर कृपाचार्य बहुत लज्जित हुए । वे बोले—“अश्वस्थामा ऐसे अन्याय पूर्ण विचार और तुम जैसे शूरवीर के मन में । बेटा ! हमने जिसके लिए शस्त्र उठाये थे, वह तो मृत्यु की बाट जोह रहा है । हम उस अधर्मी तथा अन्यायी की ओर से लड़े और हार गए । अब अन्त में हमें ऐसा अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे हमारा आत्मा कलकित हो जाये । अब तो हमारे लिए यही उचित है कि धृतराष्ट्र महा सती गांधारी और महा बुद्धिमान विदुर के पास चलें और जो वे आज्ञा दे वही करे । हमें यह शोभा नहीं देता कि इस प्रकार महा पाप कमाए । यह तो महा अधर्म की बात है । तुम्हें ऐसी बात सोचनी भी नहीं चाहिए ।”

यह सुनकर अश्वस्थामा का क्रोध तथा शोक और भी प्रबल हो गया । बोला—‘मामा जी ! धर्म भी धर्मियों के साथ ही चलता है । जिसे आप अधर्म कह रहे हैं, वह मेरी दृष्टि में धर्म है । पिता जी और दुर्योधन को जिस प्रकार मारा गया क्या वह धर्म के अनुकूल है ? तो फिर उसका बदला लेने के लिए मैं भी अधर्म का रास्ता क्यों न लू ? मैं तो निश्चय कर चुका हूँ कि अभी ही पाण्डवों के शिविर में घुस जाऊंगा और अपने पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न, दुर्योधन के हत्यारे भीम सेन और उसके भाईयों को जो कि कवच उतारे सो रहे हैं, जाकर मार डालूंगा मैं अपने पिता और दुर्योधन का ऋण इसा प्रकार चुका सकता हूँ ।”

कृपाचार्य अपने भाजे की बातें सुनकर बड़े व्यथित हुए कहने लगे—‘अश्वस्थामा तुम्हारा यश सारे ससार में फैला है, क्रोध में आकर ऐसा कार्य मत करो जो तुम्हारे यश की सफेद चादर पर रक्त के छीटे लगा दे । सोते हुए शत्रु को मारना कदापि धर्म नहीं है । तुम यह विचार त्याग दो ।’

भल्लाकर अश्वस्थामा बोला—“मामा जी ! आपने यह क्या धर्म धर्म की रट लगा रखी है पिता जी का बध धृष्टद्युम्न ने उस समय किया था जब वे अस्त्र शस्त्र फेंक कर ध्यान मान बैठे थे । इस प्रकार कर्म का बन्धन पाण्डवों के हाथों कभी का टूट चुका ! कर्ण कीचड़ में फसे रथ के पहिए को निकाल रहा था अर्जुन ने तब उस पर प्रहार किया, भूरिश्रुवा पर अर्जुन ने पीछे से वार किया और भीम सेन ने दुर्योधन की कमर के नाचे वार किया, क्या तब भी धर्म रह गया । पाण्डवों ने तो अधर्म को बाढ ही ला दी तब मैं धर्म से बन्धा रहूँ तो क्यों ? आप चाहे इसे धर्म कहे अथवा अधर्म, मैं तो जा रहा हूँ अपने पिता और दुर्योधन का बदला लेने ।”

इतना कह कर अश्वस्थामा पाण्डवों के शिविर की ओर जाने को उठा । यह देख कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उठ खड़े हुए और बोले—“अश्वस्थामा ! आज तुम महा पाप करने पर उताह हो गए हो । पर हम तुम्हें अकेले शत्रु के मुह में नहीं जाने देंगे ।”

यह कहकर वे दोनों भी अश्वस्थामा के साथ हो लिए ।

X X X X

आधा रात बोल चुकी थी । पाण्डवों के शिविरों में सभी सैनिक मृदु निद्रा में साये पड़े थे । धृष्टद्युम्न भी पड़ा था । इतने में ही अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ वहाँ पहुँच गया । अश्वस्थामा पहले धृष्टद्युम्न के शिविर में घुसा और जाते ही धृष्टद्युम्न पर कूद पड़ा साये पड़े धृष्टद्युम्न को उसने कुचल कुचल कर मार डाला और फिर सभी पांचाल राज कुमारों को इसी प्रकार मार डाला । इसके बाद उसने द्रौपदी के पुत्रों की हत्या की ।

कृपाचार्य और कृतवर्मा ने भी अश्वस्थामा का हाथ बटाया और तीनों ने ऐसे ऐसे अमानुषिक अत्याचार किए जैसे कि कभी सुनने में भी नहीं आये । यह कुकृत्य करके अश्वस्थामा ने शिविरों में आग लगा दी, आग बड़े जोरो से भड़क उठी और शिविरों में फैल गई । इससे सोये पड़े सभी सैनिक जाग पड़े और भयभीत होकर डधर उधर भागने लगे । अश्वस्थामा ने उन सभी को मार डाला जो उसके हाथ लगे । फिर उल्लास पूर्वक बोला—“अब मैं प्रसन्न हूँ । मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण किया, अब मैं दुर्योधन को यह शुभ

समाचार जाकर सुनाता हूँ।”

यह कहकर वह अपने मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ उस स्थान की ओर चला, जहाँ दुर्योधन अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था।

× × × ×

दुर्योधन के पास पहुँच कर अश्वस्थामा ने हर्षातिरेक से कहा—“महाराज दुर्योधन ! आप अभी जीवित है क्या ? देखिये, मैं आपके लिए कैसा शुभ समाचार लाया हूँ, जिसे सुनकर आपका कलेजा अवश्य ही ठण्डा हो जायेगा और आप शांति से मर सकेंगे। देखिये ! मैंने कृपाचार्य व कृतवर्मा ने सारे पांचाल समाप्त कर दिए। पाण्डवों के भी सारे पुत्र हमने मार डाले। द्रौपदी का कोई पुत्र जीवित नहीं छोड़ा। पाण्डवों की सारी सेना को हमने या तो जलाकर मार डाला अथवा कुचल कर या अग प्रत्यग तोड़ कर खत्म कर डाला। इस प्रकार पाण्डवों के वीरों और सैनिकों का सर्व नाश हो गया, वस पाण्डवों के पक्ष में अवज्ञात ही व्यक्ति जीवित है और आपके पक्ष के हम तीन। अब तो आपको अवश्य ही शांति मिली होगी। हम ने उन सभी को सोते हुए ही जा घेरा था और इस प्रकार आपके साथ हुए अन्याय का बदला ले लिया।”

दुर्योधन को यह समाचार सुनकर अपार हर्ष हुआ, बोला—“प्रिय गुरु भाई ! आज तुमने वह कार्य किया है, जिसे भीष्म पितामह, वीर कर्ण और द्रोणाचार्य भी न कर पाय। मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो गई। अब मैं शांति पूर्वक मर सकूँगा। तुम्हारे समाचार सुनने के लिए ही जो रहा था।” इतना कह कर दुर्योधन ने तीन हिचकियाँ ली और उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

× × × ×

पाण्डवों को अपनी सेना, अपने वीरों और द्रौपदी के पुत्रों के इस प्रकार मारे जाने से बड़ा ही दुख हुआ। युधिष्ठिर बोले—“अभी अभी हमें विजय प्राप्त हुई थी। और मैं समझता था कि यह नशिवाकारी युद्ध समाप्त हो गया। पर अश्वस्थामा के पापी हाथों ने पोंसा पलट दिया। उसने एक पाप करके हमारी जीत को भी पराजय में परिवर्तित कर डाला। ओह ! हम क्या जानते थे कि द्रोण पुत्र अश्वस्थामा इतना नीच हो सकता है। सोते शत्रुओं पर तो आज

तब किसी ने प्रहार नहीं किया—पर सम्भव है यह मेरे उस कर्म का फल हो जो मैंने द्रोण के साथ किया था। हाय ! मैं युद्ध जीत कर भी वुग्री तरह हारा। अब द्रौपदी के दिल पर क्या वीतेगी ? मेरी दशा उस पाजी की सी हो गई जो महा सागर को तो सफलता पूर्वक पार कर लेता है, पर अन्त में छोटे-से नाले में डूबकर नष्ट हो जाता है।

श्री कृष्ण उन्हें सांत्वना देते हुए बोले—“महाराज युधिष्ठिर ! व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ ? जो होना था हो गया। मरता क्या न करता की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए अश्वस्थामा ने यह सब कुछ किया है। उसने जो कुछ किया वह अपनी आत्मा के साथ ही अन्याय किया है। वीरो का कर्तव्य है कि वे खोकर दुखी और पाकर प्रफुल्लित न हो। आप तो धर्म राज हैं। आपको विलाप करना शोभा नहीं देता। जो हुआ, उसे भूल जाओ।”

द्रौपदी की दशा तो बड़ी ही दयनीय थी। जब उसने अपने बेटों के मारे जाने का समाचार सुना, वह सन्न रह गई। पागलों की भाँति अपने बल नोचने लगी, कपड़े फाँडने लगी। बड़ी कठिनाई से उसे होश में लाया गया। तब वह बल खाती नागिन की भाँति जल्दी से पाण्डवों के पास पहुँची और उसने गरज कर कहा—“क्या आप लोगों में कोई भी ऐसा नहीं है जो मेरे पुत्रों की हत्या का बदला ले सके ?”

इस चुनौती के उत्तर में भीम सेन कड़क कर बोला—“जब तक भीम सेन जीवित है। तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। मैं यथय लेता हूँ कि कोई मेरा साथ दे अथवा न दे जब तक तुम्हारे पुत्रों के हत्यारे अश्वस्थामा से बदला न ले लूँगा, तब तक चैन से न बैठूँगा।”

भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर एक बार तो सभी सन्न रह गए। परन्तु फिर उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सभी उसके साथ चलने को तैयार हो गए। सभी भ्राता अश्वस्थामा की खोज में निकल पड़े। ढूँढ़ते ढूँढ़ते आखिर उन्होंने गंगा के तट पर व्यास के आश्रम में छुपे अश्वस्थामा का पता लगा ही लिया और जाकर उसे घेर लिया।

अश्वस्थामा और भीम सेन में युद्ध छिड़ गया। दोनों वीर

समाचार जाकर सुनाता हूँ ।”

यह कहकर वह अपने मामा कृपाचार्य उस स्थान की ओर चला जहाँ दुर्योधन रहा था ।

X X X

दुर्योधन के पास पहुँच कर अश्वस्थामा ने “महाराज दुर्योधन ! आप अभी जीवित है क्या, लिए कैसा शुभ समाचार लाया हूँ, जिसे सुनकर अवश्य ही ठण्डा हो जायेगा और आप शांति से मर गये । मैंने कृपाचार्य व कृतवर्मा ने सारे पांचाल समाप्त कर के भी सारे पुत्र हमने मार डाले । द्रौपदी का कोई छोड़ा । पाण्डवों की सारी सेना को हमने या तो जला अथवा कुचल कर या अग्न प्रत्यग तोड़ कर खत्म कर प्रकार पाण्डवों के वीरों और सैनिकों का सर्व नाश पाण्डवों के पक्ष में अब शांति ही व्यक्ति जीवित है और हम तीन ! अब तो आपको अवश्य ही शांति मिली होगी उन सभी को सोते हुए ही जा घेरा था और इस प्रकार हुए अन्याय का बदला ले लिया ।”

दुर्योधन को यह समाचार सुनकर अपार हर्ष हुआ “प्रिय गुरु भाई ! आज तुमने वह कार्य किया है पितामह, वीर कर्ण और द्रोणाचार्य भी न कर पाय । सन्तुष्ट हो गई । अब मैं शांति पूर्वक मर सकूँगा । तुम्हारे सुनने के लिए ही जो रहा था ।” इतना कह कर दुर्योधन हिचकिया ली और उसके प्राण पखेरू उड़ गए ।

X X X

पाण्डवों को अपनी सेना, अपने वीरों और द्रौपदी के इस प्रकार मारे जाने से बड़ा ही दुख हुआ । युधिष्ठिर बोले— अभी हमें विजय प्राप्त हुई थी । और मैं समझता था कि यह कारी युद्ध समाप्त हो गया । पर अश्वस्थामा के पापी हाथों ने पलट दिया । उसने एक पाप करके हमारी जीत को भी पराजय में परिवर्तित कर डाला । ओह ! हम क्या जानते थे कि द्रोण पुत्र अश्वस्थामा इतना नीच हो सकता है । सोते शत्रुओं पर तो आज

तक किसी ने प्रहार नहीं किया—पर सम्भव है यह मेरे उस कर्म का फल हो जो मैंने द्रोण के साथ किया था। हाय ! मैं युद्ध जीत कर भी बुगी तरह हारा। अब द्रौपदी के दिल पर क्या वीतेगी ? मेरी दशा उस पाजी की सी हो गई जो महा सागर को तो सफलता पूर्वक पार कर लेता है, पर अन्त में छोटे-से नाले में डूबकर नष्ट हो जाता है।

श्री कृष्ण उन्हें सांत्वना देते हुए बोले—“महाराज युधिष्ठिर ! व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ ? जो होना था हो गया। मरता क्या न करता की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए अश्वस्थामा ने यह सब कुछ किया है। उसने जो कुछ किया वह अपनी आत्मा के साथ ही अन्याय किया है। वीरो का कर्तव्य है कि वे खोकर दुखी और पाकर प्रफुल्लित न हो। आप तो धर्म राज है। आपको विलाप करना शोभा नहीं देता। जो हुआ, उसे भूल जाओ।”

द्रौपदी की दशा तो बड़ी ही दयनीय थी। जब उसने अपने बेटों के मारे जाने का समाचार सुना, वह सन्न रह गई। पागलों की भाँति अपने बल नोचने लगी, कपड़े फाड़ने लगी। बड़ी कठिनाई से उसे होश में लाया गया। तब वह बल खाती नागिन की भाँति जल्दी से पाण्डवों के पास पहुँची और उसने गरज कर कहा—“क्या आप लोगो में कोई भी ऐसा नहीं है जो मेरे पुत्रों की हत्या का बदला ले सके ?”

इस चुनौती के उत्तर में भीम सेन कड़क कर बोला—“जब तक भीम सेन जीवित है। तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। मैं शपथ लेता हूँ कि कोई मेरा साथ दे अथवा न दे जब तक तुम्हारे पुत्रों के हत्यारे अश्वस्थामा से बदला न ले लूँगा, तब तक चैन से न बैठूँगा।”

भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर एक बार तो सभी सन्न रह गए। परन्तु फिर उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सभी उसके साथ चलने को तैयार हो गए। सभी भ्राता अश्वस्थामा की खोज में निकल पड़े। दूढ़ते दूढ़ते आखिर उन्होंने गंगा के तट पर व्यास के आश्रम में छुपे अश्वस्थामा का पता लगा ही लिया और जाकर उसे घेर लिया।

अश्वस्थामा और भीम सेन में युद्ध छिड़ गया। दोनों वीर

पहले धनुष बाणों से लड़े, जब धनुष कट गए तो ढाल तलवार हाथ में लेकर मैदान में आगए । अर्जुन को एक बार ऐसा क्रोध आया कि उसने गाण्डीव पर बाण चढ़ाया, ताकि भीम सेन से लड़ रहे अश्वस्थामा का काम तमाम करदे, परन्तु युधिष्ठिर ने उसे रोकते हुए कहा—“भीम ने प्रतिज्ञा की है इसलिए उसे ही लड़ने दो । वीर जब आपस में लड़ रहे हों तो तीसरे को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । अश्वस्थामा ऐसी कोई धर्म विरुद्ध बात नहीं कर रहा, जिसके कारण तुम्हें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पड़े ।”

अर्जुन ने हाथ रोक लिया । उधर ढाल तलवार के भी टूट फूट जाने पर भीम सेन और अश्वस्थामा ने गदा सम्भाल ली । जब दोनों अपनी गदाओं को टकराते तो भयंकर ध्वनि निकलती, चिनगारिया भड़ जाती । दोनों उन्मत्त हाथियों की भाँति लड़ते रहे । और फिर उनमें मल्ल युद्ध होने लगा । आखिर में एक बार भीम सेन ने अश्वस्थामा को ऊपर उठा कर भूमि पर बड़े जोरो से पटक दिया । और झट वह उसकी छाती पर चढ़ बैठा । घुटने की एक ही चोट पड़नी थी कि अश्वस्थामा ‘ची’ बोल गया । उसने कहा—“भीम सेन ! मैंने हार मान ली । अब मुझे क्षमा कर दो ।”

परन्तु भीम सेन तो और भी जोश में आ गया, उसने क्रुद्ध होकर कहा—“निद्राअग्नि द्रौपदी के पुत्रों को मारने वाले और रात्रि में आग लगा कर सहस्रों सैनिकों को जला मारने वाले कलंकी तुझे क्षमा करदू ! नहीं, मैं तेरे प्राण लेकर ही छोड़ूंगा ।”

उसने फिर विनती की—“भीम सेन तुम महाबली हो । तुम क्षत्रिय वीर हो । मैं तुम्हारी शरण आता हूँ । क्षत्रिय कभी शरण आये पर हाथ नहीं उठाया करते ।”

“क्षत्रिय धर्म की दुहाई देकर जान बचाना चाहता है नीच ?

आवेश में आकर भीम सेन ने कहा—मैं तुझे विना मारे नहीं छोड़ सकता । कायर जब परास्त हो गया तो क्षमा याचना करता है । धूर्त ! जब तू घृष्टद्युम्न और उसके भाईयों को, तथा द्रौपदी पुत्रों का मार रहा था तब तुझे ब्राह्मण धर्म का ध्यान नहीं आया, अब मुझे क्षत्रिय धर्म की दुहाई देकर अपने प्राणों की भिक्षा माँगता है ? ठहरा ना भिक्षा माँग कर जीवन निर्वाह करने वाला ब्राह्मण ही ।”

उसी समय युधिष्ठिर दौड़ पड़े बोले—“भीम सेन ! शरण आये वीर पर हाथ उठाना तुम्हें शोभा नहीं देता है । अश्वस्थामा प्राण दान माग रहा है । और तीर्थकरो का कथन है कि दानो म सर्व श्रेष्ठ दान है अभय दान । अब इसे छोड़ दो ।”

“नहीं मुझे तो द्रौपदी भाभी को इसका सिर पेश करना है, ताकि इनके कटे सिर को देखकर वह अपने हृदय में धधक रही शोक एवं क्रोध की ज्वाला को शांत कर सके ।”—भीम सेन ने कहा ।

“मैं उस सती के लिए अपने माथे का उज्ज्वल रत्न दूंगा । वही मेरी पराजय की निशानी होगी—अश्वस्थामा ने दीनता पूर्वक कहा—महाबलो भीम अब मुझे क्षमा करदो । और मेरे माथे का रत्न उस सन्नारी को समर्पित करके कहो कि अश्वस्थामा अपने प्राणों का दान लेकर, पराजय के रूप में यह रत्न देकर, वन में चला गया । मैं वन में चला जाऊंगा और अपने पापों के प्रायश्चित्त के रूप में घोर तपस्या करूंगा ।”

यह सुनकर युधिष्ठिर और भी प्रसन्न हुए । उन्होंने भीम के चंगुल से अश्वस्थामा को मुक्त कराया । अश्वस्थामा ने माथे का रत्न भीम सेन को दे दिया और वन की ओर चल पड़ा ।

भीम सेन उस रत्न को लेकर द्रौपदी के पास पहुंचा और रत्न देकर बोला—“भाभी ! यह रत्न तुम्हारी ही खातिर लाया हूँ । यह अश्वस्थामा की पराजय का चिन्ह है । उसने हम से प्राण दान मांगा और अपने माथे का यह रत्न तुम्हारे लिए दिया है । जिस दुष्ट ने तुम्हारे पुत्रों को मारा था, वह परास्त हो गया । दुःशासन का मैंने रक्त वहा दिया, दुर्योधन भी मारा गया । अब अपने हृदय से क्रोध का दावा नल बुझा दो और शांत हो जाओ ।”

भीम सेन द्वारा दिया रत्न द्रौपदी युधिष्ठिर को देते हुए बोली —“धर्मराज ! इस रत्न को आप अपने मस्तक पर धारण करें ।”

×

×

×

×

सारा हस्तिनापुर नगर निस्तहाय व विधवा स्त्रियो और अनाथ बालकों के करुण चीत्कारों से रोने व कलपने के हृदय विदारक शब्दों से गूँज उठा । जिधर जाईये उधर ही रोने पीटने की आवाजें आ रही थीं, प्रत्येक घर में शोक मनाया जा रहा था । ऐसा का

नहीं था जिसका कोई मरा न हो । सब हा हा कार कर रहे थे । सभी की आँखों से सावन भादों की झड़ी लगी थी । सारे नगर में चीत्कारों का इतना शोर था कि नगर में प्रवेश करते हुए दिल धवराता था । धृतराष्ट्र अपने साथ निस्सहाय स्त्रियों को लेकर कुरुक्षेत्र की ओर चले, रोने पीटने वालों का यह दल जब कुरुक्षेत्र में पहुँचा तो एक बार सारा क्षेत्र विलाप से भर गया । जहाँ लगभग तीन सप्ताह तक तलवारें, धनुष, भाले, बछिया, सिंह नाद, हाथियों की चिंघाड़ें, घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई देती थी, वही अब स्त्रियों का करुण क्रन्दन गूँज रहा था । पृथ्वी से उठते चीत्कार आकाश को छने लगे । एक भयानक विलाप सारे क्षेत्र की छाती दहला रहा था । उस क्षेत्र में चारों ओर लाशें ही लाशें दिखाई देती थी । कुत्ते और शृगाल वीरों के शवों को खींच रहे थे । चीलो और गिद्धों के झुण्ड के झुण्ड लाशों पर टूट पड़े थे । जब चीलो, गिद्धों, कुत्तों और शृगालों ने जब मनुष्यों के रोने पीटने की आवाज़ सुनी तो वे भी एक साथ मिल कर बोल उठे । उस समय इतना शोर हुआ कि कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती थी । लगता था कि पशु पक्षी मनुष्यों के चीत्कारों की खिल्ली उड़ा रहे हों और कट रहे हों—“विनाश की लीला रचाते समय नहीं सूझा था अब आँसू बहाते हों । अब विलाप करने से क्या लाभ ?”

सब अपने अपने प्रिय जनो के शवों को खोज रहे थे । कोई किसी खोपड़ी को हसरत भरी नज़रों से देखकर आँसू बहा रही थी तो कोई किसी घड़ से लिपट कर रुदन कर रही थी । और धृतराष्ट्र तो एक ओर खड़े आँसू बहाते रहे । वह बेचारे अपने पुत्रों के शवों को भी पहचान सकने की शक्ति न रखते थे ।



✽ चव्वन्नवां परिच्छेद ✽

गांधारी की फटकार

सजय धृतराष्ट्र का एक प्रकार से दाया हाथ था, वह सदा उसके साथ रहता था, उनके समस्त रहस्य सजय को ज्ञात थे। कहते हैं वह प्रतिदिन कुक्षेत्र के युद्ध का वर्णन जाकर धृतराष्ट्र को सुनाया करता था। वैष्णवों के मतानुसार महाभारत के सारे युद्ध का वृत्तांत उसी का कहा हुआ है। जो भी हो सजय था धृतराष्ट्र का आत्मा ही।

जब वृद्ध धृतराष्ट्र अपने बेटों के शोक में आंसू बहा रहे थे, तब सजय उन्हें धैर्य बघाता हुआ बोला—‘महाराज ! आप जैसे बयो वृद्ध और अनुभवी व्यक्ति को समझाने की क्या आवश्यकता ? आप तो स्वयं समझदार और जानकार हैं, आप जानते ही हैं कि जो होना था वह हो गया। मृत वीरों के लिए आसू बहाने से कोई लाभ नहीं है। अब तो धैर्य ही एक मात्र उपाय है। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों का फल भोगता है। मृतात्माओं को आपके आसुओं से कोई लाभ नहीं पहुंच सकता। इसलिए आप शांत हो जाइये और अपने मन को समझाईये।’

विदुर जी भी उस समय धृतराष्ट्र के पास पहुंच गए। उन्होंने कहा—“आपके इन बेटों को मैंने बहुत समझाया, पर वे न माने। इसी का कारण है कि आज उनकी यह गति हुई। तो भी हमें यह जान लेना चाहिए कि आत्मा अजर अमर है। यह शरीर अनित्य है। किसी न किसी दिन शरीर का नाश होता ही है। जो लोग इस युद्ध में मारे गए हैं, वे वीर गति को प्राप्त हुए हैं। उनके लिए आसू

वहाना और पश्चात्ताप करना व्यर्थ ही है । अतः अब आप विलाप समाप्त करके पाण्डवों को ही अपना पुत्र समझिए । युद्ध में एक न एक पक्ष की हार तो होती ही है और जब इतना भयकर युद्ध ठना था तो एक न एक पक्ष के वीरों की तो यह गति होती ही है । इसलिए आपका विलाप बेकार है । पाण्डव आपके भाई की हो सन्तान हैं । उन्हें आपना आत्मज जान कर आप सन्तोष करेंगे तो आपको शांति मिलेगी । वरना इस व्याकुलता से आप का स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा और खोये हुए पुत्रों की आत्मा को भी आप कोई लाभ नहीं पहुँचा सकेंगे ।”

इस प्रकार कई बार विदुर जी ने धृतराष्ट्र को सान्त्वना दी । उन्हें अनेक प्रकार से समझाया । किसी प्रकार उनके आसू रुके । तब रोती विलखती स्त्रियों के झुण्ड को पार करते हुए पाण्डव श्री कृष्ण के साथ धृतराष्ट्र के पास आये और नम्रता पूर्वक हाथ जोड़े हुए उनके सामने जाकर खड़े हो गए । विदुर जी ने कहा—“महाराज ! आपके पुत्रवत् भतीजे आपके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं ।”

धृतराष्ट्र की आँखों से पुनः आसू बह निकले । उन्होंने अर्बुद कण्ठ से कहा—“बेटा युधिष्ठिर ! तुम सब सकुशल तो हो !”

युधिष्ठिर बोले—“आप की कृपा से हम जीवित हैं और अब आपके चरणों में आज्ञाकारी पुत्रों के समान स्थान पाना चाहते हैं । हमारे कारण यदि आपको कुछ कष्ट पहुँचा हो तो आप क्षमा कर दें । हम नहीं चाहते थे कि युद्ध हो, वह हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी युद्ध टला नहीं मुझे अपने भाईयों के लिए बड़ा शोक है । अब मैं स्वयं दुर्योधन की कमी, जो कदाचित् आपको खटके, पूरी करने का प्रयत्न करूँगा । पिता जी के मुनिव्रत धारण करने के उपरान्त से हम ने आप ही को अपना पिता माना है । पिता उद्दण्ड बालक को भी स्नेह करता है । इसी प्रकार आप हमें अपना स्नेह प्रदान करें ।”

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को छाती से लगा लिया । पर वह आलिंगन स्नेह पूर्ण न था ।

इतिहासकारी का कथन है कि उसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने भीमसेन को अपने पास बुलाया । पर धृतराष्ट्र के हाव भाव से श्री कृष्ण भीम के प्रति उनके मनोभाव जान गए और उन्होंने भीम के

स्थान पर एक लोहे की प्रतिमा अन्धे धृतराष्ट्र के सामने खड़ी करदी, श्री कृष्ण का भय सही साबित हुआ। क्योंकि पहले तो उन्होंने उस प्रतिमा से स्नेह प्रगट किया। परन्तु तभी उन्हें अपने बेटों की याद आ गई और उन्होंने प्रतिमा को इतने जोर से भीचा कि प्रतिमा चूर चूर हो गई।

परन्तु प्रतिमा के चूर हो जाने के उपरान्त धृतराष्ट्र को ध्यान आया कि मैंने यह क्या कर डाला। वे दुखित हो कर बोले—“हाय मैंने यह क्या कर डाला, क्रोध में आकर भीमसेन की हत्या करदी।” इतना कह कर वे विलाप करने लगे। तभी श्री कृष्ण बोले—“महाराज! आप चिन्तित न हो। भीम सेन सकुशल है।”

“तो फिर यह कौन था, जो मेरे हाथों चूर हो गया।”

“वह था लोहे की प्रतिमा।”

धृतराष्ट्र को क्रोध तो आया, पर उसे पीकर बोले—“श्री कृष्ण! तुम ने बहुत अच्छा किया कि मुझे एक पाप से बचा लिया।”

फिर तो धृतराष्ट्र ने भीम सेन को अपने पास बुलाकर बड़ा स्नेह दर्शाया। इसी प्रकार अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी छाती से लगा कर प्यार किया। उन्हें आशावादि दिया और सुत्र पूर्वक राज्य काज करने को कहा।

गांधारी एक ओर खड़ी विलाप कर रही थी। विदुर जी ने जाकर उसे ढाढस बन्वाया। और इसके लिए उन्होंने आत्मा के सम्बन्ध में ज्ञातपूर्ण उपदेश दिया। फिर पाण्डव उसके पास गए और पैर छूकर प्रणाम किया। जब श्री कृष्ण पहुँचे तो प्रणाम करके बोले—“सती गांधारा! अब विलाप बन्द करो जाने वाले अब वापिस तो आते नहीं। अब तो पाण्डवों को ही अपना बेटा समझो। तुम्हारे पुत्र यदि मेरो बात मान लेते और पाण्डवों से सन्धि कर लेते तो आज उनकी यह गति नहीं होती और न आपको यह दिन देखना पड़ता ठीक है अभिमान विखण्डे का कारण बनता है। जो समस्याएँ शांति से सूलभक्त सकती हैं वही हिंसा से विकट रूप धारण कर लेती हैं। तुम जती सती, जो धर्म के मर्म को समझती है, मृत व्यक्तियों के लिए आँसू बहाये, यह अच्छा नहीं लगता। सन्तोष करो।”

गांधारी के हृदय में क्रोध का दावा नल घबक उठा। उसने

श्री कृष्ण को फटकारते हुए कहा—“कृष्ण तू अब मुझे उपदेश दें आया है। क्या मैं नहीं जानती कि यह सब युद्ध की जड़ तू ही था तेरे ही कारण मेरे परिवार का नाश हुआ। तेरे ही कारण रक्त क नदिया वही। तेरे ही कारण मेरे सौ पुत्र मारे गए। तेरे ही कारण भारत खण्ड के असंख्य वीर वलि चढे। तू न होता तो असंख्य नारियों का सुहाग न उजड़ता असंख्य बालक अनाथ न होते। और कुरुक्षेत्र इस प्रकार हड्डियों से भरा न होता। तूने ही युद्ध के बीज बोये। तूने ही भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन और दुःशासन आदि का वध कराया और जिनका तू पक्षपाती बना, उन्हें भी इस योग्य कर दिया, कि वे कभी तेरे सामने छाती तान कर खड़े न हो सकेंगे। मैं जानती हूँ कि त्रिखण्डी होने के उपरान्त मुझे चाह हुई कि भारत खण्ड में कोई ऐसा क्षत्रिय कुल न रहे, जो यादवों से किसी भी समय टक्कर ले सके। हमारा कुल तेरी आखों में खटक रहा था और उसी का तू ने नाश करा दिया। पर याद रख कि तूने मेरा कुल मिटाया है, तो तेरे कुल का भी नाश हो जायेगा और तू अपने पाप का भयकर फल भोगेगा। तेरे सारे कुचक्र के बाद भी मुझे तो पानी देने वाला भी होगा, तू निस्सहाय होकर तड़प तड़प कर प्यासा ही मर जायेगा। यह एक सती का वचन है, जो कभी खाली न जायेगा।”

गांधारी के इन शब्दों को सुनकर सभी कांप उठे। श्री कृष्ण का दिल भी दहल गया और पाण्डव भी भयभीत हो गए। पर तीर हाथ से छूट चुका था। सती के मुँह से शाप निकल ही गया था। अब क्या हो सकता था। श्री कृष्ण ने अपनी ओर से बहुत ही स्पष्टीकरण दिया, पर गांधारी को वे सन्तुष्ट न कर सके।

इस समय व्यास जी ने क्रुद्ध सती को शांत करने के उद्देश्य से कहा—“देवी! तुम महान सती हो। तुम पाण्डवों पर क्रुद्ध न होओ। उनके प्रति मन में द्वेष न रखो क्योंकि द्वेष अधर्म को जन्म देता है। याद है तुम्हीं ने तो युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कहा था कि जहां धर्म होगा, जीत भी उन्हीं की होगी। और आखिर वही हुआ। जो बातें बीत चुकी उन्हें याद करके मन में बैर रखना अच्छा नहीं है। तुम्हारी सहनशीलता और धैर्य का यश समस्त ससार में फैल रहा है। अब तुम अपने स्वभाव को मत बदलो। यही ठीक है कि तुम माँ हो, माँ के हृदय में अपने पुत्रों के प्रति जो ममता होती है,

उसी के वशीभूत होकर तुम्हें अपने पुत्रों के प्रति शोक है, पर तुम साधारण स्त्री तो नहीं हो । तुम्हें तो उच्चादर्श प्रस्तुत करना ही शोभा देता है ।”

गांधारी ने उत्तर दिया—“मैं जानती हूँ कि पुत्रों के वियोग के कारण मेरी बुद्धि अस्थिर हो चुकी है, परन्तु फिर भी पाण्डवों के सौभाग्य पर मैं ईर्ष्या नहीं करती । आखिर वे भी मेरे लिए पुत्रों के ही समान हैं । मैं जानती हूँ कि दुःशासन और शकुनि ही इस कुल के नाश के मूल कारण थे, परन्तु श्री कृष्ण ने शकुनि तथा दुःशासन द्वारा प्रज्वलित अग्नि को हवा दी और वह ज्वाला दावानल बन गई । मुझे यह भी विदित है कि अर्जुन तथा भीम निर्दोष हैं । अपनी सत्ता के मद में आकर मेरे पुत्रों ने यह विनाशकारी युद्ध छेड़ा था और अपने अत्याचारी कर्मों के कारण मारे भी गए । परन्तु एक बात का मुझे बहुत खेद एवं शोक है । श्री कृष्ण की कृपा से दुर्योधन और भीम सेन में गदा युद्ध हुआ, यहाँ तक तो ठीक है । लेकिन कृष्ण के संकेत पर भीम सेन ने कमर के नीचे गदा मार कर गिराया, यह मुझ से नहीं सहा जाता ।”

भीम को इस बात का दुःख था कि उसने दुर्योधन को अनीति से मारा है । गांधारी की बातें सुनकर वह क्षमा याचना करते हुए बोला—“मा ! युद्ध में अपने बचाव के लिए क्रोध वश मुझ से ऐसा हुआ, वह धर्म हुआ या अधर्म, आप इसके लिए मुझे क्षमा कर दें । उस समय मैं क्रोध में था, क्रोध से पाप होते हैं, मुझ से भी यह पाप हुआ । मैं यह स्वीकार करता हूँ कि धर्म-युद्ध करके मैं दुर्योधन को परास्त नहीं कर सकता था, और दुर्योधन की ओर से युद्ध में बार बार अधर्म हुआ, बार बार युद्ध-नियमों का उल्लंघन होता रहा, वस इसी कारण मैं भी अधर्म कर बैठा । पर यह तो सोचिये कि मेरे द्वारा की गई अनीति की जड़ क्या थी । दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए के खेल में फंसा कर हमारा राज्य छीन लिया और दुःशासन ने भरी सभा में द्रोपदी का अपमान किया, इससे हमारे हृदय घबक उठे । तेरह वर्ष तक हम दुर्योधन की अनीति के कारण उत्पन्न हुई क्रोध की चिनगारी को छिपाये रहे । प्रगट होने पर हम ने सिर्फ पाँच गाव मांगे, उसने सुई की नाक जितनी भूमि भी देने से इन्कार

कर दिया। हमारे शांति-व्रत श्री कृष्ण की अपने ही दरवार में उस हत्या करनी चाही हमारे मामा को उसने धोखा देकर अपने पक्ष में लिया। युद्ध में बालक अभिमन्यु को अनीति से मरवाया। यह कितनी ही ऐसी बातें थी कि मेरे हृदय को छलनी कर गई थी उसी की अनीतियों के फल स्वरूप मुझ से यह दुष्कर्म हुआ। इसलिए मैं मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं जीवन भर आपकी ऐसी सेवा करूंगा कि आपको पुत्र हीना होने का खेद ही नहीं रहेगा। मैं दुर्योधन को आप को नहीं दे सका तो इसके बदले, अपने आप को देता हूं।" वाक्य सर्वज्ञ देव का कथन है कि यह सामुदायी कर्म होते हैं जो प्राणियों के कई कारणों से सहार होते हैं—

यह सुन गांधारी करुण स्वर में बोली—“बेटा ! मुझे दुःख इस बात का है कि तुम लोगों ने मेरे सौ के सौ पुत्र मार डाले, एक तो छोड़ ही दिया होवा, जिस पर हम सन्तोष कर लेते।”

फिर उस देवी ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया। युधिष्ठिर काँपते हुए उसके सामने गए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वह बहुत ही भय विह्वल हो रहे थे। बड़े ही नम्र शब्दों में बोले—“देवी! जिस अत्याचारी ने आप के पुत्रों की हत्या कराई, वह यदि आप के शाप के योग्य हो तो शाप दे दीजिये। सचमुच मैं बड़ा कृतघ्न हूँ। मैंने बड़ा पाप किया। आप से क्षमा मागू तो किस मुंह से? आखिर सामुदायी कर्म ही होते हैं जो किसी समय जीव अशुभ भावना से बाधते हैं—

गांधारी को क्रोध आ रहा था, पर वह कुछ बोली नहीं। युधिष्ठिर की बातों से वह नम्र हो गई। इतने में ही द्रौपदी रोती हुई गांधारी के पास गई। उसे रोता देख गांधारी बोली—“बेटी! मेरी ही भांति तू भी दुखी है। पर विलाप करने से क्या होता है तू मुझे इसके लिए दोषी समझ कर क्षमा कर दे।”

पाण्डव वहाँ से चले गए। गांधारी द्रौपदी को घेर्य बंधाती रही। कितना करुण दृश्य था वह, एक शोक विह्वल नारी दूसरी नारी की घेर्य बंधा रही थी, उस नारी को जो उसकी पत्नी थी जिस के प्रति गांधारी कुपित थी।

घृतराष्ट्र पाण्डवों को अपने साथ ले गए। एक बार पुनः हस्तिनापुर में उत्सव मनाया गया। बड़े ठाठ से युधिष्ठिर की सवारी निकली। और फिर युधिष्ठिर आनन्द पूर्वक राज करने लगे।

घृतराष्ट्र को वे सभी प्रकार का सुख देते थे। तो भी उसके मन की वेदना मिटती न थी। वे भूमि पर ही सोते थे और लम्बे लम्बे उपवास करते थे। कुन्ती गांधारी के मन को बहलाने की चेष्टा करती रहती।



विशेष सूचना


इसके आगे श्री नेमनाथ जी का विवाह देवकी का लाल राज सुकुमाल का वर्णन महा सती द्रौपता का हरण श्री कृष्ण जी महाराज को धात्री खण्ड में जाना विजय प्राप्त करना और द्रौपता की वापिस जाना द्वारका नगरी दहन श्री नेमनाथ भगवान् का त्याग पाण्डवों की अंगवृत्ति मोक्ष गमन सती राजमती का त्याग सती द्रौपता का त्याग और मोक्ष गमन इत्यादि जैन महाभारत के तृतीय भाग में पढ़ें।

हमारे मौलिक प्रकाशन :—

संख्या	पुस्तक नाम	मूल्य
1	शुक्ल जैन रामायण (पूर्वार्द्ध) ...	3-0-0
2	„ „ उत्तरार्द्ध ...	4-0-0
3	प्रधानाचार्य पूज्य सोहन लाल जी म० का आदर्श जीवन ...	4-0-0
4	पजाब केंशरी जैनाचार्य पूज्य कांशीराम जी म० का आदर्श जीवन ...	3-0-0
5	शुक्ल जैन महाभारत प्रथम भाग ...	5-0-0
6	„ „ द्वितीय „ ...	5-0-0
7	धर्म दर्शन (दस धर्म विवेचन) ...	2-0-0
8	मुख्य तत्त्व चिंतामणि... ..	0-62 न.पै.
9	तत्त्व चिंतामणि भाग एक (विस्तार सहित) ...	0-75 „
10	„ „ „ दो „ „ ...	0-75 „
11	„ „ „ तीन „ „ ...	0-75 „
12	तैत्तीस बोल „ „ ...	0-15 „

प्राप्ति स्थान

- 1 पूज्य सोहन लाल जैन रजोहरण पात्र भण्डार अम्बाला शहर
(पजाब)
- 2 पूज्य कांशी राम स्मृति ग्रन्थ माला 12 लेडी हाडिंग रोड
नई देहली ।



प्राप्ति-स्थान

ला० टेकचन्द सुखदेव राज जैन
कोतवाली बाजार अम्बाला शहर (पजाब)

ला० कान्ता प्रसाद जैन (जल्लाबादी)
कान्धला (मुजफ्फर नगर)

३ पूज्य सोहन लाल जैन पात्र भंडार
अम्बाला शहर (पजाब)

४ श्री प्रीतम चन्द जैन
36 F कमला नगर, देहली

५ जिनैन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, राजपुरा
(पजाब)

